



तत्त्व ग्राहक पुरुषोने परम हितकारी ग्रंथ.

# श्री सुमतिप्रकाश ग्रंथ.

( श्री देवचंद्रजी कृत अनित चोवीशी तथा विहर-  
मान जिन स्तवन वीशी विगरेनो संग्रह )

॥ दोहरा ॥

जव्य ज्रमर जर तृप्तिकर, जिन मुख पद्म पराग ॥  
मोक्षार्थी जिन वचनमां, धारो परम सुराग ॥ १ ॥  
स्याद्वाद शुचि बोधिनी, नमं सरस्वति माय ॥  
गौतम गणधर लब्धिनो, हो जविने सुपत्ताय ॥ २ ॥

ठपात्री प्रमिद्ध कर्ता

“दाहोद” निवासी शा. संतोकचंद माणोकचंद.

आवृत्ति १ खी प्रत १०००

मुद्राई माम्नी हुगरी स्ट्रीट नगर ३७०-७७ मा आवेला ‘मधर्मनिष्ठ’  
नामक मुद्रायंत्र मये द्विपेदी गिरिनाथकर काशीरामे मुद्रित कयो

समत १९६७ मन् १९११

किंमत रु०-१-४-०

अमारा तरफथी बपाई बहार पडेला अमूढ्य उपयोगी ग्रंथो

अमारा तरफथी बपाई बहार पडेला अमूढ्य उपयोगी ग्रंथो

तत्त्व ग्राहक पुरुषोने निचे प्रमाणे किंमते मलशे. पोस्टेज  
जुडं पमशे.

|                         |           |
|-------------------------|-----------|
| श्री सुमतिविलास         | रु० १-०-० |
| श्री सुमतिव्यवहार       | रु० १-०-० |
| श्री नवपद पूजादि संग्रह | रु० ०-०-० |
| श्री सुमतिप्रकाश        | रु० १-४-० |
| श्री ठ कर्मग्रंथ मूल    | रु० ०-२-० |

प्रथम अमे सदरहु ग्रंथो पैकीना ग्रंथो जेट तरिके आपता होता  
पण हवेथी उपर प्रमाणे किंमते वी-पी-थी मोकलवामां आवशे. श्री  
सुमतिप्रकाश ग्रंथ शिवाय बाकीना ग्रंथो हमारी पासे जुज रह्या ठे.  
केटलाक लोको मंगावी उपयोग करता नथी माटे जुज किंमत राख-  
वामां आवी ठे; वली ए नाणुं आवे ते ज्ञान वृद्धिमांज वापरवानुं ठे.

ग्रंथो मलवानुं ठेकाणुं

गांधी कोदरलाळ बगनलाळ.

मु० वेजलपुर, स्टेसन खरसाळीआ. जीह्या पंचमहाल.

शा० संतोकचंद माणिकचंद मु० दाहोद. जीह्या पंचमहाल.

अनुक्रमणिका.

| विषय.  | पृष्ठ.  |
|--|---------|
| श्री. देवचन्द्रजी कृत अतित स्तवन चोवीशी (श्रीमान् मनसुख-<br>लालजी हरिलालजी कृत वालावबोध सहित ) | १-१०५   |
| जिनागममा कहेली श्रुतधरने सोल ऊपमा “ ढाल वरू ”<br>( श्रीमान् मनसुखलालजी कृत )                   | १०६-११६ |
| विषय परिहार “ ढाल वरू ” (श्रीमान् मनसुखलालजी कृत)  | ११७-१३१ |
| ममत्व परिहार “ ढाल वरू ”   | १३३-१५३ |
| सूत्र तत्त्वार्थ सार विचार “ ढाल वरू ”   | १५३-२१५ |
| दर्शनपद अधिकार   | १५३     |
| ज्ञानपद अधिकार   | १५६     |
| उपशमादि त्रेपन जीव जाव अधिकार  | १५९     |
| नरकादि अधिकार  | १६३     |
| क्षेत्र विचार अधिकार   | १६४     |
| चार निकाय देवाधिकार  | १६९     |
| द्रव्यानुयोग ( जीवादिक खट्खट्यनुं स्वरूप ) अधिकार  | १७३     |
| कर्म बंधनना कारण आश्रवनुं स्वरूप वर्णन   | १७७     |
| पंच महाव्रत तथा पंचाचार विगेरेनु स्वरूप  | १७४     |
| देशव्रतादि अधिकार  | १७७     |
| फरीथी बंध हेतु स्वरूप  | १९१     |
| कर्मबंध सूक्ष्म स्वरूप   | १९५     |
| समिति गुप्ति आदि संवर अधिकार   | १९७     |



|                                |      |      |     |
|--------------------------------|------|------|-----|
| बावीश परिसह स्वरूप             | .... | .... | १९७ |
| ह्रमादिक दश यतिधर्म स्वरूप     | .... | .... | २०२ |
| अनित्यादि बार जावना स्वरूप     | .... | .... | २०३ |
| सामाशकादिक पांच चारित्र स्वरूप | .... | .... | २०५ |
| मोक्षाधिकार                    | .... | .... | २०६ |
| धर्मकथानुयोगाधिकार             | .... | .... | २०९ |
| कलश                            | .... | .... | २१४ |

श्रीमान् देवचंद्रजी कृत विहरमान जिन स्तवन वीशी

(शा. संतोकचंदजी माणकेचंदजी कृत वालावबोध सहित) २१७-३७२

गांधी दलसुख नाथजी कृत पद ३७३-३७५

प्रसन थयुं मनरे ( पद ) ३७३

माता मरुदेवाना नंद ( रुपज्ज जिन स्तवन ) ३७४

अजित जिनेश उपासना ( अजित जिन स्तवन ) ३७४

शा. वाडीलाल पांनाचंद कृत पद ( मगन थयुं मनरे ) ३७५

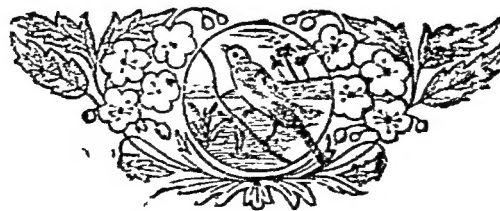
श्रीमान् मनसुखलालजी हरिलालजी कृत पद ३७६-३७७

द्रव्य सकल सहजे परिणामी ( पद ) ३७६

चौदराज गत जीव ठ कायिक ( ठंद ) ३७७

सोहम गणधरने नमोजी ३७७

जग परम सुखकर छुरित छुखहर ( मंगलाचरण ) ३७९



## प्रस्तावना.

॥ दोहरो ॥

अंतातीत गुणे ज्ञया, सिद्ध अनंतानंत ॥

निर्जय सहज स्वतंत्र शिव, नमो परम जयवंत ॥ १ ॥

आ जगत्त्रयमां वसता सर्वे प्राणीं जे के दुःख क्लेश विगेरेथी मुक्त थवा तथा सुख रूप परम निवृत्तिमां निरंतर रहेवा चाहे ठे, पण अनादि अज्ञानरूप तिमिर रोग वने ज्ञानरूप दिव्य द्रष्टि आह्लादित होवार्थी परम निवृत्तिरूप अनुपम सुखने यथार्थ जेखो शकता नथी, तथा जेम धनुरानो रस पीधेलो पुरुष सुवर्णथी अन्य वस्तुंने पण सुवर्णरूप जुण ठे, तेम पौद्गलीक जोगो जे वास्तवाक रीते उपाधिना प्रतिकार ठे तेने सुख माना तद्धीन थई परम निवृत्तिरूप पोताना शुद्धात्म स्वरूपना ज्ञान तथा अनुभवथी दूरवर्ती रहे ठे, अने निरंतर मोहमयवने वेचान थई मोह राजाना संसाररूप महान्जयंकर जेखानामां वसता पोतानी शक्तिनो दुरुपयोग करता दुःसह दुःख समूहने पोताना कोमल शिरपर धरेठे.

तता तेमांथी अवसर पामी केटलाक प्राणीं सचेत थई पोताना आत्म स्वरूपनु ज्ञान पामी पोतानो आत्मीय शक्तिंनो दुरुपयोग करवो त्याग, पोताना सम्यक् प्राक्रमने स्फुरायमान करी, मोह राजाना जेखानाने तोनी तेमांथी वहार नीकली रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गमां विचरता पोतानी अखूट अव्यावाध अनुपम शाश्वत अने निरुपचरित सुख प्रद पोतानी स्वतंत्र आत्मिय जूमिमां विराजमान थई अनंत समाधिमय आत्म राज्यना सादिअनंत जांगे जोक्ता वनेठे

एवा अत्यंत धीर वीर उदार करुणानिधान जगत् जीवोना खेदइ सर्वइ वीतराग अने निष्कलंक तीर्थंकर गणधरादि परोपकार करवामां अग्रेसर अनेक महान् पुरुषो पोते जे मार्गे परमनिवृत्ति स्थितिने पाम्या ठे ते मार्ग यथार्थ रीते परम करुणावळे संसाररूप जेलखानामां वसता दुःखमय प्राणीजने उपदेशे ठे. सर्वत्र अने सर्वदा एके अवाजे पुकारे ठे के “ हे नव्य पुरुषो ! जो तमे आ दुःखमय संसाररूप जेलखानामांथी मुक्त थई परमनिवृत्तिमय मोक्षपद पामवा ईछता हो तो स्वपर ड्रव्य जाव प्राणनी हिंसानो जेमां सर्वथा अजाव ठे एहवा सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप धर्ममां निरंतर प्रवृत्तमान थाउं.”

संसार। जीवोने ते रत्नत्रयरूप पवित्रधर्म प्राप्त थवाना हेतुए ते परोपकारी महान् पुरुषो स्फटिकमणि समान पोताना अत्यंत निर्मल हृदय कोषमांथी नय निक्षेप पक्ष प्रमाणयुक्त स्याद्वादमय अत्यंत मधुर अने विशद वचनरत्नोनुं अस्खलित प्रवाहरूपे आ जूमंजुलमां प्रदान करे ठे; परंतु आ जरतक्षेत्रमां आजे आपना हीण जाग्ये तेवा परोपकारी ( तीर्थंकर गणधर पूर्वधर ) पुरुषोनुं दर्शन पण दूर्लभ थई पर्युं ठे, पण ते पूज्यपुरुषोनी आपणाउपर केटली करुणा द्रष्टि के तेउना समागमना अजावे पण आपणे तेउनी दिव्य वाणीनो कंईक आस्वाद पामी शकीए एवा उदार हेतु वळे महान् गंजीर अनेक सूत्रोनों रचना करी पोतानी करुणारस वळे जरपूर चंद्रमा समान उज्ज्वल कीर्त्तीने आ जूमंडलमां सर्वत्र फेलावी अमर करी ठे, वली ते गंजीर सूत्रोमां अल्प मतिवडे प्रवेश थवो दुष्कर जाणी श्री जिनजड गणी क्षमा श्रमण, श्रीसिद्धसेन दिवाकर, श्रीमदुमास्वाती वाचक, श्री हरिजडसूरि, श्री अजयदेवसूरि, श्री मयशोविजयजी, श्री देवचंद्रजी विगेरे महान् बुद्धिवान करुण पुरुषोए ते सूत्रोनों गूढ जावार्थ आपणी बुद्धि गोचर थई शके एवा उदार हेतुए पोताना अमूल्य ज्ञान तथा

कालने वापरी ते सूत्रांनी पवित्र जक्तिरूप अनेक सुगम्य अने परम हितकारी सरल ग्रंथो रची आपणा उपर असीम उपकार कर्णो, जेनी परंपराए आ पंचमकालमा माहारा जेवा अद्वय मतीने रत्नत्रयना हेतु रूप अमूढ्य वचन रत्नोनी लाज मले ठे

अरे ! जो ते महोपकारी आचार्यो द्वारा ते परम कल्याणकारी तीर्थकर जगवंतनी दिव्यवाणी आपणा सुधी आवी पहींची न होत तो आ दुपम कालमा आ जवसमुद्रमां मूयताने कोण शरण थात ? आपणो शी दशा थात ? परंतु कोई आपना जाग्योदये आज सुधी पण ते दिव्य वाणीनो अमृत सार आपणने प्रदान करनारा महान् पुरुषो वर्त्त्या जाय ठे

जेना प्रत्युपकार सुधी आपणुं सामर्थ्य पहींची शकतुं नथी, एम प्रतित यता मात्र परम आदर सहित ते पुरुषोनी पवित्र वाणीनो सेवा करवी, तेनी जक्ति अर्थे तेउनी पवित्र वाणीना प्रसार यवामां सेवा वजाववी ते माहरी शक्तिने लायक समजी माहारा केटलाक धर्मस्नेही सन्मित्रोनी सम्मतिथी नीचे प्रमाणे ग्रंथो प्रसिद्ध करवा आजिलापी थाउ तु

( १ ) “ महोपाध्याय श्री देवचंद्रजी कृत अतित चौवीश जिन स्तवनावली ” ( श्रीमान् मनसुखलालजी हरिलालजी विरचित वालावबोध सहित ) जेमा अव्यानुयोग, न्याय अने संयम विगेरे मुक्तिनां साधनो स्फुट रीते सिद्ध करी दर्शाव्या ठे

( २ ) “ श्रुतधरने सोल उपमा ” ( ढाल वरु ) उत्तराध्ययन सूत्र उपरथी ( श्रीमान् मनसुखलालजी विरचित. )

( ३ ) “ विषय परिहार ” इंद्रिय पराजय शतकनो सार ग्रहण करी विषयो तरफ वैराग्य जाव उपजे एवी वैराग्य जनक ढालोनी संग्रह ( श्रीमान्-मनसुखलालजी विरचित. )

(૪) “મમત્વ પરિહાર” જે વ્રુદ્ધે પરદ્રવ્ય પરદેત્ર પરકાલ પરજાવ ઉપરથી મમત્વ બુદ્ધિ ઊઠી સ્વદ્રવ્યાદિકમાં સ્થિતિ થાય એવો પદ્યાત્મક ગ્રંથ (શ્રીમાન્-મનસુખલાલજી વિરચિત.)

(૫) “સૂત્ર તત્ત્વાર્થ સાર વિચાર” (ઢાલ વરુદ્ધ) જેમાં તત્ત્વાર્થ સૂત્રના આધારે જીવાદિ તત્ત્વોનું સ્વરૂપ વિસ્તાર પૂર્વક લખા-  
ણેલ છે, ચારે અનુયોગનો જેમાં સંદેષે સમાવેશ છે, (શ્રીમાન્-  
મનસુખલાલજી વિરચિત.)

(૬) શ્રીમાન્ દેવચંદ્રજી કૃત વિહરમાન વિંશતિ જિન સ્તવનાવલી  
વાલાવગ્રોધ સહિત.

એ પ્રમાણે ઢ ગ્રંથોનો સંગ્રહ કરો તે સંગ્રહિત ગ્રંથને “શ્રી સુમતિ  
પ્રકાશ” એવા સાર્થ નામ વડે પ્રસિદ્ધ કરું.

બાલક જેમ જલમાં પડેલા ચંદ્રવિંવ ગ્રહણ કરવાનો મનોર્થ કરે છે,  
તેમ મેં પણ શ્રી જિન વચનની જાક્તિના ઉત્તરાર્થી માહરી શક્તિનો  
વિચાર નહિ કરતાં શ્રીમાન્ મહોપાધ્યાય શ્રી-દેવચંદ્રજી વિરચિત  
વિહરમાન વીશ જિન સ્તવનાવલીનો અર્થ કરવાનો અતિ સાહસિક  
અને ડુષ્કર માહરો મનોર્થ શ્રી ગુરુનો કૃપા દ્રષ્ટિથી સંપૂર્ણ થયો છે.

સ્વપરહિત વિચારી કેટલાક પ્રાચીન આચાર્યોના વચનાધારે માહરી  
મતિ પ્રમાણે તે અર્થ લખ્યો છે, ઢતાં તેમાં જે કંઈ માહરી અલ્પ મતિને  
લીધે સૂત્ર વિરુદ્ધ લખાયું હોય તે હે સુદ્ધ વિદ્વદ્ધરો ! મને અલ્પ મતિ  
જાણી ક્ષમા કરશો, અને સૂત્ર પ્રમાણે જે વચન હોય તે હંસની પેઠે  
ગુણગ્રાહી બુદ્ધિ વ્રુદ્ધે ગ્રહણ કરશો એ આપ પ્રતિ માહરો નમ્ર વિનંતી છે.

આ “શ્રી સુમતિ પ્રકાશ” ઢપાવી પ્રસિદ્ધ કરવામાં માહરા ધર્મ  
સ્નેહી વેજલપુર નિવાસી ગાંધી. કોદરલાલ ઢગનલાલે ફારમો તપાસવા  
લખવા વિચારવા વિગેરેની પુરેપુરી મદદ કરેલ છે, તે માટે તેમનો હું  
અતિશય આજારી હું. અને ઇચ્છું હું કે તેમના હૃદય કમલમાં એવી  
પ્રવચન જાક્તિરૂપ લક્ષ્મી નિરંતર વાસ કરો.

આ ગ્રંથ ઠપાવવામાં થતા ખર્ચ પૈકી ગોધરા નિવાસી “ વાઈ-  
રુઝમાણી હરિલાલ વરજલાલ ” ના સ્મર્ણાર્થે તેમના તરફથી તેમના  
જર્નાલા “ શા. મગનલાલ મનસુખલાલે ” રૂ ૧૫૦ અંકે રૂપીઆ  
વસે પચાશ જ્ઞાનના વહુ માનાર્થે જેટ તરીકે અર્પણ કરેલા છે, તથા  
વીજા જે પુરુષોષ પોતાના તન મન ધન વિગેરેથી મદદ કરેલી છે  
તે સર્વેને કોટીશઃ ધન્યવાદ છે.

આ ગ્રંથ ઠપાવવામાં જે કંઈ દ્રષ્ટિ દોષવડે જૂલો રહેલી, તેમાંની  
જેટલી દ્રષ્ટિ ગોચર થઈ તેટલી માટે શુદ્ધિ પત્ર આપેલું છે, ઠતાં જે  
કંઈ જૂલો રહી હોય તેમાટે સુધારી વાંચવા હું જલામણ કરું છું.

( સંપૂર્ણ )







विठ्ठल श्रीमान् मनसुख लालजी





॥ ॐ श्री सर्वज्ञायनमः ॥

श्रीमान् मनसुखलालजीनुं संक्षिप्त जीवन चरित्र

॥ दोहरो ॥

॥ सिद्ध समाधि मयी सदा, पूरण परमानंद ॥

शिवदायक वंडं सदा, केवल ज्ञानानंद ॥ १ ॥

" श्रीमान् मनसुखलालजी " नो जन्म पंचमहाल जीह्वाना (गोधरा-गौचरा) गोधरा गाममां संवत् १८७७ ना माहा वदी १४ नी सवारमां पोताना दादा दोशी. अर्धदास दयालजीना घरमां थयो हतो, अने तेमना पिताश्री हरिलाल वरजलाल नामे ग्रहस्थ हता अने तेमनी मातुश्री जयती नामे हतां अने ते वंने धर्मीष्ट हतां. ते वखतमां आ पंचमहाल जीह्वो पावागढ पंचमहालना नामथी प्रख्यात हतो अने श्रीमंत श्री सिधीआ सरकारना तावामां हतो. आ जीह्वो अमुक वरसने माटे पट्टे आपवामां आवतो हतो. पटादारो फक्त पोतानी मीलकतमां वधारो करी जाणता हता अने तेथी करी रैयतने जोडती केलवणी विगेरे आपवामां आवती न हती. खानगी निशालोमां वेपार संवंधी ज्ञान आपवामां आवतुं हत, साधारण हिसाब तथा वेपार संवंधी नामुं तथा व्याज आवडे एटले केलवणी पुरी थई तेवुं लोको समजता; त्यार वाद नाना ठोंकराउने माथे वेपार अथवा नोकरी करवानुं आवी पडतुं.

गोधरामां ते वखते जैन बंधुर्जना सौरा नशीवे एक उपाश्रय हतो अने ते ते वखतना तेमा रहेनार जैनसाधु श्री रामविजयजीना नामथी प्रख्यात हतो. तेउंश्री सस्कृत तथा मागधी तथा व्यवहारीक विद्यामां पूर्ण जाण हता आ साधुश्रीना हाथ नीचे जैन बालकोने गुजराती ज्ञापामां केलवणी आपवामां आवती हती. साधुश्री राम-

વિજયજી પોતાના બાલ શિષ્યોને ગુજરાતી જાણની સાથે જૈન પુસ્તકોનો પણ અગ્યાસ કરાવતા હતા અને તેડ પોતાના શિષ્ય શ્રો વિનય વિજયજીની મદદથી તે વખતના જૈન બાલકોને સારું જ્ઞાન આપતા હતા.

શ્રીમાન્ મનખુલ્લજીને તે વખતે તેમના દાદા દોશી. અંબ-ઈદાસ દયાલજી જે તે વખતે જૈન પંચના એક આગેવાન ગ્રહસ્થ હતા, તે હમેશાં વ્યાખ્યાન સાંજલવા ઉપાશ્રયમાં સાથે લઈ જતા હતા. ઘણા નાનો ઉમરમાં પણ તેડશ્રી એકાગ્ર ચિત્તે વ્યાખ્યાન સાંજલતા હતા; અને નાનપણનો કેટલોક ગંદાપણની રીતો બીજા બાલકોમાં જોવામાં આવે છે તેવી તેડશ્રીમાં જોવામાં આવતી ન હતી. બાલ વયમાં જેવી રીતે તાના ઢોકરાડ રમતમાં પડે છે તેવી રીતે તેડશ્રી રમતમાં પડતા નહિ. જન્મની વખતથી જે જે તેડશ્રીના સંબંધમાં થતું તે તે તેડશ્રીના લક્ષમાં રહેતું; અને તે વખતથી જ જેમ પૂર્વનું જ્ઞાન હોય તેમ સાધુ અસાધુની પરીક્ષા તેડશ્રીના મનમાં હતી. ખાવા પીવાની બાલકોને જેવી લાલસા હોય છે તેવી તેમને ન હતી. રાત્રી જોજનમાં, વાસી ખાવામાં, તથા કંદમૂલ ખાવામાં દોષ છે, એ આદિ જે જે જારે દોષો તેમના સાંજલવામાં આવ્યા હતા તે તે તેડશ્રીએ નાનપણથી ત્યાગ કર્યા હતા એટલે સૂત્રમાં કહેલા ઘણા ગુણ ગ્રહણ કરવા અને દોષો ત્યાગવા એવો તેડશ્રીનો સ્વજ્ઞાવ હતો. જ્ઞાન સંપાદન કરે તેવી એટલે આશરે વરસ ઢની ઉમરના થતાં તેડશ્રીને સાધુશ્રીએ ગુજરાતી કલવણી આપવા માંડી, તેની સાથે જૈનધર્મનો અગ્યાસ પણ વખત જોઈ શરૂ કરાવવામાં આવ્યો, સાધુશ્રીને લાગ્યું કે આ બાલકને જૈનધર્મનો અગ્યાસ કરાવવાથી એક જૈનધર્મનું સારું બીજ રોપાશે; વલ્લી તે સાધુશ્રી બોલતા કે આ બાલક મને તેમ કોઈ પણ ગ્રંથધારી સાધુને નમશે વાંદશે નહીં પણ ફક્ત સાચો નિગ્રંથ મલશે તેને જ નમશે વાંદશે, એવું લોકો સમજી કહેતા હતા.

आशरे वरस नवनी उमरमां तेउंश्रीए जीव विचार, नव तत्व विगेरे साधारण प्रकरणोनो अज्यास कर्यो हतो. ते वखते तेउंश्री ठ आबश्यक क्रिया पण विधि सहित अर्थ पूर्वक सारी रीते करता हता अने ते वखतयी तेउंश्री साधु मात्रने साधुपणाना गुण देख्या विना नमता वांदता नहि.

तेर वरसनी उमर थई त्यारे तेउंश्रीनुं लग्न शा. मोरारजी कसन-जीनी वाजी ठोकरी साथे थयु. रीवाज मुजव रात्रे पाननी बीडी तथा कसार खवडाववा आग्रह करवामां आव्यो पण तेउंश्रीए ते वात कबूल राखी नहीं; तेम लग्नना दिवसे नातना रीवाज मुजव परणनार वरने माताए लई जई नमावे पूजावेठे, ते प्रमाणे करवा तेउंश्रीने कछुं पण तेउंश्रीए ते प्रमाणे कर्युज नहीं.

तेउंश्रीए गुजरातीनो थोनो अज्यास कर्यापठी श्री गोवाना आवेला एक मी. नेवीरु पासे अग्रेजी थर्न रीरु सुधीनो अज्यास कर्यो, आगल ते अज्यास करवानी ईछा हती, तेमज जैन तत्त्व संबंधी सारी-रीते अज्यास करवानी ईछा पण हती पण घर संबंधी केटलाएक कारणोने लीधे ते वंने ईछा पूर्ण थई शकी नहि. ते वखते तेउंश्री कोइ छी साथे बोलवा विगेरेनो कोइ पण संबंध मन वचन कायाथी राखता नहीं. ए विगेरे केटलाएक नियमो पच्चखाण लीधा शिवाय पण सत्तर वरसनी उमरसुधी तेउंश्रीए राख्या हता; एम हाल सुधी पच्चखाण लीधा विना पण ब्रती सरखी वर्तणुक राख्या करे ठे. पच्चखाण खेवामा पच्चखाण जागवा संबंधी अथवा ते ब्रतना अतिचार संबंधी तेउंश्रीने घणो डर रहेतो हतो. उपवासादि करवानी शक्ति तेउंश्रीमा नहतो तेथी बीश वरसनी उमर सुधीमां ( ६१ ) एकसठ उपवास तथा ( ८५ ) पंचाशी आबोल तथा ( ५ ) पांच एकासणां कर्या हता.

संवत् १९१७ नी सालमां जीवविचार तथा नव तत्त्वादिकना विचारमां खट् डव्यना विषयमां वधारे खुलाशो करवानी ईष्ठा थई के समकीत शुं ? साचो गुरु कोण ? साचो धर्म शुं ? तथा धर्मास्तिकायनो खंधप्रजाय शुं ? ए आदि निश्चय करवानो विशेषे लक्ष रह्यो अने तेते शंकाउना खुलासा माटे केटलाएक श्री पूज्यो तथा नामीचा जैन साधुउं तथा पंक्तितोने प्रश्न पूढ्या कर्या पण संतोषकारक जवाब देवावालो कोइ मद्यो नहीं. तेथो तेउंश्रीए नाममात्र साधुउंनो समागम ते वखतथीज बंध कर्यो हतो, पढी घणी जरुरना कारणे कोइ साधुनी साथे वात करीहशे पण विशेषे परिचय राख्यो न हतो. विशेषे तत्त्वनी शोधमां पडवाथो प्रतिक्रमण, बाह्य व्यवहार व्रत क्रिया उभरथो ध्यान उठाव्युं अने सद्गुरुने शोधवा उपर तथा समकित निर्मल करवा उपर पूर्ण ध्यान राख्युं. तेथो करी जैनधर्मनां पुस्तको वांचवा तथा मनन करवा अज्यास राख्यो, तेसांथी जोईतो सारो सरल मार्ग मद्यो पण गुरुगमनी जरुर बाकी रही अने तेथो कथा साधु सरल मार्ग बतावी शके ठे, तेनी शोधमां केटलोएक वखत काढ्यो. दुनियांना चालता नियम प्रमाणे दरेक माणस पोते वहारथी सारा देखाय तथा नजदिकना माणसो पोतानां वखाण सारी रीते करे, तेस तेउं दररोज यत्न करे ठे अने तेसां फतेहसंद आय तो तेउं एम समजे ठे के आ जवनुं सार्थक थयुं; आ क्रमने अनुसारे घणो खरो जैन साधु वर्ग पण चाढ्यो जाय ठे. तेउं पोते पोताने मलेला वखतनो जोईए तेवो उपयोग करवाने बदले गह्व तथा चेला चेलीउंनी खोटी खटपटमां पळे ठे. दुनियादारीमां रहेनार स्त्री पुरुषोने जेम फरजननी लालसा होय ठे तेमज घणा खरा जैन साधुउंने पण चेला चेलीउंनो आकांक्षा होय तेम देखाय ठे, तने लीधे तेउं ज्ञान मेलववानो मलेलो अवसर फोगट गुमावे ठे.

જૈનધર્મનું સ્વરૂપ રહસ્ય જાણ્યા વગર ઘણા સ્વરા જૈનવર્ગના માણસો મત ( શ્વેતાંવર, મીઠંવર ) વિગેરેના પંદમાં પડી આવે માર્ગે ચડે છે અને તે જાહે માર્ગે ચમત્કાવવામાં મૂલ્યત્વે કરીને બંને પક્ષના જૈન પંક્તિતો અને સાધુવર્ગ સહાયકારી થઈ પડે છે એવું શ્રીમાન્ મનસુખલालજીને સિદ્ધ થયું. આમ કરવામાં જૈનવર્ગ તો શું પણ ઘણા સ્વરા અન્ય ધર્મના લોકો પણ પોતાને મલેલી તક ફોગટ ગુમાવે છે. આ પ્રમાણે તપાસ કરતાં સ્થૂલ દોષ વગરના અને સૂત્ર પ્રમાણે શુદ્ધ યોલનાર સદ્ગુરુ મલ્યા નહીં તેથી તેડશ્રીની સાધુ ઉપરની જે આસ્તા દર્તી તે ઘિલકુલ ઊઠી

જૈન શાસ્ત્રો વાચવા વિચારવામાં કાલ વ્યતીત થવાની સાથે જ્ઞાનનો પણ વધારો થયો અને પૂર્વના જ્ઞાન ઉદયથી જ્ઞાનચક્ષુ સ્ખીલવા માલ્યાં અને મનમાં નિશ્ચય કર્યો કે હવે કેવલજ્ઞાની મલ્યા વિના માહરા પ્રશ્નોનો સમાધાની યાવ તેવો સજવ નથી, એમ વિચારી આ કામમાંથી ધ્યાન ઊઠાવી આજીવીકા કરવા તરફ લક્ષ્ય લેવા વેપાર અગર નોકરી કરવાનો વિચાર રાખ્યો.

સવત્ ૧૯૧૯ ની જાલમાં પંચમહાલના મુખી ગોધરા નિવાસી જેઠ સત્માલજી ગુલામહુસેનજી સાહેરવાલાનો ત્યાં નોકરીમા જોનાયા. આજરે પાચ વરસ પઠી પોનાની પાસે નાણુ ઁકતું કરવુ ઁવા અજિ-પ્રાચથી સવત્ ૧૯૭૪ ની સાલમાં કલકત્તે જવાની ઁમેદ ધારી વ્યાપાર અર્યે નિકલ્યા, તે શ્રી વડોદરા ગામે જઈ કાઁક વ્યાપાર કર્યો. તેવામા તિહા ટાહોટના મહમદઅલી કરીને મોટા વેપારી મલ્યા, તે પ્રથમના સવંધવાલા હતા તેમણે તેડશ્રીને પૂઠયુ કે તમો જા ઁમેદ ઉપર નિકલ્યા ઁ ? તો તેડશ્રીઁ કલુ કે માહરે કલકત્તે નોકરી કરવા સ.રુ જવું છે ત્યારે તે મહમદઅલીઁ કલુ કે તે કગતા હમારી પાસે આવો તો નોકરી અને વેપાર બંને તમોને સારુ ફાયદાકારી થઈ પડજે. એમ સાજલી તેડશ્રી કલકત્તે જવાનો વિચાર વધ

राखी ते महमदअली साथे दाहोद गया, त्यां नोकरी तथा वेपार बनेमां सारी पेदाश थवा लागी. तेउंश्रीने वेपार अर्थे दक्षिण, कोंकण, मालवा, सोरठ, काठियावारु विगेरेमां जवानो ज्यारे ज्यारे प्रसंग आवतो त्यारे त्यारे जैनधर्मना साधुउंनी तपास करता पण साचा तत्त्वने बतावनार गुरु कोई मढ्या नहि. वली सर्वे अन्य धर्म शास्त्री-उंना तत्त्वोनुं पण शोधन कर्या कर्युं, “वायवल, ऊवूर, तोराइन, किलामेसरीफ” विगेरे शास्त्रो सारी रीते तपास्यां, वली वेदनुं निगम शास्त्र, गीता, पंचिकरण आदि ते लोकोनी गुरुगम सहित तेमनी साथे रही सारी रीते तपास्यां, तथा वेदनी श्रुतिउं विगेरेनो घणो तपास कस्यो, वली घणा वेद वादि, सांख्य, वैशेषिक, जैमोनीय, मी-मांसक, योग शास्त्रवाला तथा मुसलमानो तथा खीस्तीउं साथे वाद-विवाद चर्चा कस्यां करी पण कोई साथे ऊधको टंटो कस्यो नथी तेम तेउंनुं मन पण दुखव्युं नथी पण सलाह तरीके वात चर्चा करता के जेथी ते लोको फरीथी वात करवा खुशी रहेता. पोताने जैननो अथवा डीघंवर श्वेतांवर विगेरे कोईपण मतनो हठवाद के पक्षपात नहोतो पण न्यायनी वात जे पोताने निश्चय थाय तेज ध्यानमां राखता.

संवत् १९१५ नी सालमां पंचमहाल जिह्वाना कालोल तालुकाना गुसर गामनी नजदीक एक गुफानी अंदर जैनमुनि “श्री हुकुम-मुनिजी” महाराज आवी पधार्या, अने त्यां तेउंश्री आशरे दश वार-दिवस ध्यान करवा रह्या. ते वावतनी वेजलपुर निवासी जैन गृहस्थोने खबर पडवार्थी ते गृहस्थो तथा लग्न प्रसंगे वेजलपुर आवेला गोध-राना जैन गृहस्थो मली हर्ष सहित बधते आनंदे घणा आग्रह पूर्वक महाराजश्रीने तेरुवा माटे गया. महाराजश्री तेउंना घणा आग्रहथी वेजलपुर पधार्या, संघना आग्रहे केटलाक दिवस वेजलपुरमां रह्या. त्यां

ते साधुश्री पोताना स्वाभाविक गुण धर्मोपदेश करता अनेक जव्य जनोने प्रतिबोधता ज्ञान दर्शन चारित्र वडे कर्म दाय करता अत्ते ग्रंथो पण रचता हता, घणा अन्य दर्शनीयो पण महाराजश्रीनी देशना सांजलवा आवता हता अने पोताना प्रश्नो खोलासो पामी घणा खुशी थता, तेमज महाराजश्रीना घणां बखाण करता हता. गोधरा तथा वेजलपुरना गृहस्थोने ते महाराजश्रीनी देशना अति चमत्कारीक अने आश्चर्य उपजावनारी लागो.

श्रीमान् मनसुखलालजीना मित्र गोधग निवासी शा. मनसुखलाल देवचंदे श्रीमान् मनसुखलालजीने पत्रद्वाराए सूचव्यु के श्री हुकुममुनीजी नामना एक साधु हालमा वेजलपुर आवी पधारेला ठे अने ते अध्यात्म ज्ञानी तथा ध्यान अचयासी ठे तेथी ते महाराजश्री तमारा प्रश्नो उत्तर आपसे, एहवुं अमारा धारवामां ठे माटे तमो आ पत्रथो तुरन अतरे आवजो ने कागल तेउंश्रीने मलता तेना उत्तरमां तेउंश्रीए पोताना मित्र मनसुखलाल लपर लख्युं के तमे पोते समजी लेजो, मने तो एहवा घणाए मढ्या ठे, केमके घणा साधुने मलवाथी प्रथमथीज तेउंश्रीनुं चित्त नाउमेद थयेलुं हलुं, इहा लगी के हमणां जैन तत्त्वनो साचो उत्तर आपी शके एहवो कोई जणातो नथी तो फोगट श्रम शा वास्ते करवो ? त्यार पठी वे चार पत्रना जुवाव सवाल तेउंश्रीने पोताना मित्र साथे थया, आखर तेउंश्रीना मित्र मनसुखलाटे लख्युं के तमारा मुख्य वे चार प्रश्नो लखजो एटले श्रमो महाराजश्रीने पृठीने तेनो उत्तर तमोने लखीशुं पठी तमाक मन माने तो आवजो. त्यारे तेउंश्रीए पत्रद्वाराए प्रश्न लखी मोकळ्यां ते नीचे प्रमाणे—

१ गुणगणां एटले शु ?

२ धर्म शु ? अने ते रुपी के अरूपी ? अने ते आत्माथी जिन के अजिन ए आदि ?



३ धर्मास्तिकायनो खंधपर्याय ते शुं ?

उपर प्रमाणेनां प्रश्नो लखी तेउश्रीए तेमना मित्र मनसुखलाल उपर मोकद्व्या एटले ते पत्र लेई ते मनसुखलाल महाराजश्री पासै गया अने उपरना प्रश्नो पूढ्या तेनो महाराजश्रीए उत्तर आप्यो के कोई रात दिन बे वरस सुधी माहरी पासै वेसे पण ए प्रश्नो पुरो उत्तर लखी शकाशे नहि माटे तेमने समजवुं हशे तो आवशे. ठेवट महाराजश्रीए ते कागल पोताना हाथमां लई वांची जोयो तो तेमां लख्युं हतुं के आ प्रश्नो पुरो उत्तर तमे समजी लेजो अने संक्षेपे मने लखी जणावजो, आ बीना वांची महाराजश्रीए संक्षेपे उत्तर लखाव्यो. ते कागल तेउश्रीने पहुँचतांज मनमां आव्युं के अहिंथां कांई सारो खुलासाबंध उत्तर मले तेम जणाय ठे, मुनि पण ज्ञानी अने समजाषी होय एम जणाय ठे, माटे नोकरी विगेरेनुं गमे तेम थाय पण जाते जई महाराजश्रीने मलवुं जोईए एम विचारी शेठनी रजा लई तुरतज श्री दाहोदथी नीकली बीजे दिवसे सांजना चार वागतां गोधरे आव्या, अने तुरतज तेवातनी खबर पढतां गोधरावाला तेमना मित्र मनसुखलाल विगेरे दश बार श्रावकोए तेमनी पासै आवी कह्युं के अत्यारेज वेजलपुर जवुं जोईए केमके ए मुनि कोईना प्रतिबंधमां नथो, घडीमां विहार करे तो आपणो उमेद अटके, एम कहेवाथी तेज दिवसे गोधराथी नीकली कहेवा आवेला श्रावको साथे रातना आठ नव वागताना सुमारमां वेजलपुर जई पहुँच्या अने वांठित प्रश्नो महाराजश्रीने पुठतां केवलज्ञानीनी पेठे उत्तर मदयो. ते सांजली तुरतज बहु जय, ताप, अने क्लेश उतरी गयो; अने मनमां आव्युं के शुं आ केवली ठे ? ए विगेरे मनमां विचारो आव्या अने सर्वे प्रश्नोना उत्तरथी निःशंक समाधि थई. क्रोको मण चार जेम माथा ऊपरथी उतरी जाय तेथी जे हलवा पणुं लागे अने अंगमां

जेम वीर्य फुरे तेम ज्ञानानंद वीर्यनी स्फुरणा थई. एज तरण तारण,  
 एज साचा गुरु, एज माहरा धर्माचार्य ठे, ए समान में कोईने आजसुधी  
 गुरु जाण्या नथी एम तेज्ज्जीना मनमां निर्धार कयों. त्यारवाद गोध-  
 रावाला श्रावको आप्रहू करी महाराजश्रीने गोधरे तेकी लाव्या, त्यां  
 महाराजश्री पासे आठ दिवस सुधी श्रीमान् मनसुखलालजी रह्या.  
 वल्ली विविध प्रकारे रहस्यो सहित प्रश्नो पुण्यां अने महाराजश्रीनी  
 शुद्ध नयनी देशना साजह्या करो. आखर दाहोद जवा साऊ रजा  
 मागो अने कहु के आजथी माहरे तमारुं शरण ठे अने मने शो हूकम  
 फरमावो ठो ? त्यारे महाराजश्रीए कहुं के “ एज एधीज सर्वे कार्य  
 तथा समाधानी थशे ” एम रजा मलवाथी उपाश्रयथी बहार निकल्या  
 पढी पांच सात डगलां घर तरफ वलतां मनमां आव्यु के “ एज एटले  
 पोतानी निर्मल ज्ञायकतामां उपयोग देवो तथा तिहांज थिरता  
 वधारवो अने परडव्यना ममत्वे अगर राग द्वेषादिके उपयोग चूकवो  
 नहि अने एज बदले पुद्गल विषयादिनो राग तजी उपयोग थिरता  
 अर्थे शुद्ध नये सिद्धांत अज्यास कर्मा करवो ” ए विचार आवतां  
 अजेदध्यान नहि पण अजेदध्यान जेवो एक मोटो परम  
 उल्लास आव्यो के ज्ञायकतामां उपयोग थिर राखवो एमां धर्म संव-  
 धीना असल्याता थोंगो समाय ठे. हांत्पादि दश धर्म, पंच महाव्रत,  
 पचाचार, खद् आवश्यक, पूजा, शील, तप, संयमादि सर्वे धर्मानुष्ठा-  
 नोनो जात्र एमां समाय ठे. माटे हवे ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि  
 आत्म स्वज्ञाव पर्याय जे कर्म योगे मलिन थया ठे ते सर्वे कर्मयोग  
 वर्जी स्वज्ञाव योगे थिर रमण करवाथी सर्वे शुद्धात्म स्वज्ञाव निर्मल  
 थशे एम आनंदनो उजरो वारवार हृदयमां आव्यां कयों. रस्ते  
 चालतां आरुं अवलुं ध्यान गयु नहि, घेर जई घरना कामथी पर-  
 वारी दाहोद जता सुधी आनंद शिवाय वीजुं काइ मनमां आव्युं  
 नहि त्यारवाद पण आनंदनो उठावो मटी धीरे धीरे आनंद

જમાવ થયો, હરેક કાર્ય કરતાં વારવાર સ્વચ્છાવ રમણ આવતું રહ્યું અને આનંદમાં વૃદ્ધિ થતી રહી.

સંવત ૧૯૨૯ માં નોકરી ઢોઢો દાહોદમાંજ પોતાના નામની પેઢી સુદ્ધી કરી આરુત વિગેરે રોજગાર શરૂ કર્યો, પોતે અને બે વાણોતર મલી પેઢીનું કામ ચલાવ્યું. તે વખતમાં શ્રી દેવચંદ્રજી મહારાજ કૃત “નયચક્રસાર, આગમસાર” વિગેરે ગ્રંથો વાંચવામાં આવ્યા, વલી તે શિવાય કુંદકુંદમુનિ કૃત “સમયસાર, પંચાસ્તિકાથ, પ્રવચનસાર, અષ્ટ પાહુડ આદિ” તથા શ્રી યશોવિજયજી કૃત “દ્રવ્ય ગુણ પર્યાયનો રાસ, અધ્યાત્મસાર” વિગેરે ગ્રંથો વાંચવા અને ઉપદેશ દેવાનો શરૂ થયો, કોઈ કોઈ વખત ગોધરા, વેજલપુર આવતા ત્યારે પણ ઉપદેશ કરતા રહેતા.

આશરે સંવત ૧૯૩૯ ની સાલમાં દાહોદની દુકાનનું કામ વડા પુત્ર મગનલાલને સોંપી વ્યાપાર માટે રતલામ ગયા, તિહાં બે ત્રણ વરસ સુધી કાંઈ ઉપદેશની વાત કરી નહિ પણ આશરે સ્વચ્છાવ ભુખ્યો રહ્યો નહિ એટલે કેટલાક તિહાંના નિવાસી તેરાપંથી ગૃહસ્થો જેઠમલજી, હીરાચંદજી, તારાચંદજી, નિહાલચંદજી, વિગેરેને શુદ્ધ તત્ત્વની શ્રદ્ધા પ્રતિત કરાવી. વલી તેરાપંથીર્જના સાધુ દીપંચદજી, ઢાલચંદજી વિગેરે તથા સાધવી જૂરાંજી વિગેરે કેટલાકને તથા કેટલાક મંદિર માર્ગીર્જને શુદ્ધ તત્ત્વનો પ્રતિત કરાવી. તેર્જી પોતાનું ધ્યાન નિર્મલ રાખવા ગામ વહાર હવા રાવા જતાં આવતાં અને પાઠલી રાતે અગર જે જે વચ્ચે પોતાના મનને અવકાશ મલતો તે તે વચ્ચે ઉપયોગની થિરતા શુદ્ધતા વધારતા રહેતા. દાહોદની દુકાનનું કામ તેર્જીના વડા પુત્ર મગનલાલજી ચલાવતા હતા તેથી તેર્જીને તે તરફની ફિકર બિલકુલ હતી નહિ.

સંવત ૧૯૫૦ ના આસો માસમાં તેર્જી દાહોદ આવી રહ્યા અને ત્યાં પણ તત્ત્વનો અધ્યાસ તથા ઉપદેશ ચાલુ રાખ્યો. અને ગ્રંથો રચવા

उपर ध्यान लाग्युं पण तुटा ग्रंथो शिवाय अंग उपांगो पुरेपुरां पोताना सांजलवामां आव्यां नहोतां ते करुके करुके मंगावी वांचवा मांड्यां. एटलामां दरदथो आंख वगरुवा मांमी त्यारे तेउ घणी मुश्केलीथी पोते वाचता हता पण ग्रंथो पहेला वांच्या निरधार्या हता ते उपरथी उपदेशनी रुचि थया करती हती पण अंगो उपांगो पुरेपुरां सांजलवा न मढ्यां तेथी घणी नाउमेदी थई.

संवत १९५३ नी सालमां तेउश्रीना मनमां आव्युं के में सूत्रो सांजल्यां नथी अने मात्र ग्रंथो सांजली वांचीने उपदेश करु हुं ते सारी वात नथी अने जगवती सूत्र विगेरे कोई कोई सूत्रो वालपणामां सांजल्या पण हतां पण तेनी पुरेपुरी स्मृति विना अने नयझाने निश्चय कर्या विना वालजीवने उपदेश देवो तेमां उत्सूत्रनो मोटो जय ठे केमके उत्सूत्र बोलवा जेवुं कोई मोटुं पाप नथी. एम विचारी उपदेश करवो वंध राख्यो अने शुद्धात्म तत्त्वतुं ध्यान करवु एज पोताने माटे श्रेय ठे एम जाणी ध्यान करवानो तथा मात्र पोतेज वांची समजवानो विचार राख्यो. पण दिने दिने आखे कांईक दरद वधवाथी आंखनी शक्ति मंद पडी गई त्यारे सगा अने मित्रो पासे जाचना करी के कोई मने सूत्रो वांची संजलावे तो तेनो हुं मोटो आजारी थईश. वखते कोईए कांई वांचा आप्युं पण अखंरुधारा श्रुतज्ञाननो अगर श्रुतश्रवणनो स्वाद मढ्यो नहि. तेथी चित्तमां घणो खेद थयो, पूर्वकृत पापनो घणो पश्चाताप आव्यां कर्यो, मने दीन अनायने सूत्र वांची आपनार कोण मखे ? एम चित्तमां तेउश्रीने घणो खेद उपज्यो. स्कूलोमां जणेल्ला ठोकराउने पण पगार आपी आपीने केटलीक वखत केटलाक मास सुधी वंचाव्युं पण कांई प्रसन्न पर्युं नहि. एम आशरे संवत १९५५ नी साल सुधी सूत्रो सांजलवा न मढ्यां ते वावतनुं मनमां घणुं दुःख वेथुं. आखर एज

संवत् १९५५ ना चईतर मासमां पूर्व महत्त्व पुण्य योगे “ कस्तुरां ” नामनी एक बाई तेउश्रीने त्यां आवी तेने तेउश्रीए पुत्रुं के हे बाई! तुं शा कामे आवी ठे? ते बाईए कहुं के माहरे दवा विगेरे कांई पण संसारी काम नथी पण हुं सहजे आवी तुं, मने कांई तत्त्वनी वात समजावो. त्यारे ते बाईने तेउश्रीए कहुं के में उपदेश देवो बंध कयों ठे. तेवामां तेणीनी बेहेन “ हमीरां ” ते पण तिहां आवी, ते वंने बेहे-नोए उपदेश माटे घणी खेंच करी अने तेउ बोली के हमो खरा मध्याने खरा ताप वखते उपदेश सांजलवा आवीशुं के जेथी तमोए उपदेश बंध करेला ठे अने अमने समजावो तेनी कोईने खबर पमसे नहि के जेथी तेउने मातुं पण लागसे नहि. ए प्रमाणे तेउनी वधारे खेंचथी शुद्ध तत्त्व अने शुद्ध उपयोगनो उपदेश शरुआतथीज करवा मांड्यो. ते बाईउ तीर्थकरोनां शुद्ध स्याद्धाद वचनो अमृत पेठे गट गट पीवा लागी अने पोताना आत्म अंगे प्रगमाववा लागी. पठोथी उपदेश बंध करवानी वात करी पण ते बाईउए ते वात कबुल करी नहि अने तेउ बोली के हमे तां दररोज तत्त्वोपदेश सांजलवा आवीशुं. त्यारे तेउश्रीए कहुं के हे बाईउ! “माहरे सूत्रो सांजलवानो उमेद ठे पण उपदेश देवानो उमेद नथी ” त्यारे ते बे बेहेनोमांथी कस्तुरां बोलीके तमारे जे जे सूत्रो सांजलवानो अजिप्राय होय ते ते सूत्रो हुं तमोने वांची संज-लावीश अने तेनो अर्थ समजाववा पण तमो रोकाशो नहि, पण तमो सूत्रो सांजलव्या पहेलां अने पठो जे जे तत्त्व संबंधी हुं तमोने प्रश्नो पूबु ते ते मने करूणा करी समजावता रहेजो. पठो ते कस्तुरां बाईए अखंड पांच पांच ठ ठ कलाक सुधी खेद आलस उंध नाउ-मेदी विना आशरे पंदर सूत्र तेउश्रीने चार पांच वरस सुधीमां वांची संजलाव्यां. वली पांच सात सूत्र बेजलपुर निवासी “गांधी-दलसुख नाथजीए” पण तेउश्रीने वांची संजलाव्यां. ए शिवाय बाकीनां सूत्रो कोइ कोइ वांची आपनार मढ्या. ते सूत्रोनी विगत—

“आचारांगादि अर्गीश्वर अंग, जीवाजिगम, पन्नवणा, उववाइ सूत्र, रायपश्रेणी, महानिशीथ, नंदीसूत्र, अनुयोगछार, उत्तराध्ययन, दश पयन्ना मांहेथी आशरे ठ सात पयन्ना, दश वैकालिक”

कुल उबीश सूत्र तथा ए शिवाय पण केटलांक सूत्रोमांनो कोई कोई जाग तेउंश्रीए साजव्यो. ए शिवाय “सुमतितर्क, पंचवस्तु, खट्टदर्शन समुच्चय, विशेषावश्यक, स्याद्वादमंजरी, स्याद्वाद रत्नाकरावतारिका, तत्त्वार्थ टिका” ए आदि केटलाक ग्रंथो महान् पंडितोना करेला तेउंश्रीने कोई कोई वांची संजलावनार मल्या, पण मुख्य “कस्तुरां वाईनी” तेउंश्रीने पूर्ण मदद हती तेथी तेउंश्री ते कस्तुरां वाईनो महान् उपकार मानता रह्या अने ते वाईने शुद्धात्म जावमां डढ करवाने माटे विशेषे करी उपदेश देता रह्या. तेउंश्री उपदेश देवाने उत्सूत्रना जयथी करता हता अने घणी वखत उपदेश देवो बंध करता हता पण ते वाईना आग्रहथी आजसुधी उपदेश देवो चालु बत्ते ते.

ते वाई पाठलथी पोताना पती “शा. संतोकचंदजी माणैकचंदजी”ने पण तेउंश्री पासे लावी अने ते पण उपदेश साजली थोडाज वखतमा शुरू तत्त्वना जाण थया. जेणे “श्रीदेवचंद्रजी कृत वीशो” नो घालाव. बोध कर्यो ठे, ते वांचवाथी पंढितोने तेमनो पंढिताई तथा ज्ञान के रुचि समजाशे. ए शिवाय ते “संतोकचंदजीए” केटलांक अध्यात्मिक पदो विगेरे रच्यां ठे. ते सर्वे आ नीचे लखेला ग्रंथोमां सामेल ठे. ते जोएथी तेमनी विद्वता प्रगट जणाइ आवशे. आज पण श्रीमान् मनसुखलालजीनी शैलीमां सर्वेथी संतोकचंदजी घणी चढती पायरीमां ठे अने तेउंश्री एमनो सलाह्योज बर्खा करे ठे. ए संतोकचंदजी तथा चपा-लाल, जेचंद, गीरधरलाल, ठोटालाल मनसुखलाल विगेरे दाहोदमां केटलाक जाईउं तथा केटलीक वेहेनो केई दरजो तत्त्वज्ञान पामेलाठे

અને એમને લીધે દાહોદના દીગંવરી લોકોમાં પણ કેટલો સુધારો થતો આવ્યો છે. શિવાય કેટલાક બ્રાહ્મણો અને મુસલમાનો વિગેરે પણ તેડશ્રીના વોધને ચહાય છે.

સંવત ૧૯૫૭ ની શાલથી તેડશ્રીએ ગ્રંથ રચવા શરૂ કર્યા. તેમાં તેડશ્રીને મૂલ્ય પાળે સમજાવ ઉપર ધ્યાન વધારે હોવાથી “ સામાયક સિદ્ધ્યુપાય ” નામનો પહેલો ગ્રંથ કર્યો, ત્યાર બાદ શુદ્ધ ઉપયોગ ઉપર ધ્યાન તેથી “ શુદ્ધોપયોગ પ્રવેશિકા ” નામે ગ્રંથ કર્યો, વલી કસ્તુરાં બાઈનો મહત્ ઉપકાર પોતાના મનમાં હતો અને તે બાઈ ગામ “ રાણાપુર ” ગણ્યાં હતાં, ત્યાં તેમનો વોધ ડ્રઢ રહેવા માટે “ આત્મવોધ પત્રિકા ” નામે ગ્રંથ રચી તે બાઈ ઉપર લખી મોકલાવ્યો તથા અનુજવમાં પ્રેમ હતો તેથી “ અનુજવ પ્રવેશિકા ” નામનો ગ્રંથ રચ્યો, તથા દ્રવ્યાનુયોગ વિના જે અધ્યાત્મનો ઉપદેશ તે કૂટસ્થ એકાંત જેવો થઈ જાય છે માટે “ સમ્યક્ ન્યાય સુધારસ ” નામે દ્રવ્યાનુયોગનો ગ્રંથ રચ્યો. એમ એ પાંચ ગ્રંથો સંવત ૧૯૬૨ સુધીમાં પુરા કર્યા તે સંવત ૧૯૬૩ નો સાલમાં “ શ્રી સુમતિ વિલાસ ” નામના પુસ્તકમાં ઉપરના પાંચ ગ્રંથોનો સમાવેશ કરી દાહોદનિવાસી “ શા. સંતોકચંદજી માણેકચંદજી ” વિગેરેએ ઠપાવી પ્રસિદ્ધ કરેલા છે.

ત્યાર પછી શુદ્ધ વ્યવહાર સહિત નિશ્ચયમાં ધ્યાન રાખવા માટે “ શ્રી સુમતિ વ્યવહાર ” નામનો ગ્રંથ તેડશ્રીએ સંવત ૧૯૬૩ ની સાલ સુધીમાં તૈયાર કર્યો તે ગ્રંથ સંવત ૧૯૬૪ ની સાલમાં દાહોદનિવાસી શા. સંતોકચંદજી માણેકચંદજી વિગેરેએ ઠપાવી પ્રસિદ્ધ કર્યો છે. એમાં ઉત્તરાધ્યયનના મોક્ષમાર્ગ નામા અષ્ટાવીશમા અધ્યયનના સારની ઢાલો, તથા સમ્યક્પ્રાક્રમ નામના ઊગળતીસમા અધ્યયનના સારની ઢાલો, તથા અનાથી મુનીની સફ્ફાયા, વલી શ્રી કેશી સ્વામી

તથા શ્રી ગૌતમ સ્વામીના પ્રશ્નોત્તરની ઢાલો, તથા તેર ક્રિયાની સફ્ફાયાની ઢાલો, તથા ઉત્તરાધ્યયન માંહેલા કોઈ કોઈ વિષયનો ઢાલો, તથા સદ્વોધ અષ્ટોત્તરી, તથા ઘડુંલીઝ, તથા પરચુરણ સ્તવનો, તથા પદો, સફ્ફાયાઓ, તથા રુપજાદિ ચોવીશ જિનોની સ્તવન ચોવીશી અર્થ સહિત, તથા ચૈત્યવદન ચોવીશી અર્થ સહિત, તથા ચોવીશ જિનની થોયો, તથા નવપદની નવ થોયો, તથા સુવોધ પ્રકાશક ઠંદ કે જેમાં નવ તત્ત્વનું સ્વરુપ તથા ક્રોધાદિક કપાયોના ડુર્ગુણો તથા તેને જીતવાના ઉપાયો દર્શાવ્યા છે એ આદિ વિષયો છે

ત્યાર વાદ નવપદ ધ્યાન અર્થે “ નવપદ પૂજાદિ સંગ્રહ ” નામનો ત્રીજો ગ્રંથ તેઝશ્રીએ સંવત ૧૯૬૫ ની સાલ સુધીમાં તૈયાર કર્યો તે ગ્રંથ “સંતોકચંદજી” વિગેરે સંવત ૧૯૬૫ ની સાલમાં ઠપાવી પ્રસિદ્ધ કર્યો છે. જેમાં નવપદ પૂજા મૂલ તથા અર્થ સહિત, તથા જિનવાણી ઠંદ વાવની, તથા પરચુરણ ઘડુંલીઝ, સ્તવનો, પદો, તથા મહોપાધ્યાય શ્રી દેવચંદ્રજી કૃત પ્રજેંજનાની સફ્ફાયા મૂલ, તથા અષ્ટ પ્રવચન માતાની સફ્ફાયા પોતાના કરેલા અર્થ સહિત, તથા સાધુનો પંચ જાવના પોતાના કરેલા અર્થ સહિત, તથા “સંતોકચંદજી માણેકચંદજી” કૃત ચૈત્યવંદનો, ઠંદો, પદ વિગેરે, તથા “વેહેન કમ્તુરાં કૃત” ઠંદ, સ્તવન વિગેરે તથા પૂર્વાચાર્ય શ્રી વિજયચંદ્ર સૂરિનો કરેલો ગૌતમ સ્વામીનો રાસ-પોતાના કરેલા અર્થ સહિત એ આદિ વિષયો છે

ત્યારવાદ ડ્રવ્યાનુયોગના વિશેષ જાણપણા માટે “શ્રીસુમતિ પ્રકાશ” એ નામનો ચોથો ગ્રંથ તેઝશ્રીએ સંવત ૧૯૬૬ ની સાલ સુધીમાં તૈયાર કર્યો તે સંવત ૧૯૬૬ ની સાલમાં દાહોદ નિવાસી “શા સંતોકચંદજી માણેકચંદજી” ઠપાવી પ્રસિદ્ધ કર્યો છે. જેમાં મહોપાધ્યાય શ્રી દેવચંદ્રજી કૃત અતીત સ્તવન ચોવીશી પોતાના કરેલા અર્થ સહિત, તથા શ્રી દેવચંદ્રજી કૃત વિહરમાન સ્તવન વીશી સંતોકચંદજી માણેકચં-



दजीना करेला, अर्थ सहित, तथा श्रुतधरने सोल उपमानो ढालो, तथा विषय परिहारनी ढालो, तथा ममत परिहारनी ढालो, तथा सूत्र तत्त्वार्थ सार विगेरे विषय ठे.

संवत १९५६ नी सालमां दुकाल पड्यो ते वखते दाहोदमां कुवा विगेरेमां पाणी खूटयुं अने डोहोळुं पाणी वापरमां लेवुं पढुं हतुं, तेवामां गोधरा गामे एक वोहोरानी मंदगी मटारुवा सारु ते वोहोराए तेउंश्रीने तेडाव्या, तेथी तेउंश्रीने गोधरे जवुं पड्युं अने केटलाक दिवस तिहां रहेवुं पड्युं. एटले तिहांना निवासी श्रावक लोको तत्त्वनो उपदेश सांजलवा आववा मांड्या अने गोधरे पाणी तथा दूध चोरुखुं मलतुं हतुं तेथी तिहां तेउंश्रीए वधारे दिवस मुकाम राखवो निश्चय कर्यो. जाईउं तथा वेहेनो मली आशरे त्रीश चालीश जण उपदेश सांजलवा आवता हता, तेमां “समरत अमीचंद” नामे एक वाईने शुद्धात्म तत्त्व आराधवा बदले अने द्रव्य जावदया आदरवा चित्तमां चोट लागी—उपदेश लाग्यो. त्रणमास रहीने त्यारवाद तेउंश्री दाहोद गया अने ते “समरत अमीचंदे” एक बीजाने वात करवाथी गोधरा नजीकना वेजलपुर गाम निवासी पण केटलाक श्रावको उपदेश सांजलवाना वधारे रागी थया. केमके ते वेजलपुरना श्रावको पण गोधरे आवता त्यारे तेउंश्रीनो उपदेश सांजलवा प्रथमीज आवता हता. तेमां गांधी कोदरलाल ठगनलाल, तथा दलसुख नाथजी, तथा मणीलाल खेमचंद विगेरे विशेष रुची वाला थया. संवत १९५९ नी सालमां वाई-समरते वेजलपुर जई उपदेश फेलाव्यो तेथी केटलाक जाईउं तथा वेहेनो रुची वालां वध्यां ते वेजलपुर वालानी रुचि अने आग्रहथी संवत १९६० ना अरसामां तेउंश्री पण आशरे एक मास रहेवुं धारी श्री वेजलपुर गया त्यारे संतोकचंदजी तथा कस्तुरां वाई तथा समरत विगेरे सर्वे साथेज हतां. घणा दिवस उपदेश चालवाथी वेजलपुरना

श्रावकोमां घणा जीवो रुचिवाला थया; त्यार पठी दरसाल थोना थोडा दिन वेजलपुर तेउंश्रो आवता. अने उपदेश आपता रह्या. एम संवत १९६५ नी साल सुधी वन्यु; पठीथी वृद्धावस्थाने लीधे तथा मावी आखे उपदेश देतां वधारे दरद थवा लाग्युं तेथी संवत १९६६ नी सालमां तेउंश्रो वेजलपुर जई, शक्या नहोता. पण संवत १९६७ नी सालथीज वेजलपुरमां शास्त्र वांचवा, सांजलवा, जणवा, विचारवानो अज्यास दिने दिने बढतो रह्यो. अने जणनारनो, जणावनारनो टाईम नियम सारी रीते बंधायो, तेथी शास्त्र अज्यासनुं काम सारी रीते धमयोकार चाह्यु अने तत्त्वनी डढ रुचि, प्रतिभ, बधवा लागी. वेजलपुरना रुचिवंत श्रावको वार मासमा पांच सात बखत उपदेश सांजलवा तेउंश्री पासे दाहोद जावन आवड करता रह्या तेउंश्रीना करेला ग्रंथोनो जथो अने अज्यास बध्यो, तेम श्री देवचंडजी कृत, श्री यशोविजयजी कृत, श्री हरिजड सूरु कृत, श्री कुंदकुदमुनि कृत, ए विगेरे महान् पंक्तिना रचेलो ग्रंथो तथा पिसतालीश आगम माहेला घणा सूत्रो मंगावी मंगावी दाहोद, गोधरा, तथा वेजलपुर निवासी सर्वे संघ वांचता, तपासता, विचारता, अज्यास बधारता रह्या गोधरामां “शा सामलदास गीरधरलाल” विगेरे केटलाक जाईउं तथा वेहेनो बधती रुचिवाळां थयां.

हालमा तेउंश्रीनुं शरीर अशक्त रहेते तेथी ग्रंथो रचवानुं काम बंध ठे तेम उपदेश पण उठोज चालेठे. कदापी शरीर सुधरो शक्ति सारी आवशे तो पातुं पूर्व प्रमाणे कार्य बनतु रहेशे.

तेउंश्रीना ग्रंथो वांचवाथी वाचनारने एह्वो जास थायठे के आ ग्रंथो जैनधर्मनां घणांज पुस्तको वाच्या पठी रचाया हशे. व्याकरण अने पिगलनो अज्यास कर्या वगर तेमज सस्कृत अने मागधी जापाना ज्ञान वगर जैनधर्मनां पुस्तको वांचवामां घणीज अडचणो पडे ठे तो

લખવા અને રચવામાં આથી વધારે અરુચણો પડે એ સાધારણ અક્ષ-  
લનો માણસ પણ સમજી શકે તેમ છે.

શ્રી માન્ મનસુખલાલજી પોતે જે જે ગ્રંથો રચી શક્યા છે તે હાલના  
અગ્ન્યાસથી નહીં પણ પૂર્વના જ્ઞાનના બલથી રચી શક્યા છે એમ કહીએ  
તો તેમાં અતિશયોક્તિ નથી. તેડશ્રીના બનાવેલા ગ્રંથોનો સાધારણ  
માણસ પણ કેટલેક દરજ્જો અર્થ સમજી શકે તેમ છે કેમકે જાણ  
ઘણી સરલ છે, પણ જે વાંચતે તેડશ્રી પોતે પોતાના અથવા તો પૂર્વાચા-  
ર્યોના કરેલા ગ્રંથોનો અર્થ સમજાવે ત્યારે ઘણી ન્યાય યુક્તિથી સમ-  
જાવે છે તેથી સાંજલનારને સ્પષ્ટ રીતે અર્થ સમજાય છે, જ્ઞાન ફેલે છે.  
અને જેમ જ્ઞાન સમુદ્રની લહેરો લેતા હોઈએ એમ સાંજલનારને લાગે છે.  
એમના કહેવામાં સર્વે વિદ્યાર્થમાં આત્મવિદ્યા એજ પરમોત્કૃષ્ટ સ્વતંત્ર  
પરમાનંદ પ્રાપ્તિનું કારણ છે.

કેટલાક લોકો એવું ધારે છે કે એમની પાસે મંત્રો અને મંત્રોની કલા  
વિશેષ છે. તેથી જે તેડશ્રી પાસે જાય છે તે વશ થઈ જાય છે અને  
તેડશ્રીની વાતને કાંઈ નામંજૂર કરી શકતો નથી; એમ લોકો બોલે છે  
પણ મંત્ર અથવા જંત્ર તેડશ્રી જાણતા નથી અને કરતા પણ નથી.  
માણસનું મન જ્યારે ડુનિયાદારીની દરેક વાવતોમાંથી સ્વસ્થ હોય છે  
અને તેમને વર્તમાન તથા જીવિષ્યની ફિકર કરવાનું કારણ જ્યારે  
હોતું નથી તથા જૂતકાલ સંબંધી પણ કંઈ કલ્પના હોતી નથી, ત્યારે  
તેડ પોતાના ચિત્તને જ્ઞાન રૂપી દોરીથી એકજ સરલ માર્ગે દોરવી  
શકે છે, અને આથી કરીને પોતાની નજરથી દૂર શું બને છે તે તેડ જાણી  
કહી શકે છે. આ જાણવાની ક્રિયાને કેટલાક લોકો મંત્ર કહે છે. શ્રીમાન્  
મનસુખલાલજીમાં આ વાવત ડ્રહ હોવાથી કેટલાક લોકો એમ કહે  
છે કે તેડશ્રીને મંત્ર આવડે છે.

જેમ દૂરના માણસના ગુણો મનમાં આવે છે તેમ નજીકના માણસના  
ગુણો મનમાં આવતા નથી. દરેક માણસ પૂર્ણ જ્ઞાનથી જરેલો નથી

અને જો તે પ્રમાણે પૂર્ણ જ્ઞાને જરેલો હોય તો તે શ્રી કેવલજ્ઞાનીજ છે એમ જાણવું. દરેકમાં ઊંઘા વધતા પ્રમાણમાં જ્ઞાન હોય છે, જેમ જેમ વધારે જ્ઞાન હોય છે તેમ તેમ તે વધારે જ્ઞાનવાન કહેવાય છે વસ્તુને જેમ તોલવા અને માપવા માટે માપ છે તેમ જ્ઞાનને માપવા તોલવા માટે देखीतું માપ નથી પણ જ્ઞાન તથા અજ્ઞાન એ વંનેનું પ્રમાણ કરનાર એકલું નિર્મલ જ્ઞાનજ છે.

જે પોતે પોતાના આત્માને આ દુઃખજલ સંસારથી તારવા ઇચ્છાય તે પોતેજ નિરપદ્ધતિ જઈ જ્ઞાનદ્વિષ્ટમાં ઊંડોઊતરી વિચારશે તો તેહને ધરો રસ્તો હાથ લાગશે અને જોલણ રાખી હરેક અર્થોંના કલ્યા પ્રમાણે દોરાયાં કરશે તેને સાચું તત્ત્વ નજરે પડવાનું નથી.

આ ઉપરથી માહરી મતલબ એહવી નથી કે તેંશ્રીના જેવો આ દુનિયામાં વીજો કોઈ નથી અથવા તો જ્ઞાન આપનાર વીજો કોઈ મલી શકશે નહિ પણ માહરા અનુજવ ઉપરથી હું જાહેર કરું તું કે મને સરલ અને સારો માર્ગ બતાવનાર એજ ઉત્તમમાં ઉત્તમ મલ્યા છે.

શ્રીમાન્ મનસુખલાલજી હાલમાં પંચમહાલ જિલ્લાના દોહદ ગામે એક જૈનજ્ઞાનીને જોઈએ તેવી રીતે રહે છે, પોતે સંસારમાં રહ્યા ઠતાં સંસારી નથી; તેંશ્રીને બે પુત્રો છે પણ તે બે પુત્રો ઉપર તેંશ્રી પોતાનો આધાર રાખતા નથી. તેંશ્રીના પુત્રો તેમજ તેમના ઇર્ષા વેહેન વિગેરે કોઈ તેંશ્રીને મોક્ષ માર્ગ સાધતાં આડે આવ્યા નથી. તેં વીજા જનસમૂહ ઉપર પણ આધાર રાખતા નથી. વંને પુત્રો પૈકી તેંશ્રીના વડા પુત્ર “મગનલાલ” દોહદમાં આડત અને સરાફી ડુકાન ચલાવે છે અને તેંશ્રીની મદદથી જૈનધર્મનો અભ્યાસ પણ કરે છે તથા છઠ્ઠા પુત્ર “મહાસુખલાલ” વીળની પરિદામાં પાસ થઈ પંચમહાલમાં રેવન્યુ ક્ષાતામાં જોખાયલા છે.

घणा पुरुषो हरेक ग्रंथ एकवार वांचीने एम समजे ठे के आ ग्रंथनी बीना हुं समजी गयो पण तेज पुरुष बीजी, त्रीजी, चौथी, पांचमी, ठठो, सातमी वार तेज ग्रंथ वांचे त्यारे ते एम समजे के आ ग्रंथमांथी हुं कांईक समज्यो अने बहुज वार ज्यारे वांचे त्यारे एम समजे के आ ग्रंथ समुद्र जेवो ठे अने तेमांथी हुं तो एक विंदु मात्र समज्यो ठे. जावार्थ के जेम जेम ग्रंथ विशेष वांचे अने विशेष विचार करे तेम तेम ते ग्रंथना जाव विशेष जणाता जाय अने जाणे के पहेलां हुं बराबर समज्यो नहोतो अने इवे कांई समज्यो. मने घोराउपर वेसतां आवके ठे एवुं कहेनार घणा माणसो आपणी नजरे पडे ठे पण ज्यारे घोडो लावी उजो राखवामां आवे ठे अने वेसवानो दरेक क्रिया अजमाववामां आवे ठे त्यारे दर सो माणसे जाग्येज वे त्रण माणस पूर्ण फतेह पामे ठे. आ दृष्टांत शास्त्रो वांची हुं तेना परमार्थने समजुं ठे एम कहेनारने लागु पमे ठे. अमुक पुस्तको में वांच्यां ठे एवुं कहेनार घणा माणसो जोवामां आवे ठे पण साधारण वांचवामां अने समजवामां फेर ठे. गुजराती त्रीजी चौपडीनो अज्यांसी गुजराती सातमी चौपडी वांची शके ठे पण तेमां शुं मतलब समाई ठे ते समजवी समजाववी घणी मुश्केल ठे. तेवीज रीते ज्यांसुधी तेमना जाणपणानी तपास करनार मदयो नथी त्यांसुधी हुं जाण ठे एवो पोतानो जर्म जागतो नथी पण साचो परिहक ज्यारे मले ठे त्यारे खरुं शुं ठे ते पोतानेज मालूम पडे ठे अने जे कंई पोताने आवके ठे ते समुद्रना एक जलविंदु समान चासे ठे.

श्रीमान् मनसुखलालजी माटे तेउना रचेल पुस्तको बाह्यार पाड्या पढी सामान्य जनसमूह तथा साधुसमूह ( श्रैतांवर एकलाज नहि पण अन्य साधुज ) नो शो मत ठे ते तेउना उपर तेउश्रीना तथा साधु-मीउं उपर आवेला पत्रो जेमांना थोकाकमांनी टुंक हकीकत नमुना

માટે આ નીચે લખવામાં આવેલી છે તે ઉપરથી માલુમ પડે છે કે તેજના રચેલ પુસ્તકો જે હાલ સુધીમાં પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવ્યાં છે તે સર્વે જ્ઞાન ન્યાય તથા દયાથી જરૂર છે તથા શબ્દે શબ્દે મોક્ષ માર્ગ વતાવતા હોય તેવું સાફ માલુમ પડે છે

તા ૨૨-૧-૧૯૦૮ વોરસદ-ક્ષમા મુનિ-તમારા તરફથી આવેલો સુમતિ વિલાસ ગ્રંથ શ્રમોદ્દેશ પૂર્ણ વાચ્યો છે, વાંચી અતિ આનંદ ઊભર્યો છે, આ પુસ્તક વાંચી માહરું ચિત્ત નિર્મલ થયું છે કાંઈક અનુજવ પ્રાપ્ત થશે-એમ લાગે છે પુસ્તક અતિ અમૂલ્ય છે

તા ૮-૪-૧૯૦૮ વઢવાણ-ધેલાજીજી લવજીજી-આપે પરિશ્રમ લઈને જ્ઞાનની વૃદ્ધિ સદ્વિચારના પ્રવલ આશ્રયનું સુમતિવિલાસ નામનું પુસ્તક ઉપાવ્યું છે ઘણું રસિક, મનોવૃત્તિ નિર્મલ થવાનું, મોક્ષ માર્ગનું પગથીજ કહીએ તો ચાલે શાત વૈરાગ્યનું પુષ્ટકારણ છે અને તે શ્રી ઉત્તમચંદજી સ્વામીને માટે એક પ્રત મોકલાવશો તમો મોકલેલી જ્ઞાનની વૃદ્ધિ અને સદ્વિવેક વૈરાગ્યનું સદન છે તો મહારાજ સાહેબ વાંચેથી તેજ તત્ત્વ વિચારનું જ્ઞાન અને તેમાં જાવાર્ય નિસ્પૃહી છે એટલી હકીકત હોયને એક પાસેથી ગ્રંથ હોયેથી મંગાવી ત્યારે સ્પષ્ટ જણાયું છે માટે જ્ઞાનની વૃદ્ધિ અર્થે તસ્ટી લઈ મોકલાવશો. સાધુ મહાત્મા વાંચશે તો જ્ઞાનનો ફેલાવો થશે વહી પોતે ગ્રહણ કરીને બીજા જીવ્યજીવોને સદ્જ્ઞાનનો બોધ આપશે એ શ્રેય છે. સુમતિવિલાસ ગ્રંથના નામ પ્રમાણે જ ગુણ છે માટે તે પુસ્તક મુમુક્ષુ વૈરાગ્યને સ્વરેખર કૌસ્તુભ મણિ સમાન છે પણ મૂર્ખ કદાચ હીને કામની નથી. માટે સાધુ મુનિજીને તે જેટ આપ વાંચી જ્ઞાનવૃદ્ધિનું કારણ છે.

તા ૧૪-૫-૧૯૦૮ વઢવાણકાંપ-વેદેચરદાસ નથુજીજી આપના તરફથી ઉપાલ સુમતિવિલાસ વાંચતા આત્માનંદ થયો છે અને આથી કરીને હૃદયમંદિરમાં સકલ જનો ઉપર કરુણા વૃદ્ધિની સ્ફુરણા રહે એ કાંઈ ઊંઘો લાજ નથી. કર્માનુસાર આત્માને સ્થાનાંતર થવું પડે છે તેનો

विचार करी स्थिर थवुं कर्त्तव्य ठे. आशा ठे के आ प्रमाणे आत्मोदय थाय. आ पुस्तक कोई मुमुक्षु तरफथी वांचवा मलेल ठे ते वखतसर तेने पातुं आपवुं जोईए तो कदाच आपनी ईश्वानुकूल होय तो एक प्रत जेट तरीके मोकलशो.

ता० ५-६-१९०८ आटकोट-दलपतराम वनमालीदास-तमारा मोकलेला सुमतिविलास नामना ग्रंथ नं १) पोहोंच्या ठे. महाराजश्रीने हाथोहाथ पोहोंचाड्या ठे. ते महाराजश्री बोढ्याके आ ग्रंथो वांचवाथी अंतरात्तामां घणोज आनंद उत्पन्न थयो ठे. आ ग्रंथ वांचनार जनोने घणोज सहायकारी ठे. आपे जे आ पुस्तकनुं नाम राख्युं ठे ते जेवुं नाम तेवोज गुण ठे “यथा नामा तथा गुणा” ए पुस्तकनो बीजो जाग ठपाई रह्यो होय तो मोकलावशो.

ता० १६-६-१९०८ वांसावाड-बोरा-जार्चिचंद मावजी-अतरे बिराजमान मुनि महाराज श्री लक्ष्मीचंदजी स्वामी तथा मुनिराज श्री अमरचंदजी स्वामी आदे ठाणां बे सुखसातामां बिराजे ठे. आपना तरफथी आवेला सुमतिविलास ग्रंथ नं १) तेउंश्रीने पोहोंचाड्या ठे. तेउंश्री कहेठे के अहो सुझ श्रावकजी ! आ ग्रंथ वांचवाथी अमारा अंतरात्तामाने अत्यानंद प्राप्त थयो ठे. आप जे ज्ञान उत्तेजन आपो ठे तेथी आपनो मोटो उपकार मानुं लुं. सर्वोत्तम-श्रेष्ठदान ते ज्ञानदान ठे. आ ग्रंथ ते तमाम मुमुक्षु जीवोने हितार्थ रस्तो बतावनार थवाना ठे. तमाम वाक्यो मनन करवा योग्य ठे. आ ग्रंथनो बीजो जाग ठपाएथी मोकलावी आपशो.

अशाडवदी ३ सने १९६६-मांडल-मणीयार. वाडीलाल पंचाणजी राधनपुरवाला-अंधने अकस्मात् नेत्र प्राप्तिथी थता आनंद तुल्य आपनो कृपापत्र मदयो, वांचतां अमृत रस प्राप्त थतां अतृप्तिज रह्यां करेठे. आपनो अमृत तुल्य उपदेश वांचतां थतो आनंद दर्शावी शकवा कोषनो दुष्काल पड्यो ठे. अर्थात् थतो आनंद दर्शाववा कलम चाखी

શક્તી નથી. અપૂર્વ આનંદ થયો. આપની પાસે વારંવાર અર્હર્નિશ પ્રાર્થના ઠે કે અમૃત ઉપદેશ જલ સિંચન કરી આ લઘુ સેવકને કૃતાર્થ કરી આજારી કરશોજી. અવકાશ અજાવ હાલ ઘણો છે. અવકાશે આપના ધંધોનું મનન કરવાનોજ વિચાર ચાલુજ છે. આપના સમાગમે અમૃત દેશનાનો છાજ લેવાનો ઉત્સાહ અકથનીય છે. પરંતુ ડાક પાકવાના અવસરે જેમ કાગને મુલ રોગ થાય છે તેવું થાય છે, અર્થાત્ હુ ગમે તેમ કરી આપના દર્શન અને અમૃતગીરાનો છાજ લેવા શક્તિમાન્ થાત પરંતુ અમારા શેઠજીને કાર્યવશાત્ આજેવહારજવું પડે છે; ડુકાને વીજો માણસ નથી એટલે આવી શકવા કમનશીવ રહ્યો હું. તે માટે થતો લેદ લાલી શક્તો નથી. આપે આરંક સેવકને માત્ર પત્રનીજ લેખ-લાખ્યો આપનો અમૂલ્ય વસ્તુ રોકીને પણ ઉપકારની વુઝીધી પત્ર લાલી તેનાવ્યો પણ રાંકને રત્નપ્રાપ્તિ ન હોય તેવું થયું છે તે માટે લેદ થાય છે, તે દર્શાવી શકું તેમ નથી. આપનો પત્ર વારંવાર વાંચવાની અજિલાપા થાય છે, વારંવાર એજ પ્રાર્થના ઠે કે હિતોપદેશપત્ર દ્વારા લાલાવી આ રકને ઉપકાર કરશો પત્ર વંધ કરવાની અનેછા ઠતા મતિમદતા અને અવકાશના અજાવે વધુ નથી લાલી શકનો, ઠેવટ એટ-લીજ પ્રાર્થના ઈષ્ટ દેવ પ્રતે ઠે કે આપશ્રી જૈન ધર્મનો વિજય જગત્માં પ્રવર્ત્તાવવા દીર્ઘાયુષી થઈ અમારા જેવા રંકને સ્પાદ્યાદ અમૃતનુ પાન કરાવા જાગ્યજાલી થાઈ

આવળ વડી ૧૪ સન ૧૯૬૬-પત્રી-મુનિશ્રી નાગચંદ્રજી-આપના તરફથી મોકલાવેલ સુમતિવિલાસ, સુમતિ વ્યવહાર, આદિ ત્રણ ધંધો મને મલતા પ્રેમ પૂર્વક સ્વિકારેલ છે. શ્રીમાન્ પંક્તિવર્ય મનસુખસાલજી હરિલાલજીનો વિદ્વતા અપૂર્વ જણાય છે, તેમના વચનો નિ.પદ્ધપાતી, રસીક અને વેધક છે, માણસોને અસર પાડે તેવી તેમની વાણી મિષ્ટ અને ઈષ્ટ છે. આપે જે પુસ્તકો પ્રગટ કરેલા છે તેવાં ઉત્તમ પુસ્તકો જૈન પ્રજામાં ઘણા થોડાજ પ્રગટ પાડે છે. સરેસર



હાલની પ્રજાને એવાજ પુસ્તકોની જરૂર છે. જૈન પ્રજામાં હાલ આત્મિકજ્ઞાન લય પામ્યા જેવું થઈ ગયું છે. સાધુ વર્ગમાં પણ જવદ્વેજ એવા કોઈ હશે. શ્રીમાન્ મનસુખલાલજીને હું કોટીશઃ ધન્યવાદ આપું તું કે જેમણે અપૂર્વજ્ઞાન મેલવી ઘણા માહરા જેવા ઉપર દયા લાવી શુદ્ધ અંતઃકરણથી સ્યાદ્વાદ જૈન વાણીનું રહસ્ય સમજાવવા પ્રયાસ કર્યો. હે શાસનદેવ ! એવા નરરત્ન જો ઠેર ઠેર હોત તો આજે જૈનીઝની કેવી જાહોજલાલી પ્રગટે? પણ સચૂર! સિંહનાં કાંઈ ટોલાં ન હોય, વને વને ચંદન ન હોય, યતઃ “ શૈલે શૈલે ન માણિક્ય ” પંડિતવર્ય શ્રી દેવચંદ્રજી મહારાજની ચોવીશી અર્થવાલી આપે ઠપાવવા ઉત્તમ પ્રયાસ કરેલ છે તે જ્યારે પૂર્ણ ઠપાઈ રહે ત્યારે એક પ્રત મોકલશો.

આસોવદરગુરુ-૧૯૬૬-પત્રી-મુનિ નાગચંદ્રજી-આપ તરફનો હાલમાં પત્ર નથી. અત્ર આનંદ મૂર્તી સ્વસ્વરૂપમાં રમણ કરનાર મહાત્માઝની કૃપાવડે આનંદ છે. પ્રજ્ઞાતના જગવતીજી સુત્ર અને ઉપર સુમતિવ્યવહાર ગ્રંથ વંચાય છે, નવીન ગ્રંથ અને રસીક હોવાથી શ્રોતાજનોને વધુ રસિક લાગે છે. ગ્રંથના પ્રયોજક ઘણા વિદ્વાન અને નિઃપક્ષપાતી હોવાથી વચનો વધુ અમૂલ્ય લીકલેલા છે; જેથી દરેક લોકોને દાય આવે એ બનવા જોગ છે. બપોરના રામરસ ઉપર સામાયક સિદ્ધ્યુપાય એક કલાક ચાલે છે તે સાંજલવાથી ઘણા જાઈઝ તથા વાઈયોની સામાયક કરવાની રીતી સુધરેલ છે, તેમ સામાયકનું સ્વરૂપ પણ સમજતા થયા છે; એ વધો ઉપગાર મનસુખજાઈનો જ સમજવો. હવે દેવચંદ્રજી કૃત અતિત ચોવીશી વિગેરે સાર્થ જો ઠપાઈ ગયેલ હોય તો એક નકલ મોકલાવશો અને એક નકલ પૂજા સંગ્રહની પણ સાથે મોકલાવશો. કાર્તિક પૂર્ણિમા પહેલાં આવે તો સારું. પૂજા સંગ્રહની નકલ ફરીથી મંગાવવાનું કારણ જે આપે પ્રથમ મોકલાવેલ નકલ એક મુમુક્ષુને પાંચ જાવનાઝ સાર્થ શીખવાની હોવાથી તે લઈ ગયેલ છે અને માહરે અષ્ટ પ્રવચનની ઢાલો

શીખવી ઠે માટે વીજી નકલ આપની પાસે મંગાવી ઠે. એજ વલતો પત્ર પાઠવશો.

તા ૦ ૨૨-૧૦-૧૯૧૦

ગોધરા. પંચમહાલ લી ૦ શા ૦ મહાસુખલાલ મનસુખલાલ.

॥ જિનઆણા સેવા સ્તવન ॥ ॥ સ્વામી શ્રી મંદરા ॥ એ રાહ ॥

મેવ અરિહંતની આદરો પ્રવિજના, હાણ જીવ સુખની તજિ રહો થિર મના; પાપ અમદશ થકી જીવ સુખ હાણ ઠે, પાપ અમદશ તજે સુપદ નિરવાણ ઠે ॥ ૧ ॥ અચલ ઉપયોગમાં સિદ્ધિ સુખ સાધિએ, સુનય યુત શુદ્ધ જિન વચન આરાધિએ; જ્ઞાનસુખ હાણિ ઠે રાગ ને રોષથી, ત્યાગિ વિકલપ સકલ દુર રહો દોષથી ॥ ૨ ॥ જ્ઞાયક જ્ઞાવમાં જે સદા થિર રહે, તેહ નિર્દોષ નિર્જયપણે શિવ લહે, દરશસુખ હાણિ મિથ્યા વચન જલ્પથી, તજત મિથ્યાત તસ કોઈ પ્રવચન નથી ॥ ૩ ॥ કાય સંચલનથી ચરણસુખ કિમ રહે, કાય થિર કરત નિજ રમ્યમાં રમિ રહે, ડ્રવ્ય ને જ્ઞાવ ઇમ પ્રાણ બે વિધિ તણા, જીવને સૂક્ષ્મના હેતુ સદગુરુ પ્રણ્યા ॥ ૪ ॥ ડ્રવ્ય જ્ઞાવે સ્વપર પ્રાણની જે દયા, તેહ સંજમ વિમલ સાધિ મુનિ શિવ ગયા; જેદિ મિથ્યાતમલ મોહ ઝુલેદિએ, પૂજિ જિનરાજ નિજ સંપદા વેદિએ ॥ ૫ ॥ જિનવર પૂજના તેહ આતમ દયા, પરિહરો વિરુદ્ધ સદ્ગુ જીવનું ધરિ મયા, આઠ વર પૂષ્પથી પૂજિએ જિન ધણી, નિરખિ હરિજ્ઞ કૃત પૂજા અષ્ટક પ્રણી ॥ ૬ ॥ વર દયા પ્રથમ ઠે પુષ્પ ચંગેરિનું, સત્ય ત્ત્વ કુંદ હ. સ્વ હરણ પ્રવ

ફેરિનું; તૃતીય અસ્તેય વર પ્રાગ ચંપક ખલું, શુદ્ધ સુવ્રહ્મ સરસ  
 કેતકી નિરમલું ॥ ૭ ॥ સહજ અસંગતા જાણું ફૂલ ઠે,  
 સદ્ગુરુ પ્રકૃતિ મહાવેલિ સુખ મૂલ ઠે; તપ મહા મોલસિરિ  
 ખવ દવાનલ હરે, જ્ઞાન વર પદ્મનું પુષ્પ શિવસુખ કરે ॥ ૮ ॥  
 એહ અમ્ પુષ્પથી જિન ચરણ પૂજિએ, પરમ ઉત્સાહ શુદ્ધાત્મ  
 રસ ધરિ હિયે; પંચ આચાર વર પુષ્પ પંચરંગિએ, પૂજતાં જીવને  
 હોય શિવ સંગિ તે ॥ ૯ ॥ મમત પરિહાર તે વાસ સૃગમદ  
 તણી, ધ્યાન શુદ્ધ ધૂપ શીખા મુનિવરં જાણી; અષ્ટ મદ ત્યાગ  
 ઘનસાર અતિ મહમદે, ત્યાગિ પરજાવ નિજ જાવ કુંકુમ  
 ગ્રહે ॥ ૧૦ ॥ ત્યાગિ ત્રય જોગ સાવચમય સેવના, શુદ્ધ  
 નિરવચ ચંદન રસે અનુદિના; જાવસેવા તણું કારણ સત્ય જે,  
 ત્યાગિ પ્રમાદને આદરો નિત્ય તે ॥ ૧૧ ॥ પ્રાણ સુખહાણિ  
 એ ન્યાય નવિ સંજમે, પ્રાણહાણિ તજે સહજ સુખ ઝાઝવે;  
 પ્રાણ રક્ષાથી સંજમ કહ્યું જિનવરે, જાણિ બુધ ન્યાય શુદ્ધ  
 સંજમ આદરે ॥ ૧૨ ॥ જાણિ સાવચના હેતુ સવિ જાવિ  
 તજો, આણ જિનદેવની સેવના નિત જાવો; સહજ શુદ્ધ જાવમાં  
 ધારિ જઠ રંગતા, ત્યાગિ પરજાવ એક સેવો નિઃસંગતા ॥ ૧૩ ॥  
 નમન વંદન જિનરાજ પ્રતિમા પ્રતે, શબ્દ ત્યાગી સ્વગુણ  
 ધ્યાન જાવના ઠટે; જવ્યસેવા એમ શુદ્ધમતી આદરે, મિત્ર અન્નાણ  
 કષાયથી નિસ્તરે ॥ ૧૪ ॥ એહ જિનરાજની આણ સંજાલિએ,  
 જંતુ સુખ રાખિ પ્રજુ સેવમાં ચાલિએ; “મનસુખ” જિન-  
 પદ પૂજશે તે નરા, સહજ શિવ સંપદા પામશે અતિ ત્વરા ॥ ૧૫ ॥

॥ સંપૂર્ણ ॥

॥ श्री वेजलपुर पौषधशाला स्थापी ते विषे ॥ हरिगीत ठद ॥

परम पंच परमेष्टि वंदि सुमन रंग उमंगमां, जल जरी  
 थापो कुंज अमृत आण जिन जवि संगमां ॥ १ ॥ आत्म  
 जवने आज थापो कुंज ज्ञानामृत तणो, ते पान करतां प्रगट  
 होवे अचल वीरज आपणो ॥ २ ॥ वर कल्पतरु शुध चरण  
 मूले सींचीए अमृत सदा. फळे चरण शिवफल चाखता होय  
 सहज आनंद रस सुदा ॥ ३ ॥ जग ज्ञान चरण सुवीर्य आदिक  
 गुण अनंता ऊपजे, नहि रोग शोग वियोग जिहां वळि  
 छविध संपति संपजे ॥ ४ ॥ सादि अनंतानंद प्रगटे आत्म-  
 जूमि रयण जरी, स्वतंत्र संग सुरंग शिवत्रिय जोगवे मन-  
 सुख करी ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥





| पृष्ठांक | लिटी | अशुद्ध               | शुद्ध.  |
|----------|------|----------------------|---|
| १        | ए    | चारमा अने तेरमा      | चारमा अने तेरमा गुणस्थान वासी   |
| १४       | २२   | ज्ञायक जाव महंत      | ज्ञायक ज्ञान ( जाव ) महंत   |
| १७       | १८   | कच्युं               | कर्युं  |
| १८       | १३   | वसंतमा               | वसतमां  |
| २०       | १२   | नाहिं                | नाही  |
| २९       | ६    | करयां                | कर्यां  |
| ३७       | २    | निज                  | जिन   |
| ४१       | ७    | बधायेखाने            | बंधायेखाने  |
| ४३       | १२   | तम                   | तेम   |
| ५६       | ४    | पुरा                 | पूरा  |
| ५९       | २१   | प्रदेशमा             | प्रदेशमां   |
| ६४       | ३५   | पयाय                 | पर्याय  |
| ७३       | ४    | साध्यादि             | स्याद्यादि  |
| ७३       | ७    | साध्य आदि            | स्याद्याद अनेकांत   |
| ८१       | १६   | करणवीर्य बने बाधकताए | करणवीर्य  |
| ८२       | ८    | कीर                  | कीर   |
| ८९       | १२   | डव्यमा               | डव्यमां   |
| ९०       | ११   | समय ठे               | समय ठे ते प्रति समयव्यक्ति पणे युगपदे प्रवर्त्यां करे ठे              |
| ९४       | २२   | धाती                 | धाती  |
| ९९       | १९   | मुण्येवो             | मुण्येवो  |
| १०१      | ८    | महाव्रत              | महाव्रत   |
| १०४      | २२   | काई                  | काई   |
| ११२      | १२   | सुदर्शन चक्रहो ॥     | सुदर्शन चक्रहो॥ हेजी चारित्र शुद्ध गदा-धैर्य हेजी चित्त विजाव न करहो; |

| पृष्ठांक | लिटो | अशुद्ध        | शुद्ध       |
|----------|------|---------------|-------------|
| ११७      | ३    | मनसुखाल       | मनसुखलाल    |
| ११८      | १२   | चाह           | चाहे        |
| ११९      | ११   | लही           | लह्युं      |
| १२३      | ८    | नसाय          | बचाय        |
| १२४      | २४   | होष्ट         | श्रोष्ट     |
| १२६      | ८    | रत्नो थकी पणी | रत्न थकी पण |
| १२५      | २३   | यागेथी        | योगथी       |
| १३०      | १२   | ते            | तो          |
| १३८      | १४   | सेवता         | सेवतां      |
| १५६      | ८    | बीजां         | बीजे        |
| १५७      | २७   | हेयमान        | हीयमान      |
| १५८      | २१   | होय मई ॥      | होय ॥ मई    |
| १६६      | १३   | दे            | देव         |
| १६६      | १५   | बीजा          | बीजां       |
| १७२      | १२   | विमाननां      | विमानमां    |
| १७६      | २    | माह्य         | मांह्य      |
| १७७      | १४   | जेहनां        | जेहना       |
| १७८      | १८   | त्रिय         | प्रय        |
| १८३      | १३   | डुगंछना       | डुगंछना     |
| १८८      | ८    | राख सजम       | राखे संजम   |
| २००      | २०   | निःशंक        | निःसंग      |
| २२३      | २२   | नारायणी       | नारायणी     |
| २२८      | १८   | ए कारका       | ये कारका    |
| २३१      | ३    | सरुवं         | सरूवं       |
| २३१      | ३    | समदिष्टि      | सम्मदिष्टि  |
| २३५      | २५   | तय            | नय          |

पृष्ठांक लिटी

अशुद्ध

शुद्ध

|     |    |               |                   |
|-----|----|---------------|-------------------|
| २३८ | १९ | लुख           | लुखे              |
| २३९ | ८  | पञ्जायईजं     | पञ्जायाईजा        |
| २४७ | १२ | वध थाय        | वध थायः (रोकाय)   |
| २४८ | ७  | जोग           | लोग               |
| २४८ | ११ | यतां          | यता               |
| २५३ | २१ | ॥ ५ ॥         | ॥ ६ ॥             |
| २५४ | १३ | ॥ ५ ॥         | ॥ ६ ॥             |
| २५६ | २३ | स्वरूपी       | स्वरूपीरे ॥ मन० ॥ |
| २७० | १४ | मारुतां पहेला | मांडता पहेलां     |
| २७६ | ९  | वीर्यांतरना   | वीर्यांतरायनां    |
| २७९ | २२ | छेपादि        | छेपादि            |
| ३०५ | १  | एकादश         | एकादशम            |
| ३०७ | १  | एकादश         | एकादशम            |
| ३०८ | २  | छादश          | छादशम             |
| ३०९ | १  | छादश          | छादशम             |
| ३१० | ५  | पूर्ण         | पूर्ण             |
| ३११ | १  | छादश          | छादशम             |
| ३११ | ९  | बुझादि        | बुझादि            |
| ३१७ | ११ | बुध्य         | बुध्यः            |
| ३१९ | १४ | कारण          | कारणो             |
| ३२३ | १५ | सेवन थाय      | सेव न थाय         |
| ३२३ | २१ | देवचंद्र      | देवचंद्र          |
| ३४० | १३ | तमां          | तेमां             |
| ३४० | २५ | बंध           | बंध               |
| ३६१ | २  | स्वचावने      | स्वचावने          |
| ३७७ | २३ | प्राणी निज ॥  | प्राणी निज        |

संपूर्ण





॥ ॐ परमगुरुज्यो नमः ॥

॥ अथ श्री महोपाध्याय देवचंज्जी कृत अतित स्तवन  
चोविशी बालावबोध सहित लिख्यते ॥

॥ दोहरा ॥

जिन गुण कोर्त्तन करि करो, आतम कीर्त्ती अनंत ॥

शुद्धातमता ध्यावतां, लहो निज पद सुमहंत ॥ १ ॥

अतित समयमां जे हुवा, तीर्थपती चोवीश ॥

तस गुण स्तवि जविजन लहो, सहजातम सुजगीश ॥ २ ॥

शुद्ध ध्येय ध्यातां लहे, धर्म शुक्ल शुज ध्यान ॥

परमातम पूजी वरो, जवि निज सिद्धि विधान ॥ ३ ॥

विघन हरण मंगल करण, जस अतिशय चढतीश ॥

तस पद सेवी जवि रहो, धर्म मग्न निशदीश ॥ ४ ॥

अक्षय आतम संपदा, आतम वीर्य अनंत ॥

सहज स्वतंत प्रयास विण, प्रगटे शांति अत्यंत ॥ ५ ॥

॥ अथ प्रथम तीर्थंकर श्री केवलज्ञानी जिन स्तवन ॥

नामे गाजे परम आल्हाद, प्रगटे अनुभव रस आस्वाद ॥

तेथी थाये मति सुप्रसाद, सुणता जाजेरे काई विषय  
विषादेरे, जिणंदा ताहरा नामथी मन जीनो ॥ १ ॥

अर्थ—जेना नामथी जवि जीवोना हृदयमां परम आल्हाद गाजी  
रहे ठे, त्रणे चुवनना जीवो सिद्ध समान पोतानुं शुद्ध स्वरूप अण-  
जाणता सरुण, परुण, विध्वंसण धर्मी अपवित्र देहमां पोतापणुं जाणी  
मानी जन्म, जरा, मरणादि आधि व्याधि अहंपणे जोगवता अने  
मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय वशे कर्मबंध करताने प्रजुजी सिद्ध

૨ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

સમાન નિર્મલ જ્ઞાન દર્શન ચરણ વીર્યમય સ્વતંત્ર અજર અમર અક્ષય  
અનંત આનંદમય શુદ્ધાત્મ સ્વરૂપ વતાવે, તેજ આત્મ અનાત્મ લંકાણ  
જિન્ન સમજતાં, રૂચી પ્રતિત થતાં, જીવિજીવોના હૃદયમાં પરમાનંદ  
પ્રાપ્તિ થાય છે વલી રાગાદિ દોષો મટી નિર્મલ શાશ્વત જ્ઞાન દર્શન  
ચરણ વીર્યાદિ પોતાની અનંત શુદ્ધ શક્તિનો અનુજવ આસ્વાદ સ્વતંત્ર  
પણે પ્રગટે છે એજ પરમ આદ્યાદ ગાજે છે. તાહરાં વચન સાંજલતાં  
વિષય અને કષાયોનો વિષાદ તાપ દુર જાગે અને પ્રશમતાનો  
આનંદ આવે. અગીઆરમા બારમા અને તેરમા સામાન્ય જિનોમાં ઈંદ્ર  
સરખા શાસન નાયક તમારા નામથી માહરું મન આશ્ચર્ય પામે છે,  
માહરું મન પ્રજુના સ્યાદ્યાદામૃત વચન રસે જિનું છે ॥ ૧ ॥

ક્ષેત્ર અસંખ્ય પ્રદેશ, અનંત પર્યાય નિવેશ ॥ જાણગ  
શક્તિ અશેષ, તેહથી જાણેરે કાંઈ સકલ વિશેષરે ॥ જિ ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-આત્મ દ્રવ્યના પ્રદેશ લોકાકાશના અસંખ્યાતા પ્રદેશમાં  
વિસ્તરી શકે છે. તે સ્વપ્રતિ પ્રદેશે જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણોના ઢતિ પર્યાયો  
અનંતાનંતા તિરો જાવે રહ્યા છે. તે પરિણામિક ધર્મ વડે સ્વદ ગુણ  
હાણિવૃદ્ધિપણે પર્યાયો દર સમયે સામર્થ્યપણે પરિણમિ આપ આપણા  
કાર્યપણે ઉદ્ભૂતાણ આવી પરિણમે છે. તેમાં આવીર્જાવપણે થયા જે  
જ્ઞાન પર્યાયો તે વઢે રૂપી અરૂપી સકલ જ્ઞેયની ત્રિકાલવર્તી દૂર  
નિકટની સકલ પ્રવૃત્તિના જાણ ઢો. માટે જાણવાપણની શક્તિ અને  
વ્યક્તિ અશેષ છે એટલે અનંત દ્રવ્યના અનંત ક્ષેત્રના અનંત  
કાલના અને અનંત જાવના પ્રજુજી વિશેષ ગુણે કરી જ્ઞાતા ઢો. તેથી  
કોઈ પણ જ્ઞેય તમારા જાણવામાં બાકી રહેતો નથી ॥ ૨ ॥

સર્વ પ્રમેય પ્રમાણ, જસ કેવલ નાણ પહાણ ॥ તિણે  
કેવલનાણી અજિહાણ, જસ ધ્યાવેરે કાંઈ મુનિવર  
જ્ઞાણ રે ॥ જિ ૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ:-સકલ પ્રમેય પ્રમાણ કે ૦ પંચાસ્તિ દ્રવ્ય ઠે તેમાં ધર્માસ્તિ અધર્માસ્તિ અને આકાશ એ એક એક દ્રવ્ય ઠે અને જીવ પુદ્ગલ અનંતાનંત દ્રવ્ય ઠે અને ત્રિકાલના સમય અનંતા ઠે તેમાંથી કોઈ દ્રવ્ય વધે નહીં તેમ ઘટે પણ નહીં ઇટલે નવો ઉપજે નહીં, પૂર્વલો નાશ થાય નહીં વલી જે દ્રવ્યમાં જે ગુણો ઠે તેમાંથી કોઈ-ગુણ પૂર્વલો નાશ થાય નહીં તેમ નવો ઉપજે પણ નહીં અને જે દ્રવ્યમાં જેટલા ઠતિ પર્યાય ઠે ને પર્યાયોમાંથી કોઈ પર્યાય વધે નહીં તેમ ઘટે પણ નહીં, પર્યાય ઉત્પાદ વ્યયપણે પરિણમે પણ સત્તાણ જેટલા ગુણો અને જેટલા પર્યાયો ઠે તેટલાજ રહે. જીવ દ્રવ્યના ગુણ પર્યાય જીવ કાર્ય કરે અને પુદ્ગલ દ્રવ્યના ગુણ પર્યાય પુદ્ગલ કાર્ય કરે પણ કોઈ દ્રવ્ય અન્ય દ્રવ્યના કાર્યને કરે નહીં, જે વસ્તુનો જે સ્વચાવ હોય તેમાં જે પર્યાયની વ્યક્તિ જે સમયે આવવાની હોય તેજ સમયે આવે, પર્યાયો પોતાનો ક્રમ ઠોને નહીં વલી જેમાં જે જીવિતવ્યંતા હોય અગર જેને જેનો યોગ થવાનો હોય તેને તે યોગ થાય, એ આદિ દ્રવ્ય ગુણ પર્યાય આપ આપણી મર્યાદા ઠોને નહીં તેને પ્રમેય કહીએ. એમ સકલ પ્રમેયનું પ્રમાણ કરનાર પ્રજુજીનું પ્રધાન કેવલજ્ઞાન ઠે. તેથીજ પ્રજુજી તમારું કેવલનાણી એવું નામ ઠે. જેને પ્રધાન મુનિઠ સદા મન વચન કાયાના જોગો થિર રાહી ધ્યાનમાં ધ્યાય ઠે ઇટલે તમારા શુરૂ ગુણો વાર વાર સંજાલી ધ્યાનાગ્નિ ધર્મી તુમ સરલા ગુણો આત્મ અંગમાં અજેદપણે ધ્યાઈ કર્મરૂપી કાષ્ટને પ્રજાલે ઠે ॥ ૩ ॥

ધ્રુવ પરિણતિ ઠતિ જાસ, પરિણતિ પરિણમે ત્રિક રાગ ॥  
કરતા પદ પ્રવૃત્તિ પ્રકાગ, અસ્તિ નાસ્તિરે કાંઈ સર્વનો  
જાસેરે ॥ જિ ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-તે કેવલજ્ઞાની અતિતકાલના પ્રથમ તોર્થકરને ધ્રુવ પરિણતિ અસ્તિપણે ઠે. તેજ પરિણતિ ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવ એ ત્રણ રાશિ

४ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

पणे सवें समय परिणमे ठे एटले सर्व समय पूर्व पर्यायनो व्यय, उत्तर पर्यायनो उत्पाद् अने सकल सत्तानुं ध्रुवपणुं सर्वे द्रव्यमां होय. जो सर्वे समय द्रव्यमांहे उत्पाद् व्यय ध्रुवता न मानीए तो द्रव्य पोताना कार्यनी क्रीया करे नहीं तो शुन्यपणुं थाय. कह्युं ठे के—  
“ अर्थ क्रिया कारित्वं द्रव्यं तथा उत्पाद् व्यय ध्रुव युक्तं सत् लक्षणं द्रव्यं ” एटले द्रव्य आप आपणुं कार्य करवानी क्रीयां एटले पर्याय प्रवृत्ति न करे तो द्रव्यनुं द्रव्यत्वपणुं रहे नहीं अने सर्वे समय उत्पाद् व्यय न होय तो द्रव्यनुं सत् लक्षण पण रहे, नहीं माटे उत्पाद् व्यय ध्रुवपणुं सर्वे समय मानवुं. तेथी प्रजुजी पोताना शुद्धात्म पदनी प्रवृत्तिना प्रकाश करवावाला ठो वली सर्वे द्रव्य पोत पोताना द्रव्य क्षेत्र काल अने जावपणे सदा अस्ति एटले ठता ठे अने परद्रव्यना द्रव्यादिक पणे कोई द्रव्य थाय नहीं. पर द्रव्यादिक रूपे न थवुं एवो स्वजाव पण पोतामां अस्तिपणे रह्यो ठे तेनेज नास्ति स्वजाव कहीए. एम अस्ति नास्ति आदि वस्तुना अनंत स्वजाव समकाल सर्वे समय तमारी ज्ञायकतामां जासे ठे ॥ ४ ॥

सामान्य स्वजावनो बोध, केवल दर्शन शोध ॥ सहकार अज्ञावे रोध, समयंतर रे कांई बोध प्रबोधरे ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थ:—सर्वे द्रव्यना अस्तित्व वस्तुत्व आदि सामान्य स्वजावनुं जाणवुं तेने दर्शन गुण कहीए. ते दर्शन गुण तमारे परम प्रगटं शुद्ध थयो ठे. सामान्यपणे वस्तुनी ठती जाणवामां ईद्रिज तथा चंद्र सूर्यादिनी सहाय जोईती नथी अने अरोध के० ते दर्शन गुण रूपी अरूपी अनंत द्रव्य जाणवामां कोई ठेकाणे रोकातो रुंधातो नथो एटले अखलित केवलदर्शन गुण प्रगट थयो ठे एटले सामान्य विशेष बोध समयांतरे थयो ठे पण अखंर समय केवलज्ञान अने केवलदर्शन उपयोग वत्ते ठे ॥ ५ ॥

कारक चक्र समग्ग, ते ज्ञायक जावे विलग्ग ॥ परमज्जावे  
संसग्ग, एक रीतेरे कांई अयो गुण वग्गरे ॥ जि० ॥ ६ ॥

अर्थः—जीवमां अनन्ता गुणो ठे, ते सर्वे समय अनन्त कार्य करे ठे,  
ते दरेक कार्यनां कारक चक्र चिन्न चिन्न ठे, ते सर्वे कारक चक्र ज्ञान  
कारक चक्र संबंधे बलगेलां ठे ज्ञानकारकचक्र फरे तेम दर्शनादि  
सर्वे आत्म कार्यनां कारकचक्र फरे. ते ज्ञान कार्यनां कारक नीचे  
प्रमाणे जाणवांः—

( १ ) कर्त्ता कारक—ते ज्ञान कार्यनो कर्त्ता पोते आत्मा.

( २ ) कार्य कारक—स्वपर स्वरूप त्रिकाल जावनु जाणवुं ते  
ज्ञान कार्य.

( ३ ) करण कारक—ज्ञान कार्यनुं उपादान कारण असंख्य प्रदेशे  
रहेला ज्ञानना अनन्ता ठति पर्याय. अने ज्ञान  
कार्यनु निमित्त ज्ञेय.

( ४ ) संप्रदान कारक—ठति पर्याय सामर्थ्यपणे प्रवर्त्तावी पो-  
तेज पोताने अनन्त बोधनुं दान आपे  
ते स्वसंपदा देवा रूप संप्रदान.

( ५ ) अपादान कारक—तेज ठति पर्यायो सामर्थ्यपणे प्रवर्त्तावी  
अबोधनो नाश करवो ते अपादान.

( ६ ) अधिकरण कारक—स्वआत्म प्रदेशमां स्वकाल प्रवृत्ति ते  
अधिकरण.

एम अनन्त गुणोनां अनन्त कारकचक्र ज्ञानाश्रित समकाले  
प्रवर्त्ते ठे तेथी अनन्त गुणोनां वर्ग एक रीते अयो एटले परम जावने  
ससर्गे सर्वे गुणो प्रवर्त्ते ॥ ६ ॥

इम सालंबन जिन ध्यान, जवि साधे तत्त्व विधान ॥

जदे पूर्णानंद अमान, तेहथी आयेरे कांई शीव इशानरे ॥ जि० ७

૬ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશો.

અર્થ:-એમ પ્રજ્ઞના અલંબને જે જીવિ શુદ્ધાત્મ ધ્યાન રાખી તત્ત્વ વિધાન સાથે ઇટલે પ્રજ્ઞજીએ અનંત ગુણોનાં કારકચક્રો પોતાના જ કાર્યમાં પ્રવર્તીવી પૂર્ણ આત્મ સિદ્ધિ કરી તેમ માહેરે પણ આત્મ સિદ્ધિ રૂપ કાર્ય કરવું અગર એજ પ્રમાણે આત્મ સિદ્ધિ કરવા માટે પ્રજ્ઞજીએ કહ્યું તો માહેરે સર્વે ગુણો નિજાત્મ શુદ્ધ કાર્યમાં પ્રવર્તીવવા એજ પ્રજ્ઞનું આલંબન જાણવું. પ્રજ્ઞ આલંબન વિના અનાદિ અવિદ્યા વડે પુદ્ગલ દ્રવ્ય ગુણપર્યાયમાં કાર્ય માની જ્ઞાન ગુણ તેમાં પ્રવર્તીવે છે ઇટલે પુદ્ગલ કાર્યમાં રોકે છે ત્યાંજ અવરાય છે પણ શુદ્ધાત્મ ઉપયોગમાં પ્રવર્તીવતો નથી. તેમજ દર્શન ગુણ પણ પુદ્ગલીક કાર્યમાં પ્રવર્તીવી શુદ્ધાશુદ્ધ અશુદ્ધ નિશ્ચયમાં રોકે છે. તેમજ ચરણ ગુણ પણ પુદ્ગલના અનંત ગુણોમાં ( વિષયોમાં ) પ્રવર્તીવે છે, કપાયોમાં મુંઝાય છે ( મોહ પામે છે. ) વીર્યગુણ પણ પુદ્ગલના ગુણપર્યાયોમાં ફોરવી ચલ મલિન અને પરતંત્ર કરે છે. એમ પોતાના અનંત ગુણો પરસંગે ચલ મલિન કરી સંસાર ત્રમણ કરતા દુઃખ પામે છે પણ જ્યારે જીવ પ્રજ્ઞ આલંબની થાય ત્યારે સકલ કારક શુદ્ધ સ્વજ્ઞાવ ધર્મમાં પ્રવર્તીવી સકલ દુઃખથી નિવર્તિ પરમાનંદ પ્રગટ કરે છે. એમ પૂરો જેનો માપ નહીં એહવો અત્યંતીક આનંદ પ્રગટ થાય છે ઇટલે આત્મા ઉપદ્રવ રહિત પરમ નિર્વાણ પદનો જરૂર સ્વામી થાય છે ॥ ૭ ॥

દાસ વિજ્ઞાવ અપાય, નાસે પ્રજ્ઞ સુપસાય ॥ જે તન્મયતાએ ધ્યાય, સહી તેહનેરે દેવચંદ્ર પદ ધ્યાય રે ॥ જિઠ ॥ ૮ ॥

અર્થ:-હું પ્રજ્ઞનો દાસ તે પ્રજ્ઞના આલંબને નથી વત્યો ત્યાંસુધી પરદ્રવ્યની સમતા આદિ વિજ્ઞાવ અનેક પ્રકારનું દુઃખ દેહે. તે પ્રજ્ઞ આલંબને સકલ વિજ્ઞાવ દુઃખ દોષ નાશ થાય માટે પ્રજ્ઞનોજ પસાય જાણવો. પ્રજ્ઞને તન્મયતાએ કેઠ પ્રજ્ઞ જેમ રાગ દ્વેષ આદિ તજી શુદ્ધ સ્વજ્ઞાવાચરણમાં ધિર થયા તેમ જે જીવિ રાગાદિ વિજ્ઞાવ ઢોડી સહ-

जानंद स्वज्ञावमां थिर थइ एटले तन्मय थइ ध्याय ते जरुर सकल  
देवोमां चंडमा समान शुद्ध सिद्धपद पामे ॥ ७ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय श्री निर्वाणी प्रभुनुं स्तवन ॥

वीरजी प्याराहो वीरजी प्यारा ॥ ए राग ॥

प्रणमुं चरण परमगुरु जिनना, हंस ते मुनि जन मनना ॥  
वासी अनुभव नंदन वनना, जोगी आनंद घनना ॥ १ ॥  
मोरा स्वामी हो तोरो ध्यान धरीजे, ध्यान धरीजे हो सिद्धि  
वरीजे, अनुभव अमृत पीजे । मोरा स्वामी हो तोरो ॥  
॥ ए आंकणी ॥

अर्थ:-घनघाती रूप कर्म शत्रुने जीत्या अने केवलज्ञानादि चार  
अनंतां जेणे प्रगट कर्या एहवा निर्वाणी प्रभु अतित चोवीशीना बीजा  
तीर्थकर परमगुरुना चरणकमलने अगर शुद्ध स्वज्ञावाचरणने बहु  
सन्माने प्रणमुं तुं. जेने मुनिजनो पोताना मनरूप मानसरोवरमां हंस  
रूपे रमावे ठे हंस जेम दुधथी पाणी जिन करी दुध पीए ठे तेम  
प्रभु अनात्म जावनां लक्षण जिन जाणी दर्शावी मुनिओने पण  
अनात्म लक्षणोना आदर तजावी शुद्धात्म लक्षणमय शुद्धात्म ल  
क्ष्यनो अनुभव करावे ठे वली प्रभु आत्मानां अनंत शुद्ध शक्तिरूप  
नंदनवनमां वसे ठे, अनंत गुणोनी सुवासनामां मग्न तृप्त थई रह्या ठे,  
एम अनंत स्वगुण आनंद समकाले जोगवे ठे तेथी आनंदघन जोगी  
एहवा माहरा नाथ विज्ञाविक दुःखथी छोडावनार अने परम निवृत्ति  
स्थानक आनंदपुरीमां ( शिव नगरीमां ) निरवाण पद (निश्चल पद)  
ना दातार तमारंज ध्यान धरीए. जगवासी जीव पुद्गल ध्याने, अ-  
शुद्ध अध्यवसाये, अशुद्ध लेख्याए, अशुद्ध चेष्टाए विज्ञावमां प्रीति  
करवे ज्ञानावरणादि कर्म बांधी दीन दुःखी परतंत्र थई रह्या ठे ते. देखी



૮ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

હું જવજયથી ઉદ્વિગ્ન થયો પ્રત્નુનું જ ધ્યાન કરું એટલે પ્રત્નુની આણા સમય માત્ર પણ ચૂકું નહીં એ જિજ્ઞાસા છે. તમારું જ ધ્યાન ધરીએ તો સિદ્ધિ વરીએ માટે શુદ્ધાત્મ ગુણમાં ઉપયોગ થિર રાખવા અને શિરતા વધારવા રૂપ અનુજવ અમૃત પીએ ॥ ૧ ॥

સકલ પ્રદેશ સમા ગુણ ધારી, નિજ નિજ કારજ કારી ॥  
નિરાકાર અવગાહ ઉદારી, શક્તિ સર્વ વિસ્તારી ॥મોરાળી ૧॥

અર્થ:-પ્રત્નુજીને અસંખ્યાત પ્રદેશે જ્ઞાનાદિ અનંત સ્વગુણો સરખા છે કોઈ પ્રદેશે કોઈ ગુણ પણ અંશ માત્ર ઉઠો અધિકો નથી. જેમ સોનાને સર્વે પ્રદેશે તારે પીલાશ ચીકાશાદિ સર્વે ગુણો સરખા છે તેમ શુદ્ધ દ્રવ્યને સર્વે પ્રદેશે ગુણો સરખા હોય છે. તે દરેક ગુણો આપ આપણું કાર્ય સર્વે સમય નિરંતર કરે છે. કોઈ ગુણની પ્રવૃત્તિ કોઈ સમય પણ રોકાતી નથી તેમ અન્યદ્રવ્ય કોઈ દ્રવ્યના ગુણપર્યાય પ્રવાહને અટકાવી રોકી શકતો નથી. જેમ વર્ણ ગુણ ગંધ આદિ ગુણનું કાર્ય કરતો નથી પણ વર્ણ ગુણ વર્ણ પર્યાય પ્રવૃત્તિ રૂપ જ કાર્ય કરે છે તેમ જ્ઞાન ગુણ દર્શન ગુણ આદિ અન્ય ગુણનું કાર્ય કરતો નથી અર્થાત્ સર્વે ગુણો સર્વે સમય આપ આપણું કાર્ય કરે છે પણ સ્વજાતિ અન્ય ગુણ કે વિજાતિ અન્ય ગુણનું કાર્ય કોઈ ગુણ કોઈ સમય પણ કરતો નથી એમ પરિણામીકતા ધર્મ જાણવો. પ્રત્નુનું અંગ નિરાકાર જ્ઞાયક રૂપ છે પુદ્ગલો પેઠે વર્ણાદિ વીશ ગુણ રૂપે અથવા તે માંહેલા કોઈ રૂપે પણ નથી તેથી કલ્યાણકારી નિરાકાર અવગાહના છે. અવગાહના તો આકાશ પ્રદેશને રોકે તેને કહીએ. પ્રત્નુનો અવગાહના વ્યવહારથી આકાશ પ્રદેશમાં કહેવાય પણ નિશ્ચયથી તો પ્રત્નુ સ્વદેત્રી છે પરદેત્રી નથી. જે પ્રદેશમાં સિદ્ધની અવગાહના છે તેજ પ્રદેશમાં અજીવ પુદ્ગલ લંબો તથા નિગોદ રાશી શરીર વિગેરે અનેક દ્રવ્યો છે પણ સિદ્ધની અવગાહનાથી તે ક્ષેત્ર રોકાતું નથી

पण व्यवहार नयथी व्यवहार द्रष्टिने समजवावदले अवगाहना कही  
पण परमनये जीव अनवगाही ठे. “ उक्तंच आचारांगे पांचमा  
अर्घ्ययने उद्देशे ठे कहुं ठे.—से न दीहे, न हस्से, न वटे, न तंसे, न  
चउरंसे, न परिमंरुले, न किएहे, न नीले, न लोहिए, न हालिदे, न  
सुकिदले, न सुरजि गंधे, न दुरजि गंधे, न तित्ते, न कमुवे, न कषाये,  
न आंविळे, न महुरे, न करकने, न भउए, न गुरुए, न लहुए, न सीए,  
न उएहे, न निन्हे, न लुक्खे, न काउं, न रुहे, न संग, न ईस्थि, न  
पुरिसे, न अन्नहा परिन्ने, सन्नेउवमा निविद्धये, अरूवि सत्ता अपयस्स  
पयं नस्थि” एम ठे तो साकार अवगाहना केम कहेवाय ? आत्मां  
अनंत गुणोनी अनंत शक्ति ठे ते सर्व शक्ति संसारीक जीवोनी  
परजाव अनुयायीपणे रोकाइ ठे पण प्रभुजीए तो सकल परजावनो  
नाश करी गुण गुणना अनंतानंत पर्यायनी शक्ति प्रगट करी स्वतंत्र-  
पणे विस्तारी ठे ॥ १ ॥

गुण गुण प्रति पर्याय अनंता, ते अजिलाप्य स्वतंता ॥  
अनंत गुणानजिलापी संता, कार्य व्यापार करंता ॥मोरा०॥३

अर्थ—प्रभुजीने अनंता गुणो ठे ते गुणगुण प्रते अनंत पर्याय  
पोताने स्वतंत्र ठे तेमांथी अनंता पर्यायो अथवा धर्मो वचन आलापमां  
आवी शके एवा ठे तेने अजिलाप्य धर्म कहिए अने तेथी  
अनंतगुणा वचन आलापमां न आवी शके एहवा अणजिलाप्य धर्म  
ठे. ते अजिलाप्य अने अणजिलाप्य सर्वे धर्मो आप आपणुं कार्य दर  
समय करे ठे. व्यापार के० ने सर्वे पर्यायो कार्य करवामां प्रवर्ते ठे.  
एज प्रमाणे पंचास्तिकायमां अजिलाप्य धर्म अनंता अने तेथी  
अणजिलाप्य धर्म अनंतगुणा जाणवा ॥ ३ ॥

वति अविजागी पर्याय व्यक्ते, कारज शक्ति प्रवर्ते ॥ ते  
विशेष सामर्थ्य प्रशक्ते, गुण परिणाम अजिव्यक्ते ॥मोरा०॥४

१० श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

अर्थः—द्रव्यना प्रत्येक प्रदेशे ठति पर्याय अनंता ठे ते एक एक पर्याय अविनाशी ठे एटले ते पर्यायनो कोई प्रकारे विनाश थई शके नहि. ते पर्यायो कार्य सन्मुख प्रवर्त्तवाची सामर्थ्यपणे थाय तेथी कार्य करवानी शक्ति प्रवर्त्ते ते विशेष स्वज्ञाव कहिए. ते विशेष गुणोनं सामर्थ्यपणं जिन जिन शक्तिवालुं ठे पण जे जे गुणनो जे जे परिणाम ते ते गुण सन्मुख प्रवर्त्ती प्रगट थाय ॥ ४ ॥

निरवाणी प्रभु शुद्ध स्वज्ञावी, अज्ञय निरायु अपावी ॥  
स्याद्वादीयम नीगत रावी, पूरण शक्ति प्रज्ञावी ॥ मोरा० ५

अर्थः—निश्चल पदने पाम्या एवा निरवाणी प्रभुना विशेष स्वज्ञाव पूर्ण शुद्ध थया ठे तेथी ते निर्जय ठे. संसारी जीवो चार गतिमां आउखानी स्थिति सुधी रहे ठे अने मरणांते अन्य स्थानके जाय ठे पण प्रभुने तो सिद्ध क्षेत्र ठोडी अन्य स्थानके जवुं पडतुं नथी तेथी आयुष्यने तावे नथी पण सादि अनंत स्थिती ठे. सकल पाप दोष रहित परम पवित्र ठे. निश्चय स्याद्वाद सत्ताना जोगी ठे. पोतानी अनंत पर्यायप्रवृत्ति चालमां राज्य करता राजी ठे. सर्वे शक्ति निरावरण थई तेथी पूर्ण शक्ति प्रज्ञाववंत ठे ॥ ५ ॥

अचल अखंड स्वगुण आरामी, अनंतानंद विसरामी ॥  
सकल जीव खेदज्ञ सुस्वामी, निरामगंधी अकामी ॥ मोरा० ६

अर्थः—प्रभुना अनंत गुणो चलाचल रहित थया, ज्ञाव वीर्य पूर्ण गुणोमां अचल अक्षय प्रवर्त्तु तेथी कोई गुण के कोई पर्याय खंडाय घसाय नहीं, सर्वे गुणोना पर्यायनो अखंड प्रवाह वहे तेथी गुणो के पर्यायो व्यय पामे नहीं एटले सर्वे समय गुणो अने पर्यायो कायम रहे पण विणशे खूटे नहीं मात्र आवीर्जाव तिरोज्ञाव थया करे. पूर्व पर्यायनो व्यय अने उत्तर पर्यायनो उत्पाद सर्वे समय थया करे पण ते पर्यायो सर्वे समय ठति रूप कायम होय माटे इहां ध्रुव गवेख्या ठे.

एवा निर्मल गुणोमां प्रज्ઞ एकांतिक अत्यंतिक आनंद जोगवे ठे एम  
अनंत आनंदमां विश्राम लीधो ठे. प्रज्ઞ सर्वे संसारी जीवोना खेदइ  
ठो एटले सर्वे जीवो सत्ताए सिद्ध समान ठे तोपण अनादि अवि-  
द्याए पोतानो आत्मशुद्धता अणजाणता देहादि अथिर अने परतंत्र  
पुद्गल पर्यायिनी ममताए जन्म जरा मरण रोग शोग कपाय अज्ञान  
मिथ्वात्वादिके क्लेशित परतंत्रता वगे क्खण मात्र पण विराम पामता  
नथी एवा खेदयुक्त जीवोने देखी प्रज्ઞ तेमनो खेद टालवा माटे शुद्ध  
नये शुद्ध स्वरूप दर्शावी आठे कर्मजन्य दुःखथी मुकावा अर्थे न-  
व्योने मोक्षमार्गमा प्रेरे प्रेरावे ठे तेथी खेदइ ठे निश्चय नयथी प्रज्ઞ  
कोई अन्य ड्रव्यना स्वामी नथी पण सुस्वामी एटले पोताना ज्ञानादि  
अनंतगुण पर्यायिना स्वामी ठे. व्यवहार नयथी पोतानी आज्ञा प्रालक  
सेवकोने चार गति प्रमणथी ठोडावे अने ज्ञानदर्शन चरण अनंतवीर्य  
अव्यावाधादि स्वतंत्र सुख आपे माटे सुस्वामी के० रुडा स्वामी ठे.  
अशुची पुद्गलनी गंध रहित अने कोई पण अन्य वस्तुना कामी  
नथी. कामना तो अधुराने होय अने परमेश्वर तो परम गुणी पूर्णा-  
नंदीने कोई प्रकारनी कामना रहि नथी ॥ ६ ॥

निःसंगी सेवनथी प्रगटे, पूर्णानंदी ईहा ॥ साधन शक्ते  
गुण एकत्वे, सीधे साध्य समीहा ॥ मोरा० ॥ ७ ॥

अर्थः—एहवा निःसंगी के० सकल परद्रव्य संग रहित सहज  
स्वज्ञावानंदी प्रज्ઞनी ड्रव्य जाव सेवा करनारने पूर्णानंद करवावाली  
शुद्ध तत्त्वरुची प्रगट थाय. ते तत्त्वरुची उपनेथी आत्मलब्धि वीर्य  
प्रगट थई पूर्णानंद प्रगट थाय. साधन शक्तिवडे परिणति गुणथी  
अज्ञेद करे एटले परपरिणति त्यागी साध्य सिद्ध करवानी जे ईच्छा  
हतो ते पूर्ण साध्य सिद्ध करे एटले सिद्धता पामे ॥७॥

૧૨ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિંશી.

પુષ્ટ નિમિત્તાલંબન ધ્યાને, સાલંબન લય ઠાને ॥ દેવચંદ્ર  
ગુણને એક તાને, પહોંચે પૂરણ યાને ॥ મોરા ૦ ॥૮ ॥

અર્થ:- પ્રજ્ઞુજી તમે મોક્ષાન્નિલાષીને પુષ્ટ આલંબન ઠો એટલે જેમ  
પ્રજ્ઞુએ જ્ઞાનદર્શન ચરણ વીર્યાદિ આત્મગુણો પુદ્ગલીક કાર્યમાંથી  
પાઠા વાલી સહજાત્મ કાર્યમાં જોડ્યા અને જ્ઞવ્ય જીવોને સર્વે શક્તિ  
સહજાત્મકાર્યમાં પ્રયંજવી દર્શાવીએ વન્ને પ્રકારે પ્રજ્ઞુનું આલંબન લેઈ  
જે વર્તે તે આશ્વર નિરાલંબતા પામે એટલે તે જીવને કોઈ સમય પણ  
પુદ્ગલીક આલંબન લેવું પડે નહીં, પર આલંબન લય થાય. ચારનિ-  
કાયના દેવોમાં ચંદ્રમા સમાન નિર્વાણી પ્રજ્ઞુના વ્યક્ત જ્ઞાનાદિ શુદ્ધ  
ગુણોમાં એકતાપણે ઉપયોગ અશ્વંકુ કરે એટલે શુદ્ધ ગુણીના ગુણ વહુ  
માને પૂર્ણાનંદ સ્થાનકે પહોંચે ॥ ૮ ॥ સંપૂર્ણ ॥

॥ અથ શ્રી તૃતીય સાગર પ્રજ્ઞુ જિન સ્તવન ॥

॥ ચંદ્રમાસી પારણું આવે ॥ એ રાગ ॥

ગુણ આગર સાગર સ્વામી, મુનિ જાવ જિવન નિઃકામી ॥  
ગુણ કરણે કર્તૃ પ્રયોગી, પ્રાગ્જ્ઞાવી સત્તા જોગી ॥ ૧ ॥  
સુહંકર જ્ઞવ્ય એ જિન ગાવો, જિમ પૂરણ પદવી પાવો ॥  
॥ સુહંકર ૦ ॥ એ આકણી ॥

અર્થ:- શ્રી સાગર સ્વામી જ્ઞાન દર્શન વીર્યાદિ અનંત ઉત્તમ  
ગુણોના આગર કે ૦ નિધાન છે, મુનિનું મુનિપણું કાયમ રાખવા મુનિ-  
ઓના જાવ જિવન છે અને મુનિ લોકોને શુદ્ધાત્મ તત્ત્વમાં વિશેષે  
વિધ્રામ આપવાવાલા છે વલી સાગર સ્વામી સકલ પરદ્રવ્યની  
કામના રહિત છે, જ્ઞાન દર્શનાદિ સ્વજાવિક અનંત કાર્ય સકલ સમય

सहज स्वज्ञावे करे ठे अने ते कार्यगुण प्रगटपणे थयो ते ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि अनंत कार्यगुण समुदायना समकाले अनंत आनंद जोगी ठो आत्माना प्रति प्रदेशमां निज कार्य करवाना ठति पर्यायो अनंता ठे जेम जाणवा रूप कार्य करवाना ठती पर्यायो अनंता, देखवा रूप कार्य करवाना ठती पर्यायो अनंता, आचरण रमण रूप कार्य करवाना ठती पर्यायो अनंता, वीर्य अचल राखवा रूप कार्य करवाना ठती पर्यायो अनंता तेम ए आदि अनंत कार्य करवाना अनंत गुणना ठती पर्याय प्रति प्रदेशे अनंतानंता ठे ते ठती पर्याय रूप गुण करण प्रयोगे विना प्रयासे दर समय अनंत स्वस्वकार्य थयां करे ठे ते कार्यनी व्यक्ति अने शक्तिना पण जोगी ठो. हे जिवि ज्ञीवो ! एवा सुख करवावाला परम समाधिना दातार जिनेश्वरने सेवो-तेमना गुण गावो जेथी पोतानी सहज पूर्ण परमानंद पदवी पामो ॥ १ ॥

सामान्य स्वज्ञाव स्वपरना, द्रव्यादि चतुष्टय घरना ॥  
देखे दरशन रचनाये, निज वीर्य अनंत सहाये ॥ सु० ॥ २ ॥

अर्थ:-अस्तित्वादि स्वपर द्रव्यना सामान्य स्वज्ञावने अने द्रव्य क्षेत्र काल जाव एहवा निजात्म स्वज्ञावने निज अनंत वीर्य सहाय वडे दर्शन गुणे करी सकल समय पूरण पदे देखो ठो ॥ २ ॥

तेहने ते जाणे नाण, ए धर्म विशेष पढाण ॥ सावय वीकारज शक्ते, अविजागी पर्यय व्यक्ते ॥ सु० ॥ ३ ॥

अर्थ:-एमज स्वपर सामान्य विशेष स्वज्ञावने अने स्वपर द्रव्यादिकने विशेष प्रधान ज्ञान गुणे करीने पूर्ण पर्याये सकल समय जाणो ठो एटले निर्मल केवलज्ञान रूप ठो. प्रति प्रदेशे सर्वे कार्य करवाना करणपणे ठती पर्यायो अनंतानंत रहा ठे ते सावयव के० एक समय प्रवर्त्तीमां आवीर्जावे उपजे अने तीरोजावे विणसे वली चीजा समये आवीर्जावे थएला पर्यायो आवीर्जावथी विणसी तीरोजावे

જાય (ઉપજે) એમ દર સમયે જૂદાં જૂદાં કાર્ય કરવાને માટે તેજ પર્યાયો આવીર્જાવે તિરોજાવે ઉપજ્યા વિણસ્યા કરે તેથી તે પર્યાયોને સાવયવ પણ કહીયે અને સમય સમય જૂદાં કાર્ય કરે તેને વીકારજ શક્તિ કહીએ પણ તે સર્વે ઠતી પર્યાયો અવિજાગી છે અને કાર્ય પ્રયોજને એટલે ઉર્દ્ધતાએ સામર્થ્યપણે આવે પણ તે સર્વે ઠતી પ્રજાયો સત્તાપણે સદા ધ્રુવ છે. નવે નવે સમયે ફેયોની નવી નવી વર્તના થાય તે અનંતાનંતી વર્તનાને જાણે માટે જૂદા જૂદા કાર્યને જાણે તે વીકારજ શક્તિ કહીયે વીજી રીતે સાવયવ કેળવે અવિજાગી જિન્ન જિન્ન પર્યાય માટે આત્મ અંગના અવયવો પણ કહીયે ॥૩॥

જે કારણ કારજ જાવે, વરતે પર્યાય પ્રજાવે ॥ પ્રતિ સમયે વ્યય ઉત્પાદિ, ફેયાદિક અનુગત સાદિ ॥ સુ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:—ઠતી પર્યાયો પ્રવર્તે તેને કારણ કહીએ અને કારણ હોય તે અવશ્ય કાર્ય કરે અને પ્રજાય પોતાના પ્રજાવે વર્તે તેથી પ્રતિ સમય વ્યય ઉત્પાદિ એટલે કારણપણેથી કાર્યપણે ઉપજે અને કાર્ય કરી પાઠા કારણ પણે ઉપજે તેથી દર સમય વ્યય ઉત્પાદિ થયા કરે અને નવા નવા ફેયને જાણવાથી તેની સાદિ પણ કહીએ. ઉક્તચં:—“પરિગમનં પજ્જાઓ” એટલે પ્રજાયો એક કાર્ય રૂઢી રીતે કરી વીજા કાર્યમાં જાય, એક કાર્યપણે ઉપજેલા ત્યાંથી વિણસી વીજા કાર્યપણે ઉપજે તેમજ દર સમય પ્રજાય પ્રવાહ જાણવો ॥ ૪ ॥

અવિજાગી પર્યાય જેહ, સમવાયી કાર્યના ગેહ ॥ જે નિત્ય ત્રિકાલી અનંત, તસુ ફાયક જાવ મહંત ॥ સુ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:—પ્રતિ પ્રદેશે અવિજાગી જે ઠતી પર્યાય રહ્યા છે તે આત્માથી અજ્ઞેદપણે સમવાય સંબંધે છે અનાદિ સંબંધે પણ કહીએ અને તે પ્રજાયોને સર્વેસમય કાર્ય સમવાય એટલે કાર્ય સંબંધ છે એટલે તે કાર્યના ઘર છે. તે અવિજાગી પર્યાયો નિત્ય છે, ત્રિકાલી છે, અઘંત છે, તેમાંથી

એક પર્યાય પણ કોઈ કાલે ઘટે વધે નહીં તેથી અક્ષય છે, સ્વતંત્ર છે. અપ્રયાસે કાર્યકારી છે એટલે વિના પ્રયાસે પણ સહજ સ્વજાતિક કાર્ય થયાં કરે. તેમાંના જ્ઞાનના અનંત પર્યાયોમાં પરમ જ્ઞાયકજ્ઞાવ રહ્યો છે તે પર્યાયો વધે પોતે પોતાને અને અન્ય ડ્રવ્યના ગુણ પર્યાયોને જાણવાની મહત્ત શક્તિ રહી છે તે શક્તિ પ્રજુજીને તો વ્યક્તિ પણે થઈ તેથી તે જ્ઞાનાદિક અનંત ગુણોના જ્ઞાતા જોક્તા છે ॥ ૫ ॥

જે નિત્ય અનિત્ય સ્વજાવ, તે દેખે દર્શન જાવ ॥ સામાન્ય વિશેષનો પિત્ર, ડ્રવ્યાર્થિક વસ્તુ પ્રચંદ્ર ॥ સુ૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-વસ્તુના જે નિત્યાનિત્ય સ્વજાવ તેને પ્રજુજી દર્શનજાવે કરી દેખે છે તેથી પ્રજુ સામાન્ય અને વિશેષ લક્ષણના એકત્વ પિત્ર આત્મ ડ્રવ્ય છે તે ડ્રવ્યપણે સદા ઠતીવત છે અને પ્રચંદ્ર કે૦ મહા-વીર્યવંત ( વલંત ) વસ્તુ છે ॥ ૬ ॥

ઈમ કેવલ દર્શનનાણ, સામાન્ય વિશેષનો જાણ ॥ દ્વીગુણ આતમ શ્રઙાણ, ચરણાદિક તસુ વ્યવસાણ ॥ સુ૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:-એમ પ્રજુજી કેવલદર્શન અને કેવલજ્ઞાનવંત ઠો એટલે વસ્તુના સામાન્ય વિશેષ જાવ પ્રકાશ કરવાવાલા સૂર્ય ઠો ઉપયોગમયી આત્મા છે અને તે ઉપયોગ સામાન્ય વિશેષ વે પ્રકારે છે ઉક્તંચ "ઉવ-ઓગમથો અપ્પા, ઉવઓગો દુવ્વિઅપ્પો " એટલે આત્મા દર્શન જ્ઞાન-મયી છે. અને ચરણાદિક તસુ વ્યવસાણ કે૦ જ્ઞાન ઉપયોગ અને દર્શન ઉપયોગમાં ધિરતાણ રમણ તેનુંજ નામ ચારિત્ર કહીણ વલી જ્ઞાન દર્શનના અનંત પર્યાયમાં ધિરતાણ ઉપયોગ રમે તિહાં રાગાદિ વિજ્ઞાનનો અવકાશ નથી માટે પરમ વીતરાગતાણ શુદ્ધાત્મજાવમાં ધિરતા તેનેજ ચારિત્ર કહિણ અને આદિ શબ્દે ઉપયોગમાં આત્મ અંગ અને આત્મ ગુણપર્યાય અવાધિતપણે રહે તેને અવ્યાવાધ ગુણ કહીણ, ઉપયોગને ધિર અડોલ અકંપ રાખવાવાલી નિજ શક્તિને



અચલ અનંત વીર્ય કહીએ, શુદ્ધ ઉપયોગમાં થિર રહેલો આત્મા પરમ સમાધિ જોગવે ઢે માટે તેને પરમ સમાધિ કહિએ, કોઈ પ્રકારનો જય આવે નહીં માટે નિર્જય કહિએ વલી કોઈ પ્રકારે આકુલતા આવે નહીં માટે નિરાકુલ કહીએ, ઉપયોગમાં અન્ય પ્રવૃત્તિ નથી માટે પરમ નિવૃત્તિ કહીએ, શુદ્ધોપયોગવંતને પરતંત્રતા નથી માટે પરમ સ્વતંત્રતા કહીએ, શુદ્ધોપયોગી આત્મ ગુણમાંહે પરમ તૃપ્તિવંત ઢે માટે પરમ તપ કહીએ, થિર ઉપયોગવંત સ્વપરદ્રવ્ય જાવ પ્રાણની હાણી કરતો નથી તેથી પરમ દ્હમા કહીએ વલી સર્વે જીવોની સત્તા સમાન જાણે ઢે કોઈને હીણ અધિક જાણતો નથી માટે પરમમાર્દવ કહીએ, અહીંઆં સ્વપર જીવને વંચવું ઠગવું નથી વક્તા નથી માટે પરમ આર્યવ કહીએ, અહીંઆં પરદ્રવ્યની કામના ઇઠ્ઠા મૂઠા ગ્રાહકતા વ્યાપકતા રક્ષકતા સ્પૃહા નથી માટે પરમ મુક્તિ કહીએ એમ સદ્જ શુદ્ધાત્મ અનંત ગુણો ઉપયોગમાંજ જાસે ઢે. એ પ્રમાણે વ્યવસાય કેળ જ્ઞાનદર્શન શુદ્ધોપયોગ વ્યાપારમાં ચરણાદિક અનંત ગુણો આવ્યા જાણવા ॥ ૭ ॥

દ્રવ્ય જેહ વિશેષ પરિણામી, તે કહીએ પંજવ નામી ॥  
ઠતી સામર્થ્ય હજેદે, પર્યાય વિશેષ નિવેદે ॥ સુ૦ ॥ ૮ ॥

અર્થ:-દ્રવ્ય પોતે સામાન્ય ઠતાં વિશેષ પરિણામી ઢે એટલે એક દ્રવ્યમાં અનંત સ્વપર્યાય અને અનંત સ્વપર્યાયમાં એક દ્રવ્યપણું માટે પર્યાયનામી કહીએ. ઉક્તંચ:-“ ॥ ગુણાણામાસર્જ દ્વં, એક દ્વસિયા ગુણા ॥ લક્ષણં પંજવાણંતુ, ઝંજર્જ નિસ્સિદ્ધિઆ જવે ” ॥ એટલે અનંત પર્યાય લક્ષણવંત દ્રવ્ય જાણવો. તે પર્યાયો ઠતી અને સામર્થ્ય એમ બે જોદે ઢે, ઠતી પર્યાય ક્ષેત્ર વિસ્તારપણે સર્વે પ્રદેશમાં અનંતાનંતા રહ્યા ઢે અને તે સ્વકાલે સામર્થ્ય પાળે ઝડૂતાણ આવી કાર્ય કરે ઢે. એટલે તિર્યક્ ક્ષેત્ર વિસ્તારપણે જે રહ્યા તે ઠતી પર્યાય કહીએ અને સ્વકાલે ઝડૂતાણ આવી આપ આપણું કાર્ય કરે તે સામર્થ્ય પર્યાય

कहीए एम विशेष पर्यायने निवेदे के० विशेषे जोगवे ठे ॥ ८ ॥

तसु रमणे जोगनो वृंद, अप्रयासी पूर्णानंद ॥ 'प्रगटी  
जस शक्ति अनंती, निज कारज वृत्ति स्वतंती ॥ सु० ॥ ९ ॥

अर्थ:-ते अनंत स्व शुद्ध रम्य पर्यायमां रमण तेथी दरेक समये  
समकाले अनंतानदनो जोग ठे. अने ते पर्याय प्रयुंजवामा अने जोग  
जोगववामां. कोई प्रकारे कोई वखत पण प्रयास करवो पडतो नथी  
पण सहेजे पर्याय प्रवर्तते ठे अने सहेजे जोग आनंद उपजे ठे एवी  
जेने अनंती शक्ति स्वतंत्र प्रगट थई ठे. तेथी सकल गुणोनी आप  
आपणा कार्योंनी प्रवर्ती सहज स्वचावे स्वतंत्रपणे थाय ठे ॥ ९ ॥

गुण डव्य सामान्य स्वजावी, तीरथपती त्यक्त विजावी ।  
प्रजु आणा जक्ते लीन, तिणे देवचंद्र पद कीन ॥ सु० ॥ १० ॥

अर्थ:-प्रजु, गुणे अने डव्ये सामान्य स्वजावी ठे. चतुर्विधि संघने  
तारवानो मार्ग स्थापन करवावाला तेथी तीर्थपती. जेणे सकल विजाव  
तज्यो ठे एम ठतां पण उढय प्रजावे जिव जीवोने देशना आपी तारे  
ठे पण तेनुं ममत्व करता नथी जे जीव प्रजुजीनी आणा सेववामां  
लयलीन थयो तेणे देवमा चंद्रमा समान एवं पोतानु सिद्धि पद  
प्रगट कयुं, करे ठे अने करशे ॥ १० ॥

॥ अथ चतुर्थ श्री महाजस जिन स्तवन ॥

आत्म प्रदेश रंगथल अनुपम, सम्यकदर्शन रंगरे, निज  
सुखके सधैया ॥ तुं तो निज गुण खेल वसंतरे ॥ निज० ॥  
पर परिणति चिंता तजी निजमें, ज्ञान सखाके संगरे ॥ नि० ॥ १

अर्थ:-आत्माना असंख्याता प्रदेशमां रहेली ज्ञानदर्शन चरण  
वीर्यादि अनंत आत्म शक्ति ते अनंत आनंद आपवावाली ठे माटे

## १७ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

रंग स्थानक तेनेज कहीए के ज्यां अनंत आनंद आवे. अने जे विष-  
यनो आनंद ते तो अथिर परतंत्र बहु रोगो अने कर्मबंधनुं कारण ठे  
तेमां विषयरोग वशे अज्ञानीने जोगबुद्धिए आनंद माळूम पने  
ठे पण आत्म सत्ताचूमिमां रहेलो आत्मीक आनंद तेने एहवा उपच-  
रीत आनंदनी उपमा लागी शके नहीं एवो अनुपम निरुपचरीत  
परम आणंद ठे. पण ज्यारे जीव मिथ्यात्व बुद्धिए थयेली विपर्यास  
वासना तजे अने सम्यक्दर्शन प्रगट आय तोज ते आणंद लई  
शके तो सम्यक्दर्शने करी रंग आवे. माटे सम्यक्दर्शन सहित  
आत्म सिद्धि सुखना दातार श्री महाजस जिनेश्वर महाजस-  
वंतने आत्म सिद्धि सुखना साधक ज्यो जीवो सेवो-ध्यावो. हे शा-  
श्वतसुख अजिलाषी ! जेमां अनंत पर्यायनो वास ठे एहवा आत्मगुण  
रूप वसंतमा निरंतर खेलो. पुद्गल परिणतिथी कोई काले पण सुख  
होय नहीं केमके ते अनंत वर्णणाथी निपजेली माटे विनाशीक अने  
आपणी इछाए रहे नहीं, आपणी इछाए वत्ते नहीं एम ठतां पण मूढ  
जीव ए मांहे ज्रमथी सुख मानी उलटो प्रयास करी फोगट श्रम  
खेद जोगवे ठे. एमां उमेद करवाथी नाउमेदपणुं आय, ए मांहे  
सुखनी आशा राखवाथी निराशपणुं आवे माटे पर परिणतिनी  
आशा तजी शुद्ध दर्शन ज्ञान चरणमय निजात्म परिणतिमां खेलो.  
परपरिणतिनुं चिंतवन तेक्लेश मात्र ठे माटे ते तजी ज्ञानमित्र साथे  
अखंड स्वतंत्र शुद्धात्म परिणतिमां खेलो तेथीज एकांतीक अत्यंतीक  
आनंद उपजे. अहिंआं कांई क्लेश के परतंत्रता ठे नहीं ॥ १ ॥

वास वरास सुरुचि केशर घन, बांटो परम प्रमोद रे ॥ नि०  
आत्म रमण गुलाबकी लाली, साधक शक्ति विनोदरे ॥  
निज० ॥ २ ॥

अर्थ:-शुद्धात्म परिणतिमां उपयोगनो वास करवो ते रूप वरासनी  
शितल सुवासना द्यो अने शुद्धात्म गुण समुदायमां रूमी परम रूचि

रूप जथाबंध केशर परमानंदे निज अंगे ठांटो अने रम्य आत्म  
गुणमां रमण रीझ रक्त परिणाम रूप गुलालनी लाली आत्म अंगे  
मढे तेथी साधक जीवने आपणी अनंत स्वतंत्र शक्तिनो विशेष  
प्रमोद हर्ष उपजे ॥ २ ॥

ध्यान सुधारस पान मगनता, जोजन सहज स्वजोगरे ॥  
॥ निज० ॥ रिंक एकत्त्वता तानमें वाजे, वाजिंत्र सनमुख  
योगरे ॥ निज० ॥ ३ ॥

अर्थ:-देहिक कार्यप्रवृत्तिथी मन वचन कायाना जोगने निवारी  
निवृत्ति लेई उपयोगने, एक शुद्धात्म ध्येयमां लाववो, थिर अडोल  
अकंप करवो तेनुं नाम ध्यान कहीए, ते ध्यान रूप अमृत पानथी मग्न  
थवुं ते परम मग्नता जाणवी अने आत्म गुणोना सहज सुजोग रूप  
जोजन जाणवुं. परमानंद स्वगुण परिणतिमां रीक तथा आत्म. गुणना  
अनंत पर्यायमां एकता रूप अखंरु भाराए तान लागुं ते तान कहीए  
अने मन वचन काय योगनी प्रवर्त्ती अन्य कार्यथी तूटी संजम  
कार्य सन्मुख लागी ते योग सन्मुख रूप वाजिंत्र कहीए ॥ ३ ॥

शुक्लध्यान होरीकी ज्वाला, जाले कर्म कठोररे ॥ निज०  
शेष प्रकृति दल खिरण निर्जरा, जस्म खेल अति जोररे ॥  
निज० ॥ ४ ॥

अर्थ:-सकल अव्ययना अव्यय गुण पर्याय लक्षण जिन्न जिन्न विचारी  
जे जेना ते तेनामां समावी पर लक्षणथी परम उदासिन्न थवुं ते  
पृथक्त्ववितर्क स्वपर विचार नामा शुक्लध्याननो पहिलो पायो  
अने आपणा अनंत पर्यायो गुणोमां अने गुणो अव्ययमां संक्रमावी  
अजेद निर्विकल्प उज्ज्वल समयानंतर अखंड ध्यानरूप शुक्लध्या-  
नना एकत्ववितर्क अपर विचार नामा बीजा पायानी ज्वाजल्य  
ज्योति रूप होलीनी ज्वालामां कर्मरूप कठोर काट वाली जस्म करी

૨૦ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

સ્વાસ્ત્ય ઉઠાવી ચૌદમા ગુણગાણના અંતે શેષ વાર તેર પ્રકૃતિ દસ  
સ્વેચ્છા રૂપ નિર્જરા તે વ્યુદ્ધિજ્ઞક્રિયા નિવૃત્તિરૂપ જસમસ્વેચ્છા અતિ  
જોરે કરી સકલ કર્મ પાપમલ ધોઈ શુદ્ધ બ્રહ્મરૂપ પરમ સિદ્ધિ-પામે ॥૪

દેવ મહાજસ ગુણ અવલંબન, નિર્જય પરિણતિ વ્યક્તિરે ॥  
નિજ ૦ ॥ જ્ઞાને ધ્યાને અતિ વંદુમાને, સાધે મુનિ નિજ  
શક્તિરે ॥ નિજ ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-શ્રી મહાજસ દેવના પૂર્ણ નિર્મલ ગુણ જાણી તેજ અવલં-  
બને અને ગુણધ્યાને અને અતિ સન્માને જીવિ જીવો નિર્જયપણે  
આત્મગુણની આત્મ પરિણતિની પૂર્ણ પ્રગટતા પામે. મુનિઓ પમ નિજ  
શુદ્ધાત્મ શક્તિ સાધે ॥ ૫ ॥

સકલ અજોગ અલેસ અસંગત, નાર્દિ હોવે સિદ્ધ રે ॥  
નિજ ૦ ॥ દેવચંદ્ર આણામેં खેલે, ઉત્તમ યુદ્ધિ પ્રસિદ્ધ રે ॥ નિ ૫

અર્થ:-અને મન વચન કાયા તથા અન્ય સર્વે પુદ્ગલ યોગ રહિત  
તથા લેશ્યા રહિત અને પર સંગ રહિત હોય. ઇટલે જોગાદિકથી નાહી  
ધોઈ સિદ્ધ થઈ શિવ મહેલમાં શિવવધુ સંગે સાદિ અનંત સ્વતંત્ર  
આનંદ જોગવે. દેવચંદ્ર મુનિ કહે છે કે જે જિનેશ્વરની શુદ્ધ સ્યાદ્વાદ  
આણામાં ખેલવું તેજ ઉત્તમ સિદ્ધિ સુખ પામવાનું ઉત્તમ પ્રસિદ્ધ  
સાધન છે ॥ ૬ ॥



॥ अथ पंचम श्री विमलजिन स्तवन ॥

॥ राग—कडखो ॥

धन्य! तुं धन्य तुं! धन्य! जिनराज तुं, धन्य! तुज शक्ति  
व्यक्ति सनूरी ॥ कार्य कारण दशा सहज उपगारता, शुद्ध  
कर्तृत्व परिणाम पूरी ॥ धन्य० ॥ १ ॥

अर्थ:—हे । श्री विमलनाथ स्वामी तुं धन्य ॥ के मोहादिक सकल  
कर्म शत्रुने जीती आत्म सत्ताजूमि पोताने तावे करी अखंड राज्य  
जोगवो ठो. वली ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादिक तादृखं भन ठे. वली  
धन्य । तमने के हसारा सरखा रंक जीवोने सहज आत्म शुद्धतारूप  
धन दर्शावी धनवंत करो ठो ए आदि अनेक प्रकारे तमने धन्य । ठे.  
धन्य । तमारी शक्ति के जे महा तेजवंत व्यक्त (प्रगट) थई ठे  
ज्ञानादिक सकल गुणकार्यरूप कार्यदशा तथा ते कार्यना कारण  
रूप ठती पर्यायनी प्रवृत्ती एम कार्य कारण दशा ए वझे तमारी  
तमाराभां अजेदपणे ठे वली हमारा पण आत्म सिद्धि कार्यना परम  
कारण तमेज ठो वली प्रजुजी कारण विना सहज स्वज्ञावे जिवि  
जीवोने उपकार करे ठे ज्ञानादि अनेक कार्यनी कर्तृती पूर्ण पर्याये  
अने पूर्ण परिणामे करो ठो एटखे परपरिणामीकता टाली शुद्ध सद्-  
भाव परिणामे आत्मीक अनंत कार्य करो ठो ॥ १ ॥

आत्म प्रज्ञाव प्रतिज्ञास कारज दशा, ज्ञान अविज्ञागि  
परजय प्रवृत्ते ॥ एम गुण सर्व निज कार्य साधे प्रगट, ज्ञेय  
दृश्यादि कारण निमित्ते ॥ धन्य० ॥ २ ॥

अर्थ:—हे प्रजुजी । तमने पोतानाज प्रज्ञावथी स्वसिद्धि रूप कार्य  
सिद्ध करवुं जास्युं तेथी ज्ञानादिकना ठती अविज्ञागि पर्यायो कार्य  
सन्मुख प्रवर्त्या एटखे समस्त गुणोना ठती अविज्ञागी पर्यायो आप

૨૨ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંડ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

આપણા કાર્ય સન્મુખ પ્રવર્ત્યા તેથી પ્રગટપણે કાર્ય સિદ્ધ થયું અને  
જેયનું જાણવું તથા દેખવું તે નિમિત્ત કારણ માત્ર છે પણ ઉપાદાન  
પણે તો પોતાના ઠતી પર્યાયો સકલ સ્વસ્વકાર્યમાં પ્રવર્તવાથી કાર્ય  
સિદ્ધિ થાય છે. એમ હમારા પણ ઠતી પર્યાયો પર પ્રવર્તીમાં જોનાયેલા  
છે ત્યાંથી તોડી હમારા જ્ઞાનાદિ આત્મ કાર્ય સન્મુખ પ્રવર્ત્તાવીશું તો  
હમારું પણ કાર્ય સિદ્ધ થશે એમાં કંઈ શંકા નથી ॥ ૨ ॥

દાસ બહુ માન નાસન રમણ એકતા, પ્રજ્ઞુ ગુણાલંબની  
શુદ્ધ થાયે ॥ બંધના હેતુ રાગાદિ તુજ ગુણ રસી, તેહ સાધક  
અવસ્થા ઉપાયે ॥ ધન્ય તું ॥ ૩ ॥

અર્થ:-તાહરી આજ્ઞા સેવવાવાલા તાહરા દાસને તાહરા ગુણોનો  
પરમ આદર બહુ સન્માન આવવાથી તાહરા ગુણો યથાર્થ નાસે અને  
રમણ પણ તમારા શુદ્ધ ગુણોમાં થાય અને સાધકના પરિણામ વિષયા-  
દિક પુદ્ગલ ગુણોમાં જોનાયેલા તે ત્યાંથી તુટી તાહરા શુદ્ધ ગુણોમાં  
એકત્વપણે રમે તે સાધક પ્રજ્ઞુ ગુણ આલંબની થઈ પોતાના જ્ઞાનાદિક  
ગુણો રાગ રહિત કરી શુદ્ધ થાય અને કર્મબંધના હેતુ રાગાદિ તથા  
મન ઈંદ્રિયો આદિ પર ગુણ રસી હતા તે પ્રજ્ઞુ ગુણ રસી થઈ પોતાની  
શુદ્ધ સિદ્ધિની સાધક દશા ઉપજાવે એટલે બંધ હેતુતા ટલી મોક્ષ  
હેતુ થાય ॥ ૩ ॥

કર્મ જંજાલ ગુંજનકરણ યોગ જે, સ્વામી પ્રક્ટિ રમ્યા ધિર  
સમાધિ ॥ દાન તપ શીલ વ્રત નાથ આણા વિના, થઈય બાધક  
કરે જવ ઉપાધિ ॥ ધન્ય ॥ ૪ ॥

અર્થ:-પંચ ઈંદ્રિયો અને મનવચન કાયાના યોગ પરદ્રવ્યમાં રક્ત  
થઈ કર્મ જંજાલ નિપજાવે છે. જ્યાંસુધી પ્રજ્ઞુની આજ્ઞા જાણી આદરી  
નથી ત્યાંસુધી આત્મા કર્મચેતનાપણે અને કર્મફલચેતનાપણે પરિ-  
ણમ્યો થકો પુદ્ગલ ક્રિયાથી સુખ થાય એટલે પુદ્ગલ ત્યાગ ગ્રહણ

પ્રવર્તિથી સુખ થાય ઠે એમ જાણી ત્રણે યોગો અને પંચે ઇંદ્રિય પુદ્ગલ ક્રિયામાં પ્રયુજે તે વડે આવે કર્મની જાલ ગુંથો પોતેજ તેમાં ફસાયો બંધાયો રહે પણ જ્યારે પ્રજ્ઞની આજ્ઞા જાણે સન્માને આદરે ત્યારે તે પંચેંદ્રિયો અને ત્રણે યોગ થિર સમાધિમાં રમે અને પ્રજ્ઞની આજ્ઞા વહારનું દાન શીલ તપ વ્રતાદિ જાવધર્મ વિના એકાંતે શ્વલોક આહારાદિ અર્થે, પરલોક દેવાદિ અર્થે, અપમાન ટાલવા અને માન મેલવવા અર્થે જે જે અનુષ્ઠાનો આદરે તે તે કર્મબંધનાં કારણ થઈ જવ ઉપાધિને વધારનાર થાય ॥ ૪ ॥

સકલ પરદેશ સમકાલ સવિ કાર્યતા, કરણ સહકાર કર્તૃત્વ જાવો ॥ ડ્રવ્ય પરદેશ પર્યાય આગમપણે, અચલ અસહાય અક્રિય દાવો ॥ ધન્ય૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:- પ્રજ્ઞને સર્વે સમય સમકાલે સર્વે કાર્યની કારણતાના કરણ રૂપે ઠતી અવિજાગી પર્યાય અનંતા ઠે તે ઠતીપર્યાયરૂપ કરણની પ્રવર્તિ રૂપ કારણની સહાયે સર્વે કાર્ય સમકાલે થયા કરે ઠે પણ ડ્રવ્યના પ્રદેશરૂપ પર્યાય આગમમાં કહ્યા પ્રમાણે અચલ અસહાય અને અક્રિયપણે ઠે ઘટલે પ્રદેશ કાઈ કાર્ય કરતા નથી પણ પ્રદેશને આધારે ઠતી અવિજાગી પર્યાયો રહ્યા તેજ કાર્ય કરવાના કારણપણે પ્રવર્તે ઠે ॥ ૫ ॥

ઉત્પતિ નાશ ધ્રુવ સર્વદા સર્વની, ષટ્ગુણી હાનીવૃદ્ધિ અન્યૂનો ॥ અસ્તિ નાસ્તિત્વ સત્તા અનાદિ થકો, પરિણમન જાવથી નહીં અજૂનો ॥ ધન્ય૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-તે ઠતી પર્યાયો સર્વે સર્વદા કાર્યપણે ઉપજે અને કારણ પણેથી વિણસે વલો કાર્યપણેથી વિણસી કારણપણે ઉપજે વલો આવીર્જાવપણે ઉપજે અને તીરોજાવપણેથી વિણસે વલો તીરો જાવપણે ઉપજે અને આવીર્જાવપણેથી વિણસે વલો શ્વદ્ગુણી વૃદ્ધિ હાણી પણે ઉપજે વિણસે તેની વિગત:-



२६ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

अस्तिपणुं ठे अने परद्रव्य परक्षेत्र परकाल अने परज्ञाव रुप थवानी सत्ता स्वद्रव्यादिकमां नथी एटले परद्रव्य परक्षेत्र परकाल अने परज्ञाव रुप न थवा देवानी सत्ता द्रव्यमां ठे तेनेज नास्तिस्वज्ञाव कहीए. एम सदा स्वद्रव्यादिके रहेवुं ते अस्तिस्वज्ञाव अने परद्रव्यादिके थवानो स्वज्ञाव पोतामां नहीं ते नास्तिस्वज्ञाव कहीए. ते नास्तित्वस्वज्ञाव पण द्रव्यमां ठतो ठे अस्तित्वस्वज्ञाव सर्वे समय स्वद्रव्यादिकने ठतीपणे राखे अने नास्तिस्वज्ञाव ते परद्रव्यादिकपणे न थवा दे ए बने स्वज्ञाव द्रव्यना द्रव्यथी अज्ञेदपणे जाणवा. एम नित्य स्वज्ञाव, अनित्यस्वज्ञाव, ज्ञेदस्वज्ञाव, अज्ञेदस्वज्ञाव, ज्ञव्यस्वज्ञाव, अज्ञव्यस्वज्ञाव, एम द्रव्यना सामान्य विशेषादि अनेक स्वज्ञाव द्रव्यमां द्रव्यथी अज्ञेदपणे ठे तेमांथी मुख्यपणे कोई कोई ठेकाणे ओठा अधिका मुख्य स्वज्ञाव दर्शाव्या ठे पण द्रव्य अनंत स्वज्ञावी ठे. ते सर्वे स्वज्ञावना परिणमन ज्ञाव सहित द्रव्य अनादिनो ठे पण नवो परिणमन ज्ञावी थयो नथी. सर्वे समय आप आपणी परिणामीकताने कोई द्रव्य के कोई गुणो के कोई पर्यायो चूके नहीं, कोईनी परिणामीकता कोईथी रोकाय नहीं माटे शुद्धात्म परिणामीकता अखंड जाणी निर्जय निराकुलपणे स्व ठती पर्यायना अनंत स्वतंत्र आनंदमां मग्न रहेवुं. ज्यांसुधी आत्म शुद्धतानुं ज्ञान नथी त्यांसुधी जीव विज्ञावतामां रमी दुःखी रहे ठे पण शुद्धात्म ज्ञान थया आदस्या पठी विज्ञावतानो अंश रहे नहीं तो दुःख शाने होय ? माटे आत्मा पूर्ण स्वगुण पर्यायने जाणी परमानंद जोगी थाय माटे अवसर पामी प्रमाद ठोमी शुद्ध सदागम सेवी परमानंद जोगी थवुं एज उपदेश ठे ॥ ६ ॥

ईणी परे विमल जिनराजनी विमलता, ध्यान मन मंदिरे जेह ध्यावे ॥ ध्यान पृथक्त्व सविकल्पता रंगथी, ध्यान एकत्व अविकल्प आवे ॥ ७ ॥

अर्थ:-ए प्रमाणे विमल जिनेश्वरनी पूर्ण विमलता उलखी मन मंदिरमां विमलतानुं ध्यान ध्याय ते प्रत्येक डव्यना चिन्न चिन्न गुण पर्यायोना चिन्न चिन्न विचार रूप पृथक्त्ववितर्क नामा सविकल्प ध्यान रंगे करी करे तेज पुरुष स्वगुण पर्याय स्वडव्यथी अजेदपणे जाणे अने तेनेज एकत्वपणे विकल्प रहित शुरू शुक्लध्यान आवे. पण जिन आझाथी जे विमुख ठे ते सूत्रना अजिप्राय जाण्या विना ध्येय केवो अने ध्यान विधि केवी तेने ते शुजाणे ? अर्थात् नज जाणे. माटे सद्गुरू सगेरहि शुरू ध्येय अने शुरू ध्यान विधि जाणी शुक्ल-ध्यान माटे उद्यम परिणामी थवुं एटलेज घनघाती कर्मनो नाश करी शकाय ॥ ५ ॥

उक्तंच " जो जाणइ अरिहते, दध गुण पज्जवंतेहिं ॥ सो जाणइ अप्पाणं, मोहो खलु जाहि तस्स लयं " वीतरागी असंगी अनंगी प्रज्जु, नाण अप्रयास अविनाश धारी ॥ देवचंड शुद्ध सत्ता रसी सेवतां, संपदा आत्म शोभा वधारी ॥ धन्य ० ॥ ६ ॥

अर्थ:-प्रज्जुने राग सर्वांशे नाश थयो ठे अने पर डव्यादिकनो संग नथी तथा औदारिकादि पुद्गलीक विनाशीक अंग पण नथी तेथी ज्ञान दर्शन चरण अने वीर्यादि अनंत गुणो परम निर्मल अने थिर थया ठे अने अंग रहित तथा पर संग रहित थया माटे ते गुणो मलिन थवाने निमित्त पण नथी अने जेना ज्ञानादि गुणो, विना-प्रयासे सहज स्वतंत्रपणे सकल समय पूर्ण पर्याये प्रगटपणे वर्त्ते ठे अने पोतानुं आत्म अंग अने आत्मिक रिद्धि अनंतकालसुधी अक्षय अविनाशीपणे प्रगट सिद्धता पाम्या ठे एहवा चारे निकायना देवोमां चंडमा समान शुरू सत्ता रसी प्रज्जुजीने शुरू सत्ता रसीठ थई सेवे ते स्वज्ञावीक आत्मीक संपदा धारी थाय ॥ ६ ॥ संपूर्ण ॥

२७ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

॥ अथ षष्ठम श्री सर्वानुभूति जिन स्तवन ॥

॥ जगजीवन जगवालहो ॥ ए देशी ॥

जग तारक प्रभु वीनवुं, विनतनी अवधाररे ॥ तुज  
दरशन विण हुं नम्यो, काल अनंत अपाररे ॥ जग० ॥१॥

अर्थः—शुद्धात्म अनंत गुण पर्यायनो सकल समय जेने अनुभव  
विलास ठे एवा सर्वानुभूति नामा ठठा तीर्थकर जग जीवोना तारक  
तमारा आगल हुं अरज करुं तुंते माहरी अरज अवधारो. तमारा सरखा  
उपकारीनी आणा अणजाणतो तमारा दर्शावेला जीवादिक नव  
पदार्थना नाव मने दर्श्या नहीं त्यांसुधी देहादिकनी ममताए ज्ञाना-  
वरणादिक आठ कर्म बांधी नव वनमां नूलो नटकी अनादि अनंत  
अपार काल आज सुधी में बहु दुःख सह्यां ॥ १ ॥

सूक्ष्म निगोद नवे वस्यो, पुद्गल परिच्छिद्य अनंतरे ॥  
अव्यवहारपणे नम्यो, दुद्धक नव अत्यंतरे ॥ जग० ॥ २ ॥

अर्थः—सूक्ष्म निगोदमां अनंत पुद्गलपरावर्त्तन कस्यां अने अनंत  
कालसुधी व्यवहार राशीमां पण आव्यो नहीं. बलवंत पुरुषना एक  
श्वासोश्वासमां अठार वखत जन्म्यो अने सत्तर वखत मरण कस्युं  
एम दुद्धक नव अंतरहित कर्या वली कषाय अने मरणांतिक समुद्-  
घातनी वेदना वारंवार सही विश्राम न पाम्यो ॥ २ ॥

व्यवहारे पण तिरिव गते, ईग वण खंभ असन्नीरे ॥  
असंख्य परावर्त्तन अयां, नमियो जीव अधन्नेरे ॥ जग० ॥ ३ ॥

अर्थः—व्यवहार राशीमां आव्या पठी पण तिर्यच गतिमां एकें-  
द्रिय वनस्पति अने असंज्ञीपणामां असंख्यातां पुद्गलपरावर्त्तन  
कर्यां. एम मारा ज्ञान दर्शनादि निज धन विना अधन्न एहवो हुं  
नीचपणामां नम्यो ॥ ३ ॥

सूक्ष्म थावर चारमें, कालह चक्र असंख्यरे ॥ जन्म  
मरण बहुलां कल्यां, पुद्गल जोगनी कंखरे ॥ जग० ॥ ४ ॥

अर्थ:-बली पृथ्वी, अप, तेज अने वायु ए चार सूक्ष्म स्थावरमां  
असंख्याता कालचक्रसुधी उपज्यो मख्यो. एम पुद्गल जोगनी  
आकांक्षाए तथा आहारादि चार सङ्गा वशे अथाग जन्म मरण कर्खा ॥ ४

उधे वादर जावमें, वादर तरु पण ईमरे ॥ पुद्गल अढी  
लागट वस्यो, नाम निगोदे प्रेमरे ॥ जग० ॥ ५ ॥

अर्थ:-ओधे वादर जावमां एटले वादर निगोद साधारण अनत  
काय वनस्पतिमां पण सरवाले अढी पुद्गलपरावर्त्तन सुधी लागलो  
जन्म्यो ॥ ५ ॥

स्थावर थूल परितमें, सीत्तर कोनाकोडिरे ॥ आयर जन्म्यो  
प्रभु नवि मिट्या, मिथ्या अविरती जोडिरे ॥ जग० ॥ ६ ॥

अर्थ:-वादर प्रत्येक पंचे थावरमां सीत्तर कोनाकोडी सागरोपम  
जन्म्यो पण तुम समान तारक दीनदयाल मख्यो नहीं तेथी मिथ्यात्व  
अने अविरती संगे रह्यो ॥ ६ ॥

विगलपणे लागट वस्यो, संखिज वास हजाररे ॥ वादर  
पेज्ज वणस्सई, जू जल वायु मळाररे ॥ जग० ॥ ७ ॥

अनल विगल पज्जतमें, तस जव आयु प्रमाणरे ॥ शुद्ध  
तत्त्व प्राप्ति विना, जटक्यो नव नव ठाणरे ॥ जग० ॥ ८ ॥

अर्थ:-अपर्याप्ता विकलेंद्रियपणे लागलो संख्याता हजार वरस  
सुधी जन्म्यो अने वादर प्रत्येक पर्याप्ता वनस्पति तथा पृथ्वी अप अने  
वायुमां तथा अग्नि तथा पर्याप्ता विकलेंद्रियमां ते ते जवना आयु  
प्रमाणमां शुद्ध देव, शुद्ध गुरु, शुद्ध धर्मनी प्राप्ति विना नवे नवे  
स्थानके जटक्यो ॥ ८ ॥

३० श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

साधिक सागर सहस दो, जोगवीयो तस जावेरे ॥ एक  
सहस साधिक दधी, पंचेंद्रि पद दावेरे ॥ जग० ॥ ए ॥

अर्थः—सरवाले वे हजार सागरोपमथी कांईक अधिक ते जावने  
जोगव्यो. एक हजार सागरोपमथी कांईक अधिक पंचेंद्रियपणामां जम्यो.

पर परिणति रागीपणे, पर रस रंगे रक्तेरे ॥ पर ग्राहक  
रक्षकपणे, पर जोगे आशक्तेरे ॥ जग० ॥ १० ॥

अर्थः—पुद्गल परिणतिना रागीपणे, पुद्गल परिणति रस रीझे  
रक्त थईने, पुद्गल परिणति ग्रहणताए तथा परपरिणति रक्षणप्रवृत्तिए,  
परपरिणति जोग जोगववानी आशक्ती लोळुपताए शुद्धात्म तत्त्व दर्शुं  
नहीं तेथी एवां ज्रमण कल्यां ॥ १० ॥

शुद्ध स्वजाति तत्त्वने, बहुमाने तद्धीनरे ॥ ते विजाती  
रसता तजी, स्वस्वरूप रस पीनरे ॥ जग० ॥ ११ ॥

अर्थः—जे पुरुष शुद्ध स्वजाती तत्त्व के० आत्म जातीथी उपन्या जे  
शुद्ध ज्ञान दर्शन चरण सुख वीर्यादिक सार तत्त्व तेनो रसीउं थई  
तत्त्वबहुमाने तत्त्वमां लीन थयो ते विजाती के० पुद्गलथी उपन्या  
वर्ण गंध रस स्पर्श आकार शब्द उद्योत कान्ती ठाया प्रज्ञा लोही  
मांस वीर्य त्वचा रत्न मणि माणिक सुवर्ण रूपुं देव देवी नर नारी  
तिर्यच संतान कुटुंब औदारिकशक्ति वैक्रियशक्ति आहारकशक्ति  
तैजसशक्ति कर्मणशक्ति ए आदि जे जे पुद्गलोथी उपजे ठे ते सर्वे  
पुद्गल जाती एटले आत्माने ए विजाती ठे. ते सकल विजातीना  
रस आस्वादने तजे ते पोताना ज्ञान वीर्यादि शुद्ध स्वस्वरूप रसे पुष्ट  
थाय एटले सकल कर्म अरि नाश करवानी उत्कृष्ट शक्ति पामे अने  
ज्ञानादि स्वगुणोमां अचल वीर्य रूप परम स्थिरता पामे ॥ ११ ॥

श्री सर्वानुज्ज्ञाति जिनेश्वरू, तारक लायक देवरे ॥ तुज  
चरणे शरणे रह्यो, टले अनादि कुटेव रे ॥ जग० ॥ १२ ॥

અર્થ:-શ્રી સર્વાનુજૂતિ જિનેશ્વર તેજ જીવિ જીવોને તારવા લાયક દેવ છે. જે જીવ્ય તમારું ચરણ શરણ આઢરે-સ્વજ્ઞાવાચરણમાં રહે તેને અનાદિ કર્મવંધની માઢી ટેવ ઢલે ॥ ૧૨ ॥

સવલા સાહિવ ડંલગે, આતમ સવલો થાયરે ॥ વાધક પરિણતિ સધિ ઢલે, સાધક સિધ્ધિ કહાયરે ॥ જગ૦ ॥ ૧૩ ॥

અર્થ:-વલવંત સાહેવને અરજ કરવાથી અને વલવંત સાહેવની મહેરથી આત્મા પળ કર્મ નાશ કરવા અને આત્મ સત્તાનૂમિ કવજે કરી આત્મીક રાજ જોગવવાને વલવંત થાય. એમ પ્રજુ આશ્રિત વર્તે તેને વાધકતાની ણઢલે કર્મવંધની ડત્તર પ્રકૃતિ એકસોવીશ વાધવાની ટેવ છે તે ટેવ ઢલે ણઢલે સાધકતા પામી સિધ્ધિ પામે ॥ ૧૩ ॥

કારણથી કારજ હુવે, એ પરતિત અનાદિરે ॥ માહરા આતમ સિધ્ધિના, નિમિત્ત હેતુ પ્રજુ સાદિરે ॥ જગ૦ ॥ ૧૪ ॥

અર્થ:-જે કાર્યનું જે કારણ હોય તે કારણ વઢેજ તે કાર્ય થાય એ અનાદિની નિઃશંક રીત છે. માહરા આત્મ સિધ્ધિના નિમિત્ત કારણ આજથી પ્રજુજી તમેજ ઓ ॥ ૧૪ ॥

અવિસંવાદન હેતુની, ડઢ સેવા અજ્ઞ્યાસરે ॥ દેવચંડ પદ નિપજે, પૂર્ણાનંદ વિલાસરે ॥ જગ૦ ॥ ૧૫ ॥

અર્થ:-જીવ્યને સંસારથી તારનાર પ્રજુજી અવિસંવાદ હેતુ છે. જે જીવ્ય તેમની ડઢ સેવા કેઽ આઢ્ઞા ડઢ પરિણામે સેવવાનો અજ્ઞ્યાસ રાખે તે દેવમા ચંડમા સમાન પૂર્ણાનંદ પદવીનો વિલાસ પામે ॥ ૧૫ ॥

સંપૂર્ણ.

३२ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

॥ अथ श्री सप्तम श्रीधरजिन स्तवन ॥

॥ रसीयानी देशी ॥

से मुख मुख प्रचुने न मली शक्यो, तो सी वात कहाय ॥

॥ जिणंदजी ॥ निज पर वीतक वात लहो सहु, पण मने  
किम पतित आय ॥ जिणंदजी ॥ से मुख ० ॥ १ ॥

अर्थ:-श्रीवंत श्रीधरस्वामीने हुं पोते मुखे मुख मली शक्यो नहीं  
तो शी वात कहिये? जो मुखे मुख हुं मदयो होत तो मनमान्या प्रश्नो  
करी कंखा मोहनीनो उतावलो नाश करतो. पोताने अने अनंत अन्य  
जीवोने वीती वीते ठे अने वीतशे ते सर्वे तमे जाणो ठो तोपण मने  
केम पतित आय के प्रभुजीअे माहरी अरज स्वीकारी ? ॥ १ ॥

जव्य अजव्य परित्त अनंत तो, कृष्ण शुक्लपद्धार ॥

॥ जि ० ॥ आराधक विराधक रीतनो, पूढि करत निरधार ॥

॥ जि ० ॥ से मुख ० ॥ २ ॥

अर्थ:-जव्यजीवो अने अजव्यजीवो ए बने अनंता अनंता ठे तेमां  
हुं जव्य हुंके अजव्य हुं ? वली कृष्णपद्दी अने शुक्लपद्दी जीवो तेपण  
अनंता ठे अटले जे चरमपुद्गलपरावर्त्तने वर्त्ते ठे ते शुक्लपद्दी जा-  
णवा अने जे अचरमपुद्गलपरावर्त्तने वर्त्ते ठे ते कृष्णपद्दी कहीए.  
तेमां हुं शुक्लपद्दी हुं के कृष्णपद्दी हुं ? वली जे जिनेश्वरनी आज्ञामां  
वर्त्ते ठे ते मोक्षमार्गना तथा आत्मशुद्धताना आराधक ठे अने जे  
तीर्थकरोनी आज्ञा बाहिर वर्त्ते ठे ते प्रभुआणाना, मोक्षमार्गना अने  
आत्मशुद्धताना विराधक ठे तेमां हुं आराधक हुंके विराधक हुं ? ए  
आदि प्रश्नो पूढि निरधार करत ॥ २ ॥

किण काले कारण केहवे मळे, आसे मुजने हो सिद्धि ॥

॥ जि ० ॥ आतम तत्त्व रुची निज रिद्धिनी, लहिशुं सर्व  
समृद्धि ॥ जि ० ॥ से मुख ० ॥ ३ ॥

अर्थः—माहरे कए काले अने कोण कारण मलवाथी सिद्धि थशे ?  
वली क्यारे हुं आत्मतत्त्व रुचीवंत थइ समजाव आदरी सहज  
आत्मिक सकल साची रिद्धि पामीश ? ॥ २ ॥

एक वचन जिन आगमनो लही, निपाव्यां निज काम ॥  
॥ जि० ॥ इतले आगम कारण संपजे, ढील थई किम  
आम ॥ जि० ॥ से० ॥ ४ ॥

अर्थ—कोईक पुरुषोए एकज वचन जिनागमनुं पामी जाणी  
आदरीने आत्मसिद्धिरूप कार्य निपजाव्युं अने माहारा सरखाने एटलां  
वधां आगम वचन जाण्या ठतां पण सिद्धि माटे आम केम  
ढिल थइ ? ॥ ४ ॥

श्रीधर जिन नामे बहु निस्तस्या, अल्प प्रयासे हो जेह ॥  
॥ जि० ॥ मुज सरिखो एतले कारण लहे, न तरे कहे किम  
तेह ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थः—श्रीधरस्वामीना नामथी (वचनथी) अल्पप्रयासे पण बहु  
जीवो संसार निस्तार पाम्या एटले ससारसमुद्रनो सहजे पार पाम्या.  
जेम अखाडमुनि नाटकणीने घेर रह्या अने नाटक करता ठता पण  
एकत्व अनित्यजावनाए शुद्धात्मतत्त्व विचार करता एटले अल्प  
प्रयासे केवलज्ञान पाम्या एम जरतादिक अनेक जीवो अल्प प्रयासे  
केवलज्ञान पामी सिद्धि वख्या ठे अने माहारा सरखाने केटलाक  
वधां कारण मढ्यां अने प्रयास करे ठे तो पण तरता नथी तेनुं शुं  
कारण ? ॥ ५ ॥

कारण जोगे साधे तत्त्वने, नवि समखो ऊपादान ॥ जि० ॥  
श्री जिनराज प्रकाशो मुज प्रते, तेहनो कोण निदान ॥  
॥ जि० ॥ से० ॥ ६ ॥



## ३४ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

अर्थः—केटलाक मात्र एकांत कारण जोगप्रवृत्ति ए तत्त्व साधवा  
इहे ठे पण उपादान संज्ञालता सुधारता नथी. जेम कोई घट कर-  
वानो अर्थी दंडवडे चक्र फेरव्यां करे एवी कारण प्रवृत्तिनी अनेक  
क्रिया क्रोडाक्रोमी वरससुधी करयां करे पण घटनुं उपादान जे मृ-  
तिका ते मांहे पिंड थास कोस पृथु बुध ग्रीवादि घटपर्यायना यथा-  
योग्य जेवा घाट ठे तेवा मृतिका पिंरुमां काढे नहीं अने मात्र बाह्य  
कारणप्रवृत्ति क्रोडाक्रोडीथी पण अधिककालसुधी कस्या करे तोपण  
ते घट नियमा थवानो नथी तेम कोई जीव आत्मसिद्धि अर्थे एकांते  
कारणप्रवृत्तिनी क्रिया अनंतकालसुधी करे अने उत्सर्गे आत्मअं-  
गमां सम्यक्, विरती, अप्रमादता, अकषायता, थिरता आदि  
जे जे पर्यायो सिद्धमां ठे ते ते पर्यायोनुं आत्मअंगमां संपादान करे  
नहीं तो कोईकाले पण आत्मसिद्धि थाय नहीं पण सिद्ध जग-  
वंतमां शुद्ध द्रव्यपर्याय अने शुद्ध गुणपर्यायादिनुं जेवुं स्वरूप ठे  
तेवुं स्वरूप आत्मअंगमां संपादान करे एटले आत्मा आत्म परिणाम  
वके आत्म संपदा दान आत्माने एटले पोते पोताने आपे तोज सिद्धि  
रूप कार्य थाय. ते तो प्रजु वाणीना अजाणने एकांततानो ज्ञावरोग  
सत्तामां रह्यो ठे तेथी ते कार्यसिद्धि केम करी शके ? तो हे जिनराज !  
मने बतावो के एकांतता रूप ज्ञावरोगनुं मूल निदान शुं ठे ? ॥ ६ ॥

ज्ञाव रोगना वैद्य जिनेश्वरु, ज्ञावौषध तुज जक्ति ॥ जि०  
देवचंद्रने श्री अरिहंतनो, ठे आधार ए व्यक्ति ॥ जि० ॥ से० ॥ ७

अर्थः—हुं तीर्थकरोनाज वचनथी जाणुं तुं के एकांतता रूप ज्ञावरोग नाश  
करवा माटे वैद्य ते तो जिनेश्वर ठे अने जिनेश्वरनी आज्ञाए वर्तवा  
रूप जिनजक्ति तेज ज्ञावरोग नाश करवानो उत्तम ईलाज ठे माटे  
देवचंद्र मुनि कहे ठे के माहरे तो अरिहंत देवनोज आधार ठे के  
एमना वचन आश्रित हुं मारा ज्ञावरोगने दूर करी आत्मसिद्धि वरुं  
ए प्रगट ठे ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम श्रीदत्तप्रभु स्तवन ॥

॥ राग धमाल ॥

जिन सेवनथें पाईये हो, शुद्धतम मकरंद ॥ ए आंकणी ॥  
तत्त्व प्रतित वसंत ऋतु प्रगटी, गई सिसिर कुप्रतीत ॥  
॥ ललना ॥ दुरमति रजनी लघु नई हो, सदबोध दिवस  
वदीत ॥ ललना ॥ जिन ० ॥ १ ॥

अर्थ:-जिनेश्वरनी आझा सेववाथी आत्म शुद्धता सुवास रसस्वाद  
पामीए. जेम जमरो सुगंधी फूलोमाथी रस खेंची सुवास युक्त  
स्वाद ले ठे तेम आत्मामां जोगीपणु ठे पण ज्यांसुधी पोतानुं शुरु  
स्वरूप जाणुं नथी त्यांसुधी पुद्गलोमां आपापणुं मानी पुद्गल  
स्वाद लेतो चउगति कंतारमां परतंत्रताए अनंत दुःख जोगवतो रहे  
ठे पण तेज आत्मा ज्यारे जिनेश्वरनी आझा सेववावालो थाय त्यारेज  
शुद्धात्म मकरंद के० आत्म शुद्धतानो उत्तम सुवास रस स्वाद लेई  
शके. ज्यारे जिनेश्वरे प्ररूपेला नवे तत्त्वोनी डव्य जाव प्रतित सदहणा  
रुची उपजे तथा तत्त्वोमां संशय, विघ्नम, विमोह रहे नहि त्यारेज  
जीव सम्यक्दर्शन पामे एटले निःशकतादि आठ गुणो प्रगट थाय  
ए प्रमाणे तत्त्व प्रतित यवाथी आत्म उपयोग आत्म शुद्धतामां वसवा  
लाग्यो ते रूप वसत ऋतु प्रगटी. त्यारे तत्त्वोनी अप्रतित रूप शीत  
काल दूर थयो अने आत्म अनात्म अंगर जीवादि नव तत्त्वना  
जावनी प्रतित यवाथी मिथ्यात्व अंधकारवाली रात्रि पण घटी गई  
अने सदबोध रूप उद्योतवालो दिवस पण वृद्धि पाम्यो ॥ १ ॥

साध्य रुचि सुसखा मिलीहो, निज गुण चरचा खेल ॥ ल०  
वाधक जावकी नंदना हो, बुध मुख गारिको मेल ॥ ल० ॥  
जि० ॥ २ ॥

३६ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

अर्थ:-शुद्धात्म साध्य साधवानी रुचीरूप तथा खांति मृदुता  
रुजुता निस्पृहता आदि आप आपणी रुमी सखीओ मली तथा  
सम संवेग निर्वेद आस्ता अनुकंपादि अनेक मित्रो मट्या अने  
ते सर्वे शुद्धात्मगुण चर्चारूप खेल खेलवा लाग्या अने होली उपर  
जेम लोको उघाडी गालो बोले ठे तेम वुद्ध पुरुषो बाधक जावनी  
निंदारूप उघाडी गालो बोलवा लाग्या ॥ २ ॥

प्रभु गुण गान सुठंदशुं हो, वाजित्र अतिशय तान ॥ ल०  
शुद्ध तत्त्व बहुमानता हो, खेलत प्रभु गुण ध्यान ॥  
ल० ॥ जि० ॥ ३ ॥

अर्थ:-तीर्थकरोना ज्ञानादिक व्यक्तगुणो निर्जय सुठंदपणे गावा  
लाग्या अने अपायापगमन अतिशय, वचनातिशय, ज्ञानातिशय अने  
पूजातिशयरूप वाजित्रमां अद्भूत तान लाग्युं. शुद्धतत्त्वना बहुमानपणे  
प्रभुगुण ध्यानमां एटले शुद्ध सिद्ध गुण ध्यानमां खेलवा लाग्या  
एटले अन्य ध्येयमां जतुं चित्त वाली शुद्ध ध्येयमां थिरताए रमण  
कस्युं ॥ ३ ॥

गुण बहुमान गुलालसो हो, लाल जए जवि जीव ॥ ल०  
राग प्रशस्तकी धूममें हो, विजाव विडारे अतीव ॥ ल० ॥  
जिन० ॥ ४ ॥

अर्थ:-केवलज्ञानीओना गुणबहुमानरूप गुलालनी लाली सम्य-  
कदर्शनीओना अंगे चढी एटले प्रशस्त रागनी धूम मची तेथी अ-  
तिशय विजाव ठेदवा लाग्या एटले ज्ञान दर्शन चरणादि गुणोनी  
उज्ज्वलता अने थिरता वधवा मांमी ॥ ४ ॥

जिन गुण खेलमें खेलते हो, प्रगट्यो निज गुण खेल ॥  
ल० ॥ आत्म घर आत्म रमे हो, समता सुमति के मेल  
ल० ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थ:- एम जव्यने निज गुण ख्याल खेलतां शुद्धात्मगुण खेल प्रगट थयो त्यारे आत्मा पुद्गल परिणतिरूप परधर ठोकी स्वसत्ता जूमिरूप निज धरमां शुद्धात्म परिणतिरूप सुमती साथे सुमतावंत आत्मानो भेलाप थयो ॥ ५ ॥

तत्त्व प्रतित प्याले जरे हो, जिन वाणी रसपान ॥ ल०  
निर्मल जक्ति लाखी जगी हो, रिझे एकत्त्वता तान ॥ ल० ॥  
जिन० ॥ ६ ॥

अर्थ:- त्यारे पूर्ण तत्त्व प्रतितरूप प्यालामां जिनवाणीरूप अमृतरस पान जखुं अने सुमता समिति आदि सर्वे परिवारे पीधुं एटले जिनेश्वरनी आज्ञा सेववा परम वीर्यरूप लाखी आत्मअंगे प्रगट थई पठी शुद्धात्म स्वरूपमां अखंड रीझरूप एकतानुं तान लाग्युं ॥ ६ ॥  
जव वैराग अविरगुं हो, चरण रमण सुमहंत ॥ ल० ॥  
समिति गुपति वनिता रमे हो, खेले हो शुद्ध वसंत ॥ ल० ॥  
जि० ॥ ७ ॥

अर्थ:- वली जवजोग वैरागता रूप अवीर उडाव्युं एटले आत्मा सुमतिसंगे परम रुक्ता स्वज्ञावाचरणमां लाग्यो ते वेला विनयवती पंच समिति अने ज्ञान गुति पोताना स्वामी स्वज्ञावाचरणी आत्मापासे खेलवा-रमवा लागी. एम सहृदमां एटले आत्म स्वप्रदेश हृदमां शुद्ध वसंत ख्याल खेले ॥ ७ ॥

चाचर गुण रसीया लिये हो, निज साधक परिणाम ॥ ल०  
कर्म प्रकृति अरति गई हो, उदसीत अघित उद्दाम ॥ ल० ॥ जि० ॥ ८ ॥

अर्थ:- ते देखी जत्रि जीवरूप चाचर शुद्धात्मगुण रसी थई आत्म सिद्धि साधवाना परिणामी थया एटले मिथ्यात्वादिक हेतु प्रवृत्तिएं निपजाव्यां जे ज्ञानावरणादिक कर्म तेथी अज्ञान मिथ्यात्व कपाय

३० श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

आदिकनी अरति थई हती ते गई अने ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि  
निज शुद्ध गुण रुप अमृत प्रगट थयुं-उर्द्धताए आव्युं एटले उदस्युं  
उद्वास थयुं, विज्ञाव संबंधे बंधायलुं आत्मवीर्य मिथ्यात्वादिकथी तूटी  
उर्द्धताए आव्युं. बंधथी तूटी उपर आववुं तेनुं नाम उद्दाम कहिए ॥

थिर उपयोग साधन मुखे हो, पिचकारीकी धार ॥ ल० ॥

उपशम रस जरी ठांटता हो, गई तताई अपार ॥ ल० ॥

जि० ॥ ए ॥

अर्थ:-आत्म शुद्धता मुख्य साधनरुप मूलमां उपयोगनी थिरता  
रुप पीचकारीनी सुवासित धार समझवी. मिथ्यात्व कषायादिना  
उपशमरुप अमृत रस ठांटवे करीने प्रथम जे मिथ्यात्व कषायादिनी  
तताई के० असह्य तती हती ते अपार तसि समी गई अने सम-  
जावनी शीतल समाधि शांती प्रगट थई ॥ ए ॥

गुण पर्याय विचारतां हो, शक्तिव्यक्ति अनुभूति ॥ ल० ॥

द्रव्यास्तिक अवलंबता हो, ध्यान एकत्व प्रसूति ॥ ललना० ॥

॥ जि० ॥ १० ॥

अर्थ:-स्वपर द्रव्यना गुणपर्याय विचारतां स्वगुण पर्याय स्वद्र-  
व्यादिकथी जिन नथी अने परगुण पर्याय पर द्रव्यादिकथी जिन  
नथी. कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यमां जतो आवतो नथी,  
कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यने निश्चय नथी गुण दोष  
करी शकतो नथी, कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यनो नथी  
एम जे जेनुं ते तेनुं जाणतां ममतानो अंश रहेतो नथी अने  
कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यने काममां आवतो  
नथी एम जाणवार्थी रागांश रहेतो नथी अने कोई द्रव्यनो  
गुण पर्याय कोई अन्य द्रव्यने हाणी के दोष करी शकतो नथी  
एम जाणवार्थी द्वेषांश पण नाश पामे ठे माटे स्वपर द्रव्य

ગુણ પર્યાયને ત્રિજ્ઞ વિચારતાં પોતાની સર્વે શક્તિ પરત્વરતા વિના પોતામાંજ વ્યક્તિ પટલે પ્રગટપણે જણાય છે. પ્રગટપણે પોતાની જ્ઞાનાદિ શક્તિ સ્વતંત્રતાએ જણાઈ પટલે તેનો અનુજવ આનંદ આવે છે પટલે વિજ્ઞાનરૂપ વિજૂતી પ્રગટ થાય છે. આત્મ દ્રવ્યના અનંત ગુણો આત્મામાં અજ્ઞેદપણે ઠતીરૂપ છે એ અવલંબન લેતાં પર દ્રવ્યાદિકનુ કાંઈ કામ નથી તો પરદ્રવ્યાદિકનો વિચાર શા માટે રહે ? અર્થાત્ નજ રહે. એમ એકત્વપણે આત્મ શુદ્ધતામાં ધ્યાન થિર થાય છે પટલે શુદ્ધ ધ્યાન ઉપજે છે-જન્મે છે એમ જાણવું ॥ ૧૦ ॥

રાગ પ્રશસ્ત પ્રજાવનાદો, નિમિત્ત કરણ ઉપજેદ ॥ લ૦ ॥  
નિરવિકલ્પ સુસમાધિમેં હો, જયે હે ત્રિગુણ અજ્ઞેદ ॥  
॥ લ૦ ॥ જિ૦ ॥ ૧૧ ॥

અર્થ:-પ્રશસ્ત રાગ વડે પર જીવોને જિન આજ્ઞામાં રૂચી ઉપજાવવી તે નિમિત્ત કારણનો એક જ્ઞેદ છે. દશમા ગુણઠાણે સજ્વલનનો રાગ રહે ત્યાંસુધી પ્રવચનની તક્તિએ પ્રેર્યો જીવ પર જીવને જિન શાસનમાં લાવવાનો પરિણામી હોય છે તે પરિણામ પણ નિમિત્તનો એક જ્ઞેદ છે. અને પઠી સકલ વિકલ્પો ઠોડી જ્ઞાન દર્શન ચરણમય એક અજ્ઞેદ આત્મ જાવમા થીરતા પામે છે. એજ પ્રમાણે સાધક જીવોના જ્ઞાન દર્શન ચરણાદિ ગુણો આત્માથી અજ્ઞેદપણે થયા છે પટલે નિર્વિકલ્પ શુદ્ધ સમાધિ પામ્યા છે ॥ ૧૧ ॥

ઈમ શ્રીદત્ત પ્રજ્ઞ ગુણે દો, પાગ રમે મતિવંત ॥ લ૦ ॥  
પર પરિણતિ રજ ધોયકે દો, નિરમલ સિદ્ધિ વસંત ॥ લ૦ ॥  
॥ જિ૦ ॥ ૧૨ ॥

અર્થ -એમ મનિયત પુરુષો શ્રીદત્ત સ્વામીના શુદ્ધ ગુણોમા ચિત્ત રમાવડા રૂપ પાગ રમે નેથી અનાદિનો પરપરિણતિરૂપ જે મેલ લાગ્યો

४० श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

ठे ते शुद्ध स्वरूप रमण रूप संवर नीरमां जीवतां कर्म रज रूप मेल  
धोई निर्मल सिद्ध थई शिवपुरीमां वसे ॥ १२ ॥

कारणथें कारज सधे हो, एह अनादकी चाल ॥ ल० ॥

देवचंद्र पद पाईये हो, करत निज जाव संजाल ॥ ल० ॥

॥ जि० ॥ १३ ॥

अर्थ:-शुद्ध कारण आदस्यां कार्य सिद्ध थाय ठे ए अनादिनी  
रीत ठे. तो श्रीदत्त स्वामीना वचन रूप कारण पामी शुद्धात्म जाव  
संजालीए-आदरीए तो देवमां चंद्रमा समान परमात्म पद नीपजे १३

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री दामोदर जिन स्तवन ॥

॥ मोरा साहेव हो श्री शीतल नाथके ॥ ए देशी ॥

सुप्रतीते हो करि थिर उपयोग के, दामोदर जिन वंदीये ।  
अनादिनी हो जे मिथ्या आंतिके, तेह सर्वथा बेदीये ॥ अवि-  
रती हो जे परिणति छुष्ट के, टाली थिरता साधीए । कषायनी  
हो कसमलता कापी के, वर समता आराधीए ॥ १ ॥

अर्थ:-नवमा श्री दामोदर स्वामीना शुद्ध स्याद्धादामृत रस जस्यां  
वचन सांजली आत्म अनात्म आदि अनंत तत्त्वोनी रूमी प्रतित  
करी उपयोग थीर करी दामोदर स्वामीने परमआदरे वंदीये एटले  
तेमनां वचन अने गुणो अति सन्माने आदरिये. जीवने अनादिथी  
विप्रयास वासना रूप मिथ्या आंति ठे तेनी विगत:-

जीवमां अजीव बुद्धि, अजीव गुणपर्यायमां जीव बुद्धि, शुद्धात्म  
स्वजावधर्ममां अधर्मबुद्धि, अने पुद्गल क्रिया प्रवृत्तिरूप अधर्ममां धर्म  
बुद्धि, शुद्ध तत्त्वना जाण समजाधी गुरु उपर कुगुरु बुद्धि अने जैन

તત્ત્વના અજાણ ઉત્સૂઝ જાપી સ્વઠંદતાએ ચાલવાવાલા જૈન જેલધારી  
 અથવા અન્ય જેલધારી ઉપર સુગુરુ બુદ્ધિ, કેવલજ્ઞાન કેવલદર્શન  
 પરમથિરતા અચલ અનંત વીર્યવંત દેવ ઉપર અદેવ બુદ્ધિ, મિથ્યાજ્ઞાન  
 મિથ્યાદર્શન ચપલનાવંત લઘ્વિવીર્ય હીણ ઉપર દેવ બુદ્ધિ, અષ્ટકર્મથી  
 મુક્ત થયેલાને અનુક્ત જાણવા અને અષ્ટકર્મ વંધન યુક્ત રાગદ્વેષ-  
 વંતને અથવા સ્નેહપાસમા વધાયેલાને મુક્ત જાણવા, એ પચેને વિપરિત  
 અથવા સરસા જાણવા તથા સ્ત્રી પુરુષ કુટુબાદિ વિષયો દાતારને  
 મિત્ર જાણવા અને સમ્યક્જ્ઞાન દર્શન ચરણાત્મ વીર્યના દાતારને  
 શત્રુ પ્રાય જાણવા, વિષય રોગના ઉપચારને સુખ જાણવું અને શુદ્ધાત્મ  
 સંયમમાંહે દુઃખ જાણવું, કારણને કાર્ય જાણવું અને કાર્યને કારણ  
 જાણવું, અપવાદને ઉત્સર્ગ તથા ઉત્સર્ગને અપવાદ જાણવો, પુણ્ય  
 પાપરુપ શુભાશુભ પરિણામને ધર્મરુપ શુદ્ધ પરિણામ જાણવો તથા શુદ્ધ  
 જાવધર્મને પુણ્ય પાપરુપ શુભાશુભ પરિણામ જાણવો, ઉન્માર્ગને માર્ગ અને  
 શુદ્ધમાર્ગને ઉન્માર્ગ, આશ્રવને સંવર અને સંવરને આશ્રવ, વંધને  
 અવંધ અને અવંધને વંધ, અકર્તાને કર્તા અને કર્તાને અકર્તા, અકાર-  
 ણને કારણ અને કારણને અકારણ, અકાર્યને કાર્ય અને કાર્યને  
 અકાર્ય, અકારકને કારક તથા કારકને અકારક, અપ્રમાણને પ્રમાણ  
 તથા પ્રમાણને અપ્રમાણ, કુનયને સુનય અને સુનયને કુનય, કુવચનને  
 સુવચન અને સુવચનને કુવચન, સમજાપીને વિપમજાપી તથા વક્ર-  
 જાપિને સમજાપી, ઉલટજાવને સુલટજાવ તથા સુલટજાવને ઉલટ-  
 જાવ એ આદિ વિપર્યાસ વાસનાના અસંખ્યાત અધ્યવસાય (અજિ-  
 પ્રાય) ઠે તે સર્વે જડમૂલથી ઉઠેદિએ. મન વચન કાયા એ ત્રણે  
 જોગો સદા અવ્રત અને વિષય કપાયમાં પ્રવર્તે ઠે એટલે તે રાતદિન  
 સર્વે સમય પંચવિષય, પંચઅવ્રત તથા ચારકપાયથી નિવર્તતા નથી  
 ણવી હુદ્દ એટલે આત્માને અનંત દુઃખ આપનારી અવિરતિ



४२ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

परिणति अनादिथी लागेली ठे ते दुष्ट परिणति टाळी  
विषयो अव्रतादिकथी निवृत्ति लेश शुद्धात्मजावमां परमस्थिरता  
साधीए. मूल चार कषाय अने कषायना कारणरूपनव नोकषाय तेथी  
आत्मअंग अने आत्मगुणो कषाय ठे एटले शोषाय ठे ते कषाय  
मेलथी उपजती कसमलता के कलुषता कापीने वरप्रधान निज आत्म  
द्रव्य क्षेत्र काल जावमां परमशांति अने परमसमाधि अने परमसंतो-  
षरूप समता सेविए. एटले परद्रव्यादिकमां अनादिथी आपापणुं  
मानेलुं ठे ते स्वद्रव्य क्षेत्र काल जावमां आपापणानी बुद्धि थाय  
त्यारेज परम स्वतंत्र शुद्ध शांति तुष्टि थाय ॥ १ ॥

जंबूने हो जरते जिनराज के, नवमा अतित चोवीशीये ॥  
जस नामे हो प्रगटे गुण रासि के, ध्याने शिव सुख विलसीये ॥  
अपराधी हो जे तुजथी दूर के, जरि भ्रमण दुःखना धणी ॥  
ते माटे हो तुज सेवा रंग के, होजो ए इच्छा घणी ॥ २ ॥

अर्थ:-आ जंबुद्वीपना दक्षिण जरतमां अतित चोवीशीमां नवमा  
दामोदर स्वामी नामे तीर्थंकर थया जेनुं नाम सांजलतां अने जेनां  
वचन हृदयमां धारतां ज्ञानादिक क्हांत्यादिक अनंत शुद्धात्मगुण जथो  
प्रगट थाय अने जेना ध्यानथी एटले दामोदर स्वामीए जे ध्यान  
कस्युं अने जे ध्यान शिवसुख माटे बताव्युं ते ध्यान आदरिये तो  
उपद्रव रहित शाश्वत सहज परमानंद सुखविलास पामीए. ताहरी  
आज्ञाथी जे वेगला रहे ठे ते तमारा तथा आत्मशुद्धताना अने मो-  
क्षमार्गना अपराधी थइ जवभ्रमण करता जारे अने घेहेरां दुःख भोग-  
ववाना धणी जाणवा ते माटे महारे तो तमारी अखंड आज्ञा सेववामां  
रंग रहेजो एज माहरी परम जिज्ञासा ठे ॥ ३ ॥

मरुधरमें हो जिम सुरतरु लुंवके, सागरमें प्रवहण समो

॥ जवजमतां हो जविजन आधार के, प्रजु दरशन सुख अनुपमो ॥ आतमनी हो जे शक्ति अनंतके, तेह स्वरूप पदे धर्या ॥ परिणामिक हो ज्ञानादिक धर्म के, स्वस्वकार्यपणे वर्या ॥ ३ ॥

अर्थ:-मारवाड देशमां कल्पतरुनी लुवो के० आम्रवृक्षनां झूमत्रां मलवां दूर्लभ तेम आ दुपमकाल पांचमा आरामां ताहरां अनंत ज्ञान अनंत न्याय अने परम दयामयी वचन पर्यायोनी लुंवो मलवी घणा लोकोने दूर्लभ जाणवी अने हमने प्रजुत्त पुण्य पसाए प्रजुवचननो लाज थयो ते आश्चर्य जेवु जाणी चित्तमां आनद अने उद्भास पामिए ठिए. एटले जर समुद्रमां झोलां खाताने जेम ड्रव प्रवहण आवी मले तम हमे पण संसार समुद्रमां कूबकीओ खाताने ताहरा स्याद्वाद वचनरूप ड्रव जहाज आवी मल्युं ते पण परमानंदनुंज कारण ठे. जवजमण करता जवि जीवोने ताहरोज आधार ठे अथवा ताहरां प्ररूपेलां शुद्ध वचन प्ररूपकनो आधार ठे पण ताहरी जे आज्ञाथी उलटा दुर्मतीओना वचन आधारे वत्ते ठे तेने तो जेमां मिथ्यात अज्ञान अने कपाय रूप खारुं पाणी जखुं ठे एहवा जवसमुद्रमां प्रत्यक्षपणे कूबता देखीए ठीए ताहरो आज्ञामां रहैवुं एज ताहरु दर्शन तेथी जे सुख पामीए तेने संसारीक उपचरित सुखनी उपमा लागी शके नहीं. प्रजुजी तमे आत्मानी अनंत शक्ति पूर्ण पर्याये स्वस्वरूपपदे धारण करी अने तमे ज्ञानादिक निज आत्म अनंत धर्मना परिणामी थया एटले कारकचक्र जे उलटु फरतु हतुं ते पलटी सुलटयुं एटले ज्ञान दर्शन चरणादिक आत्मीक अनंत गुणो सहज स्वतंत्रताए अन्य कारण विना अने प्रयास विना सर्वे समय धमधोकार आप आपणा कार्यमां लाग्या एटले पर परिणामीकतानो अंश मात्र क्या रहे? अर्थात् नज रहे ॥ ३ ॥

अविनाशी हो जे आत्मानंदके, पूर्ण अखंड स्वप्नावनो ॥  
निज गुणनो हो जे वर्तन धर्मके, सहज विदासी दावनो ॥  
तस जोगी हो तुं जिनवर देव के, त्यागी सर्व विज्ञावनो ॥  
श्रुतज्ञानी हो न कही शके सर्व के, महिमा तूज प्रज्ञावनो ॥४

अर्थ:-प्रभुजी अविनाशी अत्यंतिक स्वतंत्रिक परम अने पूर्ण  
अखंड आत्मीक स्वप्नावे मग्न हो. तमारा सर्वे स्व गुणो आप आपणा कार्य-  
मांसकल समय वर्त्ते ठे ते सहज स्वप्नाव विदासनो दाव तमारे आव्यो  
ठे. ते शुद्ध ज्ञावनाज तमे जोगी हो अने सर्वे विज्ञावना त्यागी हो.  
आठे कर्मने जीती वरप्रधान ज्ञान दर्शन गुणे देदिप्यमान हो. पूर्ण  
श्रुतज्ञानी पण तमारा गुणादि प्रज्ञावनो महिमा कहि शके नहीं ॥ ४ ॥

निकामी हो निकषाई नाथके, साथ होजो नित तुम  
तणो ॥ तुम आणा हो आराधन शुद्धके, साधुं हुं साधकपणो ॥  
वीतरागथी हो जे राग विशुद्धके, तेहीज जवजय वारणो ॥  
जिनचंद्रनी हो जे जक्ति एकत्वके, देवचंद्र पद कारणो ॥५

अर्थ:-प्रभुजी कोईपण पुद्गल वस्तुना कामी नहीं एटले कषाय  
तो शानो होय? अर्थात् नज होय. प्रभुजीनो साथ एटले प्रभुजी  
प्रमाणे हमे पण परगुण कामना रहित अने कषाय रहित  
सदा रहिए एहवो सदा हमारे साथ होजो अथवा सिद्धक्षेत्रमां  
हमारे तमारे नित्य स्थिर साथ होजो. हमने शिवमार्गमां प्रेरनारा  
माटे अमारा नाथ अने प्रभुजी हमने कही गया के शुद्ध सिद्धमां  
आवो तेज तमारां वचन सफल थजो. ए माटे तमारी शुद्ध आणा  
आराधी शुद्ध साधकपणो साधी आत्मसिद्धता पासुं. वीतराग देवथी  
इहलोकादि इछा रहित विशुद्ध राग तेज जवजयथी ठोकावनारो ठे.  
एहवा सामान्यजिनोमां चंद्रमा समान तीर्थकर देवनी जक्तिमां  
एकत्वपणुं तेज देवमां चंद्रमा समान सिद्धिपदनुं कारण जाणवुं ॥५॥

संपूर्ण.

॥ અથ દશમ શ્રી સુતેજ જિન સ્તવન ॥

અતિ રુમીરે (૨) જિનજીની થિરતા અતિ રુમી ॥ ૧ ॥ આંકણી ॥

સકલ પ્રદેશ અનંતી, ગુણ પર્યાય શક્તિ મહંતી લાલ ॥  
અ ॥ તસુ રમણે અનુજવવંતી, પર રમણે જે ન રમંતી લાલ  
॥ અતિ ॥ ૧ ॥

અર્થ.—દશમા શ્રી સુતેજ સ્વામીની શુદ્ધાત્મ સ્વજાવમાં સ્વતંત્રતાએ અકંપતા નિશ્ચલતા નિરાકુલતા રૂપ પરમ થિરતા અતિ રુઢી સોહામણી ઠે. સર્વે પ્રદેશે સર્વ ગુણોના પૂર્ણ પર્યાયની અનંત મહંત સત્તા પરમ અચલ વીર્યપણે સર્વે સમકાલે સકલ સ્વકાર્યપણે વર્તવા ઠતાં પણ થિરથોજ ઠે. તે જ્ઞાનાદિક સ્વગુણ અનંત પર્યાયમાં પ્રજુજીનું રમણ તેથી અનુજવવતી કે ૦ તે સર્વે શક્તિ સકલ સમય અનુજવ યુક્ત ઠે પણ પુદ્ગલાદિક પરગુણે અનુજવતી જોગવતી નથી. ઇટલે પરગુણમાં રમતી નથી કેમકે ચેતનામાં સ્વગુણ જોગ સ્વપ્રદેશે અસ્તિત્વપણે ઠે અને અન્યદેત્રી પરગુણ જોગનો સ્વપ્રદેશે અજાવ તેથી સ્વપ્રદેશે પરગુણ જોગનું નાસ્તિત્વ ઠે ॥ ૧ ॥

ઉત્પાદ વ્યયે પલટંતી, ધ્રુવ શક્તિ ત્રીપદી સંતી લાલ ॥  
॥ અ ॥ ઉત્પાદે ઉતપતમંતી, પૂરવ પરિણતિ વ્યયપંતી  
લાલ ॥ અ ॥ ૨ ॥

અર્થ.—શક્તિ ઉત્પાદ વ્યયપણે પલટે ઠે તે ઠતાં પણ ધ્રુવ ઠે શક્તિ તે ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવ એમ ત્રીપદી સહિત હોય જો ઉત્પાદ ન હોય તો નવા નવા સમય નવા નવા પર્યાય ઊર્જતાએ આવે તેનું જાણવા આચરવાદિ કાર્ય થાય નહીં, અને વ્યય ન હોય તો અતિતકાલ પ્રવૃત્તિનું જાણવા દેશવાદિ કાર્ય વર્તમાનપણે જણાય પણ અતિનપણે ન જણાય વલી જો ધ્રુવ ન હોય તો પર્યાયનો ઉત્પાદ વ્યય ત્યાં ડબ્યના ઠતી

પર્યાયની સત્તાનો નાશ થાય પણ દ્રવ્યના ઠતી પર્યાયનોજ આવી-  
ર્જાવપણે અને તિરોજ્ઞાવપણે તથા ઠતીપણે અને સામર્થ્યપણે તથા અગુરુ  
લઘુની હાણીવૃદ્ધિપણે એ આદિ અનેક પ્રકારે ઉત્પાદ વ્યય થયાં  
કરે છે પણ સત્તા તો સદા સદ્જ્ઞાવપણે ધ્રુવ રહે છે તેજ માટે ગ્રંથોમાં  
કહ્યું છે કે:-“ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવ યુક્તં સત્ લક્ષણં દ્રવ્યં” એટલે  
ઉત્પાદ વ્યય અને ધ્રુવ તેજ દ્રવ્યનું સત્ લક્ષણ છે. સત્ લક્ષણ વિના  
દ્રવ્યની સત્તા શાને કહિયે ? જેમ સોનાની સત્તા વડે મુગટ આદિ કાર્ય  
પર્યાયનો ઉત્પાદ થાય છે અને કુંડલ આદિ પૂર્વ પર્યાયનો વ્યય થાય  
છે અને મુગટ કુંડલ આદિ અનેક પર્યાય રૂપ કાર્ય થવાની સત્તા  
સુવર્ણ દ્રવ્યમાં ધ્રુવપણે રહે છે એ પ્રમાણે ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવ  
જાણવો. જો એમ ન હોય તો દ્રવ્યનું દ્રવ્યપણું રહે નહીં. ઠતી  
પર્યાયોનો જનક દ્રવ્ય છે એટલે ઠતી પર્યાયોને આવીર્જાવપણે દ્રવ્ય  
જન્મ આપે છે (ઉપજાવે છે) એટલે એક સમયનું કાર્ય કરી તેજ  
ઠતી પર્યાયોને પોતામાં તિરોજ્ઞાવપણે સમાવે છે (દ્રવે છે) એટલે  
પર્યાયોને આવીર્જાવ અને તિરોજ્ઞાવપણે ઉપજાવવું અને રાંધવું તેજ  
દ્રવ્યનું દ્રવ્યસ્વપણું છે. તાહરી ચિરતા નવે પર્યાયે ઉત્પત્તિવંત છે અને  
પૂર્વ પર્યાયે વ્યયવંત છે એટલે પરિણતિમાં પરાવર્તન ધર્મ છે તેથી પૂર્વ  
પૂર્વે પરિણતિ વ્યય થઈ નવા નવા સમય નવિ નવિ પરિણતિ પરિ-  
ણમ્યા કરે એમજ સર્વે સમય સત્તા ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવ થયાં કરે એટલે  
કોઈ સમય ઉત્પાદનો પણ નાશ નથી વ્યયનો પણ નાશ નથી અને  
ધ્રુવતાનો પણ નાશ નથી માટે ત્રણે પ્રકારે પણ સ્વજ્ઞાવ ચલ્લાયમાન  
નથી પણ ચિર છે એટલે ચિરતાજ પૂર્વ પરિણતિ રૂપથી પલટી નવિ  
પરિણતિ રૂપ ઉપજે છે અને સત્તાએ ધ્રુવજ છે. માટે ચિરતાનો ઉત્પાદ  
વ્યય ધ્રુવ જાણવો એમ તમારું સ્વરૂપ મહા આશ્ચર્યકારી છે ॥ ૧ ॥

નવ નવ ઉપયોગે નવલી, ગુણ ઠતિથી તે નિત અચલી

लाल ॥ अ० ॥ परद्रव्ये जे नवि गमणी, क्षेत्रांतरमांहि न  
रमणी लाल ॥ अ० ॥ ३ ॥

अर्थ:-एज थिरता नवे समये नवा उपयोगे थाय अथवा नवि  
परिणतिए परिणमे माटे नवि कहीए पण एज सत्ता गुणवतीपणे  
नित्य अने अचल कहीए एज थिर सत्ता कोई काले पण स्वक्षेत्र  
ठोनीने परक्षेत्रे कदापी जाय नहीं अने परक्षेत्रे जई परगुण पर्या-  
यमां रमे नहीं पण स्थिरपणे स्वक्षेत्रे रहि स्वकाले स्वजावीक अनंत  
पर्यायमां रमे. जेम लुणनी खाराश लुणना स्वप्रदेश ठोनीने अन्य द्रव्य  
क्षेत्रे जाय नहि तेम जाणवुं ॥ ३ ॥

अतिशय योगे नवि दीपे, परजाव जणी नवि ठीपे लाल ॥  
अ० ॥ निज तत्त्व रसे जे लीनी, बीजे किणही नवि कीनी  
लाल ॥ अ० ॥ ४ ॥

अर्थ:-ताहरी शुद्ध अने थिर सत्ता ते स्वप्रजावेज देदिप्यमान  
ठे एटखे दीपती दीपावती ठे पण अतिशय योगे एटखे कांई पुद्गल  
अतिशय रूप पर योगे दीपती नथी. वली पर जावना योगे ठानी  
पण रहेती नथी जेम शाकमां घणी जातनो मसालो नांखीए तेमां  
लुणनी खाराश पर योगे ठानी रहेती नथी पण पोतानी व्यक्ति  
देखावेज ठे तेम प्रजुजीनी थिर सत्ता परयोगे पण दुपी  
रहेती नथी ते सत्ता शुद्धात्म तत्त्वमां लयलीन ठे शुद्धात्म तत्त्वथी  
सदा अचेद ठे जूदी पक्ती नथी. चेतनादिक द्रव्यना अनंत  
लक्षणनी स्थिरता कोई अन्य पुरुष ब्रह्मादिकनी करेली नथी  
तेम कोई शंकरादिक अन्य पुरुष विनाश करवा समर्थ नथी वली  
विष्णु आदि अन्य पुरुष तमारी सत्ताने राखी शके तेम नथी पण  
तमारी थिर सत्ताना रक्षक ग्राहक व्यापक अने कर्त्ता जोक्तादि तमे  
पोतेज ठो एटखे कोईनी सत्ताना कोई अन्य द्रव्य ग्राहक व्यापक

૪૦ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

રક્ક કર્તા જોક્તાદિ નથી. એમ સમ્યક્ પ્રકારે સત્તાની સ્થિરતા જાણવી ॥ ૪ ॥

સંગ્રહ નયથી જે અનાદિ, પણ એવંચૂતે સાદિ લાલ ॥  
અ. ॥ જેહને બહુમાને પ્રાણી, પામે નિજ ગુણ સહનાણી  
લાલ ॥ અ. ॥ ૫ ॥

અર્થ:-સંગ્રહ નયથી સત્તા અનાદિથી શુદ્ધ અને થીર છે પણ  
જ્યારે શુદ્ધ થીરતા પ્રગટ થઈ ત્યારે તે એવંચૂતનયથી સાદિ કહીએ. તે  
થીર શુદ્ધ સત્તાનું બહુમાન જે જીવે કરે તે પોતાની થીર અને શુદ્ધ  
સત્તાનું અહિઠાણ (સ્થાનક) પામે એટલે પ્રજુજીની શુદ્ધ સત્તા  
ધ્યાતો જીવે પોતાની શુદ્ધ સત્તા સ્થાનક પામે ॥ ૫ ॥

થિરતાથી થિરતા વાધે, સાધક નિજ પ્રજુતા સાધે ॥  
॥ લાલ ॥ અ. ॥ પ્રજુ ગુણને રંગે રમતા, તે પામે અવિચલ  
સમતા ॥ લાલ ॥ અ. ॥ ૬ ॥

અર્થ:-શુદ્ધ સત્તામાં અંતરમુહૂર્ત માત્ર ઉપયોગ થીર કરીએ તો તે  
સાદિઅનંત શુદ્ધ સત્તામાં થીરતાનું કારણ થાય છે. જેમ ઘઠના  
બીજથી ઘઠની વૃદ્ધિ થાય વલી અગ્નિ અંશથી મહા અગ્નિ પ્રગટ  
થાય તેમ કર્મબીજથી કર્મની વૃદ્ધિ અને રાગ બીજથી રાગની વૃદ્ધિ,  
જ્ઞાન અંશથી જ્ઞાનની વૃદ્ધિ અને દર્શન અંશથી દર્શન વૃદ્ધિ અને  
તેમજ થિરતાએ થીરતા અંશ વધારવાથી પરમ થીરતા પામીએ. માટે  
આત્મશક્તિ વડે અશુદ્ધતાના અંશ નાશ કરવા અને શુદ્ધતાના અંશથી  
પૂર્ણ શુદ્ધતા વધારી પરમ શુદ્ધ થીરતા પ્રગટ કરી પરમ થીરતાના  
અનંત પરમાનંદ વિલાસી થવું એ ઉપદેશ છે. એમજ મોક્ષાનિલાષી  
જીવ સાધકપણું આદરી પોતાની પરમ શુદ્ધ થીરતાની પ્રજુતા સાધે  
એમ જિનેશ્વરના પરમ શુદ્ધ થીર ગુણોમાં પોતાની પરિણતિ રમાવ-  
વાવાલો અવિચલ શુદ્ધ થીર સમતા પામી પરમ સિદ્ધતા પામે ॥ ૬ ॥

निज तेजे जेह सुतेजा, जे सेवे धरि बहु हेजा लाव ॥  
॥ अ० ॥ शुद्धाखन जे प्रभु ध्यावे, ते देवचंद्र पद पावे  
लाव ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थः—प्रभुजी पोताने तेजे करी परम तेजवंत ठे एहवा प्रभुने जे  
बहु हितधारी पूर्ण प्रेम प्रतिते सेवे अने शुरू आलंवन प्रभुने जे  
ध्याय ते देवमा चंद्रमा समान परमात्म पद पामे ॥ ॥ ७ ॥

॥ अथ एकादशमं श्री स्वामीप्रज्ञोजिन स्तवन ॥

रहो रहो रहो रहो बालहा ॥ ए देशी ॥

नमि नमि नमि नमि वीनवुं, सुगुणा स्वामी जिणंद  
नाथरे ॥ ज्ञेय सकल जाणग तुमे, प्रभुजी ज्ञान दिणंद  
नाथरे ॥ नमि० ॥ १ ॥

अर्थः—हूं निज शुरू गुण विरह आतुरताए मोक्षाजिलापी यई  
वारंवार श्री सुगुणवान् स्वामीप्रभु नामा अगीश्वरमा तीर्थकरने नाम  
स्थापना डव्य अने जाव एम चारे निक्षेपे तथा डव्य क्षेत्र काल  
अने जाव तथा मनवचनकाया अने शुरू उपयोग परिणामे नमस्कार  
करीने एटले पर डव्यमां अहंपणानुं तथा माहरी बुद्धिनुं अजिमान  
ठोनी अरज करूं तुं के प्रभुजी तमे तो अनंत शुद्धात्म गुण पर्यायना  
स्वामी ठो तेथी परम पुरुष ठो अने स्वपर त्रीकालवर्ती अनंत ज्ञेयना  
जाणग पासग ठो तेथी ज्ञान दर्शन रूप सूर्य ठो ॥ १ ॥

वर्तमान ए जीवनी, एहवी परिणति केम नाथरे ॥ जाणुं  
हेय विज्ञावने, पिण नवि बूटे प्रेम नाथरे ॥ नमि० ॥ २ ॥

अर्थः—हे नाथ ! वर्तमान माहरा सरखा जीवोनी एहवी परिणति  
केम ? हूं जाणुं तुं के विज्ञाव महा अपाय, दुःखदाता, जवत्रमण अने  
परतंत्रता वधारनार अने ज्ञान दर्शनादि अनंत आत्म गुणोनी हाणी



५० श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

करनार माटे हेय-तजवा लायक ठे छतां पण ए उपरथी प्रेम केम वूटतो नथी ? ॥ १ ॥

पर परिणति रस रंगता, पर ग्राहकता जाव नाथरे ॥  
पर करता परजोगता, श्यो थयो एह स्वजाव नाथरे ॥  
॥ नमि० ॥ ३ ॥

अर्थः—अथिर परतंत्र अने जगत् जीवोनी एंव आपणी ईच्छाए वत्ते पण नहीं, आपणी ईच्छाए रहे पण नहीं वली अनेक प्रकारे चपलता करावनारी एहवी निंदवा लायक पुद्गल परिणतिमां चित्त रींजे ठे-रस लागे ठे वली ते परपरिणतिने ग्रहण करवानो वली ते मांहे चित्तने व्यापवानो तथा तेने संग्रह करवानो तथा तेने जोगववानो तथा तेने निपजाववा आदि हमारो जाव केम थयो अने केम आय ठे ? ॥३॥

विषय कषाय अशुद्धता, न घटे ए निरधार नाथरे । तो पण वंतू तेहने, किम तरिए संसार नाथरे ॥ नमि० ॥ ४ ॥

अर्थः—वली विषयो अने कषायो आत्म अंगने, आत्म गुणोने अशुद्ध करवावाला ते माहरे अंशमात्र आदरवा न घटे तो शुं सुख जाणी आदरीए ? वली क्यारे ए दुःख देता नथी के आदरीए ? तो ए आदरवा न घटे ए निरधार ठे तो पण माहुरा सरखा तेने ईहे ठे तो संसारथी केम तरीए ? ॥ ४ ॥

मिथ्या अविरति प्रमुखने, नियमा जाणुं दोष नाथरे ॥  
नंदू गरहूं वली वली, पण ते पामे संतोष नाथरे ॥ नमि० ५ ॥

अर्थः—वली अज्ञान मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय अने पुद्गल योग ते निश्चय दोष के० दुःखदाता जाणुं तुं तेथी तेने नंदू तुं अने वली गुरू समझे विशेषे नंदू तुं एम ठतां पण एहवा दुःखदाई परिणामो राखी संतोष मानुं तुं ए केवी चूल ठे ? ॥ ५ ॥

अंतरंग पर रमणता, टलश्ये किश्ये उपाय नाथरे ॥ आणा  
आराधन विना, किम गुण सिद्धि-थाय नाथ रे ॥ नमि० ॥ ६

अर्थ:-ए आदि अनेक प्रकारनुं अंतरंग पर रमण ते कया प्रकारे  
टलशे ? अने ए अंतरंग पर रमण जे न ठोडे ते ताहरी आज्ञा अने  
मोक्षमार्गनो आराधक न थाय अने आणा आराधन विना ज्ञा-  
नादिक शुद्धात्म गुणोनी सिद्धि केम थाय ? ॥ ६ ॥

हवे जिन वचन प्रसंगथी, जाणी साधक नीति नाथ रे ॥  
शुद्ध साध्य रुचीपणे, करिए साधन रीति नाथ रे ॥ न० ॥ ७

अर्थ:-हवे प्रभुवचन प्रसंग थयो तेथी साधकता नीति के० 'न्याय  
जाण्यो तेथी शुद्ध साध्य रुचिपणे साधनरीतिए प्रवर्तिए एटले  
ज्ञान गुणे करीने शुद्ध साध्य जाणीए, दर्शनगुणे करीने शुद्ध साध्य  
निश्चय करिए-देखीए, चरणगुणे करी शुद्ध साध्य आचरण सेवीए  
अने वीर्यगुणे करीने शुद्ध साधकतामां बल फोरवीए, प्रीती  
शुद्ध साध्यमां अने शुद्ध साध्य दर्शवनारमां करीए, सकल पर  
कामना तजी शुद्ध साध्य सिद्ध करवाना कामी थईए, सुखनी  
आशा अने विश्वास शुद्ध साध्य सिद्धिमांज राखीए, शुद्ध  
साध्य सिद्धि विना सुख नथी एम प्रतित करीए, शुद्ध साध्य  
शिवाय अन्य वस्तुथी प्रेम ठोनी शुद्ध साध्यमाज प्रेम राखीए;  
बुद्धि मन वचन काया ए सर्वे शुद्ध साध्य सिद्ध करवामां राखीए-  
वापरीए एम अंतरंग अनेक परपद रमण ठे ते ठोनी शुद्ध साध्य  
माहे रंगे चित्त रमावीए तोज ए अनादि कालनो छुष्ट विजाव शत्रु  
नाश पामे. काचे जरोसे सहज शत्रु पण पाठो हवतो नथी तो अ-  
नादि कालनो मोह शत्रु सहजे केम पाठो हवे ? तो विजाव  
नाश करवामां पूरे पूरुं पुरुष पराक्रम फोरवीए पण पोतानुं पराक्रम  
शत्रुओना तावे करीए नहीं अने विजाव नाश करवामाज वापरिए  
तो कर्मशत्रुथी जय वरिए ॥ ७ ॥

५२ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

जावन रमण प्रभू गुणे, योग गुणी आधीन नाथरे ॥ राग  
ते जिन गुण रंगमें, प्रभु दीठां रति पीन नाथरे ॥ नमि० ॥ ८

अर्थ:- परद्रव्यनी जावना ठोडी प्रभुना शुद्ध ज्ञानादि गुणनी जावना  
राखीए, पर परिणति रमण ठोकी प्रभुना शुद्धात्म गुण परिणतिमां  
रमण करीए वली मन वचन काय योग पुद्गल कार्यथो रोकी प्रभु  
आधिन करीए एटले प्रभुजीए संयम कार्यादिमां योग वापरवा  
कह्या त्यांज वापरिए. राग पण पुद्गल परिणतिनो ठोकी जिन गुण  
रंगे करिए अने पुद्गलीक विषयोमां अज्ञान वशे रति मानोए  
बिये ते अज्ञान ठोकी प्रभु दिठां पुष्ट रति करीए ॥ ८ ॥

हेतू पलटावी सवे, जोड्या गुणि गुण नक्ति नाथरे ॥ तेह  
प्रशस्तपणे रम्या, साधे आतम शक्ति नाथरे ॥ नमि० ॥ ९ ॥

अर्थ:- ईद्रियो मन वचन काया अने रागादि कर्मबंधना हेतु  
पलटावीने व्यक्त गुणी अरिहंत देवना चरणकमलमां जोडीए के०  
स्वज्ञावाचरणमां जोडीए एटले अरिहंतनी आज्ञा सेववी ते गुणनक्तिज  
ठे ते मन वचन बुद्धि रागादि आत्माने अप्रशस्तके० अहितकारी पणे  
हता ते पलटावीने अरिहंतनी आज्ञा सेववामां गुणी गुण नक्तिपणे  
जोड्या एटले ते सर्वे आत्म हितकारीपणे-प्रशस्तपणे रम्या तेज  
शुद्धात्म शक्ति साधे ॥ ९ ॥

धन तनु मन वचना सवे, जोड्या स्वामी पाय नाथरे ॥  
बाधक कारण वारतां, साधन कारण आय नाथरे ॥ न० ॥ १०

अर्थ:- धन तन मन वचन बुद्धि आदि सर्वेशक्ति स्वामिना चरण-  
कमलमां अर्पण करीए सोंपीए एटले स्वामीए बतावेला स्वज्ञावा-  
चरणमां जोडीए. एम जे जे बाधकतानां कारण हतां ते वारवाथी  
साधकतानां कारण आय. उक्तंच आचारांगे “ जे आसवा ते परि-  
सवा जे परिसवा ते आसवा ” एटले कर्त्ताने अशुद्ध कार्य परिणामे

जे जे आश्रवनां कारण हतां ते शुद्ध कार्य परिणामी थये 'संवरनां' कारण थाय अने शुद्ध कार्य परिणामे जे जे संवरनां कारण हतां ते अशुद्ध कार्य परिणामी थये आश्रवनां कारण थाय माटे कारण पद कर्त्ताना वशमां ठे एम जाणी शुद्ध साध्य सिद्धि कार्य परिणामी थइ आश्रवनां कारण पलटावी संवरनां कारणो करवां ए उत्तममार्ग ठे १०

आत्मता पलटावतां, प्रगटे संवर रूप नाथरे ॥ स्वस्वरूप रसी करे, पुरणानंद अनूप नाथरे ॥ नमि० ॥ ११ ॥

अर्थ:-पर परिणतिमां आत्मता मानी ठे ते जेदज्ञाने स्वपर लक्षण जिन जाणी स्वद्रव्यादिकमां आत्मता मानीए. स्वद्रव्यादिकमां कारण कारक कार्य जाणवे मानवे आदरवे आश्रव नाश थई संवर रूप प्रगटे. जे जीव शुद्ध सिद्ध सम स्वरूप रसीयो थयो ते स्वरूप रसी पूर्ण अनंत अनुपम आनंद प्रगट करे ॥ ११ ॥

विषय कषाय हर टले, अमृत थाये एम नाथरे ॥ जे प्रसिद्ध रूची हुवे, तो प्रभु सेवा धरी प्रेम नाथरे ॥ नमि० १२ ॥

अर्थ:-एम विषय कषाय रूप हर के० जेर टली अमृत थाय अथवा विषय कषाय रूप हर के० लत-टेव टली संवर रूप अमृत प्रगट थाय. जे प्रसिद्धपणे शुद्ध साध्य सिद्ध करवा रूचिवंत होय ते तीर्थकरोनी आझा सेवामां प्रेम प्रतित राखे ॥ १२ ॥

कारण रंगी कार्यने, साधे अवसर पामि नाथरे ॥ देवचंद्र जिनराजनी, सेवा शिवसुख धाम नाथरे ॥ नमि० ॥ १३ ॥

अर्थ:-आत्म सिद्धिनां कारण परमेश्वरना वचनमां जेने रंग लाग्यो ते अवसर पामी अवश्य कार्य सिद्ध करे. देवोमां चंद्रमा समान देवाधिदेव स्वामीप्रभुनी आणानु सेवन ते शिवसुखनुं स्थानक ठे ॥ १३ ॥

संपूर्ण

॥ અથ દ્વાદશમ શ્રી મુનિસુવ્રત જિન સ્તવન ॥

॥ નમણી ચમણી ને મન ગમણી ॥ એ દેશી ॥

દિઠો દરિશણ શ્રી પ્રજુજીનો, સાચે રાગે મનસું જીનો  
જસુ રાગે નિરાગી થાયે, તેહની જ્ઞાતિ કોને ન સુહાયે ॥ ૧ ॥

અર્થ:-કેવલજ્ઞાન દર્શનાદિ અનંત લક્ષ્મીવંત અનંત શુદ્ધ પ્રજુ-  
તાના ધણી મુનિસુવ્રત સ્વામી નામા બારમા તીર્થકરનું દર્શન દિવુંકે  
પ્રજુએ જીવાદિ નવ પદાર્થાદિ અનેક શુદ્ધ તત્વો દર્શાવ્યા છે તે જેને  
દર્શ્યા રૂચ્યા પ્રતિત થઈ તેને દર્શન થયું કહીએ. એ દર્શન જેને થયું  
તે પ્રજુ ગુણોમાં સાચા રાગે મનથી જીનો જેને રાગે વીતરાગ પદ  
પામીએ તેની જ્ઞાતિ કોને ન ગમે ? અલબત્ત સુદ્ધ પુરુષોને તો પ્રજુ  
આણા જ્ઞાતિ ગમેજ પણ પ્રજુ આજ્ઞાના ફલથી જે અજાણ છે તે તો  
મૂઢપણામાંજ મુંઝાઈ રહ્યા છે. યતઃ “ નાણાઈસુ ગુણેસુ, અરિહંતાઈસુ  
ધમ્મ રૂપેસુ ॥ ધમ્મોવગરણ સાહમ્મી, એસુ ધમ્મહં જો ય ગુણ રાગો ॥  
સો સુપસઠ્ઠો રાગો, ધમ્મ સંયોગ કારણો ગુણદો ॥ પઢમં કાયવો સો,  
પત્ત ગુણે ચવઈ તં સવં ” ॥ ૧ ॥

પુદ્ગલ આશા રાગી અનેરા, તસુ પાસે કુણ ચાયે ફેરા ॥  
જસુ જગતે નિર્જય પદ લહિએ, તેહની સેવામાં ચિર રહિયે ॥ ૨ ॥

અર્થ:-જે દેવપણા વિના દેવ અને ગુરૂપણા વિના ગુરૂ કહેવાય છે  
અને પુદ્ગલ પરિણતિના જીજ્ઞાસુ એવા અન્ય જીવોની અને પુદ્ગલ  
પરિણતિની આશા રાખે છે તો તે જીજ્ઞાસુ પાસે જીજ્ઞાસુ માગનારા તેની  
પાસે હમે શા વાસ્તે ? કયું સુખ ? અને કયો ગુણ લેવા ફેરા ચાઈએ ? જેની  
જ્ઞાતિ નિર્જય નિરાકુલ શુદ્ધ સ્વતંત્ર શિવપદ પામીએ તેજ વીત-  
રાગની આજ્ઞા સેવામાં ચિર રહિએ. તેમની આજ્ઞા અને સેવાથી  
ચંદ્રાયમાન થઈ બહિરાત્મ જાવમાં ન જઈએ ॥ ૨ ॥

रागी सेवकथी जे राचे, वाह्य जक्ति देखीने माचे ॥ जसु  
गुण दाळे तृष्णा आंचि, तेहनो सुजस चतुर किम वाचे ॥३॥

अर्थ:-रागी ठता देव तथा गुरु कहेवाता एहवा देव तथा गुरु पोताना  
सेवकोनी वाह्य जक्ति देखीने तेढ उपर खुशी थाय ठे, माचे ठे, मग  
थाय ठे पण ते कहेवाता देव तथा गुरुना ज्ञानादि दांत्यादि गुण  
रूप धन ते जोग तृष्णाआंचे दाक्षे ठे तेनो जस चतुर पुरुषो केम  
बोले ? जे पोतेज आत्म धन हीण ठे ते बीजा जव्य पुरुषोने आत्म धने  
धनवंत केम करी शके ? अर्थात् नज करी शके माटे माहरे तो  
अर्चित्य आत्मीक धननो दातार प्रजु तुंज एक तुं ॥ ३ ॥

पूरण ब्रह्मने पूर्णानंदी, दर्शन ज्ञान चरण रस कंदी  
सकल विज्ञाव प्रसंग अफंदी, तेह देव समरस मकरदी ॥४॥

अर्थ:-प्रजु अठार हजार जेदे अत्रह्म तजो पूर्ण शुद्ध ब्रह्म रूप  
सिद्ध पद पाम्या छो तेथी अनंत स्वतंत्र पर्याये परम पूर्ण आनंद  
जोगी ठो अने दर्शन ज्ञान चरणानंद स्वादना मूल ठो अने सकल  
विज्ञाव प्रसंगथी फंड रहित अफंदी ठो माटे हे देव ! तमेज पूर्ण  
समज्ञाव वडे ज्ञानादि स्वगुणनो रस स्वाद लेवावाला ठो ॥ ४ ॥

तेहनी जक्ति जवजय जाजे, निगुण पिण गुणशक्ति गाजे  
दास जाव प्रजुताने आपे, अंतरंग कलिमल सवि कापे ॥५॥

अर्थ:-एहवा देवनी जक्ति जव जयनी कापवावाली ठे. निश्चयथी  
प्रजु कोई अन्य द्रव्यने गुण दोष करता नथी पण व्यवहार नयथी  
शुद्ध नये देगना आपी अनेक जवि जीवोने संसार समुद्रथी पार  
उतारे ठे अने सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र आपे ठे एम अनेक  
जविने गुण करे ठे तेथी गुण करवानो शक्ति करी गाजे ठे एहवा  
प्रजुनी आद्या मेववा रूप दास जाव जे आदरे ते स्वतंत्र आत्म  
शुद्धता रूप अनंत प्रजुता पामे अने अंतरंगमां रसो जे कलुषता

५६ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

उपजावनार अज्ञान मिथ्यात्व अने कषायादि विजावता रूप मेळ तेने कापे ॥ ५ ॥

अध्यातम सुख कारण पूरा, स्वस्वजाव अनुभूति सनूरो।  
तसु गुण वलगी चेतना कीजे, परम महोदय शुद्ध लढीजे॥६

अर्थः—श्री मुनिसुव्रत स्वामी आत्म अधिकार राज्य सुख प्राप्तिनं पूर्ण पुष्ट कारण ठे. शुद्ध आत्म स्वरूप अणजाणता जीव पोतानो आत्मोक्त अधिकार जाणे नहीं तेथी पुद्गल द्रव्य पर्यायने पोते अने पोताना जाणी मानी तेना अधिकारी पोते थई अथिर अने परतंत्र पुद्गलनुं कर्ता जोक्ता ग्राहक व्यापक रक्षकपणुं पोतामां मानी बेठा ठे. ते पुद्गलो आपणा राख्या रहे नहीं, कस्या थाय नहीं वली पर क्षेत्री पदार्थों जोगवी शकाय नहीं वली लेवाय नहीं एम अणहोतुं थाय नहि तेथी तेमां खेद करी करी तेना विनाशे पोतानो विनाश आदि विपर्यास वासना थई रहि ठे तेथी जन्म मरणादिक अनंत दुःख जोगवे ठे पण ज्यारे प्रभु वचने आत्मा पोतानो आत्मीक अधिकार जाणे त्यारेज सकल क्लेशथी मुक्त थाय अने आत्म-अधिकारनुं अत्यंतीक स्वतंत्र सहज सुख पामे. तो ते अध्यात्मीक सुखना दातार तो प्रभु अने प्रभु आणाना शुद्ध प्रेरक ठे ते सिवाय अन्य कोई नथी माटे परम अने पूर्ण उपकारी प्रभुजी तमेज ठे. जेम कोई पुरुष परघर परवस्तु पर स्त्री आदिकनो अधिकारी नथी अने परघर स्त्री वस्तु आदिकनो अधिकारी पोताने मानी ते परवस्तुने आदरे तो ते सुखी थाय नहीं अने दुःखी थाय पण ज्यारे पोतानी घर स्त्री आदि वस्तुनो अधिकारी पोताने जाणे माने आदरे त्यारेज दुःख मटे अने सुख थाय तेम आत्मा अन्य वस्तुनो अधिकारी नहीं ठतां पोताने अन्य वस्तुनो अधिकारी जाणी मानी आदरे तो ते दुःखी रहे पण सुखी थाय नहीं. ज्यारे पोतानो अधिकार जेवो ठे तेहवो जाणी मानी आदरे तोज सकल दुःखथी निवर्त्ती अने परमा-

नंदनी प्राप्ति थाय अने प्रजुजी तो निज ज्ञानादि रिझिना अनुजव  
जोगमां सदा तृप्त-मग्न ठो महा तेजवंत ठो. आपणी चेतना प्रजुना  
ज्ञानादिक निर्मल गुणे बलगी राखीए एटले ज्ञानचेतना प्रगट थाय.  
चेतना अनादिथो कर्मफलचेतनापणे अने कर्मचेतनापणे परिणमेली  
बलगेली ठे. ज्यांसुधी चेतना कर्मफलचेतनापणे एटले उदय आ-  
वेला शुजाशुज कर्म फलमां राग द्वेषपणे परिणमे ठे तथा योग क्रिया  
प्रवर्त्तीथीज सुख उपजे ठे एम जाणी क्रिया परिणाममां कर्मचेतना  
पणे वत्ते ठे त्यांसुधी स्वरूप ज्ञानमां लागती बलगती नथी पण  
ज्यारे प्रजुना परम निर्मल ज्ञानादि गुणे बलगे त्यारे शुद्धात्म स्वजा-  
वमां आनद जाणी शुद्धात्म स्वजावमां थिर रहेवा ज्ञानचेतनापणे  
परिणमे माटे आपणी चेतना प्रजु गुणे रसीली करीए एटलेज शुद्ध  
स्वगुण रसी थाय एम परम महोदय के० केवलज्ञानादि अनंत स्वगुण  
निर्मल पूर्ण व्यक्ति पामीए ॥ ६ ॥

मुनिसुव्रत प्रजु प्रजुता लीना, आत्म संपत्ति जासन  
पीना ॥ आणा रगे चित्त धरीजे, देवचंद्र पद शीघ्र वरीजे ॥ ७ ॥

अर्थ:-जे जीव मुनिसुव्रत स्वामीनी पूर्ण प्रजुता जाणी आश्चर्य  
पाम्या के अहो ! प्रजुजीतुं परमज्ञान परमदर्शन परम थिरताए शुद्ध  
स्वपर्याय रम्यमांहे रमण अने परम अचल स्वतंत्र अबाधित वीर्य.  
एम अनंत गुणानी शुद्धतानो परमानंद जाणी चित्त लीन थयुं  
तेनेज निजात्म शुद्ध संपदानु पुष्ट जासन थयुं. ए माटे तीर्थकरोनी  
आज्ञामां रंगे चित्त थिर करीए तोज देवचंद्र मुनि कहे ठे के  
शुद्धात्मपद उतावजु पामीए ॥ ७ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ त्रयोदशम श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

॥ कान्हेयालाल ए देशी ॥

प्रजुस्यं इस्यं विनवुरे लाल, मुज विजाव दुःख रीतरे



૫૭ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

સાહબિયાલાલ । તિન કાલના ફેયનીરે લાલ, જાણો ઢો સહુ  
નીતિરે સાહબિયાલાલ ॥ પ્રજુ૦ ॥ ૧ ॥

અર્થ:-તેરમા શ્રી સુમતિ જિન પ્રજુથી હું એવી અરજ કરું તું કે  
મેં તાહરાં વચન જાણ્યા આદર્યા પહેલાં પુદ્ગલોમાં આપાપણું માની  
મહા વિજ્ઞાવ ડ્રઢ પરિણામ વાંધ્યા તે પરિણામનો વેગ તાહરાં વચન  
જાણ્યા ઠતાં આજસુધી મટતો નથી અને તેથી અજ્ઞાન મિથ્યાત્વ  
અને કષાયોદિથી પરતંત્રતા વિગેરે વહુ દુઃખ જોગવું તું તે માહરોજ  
આદરેલો વિજ્ઞાવ દુઃખ ત્રાસ આપ્યાં કરે છે અને હે સાહેવ ! તમે તો  
સકલ દ્રવ્યની ત્રિકાલ પરિણતિની નીતિ જાણો ઢો એટલે પંચાસ્તિ-  
કાય અને કાલ સકલફેયની નીતિ અને રીતિ જાણો ઢો ॥ ૧ ॥

ફેય જ્ઞાનસ્યું નવિ મિલેરે લાલ, જ્ઞાન ન જાયે એ  
તથ્યરે ॥ સા૦ ॥ પ્રાપ્ત અપ્રાપ્તમેયનેરે લાલ, જાણો જે જિમ  
જથ્યરે ॥ સા૦ ॥ પ્રજુ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-જે જે દ્રવ્યના જે જે સ્વજ્ઞાવ અને જેટલા જેટલા ગુણપર્યાય  
હોય તે તેમજ રહે વલી પર્યાય ક્રમવર્તીએ ઉર્જતાએ આવે વલી તેનું  
જવિતવ્ય જેમ હોય તેમ થાય અને ઉદ્યમ પણ જવિતવ્ય પ્રમાણે  
વને અને જે જે કાલે જે જે યોગ સંજવ છે તે તેમ વને એમ પંચ  
સમવાય મલ્યાં કાર્ય થાય એમાં કાંઈ શંકા નથી. એમાંથી કાંઈ પણ  
एकांतતા તે મિથ્યાત છે. ફેય જ્ઞાન સાથે મલી એકમેક થાય નહીં,  
જ્ઞાન ફેય ક્ષેત્રે જાય નહીં અને ફેયપણ જ્ઞાન ક્ષેત્રે આવે  
નહીં. જેમ દર્પણમાં જે પદાર્થો જાસે છે તે પદાર્થો દર્પણ  
સાથે એકમેક થઈ જતા નથી, દર્પણ દર્પણ રૂપે અને પદાર્થ  
પદાર્થ રૂપે રહે છે તેમ જ્ઞાન જ્ઞાન રૂપે અને ફેય ફેય રૂપે રહે છે એ  
મર્યાદા છે. પ્રજુજી તમે દૂર આકાશ ક્ષેત્રે રહ્યા અપ્રાપ્તમેય ફેયને  
અને એક આકાશ ક્ષેત્રે રહ્યા સ્વપર પ્રાપ્તમેય ફેયને તથા વર્તમાન

काले वर्त्तता प्राप्त अप्राप्तमेव ज्ञेयने अने अतित अनगत वर्त्तता  
अप्राप्तमेव ज्ञेयने क्षेत्री अने काली दूर अने निकट एटले अ-  
प्राप्त अने प्राप्तमेव ज्ञेयने जे जेम ठे ते तेम समकाले अशेषपणे  
जाणो ठो एटले कोई पण ज्ञेय एहवो नथी के तमारी ज्ञायकतामां  
न चासे ॥ २ ॥

वृत्ति परजाय जे ज्ञाननारे लाल, ते तो नवि पलटायरे ॥  
सा० ॥ ज्ञेयनी नवनव वर्त्तनारे लाल, सवि जाणे असहायरे  
॥ सा० ॥ प्र० ॥ ३ ॥

अर्थ:-ज्ञानना अविज्ञागी वृत्ति पर्यायमांथी कोई पर्याय कोई  
काले पण नाश थाय नहीं अने तेज अविज्ञागी वृत्ति पर्यायो वृत्तिपणे  
रहिने सामर्थ्यपणे आवे ठे पण अवृत्तिपणे थता नथी एटले वृत्ति-  
पणानो नाश नथी, मात्र तिरो अने आवीर्त्तावे थया जाय. ज्ञेयोनी  
नवे नवे समय नवि नवि वर्त्तना थाय ते अन्य ज्ञेयनी सहाय विना  
अने प्रयासविना जणाय देखाय ॥ ३ ॥

धर्मादिक सहज ज्ञेयनारे लाल, प्राप्त जणी सहकार रे ॥  
साहि० ॥ रसनादिक गुण वर्त्ततारे लाल, निज क्षेत्रे ते धाररे  
॥ सा० ॥ प्र० ॥ ४ ॥

अर्थ:-धर्मादिक अजीव ज्ञेय प्राप्त थयाने सहायकारी ठे एटले  
धर्मास्तिकायना जे प्रदेशमां गति परिणामी जीव पुद्गल आवी प्राप्त  
थाय तेनेज ते गतिसहाय आपे, अधर्मास्तिकायना जे प्रदेशमां  
स्थिति परिणामी जीव पुद्गल आवी प्राप्त थाय तेनेज  
ते स्थिर सहाय आपे, आकाशना जे प्रदेशमा जीव पुद्गल  
आवी प्राप्त थाय मले तेनेज ते अवकाशदान आपे पण  
अन्य प्रदेशे रक्षाने आपे नहीं, वली चार अंश स्निग्ध के  
रुद्ध व्यक्तिमां जे पुद्गल परमाणु होय ते तेज क्षेत्रमां तेथी वे

६० श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

अंश न्यून के अधिक स्निग्ध रुक्ष गुण व्यक्तिवाला अन्य पुद्गल परमाणु आवी प्राप्त थाय तो तेनी साथे ते मले पण अन्य आकाश क्षेत्रे रहेला स्निग्ध के रुक्ष वे अंश न्यून अधिक व्यक्तिवाला पुद्गल परमाणु अगर खंध साथे मले नहि अने कार्मणादिवर्गणा जीवप्रयोगे परिणमेलीजे आकाश क्षेत्रमां होय तेने आकाश प्रदेशमां रहेली अन्य वर्गणा साथे मले. ए प्रमाणे धर्मास्तिकायादि चारे अजीव द्रव्यने अन्य प्रदेशे रहेलाने चलाववुं, थीर राखवुं, अवकाश आपवुं के मलवुं थतुं नथी, चक्षु तथा मन विना रसनादिक चार ईंद्रियोने व्यंजनावग्रह ठे एटले स्वादवाली वस्तु जीज्ञ प्रदेशने मले अने स्पर्शवाली वस्तु त्वचाने मले अने गंधना पुद्गल नाशीका अंदर घ्राणईंद्रियने मले—स्पर्श अने शब्दना पुद्गल श्रोतईंद्रियरूप पडदाने मले—स्पर्श तोज तेनो बोध थाय. ए पांचे ईंद्रियो दूर क्षेत्र विषयो कही ठे पण रसनादिक चार ईंद्रियोने तो ते विषयोना पुद्गल स्वक्षेत्रमां आवी मले तेनेज स्पर्श ठे अने चक्षु ईंद्रियने तो पुद्गल पदार्थ उपर पमेळुं सूर्यादिनुं उद्योत किरण परावर्त्तन थई चक्षुमां आवेत्यारे बोध थाय ठे तेथी तेने व्यंजनावग्रह कह्यो नथी पण उद्योत किरण वस्तु उपर पनी परावर्त्तन थई आंखमां आव्या विना तेनो बोध थतो नथी अने प्रभुजीना केवलज्ञानमां तो क्षेत्रे काले दूर निकटना पण रूपी अंरूपी सर्वे पदार्थनो समकाले बोध थाय ठे ॥ ४ ॥

जाणग अजिलाषी नहिरे लाल, नवि प्रतिबिंबे झेयरे ॥ सा० ॥ कारक शक्ते जाणवुरे लाल, जाव अनंत अमेयरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ ५ ॥

अर्थः—प्रभु परद्रव्यने जाणवाना अजिलाषी नथी अने अन्य झेयोनुं प्रतिबिंब पण पोतानी ज्ञायकतामां पडतुं नथी पण जीवमां अनंत गुणोनां कारक चक्र आप आपणा कार्यपणे दर समय फरे ठे

तेमा ज्ञान कारक चक्रमां नवा नवा समयनी नवि नवि ज्ञेय प्रवर्त्ती  
 ज्ञायकतानुं संप्रदान अने पूर्व ज्ञेय प्रवर्त्ती ज्ञायकतानुं अपादान सहज  
 स्वजावे थयां करे अथवा पूर्व ज्ञेय ज्ञायकतानुं अतित ज्ञानपणे  
 परिणमवुं अने वर्त्तमान ज्ञेयनुं वर्त्तमान ज्ञानपणे परिणमवुं तेथी  
 सकल ज्ञेयोनी परिणति वर्त्ती वर्त्ते ठे अने वर्त्तसे एम जासे ठे तथा  
 ज्ञेयोमां आप आपणा गुण प्रवर्त्तीनुं परावर्त्तन थवुं अने जीव द्रव्यमां ज्ञान  
 दर्शन उपयोग प्रवर्त्तीनुं परावर्त्तन थवुं एम सर्वे द्रव्योनु अगुरुलघु चक्र  
 समकाले करे ठे तेथी जाणग पासगपणुं सकल समय नवि नवि परिण-  
 ति ए परिणमे ठे अने जाणग पासगपणुं नवि नवि परिणतिनुं थाय तो  
 रमण पण नवा नवा पर्यायनुं थाय अने वीर्य पण नवि नवि पर्याय  
 प्रवर्त्ती ए थवुं तेथी वीर्य पण नवुं उपज्युं कहेवाय एम अनंता गुणो  
 नवि नवि परिणति ए परिणमे ठे तेथी जाणवुं पण कारक शक्ति वने  
 अनंत जावनुं अमेयपणे ( अमाप ) पणे ठे. जेम सूर्यने एहवो अजि-  
 प्राय नथी के पृथ्वीना पदार्थो जेम प्रवर्त्ते तेम हु प्रकाश करुं  
 पण सूर्यना उद्योतमा पृथ्वीना सर्वे पदार्थो जेम जेम प्रवर्त्ते तेम तेम  
 जासे ठे ते विपे सूर्यने पण प्रयास के अजिलाप नथी पण सहज  
 स्वजावे प्रवर्त्ते ठे तेम प्रजुजीना ज्ञानादि गुणो विनाअजिलापे अने  
 विनाप्रयासे प्रवर्त्ते ठे ॥ ५ ॥

तेह ज्ञान सत्ता थकेरे लाल, न जणाये निज तत्त्वरे ॥  
 ॥ सा० ॥ रुचि पण तेहवि नवि वधेरे लाल, ए अम मोह  
 महत्त्वरे ॥ सा० ॥ प्रजु० ॥ ५ ॥

अर्थ.—एहवाज ज्ञानादिक अनंत गुणो हमारी सत्तामां ठे तो पण  
 हमारुं शुद्ध तत्त्व जणातुं नथी अने ते तत्त्व जाणवा माटे पूर्ण रुचि  
 पण वधती नथी ए हमारे मोह अने ममतानुं महात्म्य ठे ॥ ६ ॥

मुज ज्ञायकता पर रसीरे लाल, पर तृष्णाए तत्तरे

૬૨ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

સાહિવિ૦ ॥ તે સમતા રસ અનુષ્ઠવેરે લાલ, સુમતિ સેવન  
વ્યાપ્તરે ॥ સા૦ ॥ પ્ર૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:-માહરી જ્ઞાયકતા અનાદિ કાલથી પુદ્ગલ પરિણતિની  
રસીલી થઈલી છે અને તે પુદ્ગલ પરિણતિ અધિર પરતંત્ર વિનાશીક  
તેથી તેની તૃષ્ણા તપી રહેલી છે અને પુદ્ગલ પરિણતિમાંજ તત્ત્વ  
સાર માનેલો છે પણ માહરી જ્ઞાયકતા માહરા દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ અને  
જ્ઞાવમાં તત્ત્વ જાણી સંતોષ અને તૃપ્તિ વાલી થાય તો તે સમતા રસ  
અનુષ્ઠવે. તે તો સુમતિ જિન સ્વામીએ સુમતિ સેવવા આદરવાની  
વતાવી તેમાં વ્યાપે તોજ બને ॥ ૭ ॥

બાધકતા પલટાવવારે લાલ, નાથ જ્ઞાતિ આધારે ॥ સા૦ ॥  
પ્રજ્ઞુ ગુણ રંગી ચેતનારે લાલ, એહીજ જીવન સારે ॥ સા૦ ॥  
॥ પ્ર૦ ॥ ૮ ॥

અર્થ:-હમારી અનાદિની બાધક જ્ઞાવે પરિણમેલી આત્મ પરિણ-  
તિને પલટાવી સાધક જ્ઞાવમાં લાવવા તુમ સરસ્વા પ્રજ્ઞુતાવંતની આણા  
સેવવી એજ હમારે પરમ પુષ્ટ આધાર છે. એ માટે ચેતના પ્રજ્ઞુ ગુણ રંગી  
કરવી એજ આ વાતનું જીવન અને સાર છે ॥ ૮ ॥

અમૃતાનુષ્ટાને રહ્યોરે લાલ, અમૃત ક્રિયાને ઉપાયરે ॥  
સા૦ ॥ દેવચંદ્ર રંગે રમેરે લાલ, તે સુમતિ દેવ પસાયરે  
સા૦ ॥ પ્ર૦ ॥ ૯ ॥

અર્થ:-અમૃત અનુષ્ઠાનને આશ્રયે અમૃત ઉપજે. દેવચંદ્ર મુનિ કહે  
છે કે જ્ઞાવ્ય જીવો શુદ્ધાત્મ તત્ત્વમાં રમે તે સુમતિ દેવનોજ પસાય  
જાણવો ॥ ૯ ॥

સંપૂર્ણ.

॥ अथ चण्डशम श्री शिवगति जिन स्तवन ॥

आंरा मेहेला उपर मेह झबुके वीझली हो लाल ॥ ए देशी ॥

शिवगति जिनवर देव सेव आ दोहिली हो लाल ॥

॥से० ॥ पर परिणति परित्याग करे तसु सोहिली हो लाल ॥

॥करे० ॥ आश्रव सर्व निवारि जेह संवर वरेहो लाल ॥जेह०

जे जिन आणा लीन पीन सेवन करे हो लाल ॥पीन० ॥ १

अर्थ:-शिवगति नामा चौदमा तीर्थकरनी सेवा ते अति दोहिलो  
ठे हमो संसारी जीव मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कपाय जोगचप-  
लता वशे जे जे मार्गे चालीए ठिये ते अशिव मार्ग ठे एटले कट्याण-  
कारी मार्ग नथी. जे अशिव मार्गे प्रवर्त्ते तेवठित सुख पामे नहि अने  
दुःखी रहे पण जेने शिवगती के० शिव चाल ठे एहवा जिनवर  
देवनी आज्ञा सेववी ते परम दुर्लज ठे पण पर परिणतिने जे रूडी  
रीते त्यागे-दूर करे तेने ए सेवा सुलज ठे. जे जीव सत्तावन्न प्रकारे  
अथवा तो अनेक प्रकारे आश्रव तजी संवरवंत थाय तेज पुरुष जिन  
आज्ञामां परम लीन थई पुष्टपणे जिन आज्ञा सेवे. अनेक प्रकारे  
आश्रव कह्यो पण ते परवस्तुना राग रूप एक अशुरू उपयोगमांज  
समाय ठे अने छेप ते तो राग होय तोज उपजे. उक्तंच " पर दव्व  
रउं बझई, विरउं मुंचई अछ कम्मोहि, एसो जिण उवएसो, समा-  
सउं वंध मोखवस्स " ॥ १ ॥

वीतराग गुण राग जक्ति रुची नैगमे होलाल ॥ ज० ॥

यथाप्रवृत्ति जव्य जीव नय संग्रह रमे हो लाल० ॥ नय ॥

अमृत क्रिया विधि युक्त वचन आचारथी होलाल ॥

॥ वचन० ॥ मोक्षार्थी जिन जक्ति करे व्यवहारथी होलाल०

॥ करे० ॥ २ ॥

## ૬૪ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

અર્થ:-મોક્ષાર્થી જીવ જિન જ્ઞાતિ તથા સાધન વ્યવહાર સાત નયે કરી કરે તે કહિયે ઠિયે.

( ૧ ) વીતરાગના ગુણોનો રાગ અને વીતરાગની આજ્ઞા સેવવાની રુચિ તે નૈગમ નયે જ્ઞાતિ કહીએ.

( ૨ ) જ્યારે જ્ઞાન જીવ ઠેલું યથાપ્રવૃત્તિકરણ કરે ત્યારે સંગ્રહ નયે જ્ઞાતિ કહીએ. એ કરણમાં સત્તાપણે જિન પ્રરૂપિત તત્ત્વનો અચિલાષી જીવ ઠે.

( ૩ ) જિન વચનમાં જે આચાર ક્રિયા અનુષ્ઠાન સેવવાનું કહ્યું તે વિષ ગરલ અને અન્યોન્ય અનુષ્ઠાન ત્યાગી મોક્ષાર્થી જીવ જ્ઞેદ-જ્ઞાનાદિ શ્રુત વાચના, પૃચ્છના, પરિચ્છેદના, અનુપ્રેક્ષા, ધર્મકથા તથા વિનય વૈયાવચ્છાદિ આત્મ શુદ્ધતાને તદ્દેહતુ ક્રિયા અને શુદ્ધધ્યાન રૂપ અમૃત ક્રિયા વિધિને સેવે તે વ્યવહાર નયે જ્ઞાતિ કહીએ ॥ ૨ ॥

ગુણ પ્રાગ્જ્ઞાવી કાર્ય તણે કારણપણે હો લાલ ॥ તણે ૦ ॥  
રત્નત્રયિ પરિણામ તે રુજુસૂત્રે જાણે હો લાલ ॥ તે રુજુ ૦ ॥  
જે ગુણ પ્રગટ થયો નિજ નિજ કારજ કરે હો લાલ કે ॥  
નિજ ૦ ॥ સાધક જાવે યુક્ત શબ્દ નયે તે ધરે હો લાલ ॥  
॥ શબ્દ ૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:- ( ૪ ) જ્ઞાનાદિ અનંત આત્મ ગુણો શુદ્ધ પ્રગટ કરવા રૂપ કાર્યનો પરિણામી થયો જીવ તેમૂલ્ય શુદ્ધ જ્ઞાન દર્શન ચરણાદિના પરિણામ કરે તે રુજુસૂત્ર નયે જ્ઞાતિ કહીએ ( ૫ ) જ્ઞાનાદિક શુદ્ધાત્મ ગુણ જે જે અંશે પ્રગટ થઈ આપ આપણું કાર્ય શુદ્ધ પ્રગટપણે કરવા લાગે અને સર્વે ગુણો પૂર્ણ પ્રગટ કરવાનો સાધક જાવ આદરે તે શબ્દ નયે સેવા જ્ઞાતિ કહીએ ॥ ૩ ॥

પોતે ગુણ પયાય પ્રગટપણે કાર્યતા હો લાલ ॥ પ્ર ૦ ॥

उणे आए जाव ताव संजिरूढता हो लाल ॥ ताव० ॥  
संपुरण निज जाव स्वकारय कीजते हो लाल ॥ स्व० ॥  
शुद्धात्म निज रूप तणे रस लीजते हो लाल ॥ त० ॥ ४ ॥

अर्थ:- (६) केवलज्ञान केवलदर्शन यथाख्यातचारित्र्य अने परम  
अचल वीर्यगुणो अने पर्यायो प्रगटपणे आपआपणुं कार्य करे ठे  
त्यांचीज ज्यासुधी अव्यावाध अक्षयस्थिति अटलअवगाहना अने  
अगुरुलघु ए चार गुणोना अंशो अघाती कर्म वशे ज्यांसुधी पूर्ण  
प्रगट कस्या नथी त्यासुधी समजिरूढ नये सेवा कहिए (७) शैलेसी  
करणना ठेह्वा समय आठे गुणोना सर्व अंश प्रगट निर्मल कस्या अने  
ते मूर्य्य आठ गुण शिवाय अनंता गुणोना पूर्ण अंश प्रगट थया  
अने ते सर्वे गुणो आपआपणुं कार्य पूर्ण पर्याये पूर्ण पदे करवा  
लाग्या त्यारे एवंजुत नये सेवा थई एटले चौदमा गुणठाणाना चरम  
समये एवजुतनये सेवा जाणवी ए स्थानके पूर्ण आत्म गुरु पर्यायनो  
लाज ले ठेह्वा एवंजुतनये सेवा थईजाणवी सेवानुं फल सेवा साथे मलेज  
ठे पण कालांतरनो वायढो नथी. कोई कहेके-सेवानुं फल तो ते जवे  
अथवा जवातरे पण फले ठे तेने कहीए के शुच उपयोगवने शुच कर्म-  
दल बंधाय ते अनुक्रमे उदय आवे पण अर्हीआं तोशुद्धतानी बात ठे  
अने शुद्धतामां आत्मगुण प्रगट थयानो आनंद ते तो तरतकाल  
आवे ठे अने उंचा गुणठाणानुं कारण थाय ठे जेम सूर्य  
उग्यो के तेज वखते अंधकार नागो अने उद्योत थयो तेनो आनंद  
तेज वखत आव्यो तेम अर्हीआं अशुद्धता नागी अने शुद्धता प्रगट  
थई ते अशुद्धतानु दु ख गयुं अने शुद्धतानो आनंद आव्यो एमांहे  
कालक्रमनुं जोर नथी ॥ ४ ॥

उत्सर्गे एवंजुत ते फलने नीपने हो लाल ॥ ते० ॥  
निसंगी परमात्म रंगथी ते वने हो लाल के ॥ रं० ॥



૬૬ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

સહજ અનંત અત્યંત મહંત સુખે જાયા હો લાલ ॥મ૦ ॥

અવિનાશી અવિકાર અપાર ગુણે વસ્યા હો લાલ ॥ અ૦ ॥૫

અર્થ:-ચૌદમા ગુણઠાણાના અંતે પૂર્ણ ગુણપર્યાય પ્રગટ કર્યા અને તેનું ફલ લીધું તે ઉત્સર્ગે એવંચૂતનયે સેવા થઈ. એવા નિસંગી પરમાત્મ જાવમાં રંગ રાખવાથી એ સેવા વને. પ્રજુજી સહજ સ્વજાવી અંત રહિત અનંત સુખે જરપૂર મહંત ઠો વલી વિનાશ રહિત વિકાર રહિત અથાહ ગુણ વસ્યા ઠો ॥ ૫ ॥

જે પ્રવૃત્તિ જવ મૂલ ઢેદ ઉપાય જે હો લાલ ॥ ઠે૦ ॥

પ્રજુ ગુણ રાગે રક્ત યાય શિવદાય તે હો લાલ ॥ આ૦ ॥

અંશ થકી સર્વંશ વિશુદ્ધપણું ઠવે હો લાલ ॥ વિ૦ ॥

શુકલ બીજ શશિ રેહ તેહ પૂરણ હુવે હો લાલ ॥ તેહ૦ ॥ ૬

અર્થ:-આત્મ સ્વરૂપના અજ્ઞાન અને મિથ્યાત્વ રાગાદિકવમે જે પ્રવૃત્તિ તે જવત્રમણનું મૂલ ઢે અને પ્રજુના શુદ્ધ ગુણોમાં રાગે રક્ત થવું તેજ જવ ત્રમણનું મૂલ ઢેદવાનો મૂખ્ય ઉપાય ઢે તથા સકલ ઉપદ્રવનો નાશ કરનાર આખર શિવદાયી થાય ઢે એટલે પ્રજુ ગુણ રાગ રૂપ શુદ્ધ ઉપયોગ તે શુદ્ધ ઉપયોગનું પરમ કારણ ઢે અને શુદ્ધ ઉપયોગે મુક્તિ ઢે. અંશ થકી સર્વંશ વિશુદ્ધતા પ્રગટે એટલે નૈગમનયથી જે વીતરાગની આજ્ઞા સેવવાની રુચી કહી તે વિશુદ્ધતાના અંશ ઢે અને વિશુદ્ધતામાં ગર્જિત શુદ્ધતા ઢે તે વિશુદ્ધતા સાથે ગર્જિત શુદ્ધતા વધતે વધતે એવંચૂતનયે પૂર્ણ શુદ્ધતા પ્રગટે જેમ બીજનો ચંદ્રમા ઝગ્યા પઠી દિને દિને કલા વધતે વધતે પૂનમે પૂર્ણ સોલે કલાએ પ્રગટ થાય તેમ નૈગમ સેવાથી વિશુદ્ધતા અને ગર્જિત શુદ્ધતા શરૂ થઈ તે તે વધતે વધતે ચૌદમે ગુણઠાણે એવંચૂતનયે પૂર્ણ શુદ્ધતા પ્રગટે ॥ ૬ ॥

તિમ પ્રજુથી શુચિ રાગ કરે વીતરાગતા હો લાલ ॥ કરે૦ ॥

गुण एकत्वे आय स्वगुण प्राग्जावता हो लाल ॥ स्वगुण ॥

देवचंद्र जिनचंद्र सेवा मांदि रहो हो लाल ॥ सेवा ॥

अव्याबाध अगाध आत्म सुख संग्रहो हो लाल ॥ आ ॥ ७

अर्थः—तेम प्रचुथी पवित्र राग ते आखर पूर्ण वीतरागता प्रगट करे. प्रचुना निर्मल गुणनुं एकत्व ध्यान करवाथो परिणति आत्म गुणथी एकता पामी पूर्ण गुण प्रगटे. एम देवोमां चंद्रमा समान एवा शिवगति साहेवनी सेवामां रही आत्मिक अनंत अव्याबाध अगाध सुखने सादिअनंतकाल सुधी जोगवो—राखो ॥ ७ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ पंचदशम श्री आस्तागजिन स्तवन ॥

॥ मन मोह्यु अमारु प्रचु गुणे ॥ ए देशी ॥

करो साचा रंग जिनेश्वरु, संसार विरंग सद्दु अन्यरे ॥

सुरपति नरपति संपदा, ते तो दुरगंधी कदन्नरे ॥ करो ॥ १

अर्थः—हे ! शाश्वत सुख अजिलाथी ज्यो । तमो आस्ताग स्वामीना वचने अने आस्ताग स्वामीना गुणोमां साचो रंग करो. संसार विरंग के० संसारना अनेक प्रकारना जे धन विषय सन्मान आयुष्य कुटुंबादि तेमा मिथ्या दशाए रंग लागे ठे पण ते सर्वे विपरित रंग ठे अने आत्मक्षेत्रथी न्यारो विनाशीक जय जरेलो परतंत्र पूर्वापर क्लेश युक्त ठे देवोना पति ईद्रो अने मनुष्योना पति चक्री राजाड आदिनी संपदा जे अश्व गज स्त्री आदिते तो जगत् जीवनी एंव, दुर्गंधीक अने सडेला अनाज जेवी, बिन्हूलता करावनार, पापकारी दीनता युक्त ठे पण तेमां मोह मदिरानी ठाके अंध धुंध थया जीवोने सुख जणाय ठे पण परमार्थे ते रोग अने रोगना उपचार ठे ॥ १ ॥

जिन आस्ताग गुण रस रमी, चक्षु विषय विकार विरूप रे ॥

विण समकित मते अजिलखे, जिणे चारव्यो शुद्ध स्वरूपरे ॥

૬૦ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

॥ ક૦ ॥ ૨ ॥ નિજ ગુણ ચિંતન રસ રમ્યા, તસુ ક્રોધ અન-  
લનો તાપ રે ॥ નવિ વ્યાપે કાપે જવસ્થિતી, જિમ શીતને  
અર્ક પ્રતાપરે ॥ ક૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ:-શ્રી આસ્તાગ જિન પોતાના જ્ઞાનાદિક અનંત શુદ્ધ ગુણમાં  
રસીઆ અને અલંકાર સમય સ્વતંત્રપણે રમણ કરવાવાંલા છે. ચલાયમાન  
વિષય વિકાર તે આસ્તાગ સ્વામીના ગુણથી બલદો ડુઃખ અને ક્લેશ  
રૂપ છે. જ્યાંસુધી સમ્યક્જ્ઞાન નથી ત્યાંસુધી મૂઢ જીવ એહવા  
વિષયરૂપ દુર્ગુણોનો અજિલાથી હોય પણ જેણે શુદ્ધ ગુણ સ્વરૂપનો  
સ્વાદ ચાખ્યો તે તો નિજ શુદ્ધાત્મ ગુણ ચિંતન રસ જલમાં રમ્યા, તેને  
ક્રોધાદિક કષાય અગ્નિનો તાપ કદાપિ વ્યાપે નહિ પણ તે જવસ્થિ-  
તીને કાપે જેમ સૂર્યનો પ્રતાપ શીત કાપે છે તેમ જાણવું ॥ ૨ ॥ ૩ ॥

જિન ગુણ રંગી ચેતના, નવિ બાંધે અજિનવ કર્મરે ॥ ગુણ  
રમણે નિજ ગુણ બલસે, તે આસ્વાદે નિજ ધર્મરે ॥ ક૦ ॥ ૪

અર્થ:-જે જીવ જિન ગુણોમાં રંગી થયો તે નવા કર્મ બંધ કરે  
નહીં. જિન ગુણ રમણે પોતાના આત્મિક શુદ્ધ ગુણ ઉદ્ધાસ પામે-પ્રગટ  
થાય તેજ પોતાના જ્ઞાન દર્શન ચરણાદિક ધર્મનો સ્વતંત્ર આનંદલે ૪

પર ત્યાગી સગુણ એકત્ત્વતા, રમતાં જ્ઞાનાદિક જાવરે ॥  
સ્વસ્વરૂપ ધ્યાતા થઈ, પામે શુચિ શાયક જાવરે ॥ કરો ૦ ॥ ૫

અર્થ:-જે પુરુષ પુદ્ગલ પરિણતિનું કર્તાપણું જોક્તાપણું રક્ષકપણું  
ગ્રાહકપણું વ્યાપકપણું તથા રાગ દ્વેષ અને મમતા ત્યાગી સ્વસ્વરૂપ  
ધ્યાને એકત્વ રહી જ્ઞાનાદિક રમ્ય રૂપમાં રમણ કરે તે પૂર્ણ સ્વસ્વ-  
રૂપનો ધ્યાતા થઈ પવિત્ર અદ્વય દ્વાયક જાવ પામે ॥ ૫ ॥

ગુણ કરણે નવ ગુણ પ્રગટતા, સત્તાગત રસ થીતી બેદરે ॥  
સંક્રમણે ઉદય પ્રદેશથી, કરે નિર્જરા ટાલે સ્વેદરે ॥ કરો ૦ ॥ ૬

अर्थ:-ज्ञानगुणना अविज्ञागी ठती पर्याय रूप करणे वधतो वधतो अने नवो नवो ज्ञान गुण निर्मल प्रयट थाय तेम दर्शन चरणादि सर्वे गुणोना ठती पर्याय रूप करणे दर्शन चरणादिक गुणो पूर्ण पर्याये निर्मल प्रगटे अने सत्तागते ज्ञानावरण दर्शनावरण अने मोहनीय आदिना रस ( अनुज्ञाग ) अने स्थिति दल सहित छेदे अने प्रदेश उदयथी संक्रमण करी निर्झरा करे अने अज्ञान मिथ्यात्व कपाय तथा जन्म मरण जय शोकादिनो खेद टाळे ॥ ६ ॥

सहज स्वरूप प्रकाशथी, आए पूर्णानंद विलासरे ॥  
देवचंद्र जिनराजनी, करज्यो सेवा सुख वासरे ॥ करो ० ॥ ७ ॥

अर्थ:-सहज शुद्धात्म स्वरूप प्रकाश थवाथी स्वतंत्र अत्यंतिक पूर्णानंद विलास प्रगट थाय माटे देवचंद्र मुनि कहे ठे जिनराजनी सेवामां रही शुद्ध आत्म सत्ताजूमिमां स्वतंत्र सुखे वास करज्यो ॥ ७ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षोडशम श्री नमिश्वर स्वामी जिन स्वतन ॥

॥ हो षोड पंखीडा ॥ ए देशी ॥

जगत दिवाकर श्री नमिश्वर स्वामजो, तुज मुख दीठे नाठी जूळ अनादिनीरे लो ॥ जाग्यो सम्यग ज्ञान सुधारस धामजो, ठांमी दुर्जय मिथ्यानींद प्रमादनीरे लो ॥ ज० ॥ १ ॥

अर्थ:-जगत्मां ज्ञानरूप दिवाकर, अज्ञान अने मिथ्यात्व रूप अंधकार नाश करवावाला तथा सकल ड्रव्यनी शुद्ध सत्ता प्रकाश-वावाला श्री नमिश्वर स्वामी तमारूं मुख दीठे एटले तमारा वदन कमलमांथी मेघ ध्वनी पेठे गजारव करती शुद्ध स्याद्वाद नयनी देशना सांचलवाथी हमारी अनादिनी जूळ नाठी अने सम्यक्ज्ञान रूप अमृतनुं घर उघडयुं-जणायुं. के जेमांथी अनंत प्रकारनुं अमृत

૭૦ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

હમે પીએ એટલે હમારા અનાદિના મિથ્યાત્વાદિ અસાધ્ય રોગો જાય  
અને જ્ઞાન અને અચલ સ્વતંત્ર વીર્યાદિની પરમ પુષ્ટિ થાય અને તેથી  
હમારી ડુઃખે તજાય એવી મિથ્યાત્વ અને પ્રમાદની નિંદ્રા હતી તે  
હમે ઠોડી ॥ ૧ ॥

સહજે પ્રગટ્યો નિજ પર જાવ વિવેક જો, અંતર આતિમ  
ઠેક્યો સાધન સાધવેરે લો ॥ સાધ્યાલંબી થઈ જ્ઞાયકતા ઠેક  
જો, નિજ શુદ્ધ પરિણતિ થિર નિજ ધર્મ રસે ઠવેરે લો ॥જ૦૨

અર્થ:-શુદ્ધ નયે અમૃત સમાન તમારી વાણી જાણી આત્મ લક્ષણ  
અનાત્મ લક્ષણ તિન્ન તિન્ન જાણી સહજે નિજ પરજાવ વિવેક પ્રગટ  
થયો અને વંધ માર્ગ મોક્ષ માર્ગ સંવર માર્ગ અને આશ્રવ માર્ગ એ  
આદિ માર્ગ સાક્ષાત્ જાણ્યા. હે પ્રજ્ઞુજી ! તમારા વચનથી ડલટા  
અને દૂર રહેવાવાલા કુમતિપણે ચાલનાર અને ચલાવનારના જવ ત્રમણ  
કરતાં કેવા હવાલ થશે ? તે વિચારતાં ચિત્તમાં ધ્રુજારો આવે છે વલી  
તે કુમતિઉં, ઉપકારીના હિતકારી વચનોથી દૂર રહે અને મોક્ષ  
માર્ગમાં પ્રેરતાં ડલટા કોપ કરે છે તેને શું કરીએ ? પણ હંમારો  
અંતર આત્મા તમારાં પરમ જ્ઞાન પરમ ન્યાય પરમ દયા ત્રસ્યાં વચન  
સાંતલી શુદ્ધ સાધ્ય જાણી સાધન સાધવામાં ઠેક્યો એ પ્રજ્ઞુનો પરમ  
ઉપકાર છે. હમારી જ્ઞાયકતા પરાલંબન તજી શુદ્ધ સાધ્ય આલંબને  
ઠેક વલગી એટલે પ્રજ્ઞુની આણા આલંબનમાં પણ ટકી તેથી નિજ  
પરિણતિ નિજ જ્ઞાનાદિક શુદ્ધ સ્વજાવિક આનંદમાં મગ્ન થઈ-રમવા  
લાગી રહી ॥ ૨ ॥

ત્યાગીને સવિ પર પરિણતિ રસ રીંઝ જો, જાગી છે નિજ  
આત્મ અનુજવ ઈષ્ટતારે લો ॥ સહજે બુટી આશ્રવ જાવની  
ચાલજો, જાલમ એ પ્રગટી સંવર શિષ્ટતારે લો ॥જ૦ ॥ ૩ ॥

अर्थः—सकल पुद्गल परिणति रस रीज त्यागीने आत्म गुण अनुत्तव अज्यासमां ईष्टपणुं जाग्युं तेथी सहजे अनादिनी आश्रव जावनी चाल—टेव हती ते वुटी. एवी महा जोरावर संवर जावनी शिष्टता के० उत्तम चाल प्रगट थई ॥ ३ ॥

बंधना हेतु जे ठे पाप स्थानजो, ते प्रभु जगते पाम्या पुष्ट प्रशस्ततारे लोल ॥ ध्येय गुणे बलग्यो पूरण उपयोग जो, तेहथी पामे ध्याता ध्येय समस्ततारे लोल ॥ ज० ॥ ४ ॥

अर्थः—बंध हेतु जे जे पापनां स्थानक हतां ते प्रभु जक्तिप पलटी शुद्धात्म पुष्ट प्रशस्तपणे थयां ते नीचे प्रमाणे—

( १ ) प्राणातिपातपणे जे परिणाम हतो ते पलटी डव्य जाव दया परिणामे परिणम्यो.

( २ ) अनृत वचन परिणाम हतो ते सत्य अमृपा परिणामे परिणम्यो.

( ३ ) अदत्त ग्रहणपणे परिणाम ते शुद्धात्म तत्त्व ग्राहकपणे परिणम्यो.

( ४ ) पुद्गल डव्य गुण पर्याय मथन रूप कुशिल परिणाम ते स्वगुण पर्याय समाधि कामी सहजानंद रमणी थयो.

( ५ ) पर ग्रहण रूप परिग्रह परिणाम ते शुद्ध स्वगुण पर्याय ग्राही थयो.

( ६ ) क्रोध परिणाम पलटी परम क्रमा रूप थयो.

( ७ ) मान परिणाम मृदुता रूप थयो.

( ८ ) माया परिणाम आर्यव रूप थयो.

( ९ ) लोभ परिणाम मुक्ति संतोष रूप थयो.

( १० ) राग परिणाम वीतरागता रूप थयो.

( ११ ) द्वेष परिणाम अद्वेष रूप थयो.

७२ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

- ( १२ ) क्लेश परिणाम अकलुष समाधि रूप थयो.  
( १३ ) अच्याख्यान परिणाम सुजाषित थयो.  
( १४ ) पैशुन्य परिणाम मिथ्यात्वादिक दूर्गुणोना विद्र मर्म  
जाणवा देखामवावालो थयो.  
( १५ ) परपरिणतिमां रति अरति परिणाम हतो ते विरति  
निवृत्ति रूप थयो.  
( १६ ) पर जीवना अपवाद बोलवा रूपपरिणाम हतो ते विज्ञाव  
अपवाद बोलवा रूप परिणाम थयो.  
( १७ ) माया मृषा परिणाम—ते अमाय सत्य रूप थयो.  
( १८ ) मिथ्यात्व शब्द परिणाम हतो—ते सम्यक्त्व निःशब्द  
परिणाम थयो.

एम अठारे पाप स्थानक पलटो निस्पाप अवंधस्थानी थयां.  
अशुद्ध उपयोग निर्मल थई अनंत गुण पज्जवमयी सहज शुद्धात्म  
ध्येयमां पूर्ण अखंरुपदे लाग्यो—थिर थयो तेथी ध्याता ध्येयनी  
पूर्ण समाधि पाम्यो ॥ ४ ॥

जे अति दुस्तर जलधि समो संसारजो, ते गोपद सम  
कीधो प्रभु अलंबनेरे लोल ॥ जिन आलंबनी निरालंबता  
पामे जो, तेणे हम रमशुं निज गुण शुध नंदनवनेरे  
लोल ॥ ज० ॥ ५ ॥

अर्थः—संसार समुद्र तरवो अति दुस्तर हतो ते जेस गायना  
पगलाथी पृथ्वी उपर पमेला खाडमां जरायेलुं पाणी सहजे उलंघी  
जवाय तेम ते जवसमुद्र प्रभु आलंबने तरवो अति सुगम थयो.  
एम प्रभुना आलंबने जे वत्ते ते निरालंबपणुं पामे एटले ते पुरुषने  
कोई अन्य पुरुष के अन्य वस्तुनुं आलंबन लेवानी कदापी जरूर रहे

नहीं. ते माटे हमे प्रभु अवलंबने निराखंबता पामी निज शुद्ध गुण  
नंदनवनमां आनंदे रमीशुं ॥ ५ ॥

साध्यादि निज प्रभुताने एकत्त्वजो, दायक जावे आए  
निज रत्नत्रयीरे लोल ॥ प्रत्याहारी धारे धारणा शुद्धजो,  
तत्त्वानंदी पूर्ण समाधि लये मईरे लोल ॥ ज० ॥ ६ ॥

अर्थ:-शुद्ध साध्य आदि निज प्रभुतामां एकत्व परिणामे रमे  
एटले शुद्ध साध्य जाणी सिद्धि करवामां शुद्ध साधनाए निज प्रभुता  
के० निज शक्तिमां एकत्वपणे धिर उपयोगे प्रवर्त्ते तेने पोताना  
केवलज्ञान केवलदर्शन अने केवल चरणरमण दायकजावे थाय.  
परजावथी परिणाम पाठो वाली एटले प्रत्याहार करी शुद्ध ध्येयमां  
धैर्यपणे धारणा राखे, वीर्य अचल राखी अमोल रहे ते तत्त्वानंदी  
जीव पूर्ण समाधिमां लयलीन थाय एटले विकल्पे व्यापेलो उपयोग  
शुद्ध अचल निज रूपमां लय पामी परम अचल समाधिमय रहे ॥ ६ ॥

अव्याबाध स्वगुणनी पूरण रीत जो, कर्ता भोक्ता जावे  
रमणपणे धरेरे लोल ॥ सहज अकृत्रिम निर्मल ज्ञानानंदजो,  
देवचंद्र एकत्त्वे सेवनथी वरेरे लोल ॥ ज० ॥ ७ ॥

अर्थ:-अनंता गुणो अव्याबाधपणे राखवानी एज पूर्ण रीत ठे के  
स्वगुण कर्ता भोक्तापणामां पोताना परिणामनुं रमण अखंड समय  
एकत्वपणे धारे-राखे एटले देवमां चंद्रमा समान नमिश्चर स्वामीनी  
सेवामां परिणाम एकत्वपणे राखवाथीज सहज स्वजाविक निर्मल  
अनुपचरित ज्ञानानंद पामीए ॥ ७ ॥

॥ समाप्त ॥



७४ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

॥ अथ सप्तदशम श्री अनीलजिन स्तवन ॥

॥ देखो गति दैवनीरे ॥ ए देशी ॥

स्वारथ विणु उपगारता रे, अद्भुत अतिशय रिद्धि ॥  
आत्म स्वरूप प्रकाशता रे, पूरण सहज समृद्धि ॥ अनील  
जिन सेवीएरे ॥ नाथ तुमारी जोमिन को त्रिहुं लोकमेंरे,  
प्रभुजी परम आधार अबो जवि थोकनेरे ॥ १ ॥

अर्थ:-हे अनीलनाथ स्वामी ! सत्तरमा तीर्थपति तमे पोतानो  
स्वार्थ तो सिद्ध कख्यो ठे हवे हमाराथी तमारे कांई पण स्वार्थ नथी  
ते ठतां पण तमे हमारा सरखा जव्य जीवो उपर परोपकार करो ठो  
वली अद्भुत अतिशयवंत ठो. एटले तमारा अपायापगमन  
अतिशय वढे हमारां पाप डुरित दुःख नाश थाय ठे वली तमारा  
वचनातिशय वढे हमे हमारी जाषामां तमारां वचन सहजे समजीए  
ठिये वली तमारा परम ज्ञानातिशय पसाये हमोने अनात्मथी जिन्न  
शुद्धात्म स्वरूपनुं ज्ञान थाय ठे वली तमारा पूजातिशय पसाये हमे  
हमारा पूज्य परमपदने पामीए एवी तमारी अतिशयादिक तथा  
अष्ट महा प्रातिहार्यादि तथा अंतरंग केवलज्ञान दर्शनादिकनी  
जाव लक्ष्मी ठे वली तमे शुद्धात्म स्वरूपना प्रकाश करवावाला पूर्ण  
सहज समृद्धिवंत ठो माटे हमे अनील प्रभु तमोने सेवीए. तमे  
हमोने संसार दुःखथी ठोडाववावाला हमारा नाथ ठो. त्रिलोकमां त्रण  
काले तमारी जोमीनो कोई अन्य हेतू के० उपगारी नथी तेथी  
प्रभुजी तमे थोक बंध जवि जीवोने परम आधार ठो ॥ १ ॥

परकारज करता नहिरे, सेव्या पार न हेत ॥ जे सेवे तन-  
मय थईरे, ते लहे शीव संकेत ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थ:-प्रभुजी तमे परजीव तथा पर पुद्गल कार्यना कर्ता नथी

अने तमने सेवनार जविने निश्चयधी तमे पालवावाला के राखवावाला के पार पमाडवावाला नथी पण तमने जे तन्मय थई सेवे ठे तेने तमे जाणे समस्या बंध सलाहबंध शिव आपो एम जणाय ठे पण तेनी सेवानुं तेज पुरुष शिवसुख फल पामे ठे एमां कांई शंका नथी ॥ १ ॥

करता निज गुण वृत्तितारे, गुण परिणति उपजोग ॥ निप्रयास गुण वर्त्तितारे, नित्य सकल उपयोग ॥ अनील ० ३

अर्थ:-प्रभुजी तमे तो सकल समय बिना प्रयासे निज गुण प्रवृत्तिना कर्ता ठो अने तमारे स्वगुण परिणतिनोज सकल समय उपजोग ठे, निःप्रयासे सहजे गुण वर्त्ते ठे अने तेनो उपयोग पण तमारे सकल समय अखंड ठे ॥ ३ ॥

सेव जक्ति जोगी नहीरे, न करे परनो सहाय ॥ तुज गुण रंगी जक्तनारे, सहजे कारज आय ॥ अनील ० ॥ ४ ॥

अर्थ:-तमारी आज्ञा सेववावाला तमारी सेवा जक्ति करे तेना तमे जोगी नथी अने तमे परनी सहाय करवावाला पण नथी पण ताहरा ज्ञानादिक गुणोमां रंगी थई तमारी आज्ञा सेवे ते जक्तोनां सहजे कार्य थाय ॥ ४ ॥

किरिया कारण कार्यतारे, एक समय स्वाधीन ॥ वर्त्ते प्रति गुण सर्वदारे, तसु अनुजव लयलीन ॥ अनील ० ॥ ५

अर्थ:-तमारे अनेक गुणोना कार्यनी क्रिया कारण अने कार्यपणुं प्रति गुणोनुं दरेक समयमां समकाले तमारे पोताने स्वाधीन ठे ने अनुजव रस स्वादमां तमे लयलीन ठो ॥ ५ ॥

ज्ञायक लोकालोकनारे, अनील प्रभु जिनराय ॥ नित्या-नंद मयी सदारे, देवचंद्र सुखदाय ॥ अनील ० ॥ ६ ॥

अर्थ:-देवचंद्र मुनि कहे ठे के अनील प्रभु अगीआरमा धारमा अने तेरमा गुणठाणाना सामान्य जिनोमां राजा अने लोक

७६ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

अलोकना सकल रूपी अरूपी द्रव्य गुण पर्यायना उत्पाद् व्यय ध्रुव  
त्रिकाल प्रवर्त्तीना ज्ञाता द्रष्टा नित्य अखंड पूर्ण स्वतंत्र अनंत  
आनंदमयी तथा सकल जीवोने सुखना दातार ठो ॥ ६ ॥

॥ समाप्त ॥

॥ अथ अष्टादशम श्री जशोधर जिनराजनुं स्तवन ॥

॥ राग मारू ॥ ए देशी ॥

वदन पर वारिहो जशोधर वदन पर वारिहो ॥ मोह  
रहित मोहन जयाको उपशम रस क्यारि हो ॥ अहो  
उपशम रस क्यारिहो ॥ व० ॥ १ ॥

अर्थः—हे जशोधर स्वामी ! शरद पूनमना चंद्रमा समान तमारा  
वदन कमलनी बलिहारी जांउं—वारी जाउं. मोहन जया माताने आनंद  
आपनारा मोहने जीतेला जिव जीवोना हृदय कमलमां उपशम रस  
सींचवावाला पोते उपशम रसना क्यारा ठो ॥ १ ॥

मोह जीव लोहको कंचन, करवे पारस जारि हो ॥  
समकित सुरतरु उपवन सिंचन, वर पुष्कर जलधारि हो ॥  
॥ अहो० ॥ व० ॥ २ ॥

अर्थः—माहारा सरखा मोही जीव लोह सरखाने कंचन करवा माटे  
तमे परम पारस ठो एटले अज्ञान मिथ्यात्व क्लेश रूप कीट मटावी  
आत्म शुद्धता रूप सुवर्ण करवावाला ठो, समकित रूप कल्पवृक्षनी  
बागने सींचवा प्रधान पुष्कलावर्त्त मेघनी धारा समान ठो एटले  
तमारा वदन कमलथी शुद्ध तत्त्वामृत अखंड धाराए वरसे ठे ॥ २ ॥

सर्व प्रदेश प्रगट सम गुणथी, प्रवृत्ति अनंत अपहारी

हो ॥ परम गुणी सेवनये सेवक, अप्रशस्तता वारी हो ॥

॥ अहो० ॥ व० ॥ ३ ॥

अर्थ:-प्रजुजीने सकल प्रदेशे अनंता गुणो शुरू अने अनंत पर्यायो पूर्ण प्रगट थया तेथी विजाव प्रवर्ति अनंती नाश करी. एव्हा परम गुणीनी आह्वा सेववावाळा सेवके सकल अप्रशस्तता निवारी ठे पटले प्रजुनी सेवा करनार जिवि जीवनी आत्म विरुद्धता अनंती टली ॥ ३ ॥

पर परिणति रूची रमण ग्रहणता, दोष अनादि निवारी हो।  
देवचंड प्रजु सेवन ध्याने, आनम शक्ति समारी हो ॥

॥ अहो० ॥ व० ॥ ४ ॥

अर्थ:-ए प्रजुनी सेवाथी पुद्गल परिणतिनी रूचि रमण अने ग्रहणतानी देव रूप अनादिनो दोष निवारी निज शुरू परिणतिनी रूचि रमण अने ग्रहण करुं देवचंड मुनि कहे ठे जे जीवे प्रजु आणा सेववामां अखंरु ध्यान राखुं तेणे पोतानी शुद्धात्म परम शक्ति संजाली वीधी ॥ ४ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकोनविंशतिम कृतार्थ जिन स्तवन ॥

॥ अधिका ताहरो हुं अपराधि ॥ ए देशी ॥

सेवा सारज्यो जिनजी मन साचे, पण मत मागो जाई ॥  
महेनतनो फल मागी लेता, दास जाव सवि जाई ॥ से० ॥ १

अर्थ - हे जिनराज ! साचे मने सेवानुं सार फल आपजो पण हे जाई ! सेवानुं फल मागजो नहि. कोई कोईनी सेवा करी तेनी महेनतनु फल मागे तो तेनी सेवानो कामी नथी पण तेना दाम रूप फलनो कामी ठे. जो दाम रूप फलनो कामी ठे तो तेमा प्रजुनु दामपणुं

७७ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

शुं ? पोताना दाम रूप फलनुं दासपणुं कछुं एटछे स्वामीनुं दासपणुं  
न रहुं माटे कामना रहित सेवा करवी ॥ १ ॥

जक्ति नहि ते तो जाडायत, जे सेवा फल जाचे ॥ दास  
तिके जे घन जरि निरखी, केकईनी परे माचे ॥ सेवा ० ॥ २

अर्थ:-जे सेवाना फलने ईच्छी सेवा करे ते जक्तिवंत नथी पण  
जानायत ठे. दास तेनेज कहीए जे सदा स्वामीना हित समुदायमां  
राजी रहे-वत्ते, स्वामीने गुण आय एम जूए वली स्वामीनी ईच्छाए  
वत्ते जेम केकई राणी पोताना दशरथ स्वामीनी जक्तिमां अत्यंत रची  
मची रहेती हती तेम फलकामना रहित प्रभुनी आझाए वत्ते  
ते साचो सेवक जाणवो ॥ २ ॥

सारी विधि सेवा सारंतां, आण न कांइ जाजे ॥ हूकम  
हाजर खिजमति करतां , सहजे नाथ निवाजे ॥ सेवा ० ॥ ३

अर्थ:-सकल प्रकारे रूढी विधिए आणा सेवीए अने कांइ पण  
आणा विराधीए नहीं वली प्रभुना हूकममां हाजर रही खिजमत  
करीए तो सहजे स्वामीनी मेहेरवानी फले ॥ ३ ॥

साहिब जाणो ठो सहु वाते, शुं कहीए तुम आगे ॥  
साहिब सनमुख अमे मागणनि, वात कारमी लागे ॥ सेवा ० ॥ ४

अर्थ:-साहेब पोते केवलझाने करीने सर्वे जाणो ठो के जे सेवामां  
हाजर ठे ते परमानंदना कामी ठे तो हमे तुम आगे शुं कहीए ?  
पण साहेब सन्मुख हमे मागण कांइ मागवा रूप वात करीए तो ते  
वात असोहामणी लागे माटे जाणीए ठिये के जे प्रभुनी अखंर  
आणा सेवशे ते अखंर अर्चित्य फल पामशे ॥ ४ ॥

स्वामि कृतारथ तो पण तुमथी, आश सहुको राखे ॥ नाथ  
विना सेवकनी चिंता, कोण करे विणु दाखे ॥ सेवा ० ॥ ५ ॥

अर्थ:-शुज क्रियानो स्वामी ते शुज फल पामे अने शुद्ध स्वभाव

प्रवर्त्तानो स्वामी शुद्धात्म संपदा पामे ए निश्चय ठे पण प्रजुजी जेवा परम दयालनी आशा तो सर्वे राखे. माहुरा जेवा रंक पुरुषोने मोक्ष मार्गमां प्रेरवावाला नाथ विना हमारी चिंता कोण मिटावे ? एटले हमारुं चिंतित देखाड्या विना कोण हमारी चिता करे ? वली हमारुं चितित प्रजुजी तमे जाणोज ठो पण बालकनी पेठे महारेथी वोढ्या विना न रहेवाय तेथी कहुं हुं ॥ ५ ॥

तुज सेवा फल माग्यो देतां, देवपणो थाये काचो ॥ विण माग्यां वंठित फल आपे, तिणे देवचंज पद साचो ॥ से० ॥ ६

अर्थ:-जेणे तमने सेव्या तेनुं फल तमे तेने माग्युं आपो तो तमे सेवाना अर्थी अथवा रागी कहेवाळ तेथी तमारुं देवपणुं काचुं गणाय पण माग्या विना वंठित फल आपो ठो तेथी तमारुं देवमा चंजमा समान परम देवपद साचुंज ठे ॥ ६ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ विंशतिम श्री धर्मीश्वर जिन स्तवन ॥

॥ अखीयां हरखन लागी हमारी अखीयां ॥ ए देशी ॥ राग प्रजाती ॥

हुं तो प्रजु वारि हुं तुम मुखनी, हुं तो जिन बलिहारी तुम मुखनी ॥ समता अमृतमय सुप्रसननी, तरेय नही राग रुखनी ॥ हुं० ॥ १ ॥

अर्थ:-हे जिनेश्वर ! तमारा मुखनी हुं वारी जाउ-बलिहार जाउं हुं एटले हे जिनेश्वर ! तमारा मुख कमलनी जे वाणी वरसे ठे ते सकल जीवोना पाप मेलने धोवावाली ठे. जीवो स्वपर ड्रव्य अने जाव प्राणनी हाणी करी व्यवहार अने निश्चयथी स्वपर मुखनी हाणी करे ठे पण प्रजुजी माहणतानो उपदेश करी सकल जीवना ड्रव्य जाव प्राणनी हाणी थती अटकावे ठे ते ड्रव्य प्राण-इंद्रियो

૫૦ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

( ૫ ) બલ ( ૩ ) શ્વાસોશ્વાસ ( ૧ ) આયુષ્ય ( ૧ ) એમ મૂલ્ય ચાર છે અને તેના ઉત્તર જેદ દશ છે અને જાવ પ્રાણ જ્ઞાન દર્શન ચરણ અને વીર્ય એ મૂલ્ય ચાર છે તેના ઉત્તર જેદ અનેક અથવા અનંત પણ છે. દ્રવ્યપ્રાણે કરીને જીવ વ્યવહારીક સુખ જોગવે છે અને તે દ્રવ્ય પ્રાણની હાણી કરવાથી વે પ્રકારનું દુઃખ થાય છે જેમ સ્પર્શ ઇન્દ્રિયની હાણી કરવાથી તે સ્પર્શ ઇન્દ્રિયનું ઠેદન જેદન થાય તેનું દુઃખ ઉપજે છે અને સ્પર્શ ઇન્દ્રિય વડે જે જે સુખ લેતો જોગવતો હોય તે સુખ જાય તેનું દુઃખ પણ જીવ જોગવે છે તેમજ રસના ઇન્દ્રિયને ઠેદવાથી તે ઠેદન જેદનનું દુઃખ ઉપજે છે અને રસના એ કરીને વિવિધ પ્રકારના સ્વાદ લેતો હોય તે જાય તેનું દુઃખ ઉપજે છે એમજ પાંચે ઇન્દ્રિયોમાં પણ જાણવું વલી કાયબલનો નાશ કરવાથી દુઃખ ઉપજે છે અને કાયબલ વળે જે સુખ લેતો હોય તે જાય તેનું દુઃખ થાય છે એમ વચનબલમાં અને મનબલમાં પણ જાણવું વલી શ્વાસોશ્વાસની હાણી કરવાથી શ્વાસોશ્વાસ રોકાયાનું દુઃખ ઉપજે છે અને શ્વાસોશ્વાસ વડે જે સુખ લેતો હતો તે સુખ જાય તેનું દુઃખ થાય છે અને આયુષ્યની હાણી કરવાથી આયુષ્ય હાણીનું દુઃખ ઉપજે છે અને આયુષ્ય વળે જે સુખ લેતો હતો તે સુખ જાય તેનું દુઃખ ઉત્પન્ન થાય છે એમ એ દશે દ્રવ્ય પ્રાણની હાણીથી વેદના, જય, શોક, કષાયાદિ દુઃખ ઉપજે છે અને અવેદના નિર્જય અશોક અકષાયનું સુખ નાશ થાય તે દુઃખ ઉપજે છે વલી એ દ્રવ્યપ્રાણની હાણી કરતાં જીવ એક એકથી વૈર વિરોધ બાંધી વૈર વિરોધની પરંપરા વધારી પ્રાયે અનંતકાલ સુધી દુઃખી થાય છે વલી એ દ્રવ્યપ્રાણની હાણી તે સ્વપર જાવપ્રાણની હાણીનું કારણ પણ થાય છે તેથી જ્ઞાનાવરણાદિક આઠે કર્મ પોતે બાંધી અને બીજાને પણ કર્મબંધના કારણ થઈ અનંત કાલ સંસારમાં રૂલે રૂલાવે છે. હવે જાવપ્રાણમાં અજ્ઞાન આદરી

अज्ञान पमाडी जूठा विकल्पो करी करावी पोताना निश्चय ज्ञान  
 आनंदनी हाणी करे ठे अने वीजा जीवोना पण निश्चय ज्ञानानंदनी  
 हाणी करावे ठे एम ज्ञानानंद निश्चय सुखनो नाश करवो अने  
 अज्ञान दुःख खडु करवुं ए पण वंने प्रकारे दुःख जाणवुं वली अशुरू  
 निश्चय करी पोते मिथ्यात्व आदरीए अने वीजाने मिथ्यात्वनो आदर  
 करावीए तेथी सम्यक्ज्ञाव निश्चय सुखनो नाश अने मिथ्यात्व  
 ज्ञाव दुःखनी उत्पत्ति ए पण वंने प्रकारनुं दुःख जाणवुं वली विषय  
 कपायाचरणे शुरू स्वज्ञावाचरण थिरता रूप निश्चय सुखनो नाश करीए  
 अने एम अन्य जीवने पण विषय कपायाचरण करावी शुरू  
 स्वज्ञावाचरण निश्चय सुखनो नाश करावीए तो शुरू स्वज्ञावाचरण  
 निश्चय सुखनो नाश अने विषय कपायाचरता दुःख अग्निनुं उपजवुं  
 थाय ठे ए पण वंने प्रकारे दुःख जाणवुं वली ज्ञावलब्धि आत्म  
 वीर्य चलायमान करी करण ईद्रियोमां वीर्य वाल बाधक जावे  
 फोरवी अने वीजा पासे फोरवाववाथी ज्ञावलब्धि निश्चय सुखनो  
 नाश अने करण वीर्य वने बाधकताए प्रवर्त्तव्ये दुःखनुं उपजवुं थाय  
 ठे ए पण वंने प्रकारे दुःख जाणवुं एम स्वपर डव्य ज्ञाव प्राणनी  
 हाणी ते स्वपर जीवने अनेक सुख नाशनुं अने अनेक दुःख उत्पत्तिनुं  
 कारण ठे वली स्वपर जीवने दुःख उपजाववुं ते ज्ञान नहि अने  
 स्वपर सुखनी हाणी करवी लूटवुं ते न्याय पण नथी अने दया पण  
 नथी एम जाणी अनंत ज्ञान न्याय अने दयावंत प्रजुजी तमे माहण-  
 तानो उपदेश कखो तेथी तमारा मुखकमलनी वलिहारी ठे तमारा  
 शिवाय वोळू सांख्यादि अन्य अनेक अशुरू अतिप्रायवाला तेनाज  
 कहेला शास्त्रोथी ते पोते ज्ञान न्याय दया रहित जणाय छे माटे हे  
 प्रजुजी ! तमारा वचननी शोचा आगल सकल कुमतिउनुं वल हारी  
 थाकी जाण ठे आ भाव अहिंशां सक्षेपथी लख्यो ठे पण सिद्धांतोमां



૫૨ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

૬ વિષે બળો અધિકાર છે તે સુઙ્ગ પુરુષો વિશેષથી વિચારી લેશે. તમારી વાણી સમતા રૂપ અમૃત રસે ઝરેલી છે વલી ચિત્તને તથા આત્માને સુપ્રસન્ન કરવાવાલી અને અજ્ઞાન મિથ્યાત્વ કષાય અગ્નિને બુઝાવવાવાલી અને શાંતિ આપવાવાલી છે વલી રાગાદિ વિજ્ઞાવના પદ્ધ રહિત છે અને વિજ્ઞાવના પદ્ધથી પાઠી વાલવાવાલી છે પણ વિજ્ઞાવ સન્મૂલ જવાવાલી નથી ॥ ૧ ॥

ઝમર અધર સિસ ધનુ હર કમલ દલ, કીર હીર પુન્યમ શશીની ॥ શોજા તુઠ પ્રજુ દેખત યાકી, કાયર હાથે જિમ અસિની ॥ હું ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-પ્રજુના ઝમર આદિકની શોજા દેખતાં કમલ દલ કીર હીર પૂનમ શશિ આદિકની સર્વે શોજા તે તુચ્છ દેખાય છે. ઉપમેય આગલ જે જે ઉપમા કહી તે સર્વે કાયર હાથે તરવાર સરખી જાણવો ઇટલે પ્રજુના રૂપને અન્ય ઉપમા સંજ્ઞવેજ નહીં માટે અનુપમ રૂપ છે ॥૨

મન મોહન તુમ સનમુલ નિરખત, આંલ ન તૃપતિ અમ્હચી ॥ મોહ તિમિર રવિ હરલ ચંદ્ર ઢવી, મુરત ૬ ઉપસમચી ॥ હું ૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ:-હે મનને પ્રમોદ આપવાવાલા ! તમારા સન્મૂલ જોતાં હમારી આંલ તૃપ્તી પામતી નથી ઇટલે વેગલી લસવા ચાહાંતી નથી વલી પ્રજુની ઢવી મોહતિમિરને હરવા સૂર્ય સમાન અને હરલ ઉપજાવવાને પૂનમના ચંદ્રમા સરખી ઉપશમ રસે ઝરી ઉપશમ રસ વરસાવતી આનંદ આપનારી છે ॥ ૩ ॥

મનની ચિંતા મટી પ્રજુ ધ્યાવત, મુલ દેખતાં તુમ જિનજી ॥ ઈંદિ તૃષા ગઈ જિનેશ્વર સેવતાં, ગુણ ગાતાં વચનની ॥ હું ૦ ॥ ૪ ॥

अर्थ:-प्रजुना निर्मल ज्ञानादिक गुण ध्यातां अने प्रजु मुखथी  
शुद्ध नय स्याद्वाद अमृत मय वचन सांजली प्रजु रूप देखतां हमारुं  
रूप सिद्ध समान जाणी मननी चिंता मटी गई. जिनेश्वर सेवतां  
अने वचने करी प्रजु गुण गातां ईद्रिय विषयोनी तृष्णा समी गई ॥४

मीन चकोर मोर मतंगज, जल शशी घन नीचनथी ॥  
तिम मो प्रति साहिव सुरतथी, ओर न चाहुं मनथी ॥हुं॥५

अर्थ:-मत्स्य जेम पाणीथी, चकोरपंखी चडमा देखीने, मोर मेघ  
देखीने अने हाथी तलाव आदि नीरवाली उंडाण जग्याथी जेम  
मग्न रहे ठे तेम मने साहेबनी सूरत देखी परम आहूदाद उपजे ठे  
तेथी प्रजुनी प्रजुता शिवाय हुं अन्य पदार्थों कुदेव कुवचनादि  
चाहातो नथी ॥ ५ ॥

ज्ञानानंदन जाया नंदन, आस दास नीयतनी ॥ देवचंद्र  
सेवनमें अहनिश, रमज्यो परिणति चित्तनी ॥ हुं ॥ ६ ॥

अर्थ:-हे ज्ञानानंद दातार ! जाया माताना नंदन, जाया माताने  
आनंद आपनार, दासनी निश्चय शुद्ध स्वरूपनी आशा पुरो. देवचंद्र  
मुनि कहे ठे के हमारा चित्तनी परिणति प्रजु आज्ञा सेवामां अह  
निश रमज्यो ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकविंशतिम श्री शुद्धमती जिन स्तवन ॥

श्री जिन प्रतिमा हो जिन सरखी कही ॥ ए देशी ॥

श्री शुद्ध मति हो जिनवर पूरवो, एह मनोरथ माल ॥  
सेवक जाणी हो महेरवानी करी, जव संकटथी टाल ॥श्री॥१

૫૪ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

અર્થ:-શ્રી શુદ્ધમતી જિનેશ્વર હમારી મનોરથ માલા પૂરી કરો  
મને તમારો સેવક જાણી મહેરવાની કરી જવ સંકટથી ડગારો ॥૧॥

પતિત ઉદ્ધારણ હો તારણ વઢું, કરે અપણાયત એહ ॥  
નિત્ય નિરાગી હો નિસ્પૃહ જ્ઞાનની, શુદ્ધ અવસ્થા દેહ ॥શ્રી૦॥૨

અર્થ:-જેને તાહરા વચનની સમ્યક્ પ્રકારે રુચિ પતિત છે તેને તું  
સંસાર સમુદ્રથી ઉદ્ધારવાવાલો અને વાત્સલ્યતા રાખી તારવાવાલો  
હું તો હમને પોતાના જાણી અપણાયત કર. પ્રજુ તું નિત્ય નિરાગી  
પર જન પરવસ્તુની સ્પૃહા રહિત જ્ઞાનમય શુદ્ધ અવસ્થાવંત હું અને  
તાહરો શુદ્ધ જ્ઞાયક દેહ છે ॥ ૨ ॥

પરમાનંદિ હો તું પરમાતમા, અવિનાશી તુજ રીત ॥ એ  
ગુણ જાણી હો તુમ વાણી થકી, ઠહરાણી મુજ પ્રીત ॥શ્રી૦॥૩

અર્થ:-પ્રજુ ઉત્કૃષ્ટ આનંદવંત પરમાત્મા હો. આત્મા તો જીવ માત્ર  
કહેવાય છે પણ તે પોતે પોતાના પરમજ્ઞાવ જોગી નથી પણ પ્રજુ  
અલંકર સમય પરમ સ્વતંત્ર જ્ઞાવ જોગી માટે પરમાત્મા હો. તમે જે  
સ્વજ્ઞાવ આનંદ લેવાની રીત ગ્રહી તે તાહરી રીત અવિનાશી છે એ  
ગુણ તમારી વાણીથી મેં જાણી અન્યથી પ્રીત તોડી તુમથી પ્રીત  
જોડી છે ॥ ૩ ॥

શુદ્ધ સ્વરૂપી હો જ્ઞાનાનંદની, અવ્યાવાધ સ્વરૂપ ॥ જવ-  
જલ નિધિ હો તારક જિનેશ્વર, પરમ મહોદય જૂપ ॥શ્રી૦॥૪

અર્થ:-પ્રજુ સ્વદ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ અને જાવે પૂર્ણ શુદ્ધ સ્વરૂપી જ્ઞા-  
નાનંદમય જ્ઞાનાનંદી હો, સકલ સમય અવ્યાવાધમયી હો, હે જિને-  
શ્વર ! તમે જવદરિયેથી જવ્યને તારવાવાલા હો અને પૂર્ણ સિદ્ધિ પદ  
રૂપ પરમ મહોદય પદવીના રાજા હો ॥ ૪ ॥

નિરમમ નિસંગી હો નિરજય અવિકારતા, નિરમલ સહજ  
સમૃદ્ધિ ॥ અષ્ટ કરમ હો વનદાહથી, પ્રગટી અન્વય રિંદિ ॥ ૫

अर्थ.—तमारे कोई परद्रव्य गुणपर्यायनुं ममत्व नथी तेस तेनो संग पण नथी तेथी जय अने कोई प्रकारनो विकार पण नथी अने तमारे ससाम्य राजरिद्धि अनंती सहज स्वतंत्र निर्मल ठे अष्टकर्मरूप वन ध्यानाग्नि धमी प्रजाव्युं तेथी तमारे ज्ञानादि अखूट निर्मल रिद्धि प्रगट थई ठे ते अनंत कालसुधी खरच्यां पण खूटे नहिण

आज अनादिनी हो अनंत अक्षता, अक्षर अनक्षर रूप ॥ अचल अकल हो अमल अगमनुं, चिदानंद चिदुप ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ.—प्रभुजी आज तमारे अनादिनी सत्तागते अक्षयपणे रहेली अनंत रिद्धि अने शक्ति व्यक्त थई छे ते अक्षर अने अनक्षर रूप के० वचन अक्षरपणे अनंती कही शकाय एवी अक्षर रिद्धि अने तेथी अनंत गुणी वचन आलापमां न आवे एवी अनक्षर रिद्धि स्वतंत्र प्रगट थई ठे तेथी तमे अचल तथा अगम के० उद्मस्थ जीवोने तमारा स्वरूपनी उद्मस्थज्ञाने पूर्ण गमन पडे तथा उद्मस्थ मतिप करी तमारू रूप रिद्धि अने आनंद कली शकाय नहि तथा तमारू रूप रिद्धि पुद्गलीक अन्य पदार्थों जेगुं मली जाय नही तेथी तमे अमल एवा ज्ञानानंदसय ज्ञान रूप ठो ॥ ६ ॥

अनंत ज्ञानी हो अनंत दर्शनी, अनाकारी अविरूढ ॥  
लोकालोक हो ज्ञायक सुहंकरू, अनादारी स्वयं बुद्ध ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ.—तमे अनंत ज्ञानी अने अनंत दर्शनवंत ठो तथा आकार रहित स्वपर जीवथी अविरूढ लोकालोकना ज्ञाता द्रष्टा सकल जीवोने सुखना कारण ठो. तमारे कांई पण आहारनी जरूर रहेती नथी तेथी अनाहारी ठो पोते पोताथीज बोध पामेला माटे स्वयंबुद्ध ठो ॥ ७ ॥

૫૬ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

જે નિજ પાસે હો તે શું માગીએ, દેવચંદ્ર જિનરાય ॥ તો  
પણ મુજને હો શિવપુર સાધતાં, હોજો સદા સુસહાય ॥ શ્રી ૦૬

અર્થ:-જ્ઞાનાનંદાદિ અનંત કાર્યોની સત્તા હમારી હમારા પાસેજ  
હે તો પ્રજુજી પાસે શું માગીએ ? પણ દેવોમાં ચંદ્રમા સમાન હે જિન-  
રાજ ! હમને મોક્ષમાર્ગ સાધતાં સદાએ તમે સુસહાય થજો ॥ ૬ ॥

॥ સંપૂર્ણ ॥

॥ અથ દ્વાવિંશતિમ શ્રી શિવકર જિન સ્તવન ॥

શિવકર જિનવર દેવ, સેવ મનમાં રમે હો લાલ સેવ મનમાં  
રમે ॥ તન્મયતાએ ધ્યાય, તેહ જવ જય વમે હો લાલ તેહ ॥  
ત્રિપદી પ્રરૂપી સાર, જગત જન તારવા હો લાલ જગત ॥  
જવ્ય અનંત પ્રજાય, પ્રમેય વિચારવા હો લાલ પ્રમેય ॥ ૧ ॥

અર્થ:-સકલ અશિવ દૂર કરી સર્વે પ્રકારે શિવ કરવાવાલા એહવા  
શિવકર નામે ગત ચોવિશીમાં બાવિશમા તીર્થપતિ કેવલજ્ઞાન  
દર્શનાદિ ગુણે દેદિપ્યમાન દેવની આણાનું સેવવું તે માહરા મનમાં  
રમેહે અથવા જીવિજીવોના મનમાં રમો કે જેની આણા સેવવાથી આત્મા  
શિવપદ પામેહે પણ એ પ્રજુની સેવા તન્મયતાએ ધ્યાયકે ૦ પ્રજુજી જેમ  
રાગ દ્વેષ ઢોમી શુદ્ધ ચિર સમ પરિણામે જ્ઞાન દર્શન ચરણાદિ આત્મ-  
ગુણોમાં રમ્યા તેજ પ્રમાણે જીવિજીવ પણ રાગ દ્વેષ ઢોમી સમ પરિણામી  
થઈ મૂખ્ય દર્શન જ્ઞાન ચરણમય આત્મ સ્વજ્ઞાવમાં ચિર યોગે રમે તો  
સકલ જવજય વમે એટલે જવ કરવાનો જય તેને રહે નહિ અને  
નિર્વાણપદ પામે. કરુણા જંઘાર જિનેશ્વરે જગત્ જીવોને તારવા માટે  
પ્રથમ સાર ત્રિપદી પ્રરૂપી અને સર્વે તીર્થકરો અનાદિથી પ્રથમ  
ત્રિપદીજ પ્રરૂપે હે કે જેથી જીવિ જીવ આત્મ અનાત્મ સ્વરૂપ જિન્ન

जाणी पोतानो उपयोग आत्म शुद्धतामां थिर करी शके ठे. ज्यांसुधी शुद्धात्म स्वरूपनुं ज्ञान न होय त्यांसुधी पुद्गलादि परद्रव्यनी ममता अने मिथ्यात्व अविरति आदि कर्मबंधनां कारणो शरु रही आठे प्रकारे कर्मबंध थया करे ठे पण ज्यारे जिन्न जिन्न द्रव्यनी उत्पाद व्यय अने ध्रुवतारुप परिणति जिन्न जिन्न जाणे त्यारे परद्रव्य उपर ममता शानी रहे ? अने परद्रव्यमां आपणुं कार्य केम मनाय ? अने परद्रव्यमा आपणुं कार्य मनाय नहि त्यारे राग द्वेष अने शुजाशुज संकल्पो पण उपजे नहि एटले जीव शुक्लध्यान पामी प्रथम घाती कर्मनो नाश करी आखर सिद्धि पामे. त्रिपदी एटले पचास्ति द्रव्य सकल समय आप आपणा पूर्व पर्यायनो व्यय, नौतन पर्यायनो उत्पाद अने सत्तानुं ध्रुव राखवु करे ठे एटले नवे नवे समय नवि नवि परिणति करे ठे अने मूल गुणे ध्रुव रहे ठे कोई द्रव्य कोई अन्य द्रव्यना पूर्व पर्यायनो व्यय, नौतन पर्यायनो उत्पाद अने तेनी सत्तानुं ध्रुव राखवुं करी शकतो नथी तेथी सर्वे द्रव्यनी सामान्य विशेष शक्ति साक्षात्कार जिन्न जणाय ठे त्यारे नवि जीवने ममता टली जाय ठे अने ममताविना राग द्वेष रहेता नथी एटले सुखे संजम साधी सिद्धि पामे ठे. द्रव्य विषे जगवंते कह्युं " उपनेवा, विगमेवा, ध्रुवेवा " एटला उपरथी गणधरो एक मूहूर्त्तमां द्वादशांगनी रचना करे ठे अने द्वादश अंगवके जगत्मां बोधनो विस्तार कराय ठे आपणे पण वस्तुनी त्रिपदी संजालीए तो परद्रव्यनुं ममत्व टली उपयोग आत्म शुद्धतामां थिर थाय ठे माटे त्रिपदीनो अर्थ विचारी परद्रव्यथी जिन्न आत्म शुद्धता जाणी आत्म शुद्धताना कामी थई सिद्धि सुख साधवुं. प्रजुजीए तीर्थकर नामकर्मना उदयवके नवि जीवने तारवा त्रिपदी प्ररुपी तो आपणे नेमनो परम उपकार सन्मानी तेमनी आणा समय मात्र पण न चूकतां सेववी. त्रिपदीनो पूर्ण जावार्थ तो केवली पोताना केवलज्ञानमां जाणे ठे अने आदेश

૫૦ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવને ચોવિશી.

વંશે શ્રુતજ્ઞાની પણ પૂર્ણ જાવાર્થ શ્રદ્ધા ગોચર જાણે છે અને દ્રવ્ય થકી દ્રષ્ટિવાદ અંગમાં કહ્યા પ્રમાણે અર્થ છે પણ અર્હિંઆ સંદેપથી લખીએ ઠિયે કે પંચાસ્તિ દ્રવ્યના પ્રતિ પ્રદેશે સ્વસ્વ કાર્ય કરવાના કરણ રુપે અસ્તિપણે ઠતિ પર્યાય તીરોજાવે ( ગુપ્તપણે ) અનંતા અનંતા, છે જેમ જીવ દ્રવ્યના અસંખ્યાતા પ્રદેશ છે તે દરેક પ્રદેશે જાણવાં રૂપ કાર્ય કરવાના ઠતિ પર્યાય અનંતા, દેખવા રૂપ કાર્ય કરવાના ઠતિ પર્યાય અનંતા, આચરણ રમણ રૂપ કાર્ય કરવાના ઠતિ પર્યાય અનંતા, વીર્ય અચલ રાખવા રૂપ કાર્ય કરવાના ઠતિ પર્યાય અનંતા તેમ દાન દેવા રૂપ, લાજ લેવા રૂપ, જોગ ઉપજોગ જોગવવા રૂપ સુખ આનંદાદિ અનંત કાર્ય ધર્મના ઠતિ પર્યાયો પ્રતિ પ્રદેશે અનંતા અનંતા અસ્તિપણે છે તે ઠતિ પર્યાયોમાંથી સમય પામીને અનંતા પર્યાયો સ્વકાર્ય કરવાને આવીર્જાવે ઉપજે અને પ્રથમ સમય જે પર્યાયો આવીર્જાવે આવેલા હોય તે આવીર્જાવથી વિણસી તીરો-જાવે જાય અને તીરોજાવે રહેલા પર્યાયોમાંથી કેટલા આવી-ર્જાવે ઉપજી કાર્ય કરે. ઉક્તંચ “ ઉત્પાદ્ વ્યય ધ્રુવ યુક્તં સત્ લક્ષણં દ્રવ્યં ” એટલે નવા પર્યાયનું જવન અને પૂર્વ પર્યાયના વ્યય વિના કોઈ પણ કાર્ય થઈ શકતું નથી. ઉત્પાદ્ વ્યય થઈ કાર્યનું કરવું એજ દ્રવ્યની સત્તા છે પણ પર પર્યાયનું જવન વ્યય કોઈ અન્ય દ્રવ્ય કરી શકતો નથી એમ જાણ્યા પછી આપણું કાર્ય પર દ્રવ્યમાં જાસે નહિ તો પર દ્રવ્ય ઉપર રાગ રોષ પણ રહે નહિ. એ ઉત્પાદ્ વ્યય સદ્ ગુણી હાણીવૃદ્ધિપણે થાય છે તે બીજા ગ્રંથોથી જાણી લેજો ત્રિપદી વહેજ અનંત દ્રવ્યના અનંત પર્યાયના પ્રમેયનો બોધ થાય છે માટે પરમ ઉપકારી પ્રજુજીએ ત્રિપદી પ્રરૂપી એ સમાન બીજો ઉપકાર નથી ॥ ૧ ॥

જગમાં દ્રવ્ય અનંત, ઉત્પત્તી વ્યય ધ્રુવ રહે હો લાલ  
ઉત્ત ॥ જે જે જેહના તે તેહના, તેહ માંહી લહે હો લાલ

तेह ० ॥ जाणीं जेदे विजाव, अनंतने जे नरा हो लाल  
अनंत ० ॥ पामे पूर्णानंद, आत्म संपत्ति धरा हो लाल  
आत्म ० ॥ २ ॥

अर्थ:-जगत्मां एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश, अनंता  
जीव तथा अनंत पुद्गल ए पंच प्रकारे अनंत अस्ति द्रव्य ठे अने काल  
ते पंचास्तिनो वर्तना पर्याय रूप अनंत द्रव्य उपचारथी ठे अने धर्मा-  
स्ति कायादि पंचे अस्ति द्रव्य सर्वे समय आप आपणा उत्पाद् व्यय  
ध्रुव सहित रहे ठे.

जेना अंदर उत्पाद् व्यय ध्रुव समकाले होय तेने सत्य द्रव्य कहीए.  
पोत पोतानुं उत्पाद् व्यय ध्रुवपणुं पोतामां सकल समय रहे पण ए उत्पाद्  
व्यय ध्रुवपणुं कोई समय अन्य द्रव्यमा जाय आवे नहि एम जेनो उत्पाद्  
व्यय तेनो तेनामां समकित द्रष्टि जाणे. कोई द्रव्यनो उत्पाद् व्यय  
अने ध्रुवपणुं कोई अन्य द्रव्यमां जतुं आवतुं नथी एम जाणी सम-  
कित जीव अनंत विजाव जेदे ते पुरुष केवलज्ञानादि आत्म संप-  
दानी धरा के ० सत्ताजूमिने जाणी पूर्णानंद पामे ॥ १ ॥

उत्पत्ति व्यय ध्रुव धर्म, अनंता द्रव्यना हो लाल अनंता ० ॥  
लखे त्रिकादीक जाव, टले मति जर्मना हो लाल टले ० ॥  
इविध लह्यो उत्पाद प्रयोगज विश्रसा हो लाल प्रयोगज ० ॥  
गइ ममता तस दूर, लही आत्म रसा हो लाल लही ० ॥ ३ ॥

अर्थ:-जे जीव पंचास्ति द्रव्यना उत्पत्ति व्यय अने ध्रुव धर्म  
जाणे तेणे अनंता द्रव्यना त्रिकादीक जाव जाण्या अने तेने कोई  
प्रकारनी मिथ्या जाव रूप मतिजर्मना रहे नहि. प्रयोगसा अने  
विश्रसा एम वे प्रकारे उत्पाद् व्यय ठे. जीव प्रयोगे पुद्गलोमां जे जे  
उत्पाद् व्यय धाय ते प्रयोगसा उत्पाद् व्यय कहिए अने पंचास्तिमां



श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी. ए०

स्वयं स्वज्ञावे जे जे उत्पाद् व्यय थाय ते विश्रसा उत्पाद् व्यय कहिए.  
जे जीवने पर उत्पाद् व्ययनी ममता गइ ते ज्ञान दर्शन चरणादि  
अनंत स्वगुणनुं स्थानक एवी आत्म शुद्धता जूमि पाम्यो, पामे ठे  
अने पामशे ॥ ३ ॥

उत्पत्ति व्यय ध्रुव शक्ति, सर्वमां सहु समे हो लाल  
सर्वमां० ॥ जे जन जाणे शुद्ध, मिथ्यामती ते वमे हो लाल  
मिथ्या ० ॥ अस्तिपणे ठे पंच, द्रव्य जग शाश्वता हो लाल  
द्रव्य० ॥ निज निज धर्मे अस्ति, रहे पर नास्तिता हो लाल  
रहे ० ॥ ४ ॥

अर्थः—सर्वे द्रव्यमां उत्पत्ति व्यय ध्रुव शक्ति सकल समय ठे एम  
जे शुद्ध रीते निःशंकपणे जाणे अने जे जेनी ते तेनामां माने तेने  
मिथ्यामति रहे नहि अने परिणामथी मिथ्यात्व गया पढी सत्तामां  
पण रहेलां मिथ्यातनां दलीयां ते पण क्षय जाय. जगत्मां पंचास्ति  
द्रव्य स्वद्रव्य क्षेत्र काल जाव अस्तिपणे शाश्वता ठे तेमां पर  
द्रव्यादिक रूपे न थवानो स्वज्ञाव पण अस्तिपणे ठे तेने नास्ति  
स्वज्ञाव कहिए एटले स्वधर्मे ठता रहे पण परधर्म रूपे थाय नहि ए  
द्रव्यनुं अस्तिपणुं ते प्रथम सामान्य स्वज्ञाव जाणवो ॥ ४ ॥

निज निज वस्तु स्वज्ञाव, न ठमे को कदा हो लाल न ठमे० ॥  
द्वे निज पर्याय, रुके नहि को कदा हो लाल रुके० ॥  
सहज प्रमेय प्रमाण, सदा सहु परिणमे हो लाल सदा० ॥  
अगुरुलघुपरजाय, स्वकार्यमां सहु समे हो लाल स्वकार्यमां० ॥ ५ ॥

अर्थः—( १ ) सर्वे द्रव्य आप आपणो वस्तु स्वज्ञाव कोई पण  
कदापी ठोडे नहि ते वस्तुत्व कहिए.

( ३ ) द्रव्य मांही जनक स्वज्ञाव ठे ते सकल समय ठती

पर्यायोने सामर्थ्यपणे उपजावे अने सामर्थ्य पर्यायने पोतामांज तीरो-  
जावे दर्वे ( समावे ) एम ठती अने सामर्थ्य वे जेदे पर्यायनी उत्पत्ति  
व्यय प्रवृत्ति कोई समय पण कोई रीते रोकाय नहि ते डव्यत्त्व  
स्वज्ञाव कहीए.

( ४ ) डव्यना सर्वे स्वज्ञावो सर्वे समय आप आपणा प्रमेय  
प्रमाणे परिणमे ठे कोई डव्यनो एक स्वगुण ते बीजा स्वगुणनुं कार्य  
करे नहि अने पर डव्यना कोई गुणनुं कार्य पण करे नहि ने स्वकार्य  
विना कोई समये खाली पण रहे नहि आप आपणी मर्यादा मूके  
नहि तेथीज सकल डव्य गुण पर्यायनुं प्रमाण ज्ञान वडे करी शकाय  
ठे ए प्रमेयत्त्व स्वज्ञाव जाणवो.

( ५ ) गुणोना ठती पर्यायो प्रदेशे प्रदेशे अनंता अनंता ठे तेखद्  
गुण हाणीवृद्धि पणे आवीर्जावे तीरोजावे सर्वे प्रदेशे सर्वे समय  
थयां करे ठे तेथी कोई डव्य हलको अगरे जारे थाय नहि एहवो  
अगुरुलघुत्त्व स्वज्ञाव जाणवो.

विगमे पुरव प्रजाय, नऊतन उपजे हो लाल नऊतन ॥  
पण ध्रुव शक्ति सदाय, सत्त्व लक्षण जेजे हो लाल सत्त्व ॥  
ए सामान्य स्वज्ञाव, ते जेहना तेहमां हो लाल ते जेहना ॥ वलि  
विशेष स्वज्ञाव, ते जेहना जेहमां हो लाल ते जेहना ॥ ६

अर्थ—(६) पूर्व पर्याय विणसतां अने नवा पर्याय उपजतां डव्य आप  
आपणुं कार्य करता ठतां पण सत्ताने ठोमतो नथी ते सत्त्व लक्षण ठे.  
यतः—“ अर्थ क्रिया कारित्वं डव्यं ” जो डव्य सर्वे समय आप  
आपणुं कार्य न करे तो सत्त्व लक्षण केम रहे ?

एम सर्वे डव्यना ठ मूल सामान्य स्वज्ञाव तथा उत्तर सामान्य  
स्वज्ञाव तथा अनंत विशेष स्वज्ञाव जे जेना ते तेनामां जाणवा  
मानवा. कोई डव्यनो सामान्य अथवा विशेष स्वज्ञाव कोई अन्य

ए२ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

द्रव्यमां जाय आवे नहि एम जाणवाथी निर्विकल्प बोध प्रगट  
थाय ठे ॥ ६ ॥

लक्षण लक्ष्य अज्ञेद, त्रिकालपणे रहे हो लाल त्रिकाल०  
॥ एम जाणी नर बुद्धने ममता नवि रहे हो लाल ने  
ममता० ॥ आत्म ज्ञान विण ममत, ममतथी मिथ्यात ठे हो  
लाल ममतथी० ॥ एहथी अविरति होय, प्रमाद कषाय ठे हो  
लाल प्रमाद० ॥ ७ ॥

अर्थः—लक्ष्य के० द्रव्य अने तेना अनंत पर्याय रूप लक्षणो ते  
द्रव्यथी त्रिकाले अज्ञेदपणे होय एम जे पंडित जाणे तेने परद्रव्य  
गुण पर्यायनी ममता रहे नहि एटले तेने परद्रव्यादिनो राग व्यतीत  
थाय. ज्यांसुधी आत्म शुद्धतानुं ज्ञान नथी त्यांसुधी परद्रव्यादिनी  
ममता रहे अने ममता होय त्यांसुधी मिथ्यात्व रहे अने तेथी  
अविरति प्रमाद कषायादि दोषो उपजे. ज्यारे आत्म शुद्धतानुं ज्ञान  
थाय त्यारे ममता अने मिथ्यात्व टले त्यार पठी अविरति प्रमाद  
कषायादि सर्वे दोषो नाश पामे. माटे आत्म सिद्धतानुं मूल आत्म  
शुद्धतानुं ज्ञान ठे ए विना एकांते साध्य शून्य क्रिया विटंबना  
रूप ठे ॥ ७ ॥

जोग चपलता करि निज, वीरजचल करे हो लालके वीरज  
० ॥ बंधे आठे कर्म, गहन जव वन फरे हो लाल गहन० ॥  
बाल बाधक थयुं वीर्य, साधकता नवि लही हो लाल  
साधकता ० ॥ शिवकर देव हृदयमां, करुणा लह लही हो  
लालके करुणा ० ॥ ८ ॥

अर्थः—अविरति प्रमाद कषायादिके जोग चपलता थाय ठे अने  
जोग चपलता वशे आत्मवीर्य पण चलायमान थई ज्ञानावरणादि

आते कर्मनो बंध करी जीव गेहेरा जव वनमां फरतो स्वतंत्रता विना  
 असह्य दुःख जोगवे ठे उक्तंच-जगवई अंगे “चलई फंदई”  
 आत्म शुद्धतानुं पूर्ण ज्ञान थयापठी जीवने परद्वयनी स्पृहा इच्छा  
 कामना मनोरथ यतो नथी माटे त्रणे योग पूर्ण स्थिरता पामे ठे आत्मवीर्य  
 अचल थाय ठे. जे जे अंशे आत्मवीर्यनुं चलपणुं ते ते अंशे कर्मबंध  
 ठे जे जे अंशे आत्मवीर्यनुं अचलपणुं थयुं ते ते अंशे पूर्व कर्मबंध  
 विलय जाय अने नविन बंध करे नहि, आत्मवीर्यनी पूर्ण स्थिरता  
 बढे पूर्ण सिद्धि प्राप्त थाय माटे शुद्धात्म ज्ञानमां लयलीन थवुं एज  
 श्रेय ठे कोई कहेशे के हुं आत्मज्ञानी वुं पण ते राग द्वेषमां वर्ततो  
 होय तो तेने पूर्ण आत्मज्ञानी जाणवो नहि पण जे जे अंशे राग गयो ते  
 ते अंशे आत्मशुद्धता प्रगट थाय ठे अने तेतलुज आत्मज्ञान जाणवुं  
 अने ज्यां आत्मशुद्धता पूर्ण प्रगट थई त्यां रागनो अश मात्र रहेतो  
 नथी. पूर्ण दायक वितरागता प्रगट थई एटले मोहनीय कर्मनो नाश  
 थयो अने वारसा गुणगणाना ठेवला वे समयमां ज्ञानावरण दर्शना  
 वरण अने अतरायनो नाश थाय ठे अने वाकीनां चार अघातीकर्म  
 रखां ते स्थिति ए नाश थाय ठे एम जीवने परमानंद प्राप्त थाय ठे  
 माटे ज्ञाने करी आत्मशुद्धता बधारवी एज मोक्ष मार्ग ठे. आत्माना  
 ज्ञान दर्शन चरणादि आत्माथी अजेदपणे रहेला गुणोने निर्मल  
 करवा ते आत्म शुद्धता कहीए अने तेज मोक्षमार्ग ठे. जे जे अंशधी  
 राग द्वेषनी उपाधि गई ते ते अंशे ज्ञान दर्शन चरणरूप आत्मगुणना  
 अंशो प्रगट थया एम जाणवुं आत्मज्ञान विना परद्वयनी समता ए  
 आत्मवीर्य बाल बाधकत्वावने पाम्युं करणवीर्यपणे प्रवर्त्युं साधकता  
 जाणी नहि अने साध्य जाण्यो नहि साध्य जाण्या विना शुं साधे ?  
 साधकता जाण्या विना केवी रीते साधना करे ? मात्र साध्य शून्य  
 क्रिया करी शुभाशुभ परिणामे चव त्रमण करे. एम जाणी शिवकर

ए४ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतितं स्तवन चोविशी.

देवना हृदयमां करुणारस उजरायो तेथी जविजीवोने तारवा अर्थे  
त्रिपदी प्ररूपी ॥ ७ ॥

शुद्ध अखंति धार, अमृत घन वरसता हो लाल अमृत ॥

प्रभुजी मेघ समान, जव्य जग दरसता हो लाल जव्य ॥

पूजो श्री प्रभु अंग, सुरंगे ऊमही हो लाल सुरंगे ॥

दरशन ज्ञान चारित्र, सवीर्य मयी सही हो लाल सवीर्य ॥ ए

अर्थः—मेघरूप प्रभुजी शुद्ध स्याद्वादनी देशनारूप अखंति अमृत  
तघन धारा वरसावता जवि जीवोना अज्ञान मिथ्यात्व कषायादि  
जवदव ताप समावता शुद्धात्म जावमां थिरता करावता जवि सम-  
कितीनी दृष्टिमां अमृत मेघ सरखा देखाय ठे. प्रभुजीनुं अंग पूजो  
एटले ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि अनंत शुद्ध गुणमय प्रभुजीना  
अरूपी अंगने परम आदरे मनने सुरंगे ए सम शुद्ध ध्येय जाणी  
आनंद सहित पूजो तथा देशनानुं कारण एहवां प्रभुजीनां औदा-  
रिक अंग—(१) चरणांगुष्ठ (२) जानु (३) कर (४) नूजाखंध (५) शिर (६)  
जाल स्थल (७) कंठ (८) हृदय (९) नाभि एम नव मुख्य तथा  
ते सिवाय नयण वदनादिक प्रभुनां सर्वे अंग सुगंधी द्रव्ये पूजवा  
लायक ठे एम जाणवुं. ए अंगवनेज देश विदेश फरी शुक्लध्यान  
करी केवलज्ञान उपजावी आपणने शुद्ध साध्यनी देशना आपे ठे  
माटे प्रभुनां सर्वे अंग बहु सन्माने बहु विधे पूजवा लायक ठे ॥ ए॥

जाणे त्रीपदी शुद्ध ते ध्यान शुक्ल लहे हो लाल ते ॥

धाती करम दय जाय अनंत चतुक लहे हो लाल अनंत ॥

ए विण धर्म न शुक्ल लहे नहि नर कदा हो लाल लहे ॥

ते माटे लहि त्रीपदी सुशिव साधो मुदा हो लाल सु ॥ १० ॥

अर्थः—जे जवि शुद्ध रीते त्रिपदीना जाव जाणे तेज शुक्लध्यान

पामे अने शुक्लध्याननो बीजो पायो ध्याता चारे घनधाती कर्मनो नाश करे अने अनंत चतुष्क पामे. एम अव्ययना उत्पाद् व्यय ध्रुवादि त्रिपदीना जाव जाष्याविना जीव धर्मध्यान अने शुक्लध्यान कदापी पामे नहि ते माटे सिद्धांतमांथी त्रिपदीना मूल्य जाव जाणी सदाए आनंद सहित कर्मथकी मूकावा रूप रूको मोक्ष-मार्ग साधवो ॥ १० ॥

अंग पूजा करि एम, आणाआराधीए हो लाल आणा० ॥

लहि निज शुद्ध स्वरूप, मोक्षमग साधीए होलाल मोक्ष० ॥

महागोप महामादण, शिव सथ्यवाद् ठो हो लाल शिव० ॥

निर्यामिकमहवैद्य, परम जग नाद् ठो हो लाल परम० ॥ ११ ॥

अर्थ.—उपर प्रमाणे जिनेश्वरना दुविध अंगनी विविध प्रकारे पूजा सन्मान करी आज्ञा आराधीए अने पोतानुं शुद्धात्म स्वरूप जाणी पुरुषार्थ पराक्रम करी वीर्य अचल राखी मोक्षमार्ग साधीए. हे प्रभुजी ! तमे जवि जीव रूपी गायोने सम्यक्त बोधरूपसंजीवनी चारो चरावी आत्म जीवनमां सचेत करी निर्विघ्नपणे मुक्ति रूप नगरे पहुँचानो ठो माटे महागोप ठो बली तमे खट्कायाना जीवोने कोईपण जीव कोई प्रकारे हाणी करे नहि अने तेमना अव्यय प्राण तथा जाव प्राणनुं रखोपुं करे एहवो माहणतानो उपदेश करो ठो अने गणधर आचार्यादि मारफते पण माहणताना उपदेशनी प्रेरणा करावो ठो माटे तमे पोतेज महामादण ठो बली तमे उपजव रहित शिव स्थानके पहुँचारुवा माटे शिवमार्ग के० मार्गमां क्रोध मोहादिक चोरटा काई हरकत करी शके नहि अने कुगुरु आदि दुष्ट जनो उन्मार्गमा पानी शके नहि एहवा उपजव रहित मार्गे स्याद्वादमय शुद्धनये शुद्धात्म स्वरूप जणावी निर्विघ्नपणे खई जाई ठो माटे मोक्ष नगरना सार्थमाह ठो बली तमे ज्यां राग द्वेष मिथ्यात्व अज्ञान रूप

૧૭ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

ધર્મનેરે કિં ॥ જમ્બુજલ જગની ઇંઠ છે પુદ્ગલ પરિણતિરે,  
ધ્યાતાં વીરજ કંપે આપ લહે ન સગુણ રતીરે ॥ લહે ॥ ૧ ॥

અર્થ:-ગત ચોવિશીના તેવિશમા તીર્થકર શ્રી સ્યંદન જિનેશ્વર  
પરમદયાલ અને પરમકૃપાલ છે. જગત્માં જે જે લોકો શુદ્ધમાર્ગના અ-  
જાણ દયા અને કૃપા કરે છે તે દયા થોડા દિનને માટે અને આખર આયુ  
પર્યંત કોઈકને બાહ્ય હિતકારી પણ થઈ શકે છે પણ આખરે તે દયાનું  
હિત વિણસી જાય છે કેમકે પુદ્ગલીક દયા અધિર છે અને એકાંતિક  
સુખનું કારણ નથી વલી તે પુદ્ગલીક સુખ જય જરેલું છે અને સ્યંદન  
સ્વામીની દયાથી જે આત્મિક ગુણો અને આત્મિક સ્વતંત્ર સુખ પ્ર-  
ગટ થાય તે તો સાદિઅનંતકાલસુધી નિર્જય નિરાકુલ અચલ પરમ  
સ્વતંત્ર સુખનું કારણ છે માટે પ્રજુ પરમ કૃપાલ છે. પ્રજુજી ત્રણે જગ-  
ત્માં શોના પામેલા છે કે પાતાલ મનુષ્ય અને સ્વર્ગોમાં જીવનપતિઓ  
મનુષ્યો વ્યંતરો વિદ્યાધરો ગણધરો મુનિઝં વૈમાનિકો અને નરનારીઝના  
થોક જેના ગુણોની સ્તવના શોના હમેશાં કસ્યા કરે છે. જીવિજીવોને  
શુદ્ધ બોધના દાતાર હો, કેવલજ્ઞાન કેવલદર્શને કરી દેદિપ્યમાન  
દેવ સર્વે જીવોના સ્વેદજ પરમ મયાજુ છે. સંસારી જીવો પુદ્ગલ ગુણ  
પર્યાયરૂપ પરપદ ગ્રહણ કરવાથી ઇટલે પરિગ્રહ વશે કર્મ બાંધે છે તે  
પરિગ્રહ તો નિશ્ચયથી પરવસ્તુને અહંપણે ગ્રહવું તે એક અજ્ઞેદપણે જા-  
ણવો અને વ્યવહારથી બાહ્ય પરિગ્રહ નવવિધે તથા અંતર પરિગ્રહ ચૌદ  
વિધે છે. પુદ્ગલિક અધિર પદાર્થને ધ્યાતાં ચિત્ત ચિરતા પામતું નથી  
અને ચલચિત્તવાલો, સુધિરઆત્મિક ધર્મને પામી શકતો નથી. પુદ્ગલ  
પરિણતિ પોતે જમ્બુ ઇટલે અચેતન છે અને ચલકે ૭ ઉત્કૃષ્ટિ અસંખ્યાત  
સમયથી વધારે સ્થિતિવાલી નથી વલી અનંતા જીવોએ અનંતા પુદ-  
ગલ દ્રવ્યને અનંતો વાર લીધા અને વિષ્ટા મૂત્ર રસ રુધિર માંસ મેદ  
અસ્થિ મજ્જા વીર્યાદિકપણે પરિણમાવ્યા અને વારવાર મૃતકપણે હો.

ह्या तो एवी अथिर परिणतिना पाठल जे जीवो लाग्या ते केम थिरता पामे ? अने तेनुं मन वचन काया निवृत्ति पामे नहि तो ते आत्मधर्म अने ते धर्मनुं निवृत्तिरूप सुख केम पामे ? एवी अथिर पुद्गल परिणति पाठल जे लागे तेनुं वीर्य कंपायमान थाय अने शुद्धात्म गुणमां रति थिरता समाधि पामे नहि ॥ १ ॥

निरमल दर्शन ज्ञान चरणमय आत्मारे ॥ निजपद रमणे प्रगटे पद परमात्मारे ॥ पद ० ॥ मोहादिकमां तल्लीन तन्मय ते कह्योरे ॥ शुद्ध ब्रह्ममां तल्लीन तिण शिवपद लह्योरे ॥ तिण ० ॥ २ ॥

अर्थ:-जो आत्मा पुद्गल अव्ययी ममता ठोनी पोतानुं स्वरूप जूवे तो निर्मल ज्ञान दर्शन चरणमय पोतेज ठे, एम जाणी परमण ठोनी शुद्ध स्वरूप रमण करे तो पोतानुं परमात्मपद प्रगट थाय. जे जीव मोहादिक जे जे विजाव अगर स्वजावमां जे समय तल्लीन ठे ते समय तन्मयके ० ते मय तेने कहीए जेम क्रोधमां तल्लीन थएलो क्रोधमय कहीए, काममां तल्लीन थएलो कामी-काममय कहीए अने शुद्ध धर्ममां तल्लीन थएलो शुद्ध धर्ममय कहीए यत:-“परिणामदि जेण दवं, तक्कालं तम्मयत्ति पप्पत्तं; तह्मा धम्मं परिणदो, आदा धम्मो मुण्योवे ” ते माटे शुद्धात्म ब्रह्म स्वरूपमां तल्लीन थएलो आत्मा शुद्ध ब्रह्मरूप थाय पटखे तेज आत्मा शिवपद पाम्यो कहीए ॥ २ ॥

पुद्गल परिणति जिन आत्मथी जे सदारे ॥ ठोनी तास विकल्प रहो निजगुण मुदारे ॥ रहो ० ॥ तप संजम मय सहज जाव निज ध्याईए रे ॥ निर्मल ज्ञानानंद परम पद पाईए रे परम ० ॥ ३ ॥



અર્થ:-પુદ્ગલ પરિણતિ સર્વે કાલે આત્માથી જિન્નજ છે આત્માનાં અને પુદ્ગલ પરિણતિનાં જિન્ન લક્ષણ જાણી પુદ્ગલ પરિણતિ સંબંધીનો શુજાશુજ વિકલ્પ તથા તેના શુજાશુજપણાના આલાપ તથા તે અર્થે શુજાશુજ ક્રિયા ઢોઢી નિજાત્મ ગુણમાંહે પ્રમોદિત રહો. આત્મા નિર્મલ નિજ સ્વરૂપ જાણી પુદ્ગલ મમતા ઢોડે તો પુદ્ગલ જોગોની ઈચ્છા ન થાય અને પોતાના જ્ઞાન દર્શન ચરણમય સ્વરૂપમાં તૃપ્ત રહે તો તે આત્મા તપ રૂપજ છે અને પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને સદા અલંકાર ઉપયોગમાં રાખે તો આત્મા પોતેજ સંજમ રૂપ છે એહવો તપ સંજમમય ઉપાધિ રહિત આત્મિક સદ્જ જાવ અલંકાર સમય ધ્યાઈએ તેથી નિર્મલ જ્ઞાનાનંદમય પોતાનું સ્વતંત્ર પરમ પદ પામીએ ॥ ૩ ॥

સ્યાદ્વાદમય શુદ્ધ પ્રજ્ઞુ મુલ્ક દેશનારે ॥ સન્માને તે કરે વિજ્ઞાવ પ્રવેશ ના રે ॥ વિજ્ઞાવ ૦ ॥ જિનવાણી સન્માન વિના જવ વાસ છે રે ॥ પર પરિણતિ સન્માન કર્મ અરુ પાસ છે રે ॥ કર્મ ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-પ્રજ્ઞુ મુલ્કની સ્યાદ્વાદમય શુદ્ધ દેશના છે કે જેથી શુદ્ધ સાધ્ય અને સાધના સાક્ષાત્કાર જણાઈ શકે છે તે આજ્ઞાને જે જવિ વહુ સન્માને આદરે તે વર્ણાદિ રાગાદિ વિજ્ઞાવમાં પ્રવેશ કરે નહિ જ્યાંસુધી જિન વચનનું સન્માન આવ્યું નથી ત્યાંસુધી દુઃખે જરેલો જવવાસ કાયમ છે અને પરપરિણતિ સન્માને ઇટલે પરગ્રહણેજ આઠે કર્મનો પાસ છે ॥ ૪ ॥

આતમ શક્તિ સ્વતંત્ર લલ્લો જિન વાણથીરે ॥ સાધો શિવ મગ શુદ્ધ શુક્લ જલ ધ્યાનથીરે ॥ શુક્લ ૦ ॥ શુદ્ધ નયે લલિ જલ્યને નિસ્પૃહ અન્યથીરે ॥ સમજાવે નિજ ધ્યાય તસુ જવ જય નથીરે ॥ તસુ ૦ ॥ ૫ ॥

अर्थ:-आत्म शक्ति परतंत्र नथी पण पोते आत्म शक्ति जाणी नथी त्यांसुधो पुद्गल ममत्व वशे पोते अनंत परतंत्रता जोगवे ठे हवे अवसर मढ्यो माटे जिनेश्वरना स्याद्वाद उपदेशथी आत्मशक्ति स्वतंत्रपणे जाणो अने शुद्ध शिवमार्ग उढ शुक्लध्याने साधो शुद्ध नये स्वपर द्रव्यने ज्ञिज्ञ जाणी अन्य द्रव्यथी निस्पृह थई समजावे निज शुद्धात्म पद ध्याय तेने जव जय नथी ॥ ५ ॥

पंच महाव्रत पंचाचार श्री जिन वदेरे ॥ पंच समिति त्रण गुप्ति समजावे सधेरे ॥ सम० ॥ ज्ञान ध्यान किरिया साची समजावथीरे ॥ साध्य शून्य किरिया कष्टे शिवपद नथीरे ॥ कष्टे० ॥ ६ ॥

अर्थ:-जिनेश्वरे पंच महाव्रत अने ज्ञानाचारादि पंच विधे आचार कळो ठे तथा पंच समिति अने त्रण गुप्ति प्ररूपी ठे ते सवें पूर्ण समजाव अर्थे ठे अने राग द्वेष तजी समजाव राखी व्रत आचार समिति गुप्ति साधीए तोज सधाय वली ज्ञान ध्यान अने किरिया समजाव सहित होय तोज साचां जाणवां राग द्वेष सहित जाणवु ते ज्ञान नथी, राग द्वेष सहित ध्यान ते शुद्धध्यान नथी, राग द्वेष सहित क्रिया ते उत्तम क्रिया नथी पण राग द्वेष विना समजाव सहित ज्ञान ध्यान अने क्रिया तेज साचां मोक्ष हेतु ठे, ज्ञान दर्शन चरणनुं विषमपणुं टाळी सम अने थिरपणुं साधवुं ठे एवो शुद्ध साध्य जाण्या विनानी शून्य क्रिया कष्टथी मोक्षपद नथी अने समजाव तो परग्रहण बुद्धि तजवाथी आवे माटे, परग्रहण बुद्धि तजी परद्रव्यादिथी निस्पृह थई मुक्तिगुण राखीए तोज समजाव आवे अने सकल कार्य सिद्ध थाय एम स्यंदनजिन देवे परम उपकार बुद्धिए उपदेश्युं ते हमारां सरखा जविठं उपर तेमनो परम उपकार ठे ॥ ६ ॥

शुद्ध साध्य सापेक्ष सुनय वाणी लखोरे ॥ समजावे शु-  
द्धात्म अनुभव रस चखोरे ॥ अनुभव ० ॥ देवचंद्र प्रभु  
वचनामृत रस पानमांरे । मनसुख शिवघर वासे सूख अमान-  
मांरे ॥ सूख ० ॥ ७ ॥

अर्थ:-तीर्थकरोनी वाणी शुद्ध साध्य सापेक्षताए होय ठे तो परमे-  
श्वरनी वाणी शुद्ध साध्य सापेक्षताए सुनये जाणो एटले एकांत न-  
यनी खेंच विना हृदयमां धारो अने परद्रव्य उपरनो राग द्वेष ठोकी  
ज्ञान दर्शन चरणादिकमां सम एटले सुधो राग द्वेषनी मरोऊ अने  
चपलता वगरनो स्थिर जाव राखी आत्म शुद्धतानो अनुभव रस  
चाखो. आत्म शुद्धतानो स्वाद चाखवानो-रस लेवानो अज्यास वधा-  
रवो ते अनुभव कहीए. ज्यांसुधी पुद्गलीक स्वादनो अनुभव करीए  
त्यांसुधी शुद्धात्म अनुभव आवे नहि माटे पुद्गलीक अनुभव अथिर  
अहितकारी जाणी तजी आत्म शुद्धता रस लेवानो अनुभव अज्यास  
करो. साध्य निरपेक्षपणे जे जे वचनो होय ते तीर्थकरोना अथवा तो  
ज्ञानीउंना नथी माटे तीर्थकरोना वचन परखवा साध्य सापेक्षतानो वि-  
चार हृदयथी चूकवो नहीं. देवोमां चंद्रमा समान स्यंदन जिनेश्वर-  
ना वचनामृत रस पाननी उत्तम सेवा मनसुखे आदरे ते शिवत्रियनो  
स्वामी थाय अने तेने कोई प्रकारनी उणता रहे नहि अने अमाप  
सुखमां शाश्वत घरवास करे ॥ ७ ॥

॥ अथ चउविंशतिम संप्रति जिन स्तवन ॥

संप्रति जिनवर पद नमी जवि ध्यावोरे ॥ साधो शुद्ध  
निज साध्य परम पद पावोरे ॥ अतित समय चोवीशमा ॥  
॥ ज ० ॥ प्रभु सम हो निरुपाध्य ॥ प ० ॥ १ ॥

अर्थः—गत चोविंशीना चोविंशमा तीर्थंकर संप्रति जिनवरना पद कमलमां नमस्कार करी हे जवि जीवो ! तमे सिद्ध समान निज शुद्ध साध्य ध्याउं, साधना कारक प्रवृत्तिए करीने शुद्ध साध्य साधो—सिद्ध करो. मन वचन काय त्रणे योग थिर करी स्वपरिणति शुद्ध साध्यमां एकत्वपणे लयलीन करी निर्मल ध्याने शुद्ध साध्य ध्याउं के जेथी शाश्वत परमात्म पद पामो एटले प्रज्जुजी समान उपाधिरहित थाउं ॥

शुद्ध साध्य जाएयाविना जवि० ॥ साध्या साध्य अनेक ॥  
॥ प० ॥ आणा विण निज उंदयी जवि० ॥ सुख पाम्यो नहि ठेके ॥ प० ॥ १ ॥

अर्थः—शुद्ध साध्य जाएयाविना असाध्य एहवी पुद्गल परिणति जे खी, पुरुष, संतान, लोही, बीर्य, हारु, मांस, धन आदि साधवाने अनेक प्रकारे श्रम कख्या मन वचन बल बुद्धि प्रवर्त्तावी पण ते पुद्गल परिणति आपणे वश थई नहि तेथी कर्म बंध करी चार गति संसार कंतारमां जम्यो दुःख सह्यां अने मोक्ष साधवा स्वउंदताए अने जिन वचन अजाण पुरुषोना कख्या प्रमाणे घणांए क्रिया कष्ट कख्यां अने जिन मार्गमां कख्या प्रमाणे पण साध्य शून्य एकांति क्रिया साधी तेथी केवल संसार सधायो अने निवृत्ति रूप साचुं सुख वेश पण पाम्यो नहि ॥ १ ॥

स्याद्वाद प्रज्जु वचनथी जवि० ॥ लहि शुद्धात्म साध्य ॥  
॥ परम० ॥ शुद्ध साधना सेवतां जवि० ॥ नाशे सर्व उपाध ॥  
॥ परम० ॥ ३ ॥

अर्थः—प्रज्जुजीनां स्याद्वादमय वचन सांजली शुद्धात्म साध्य जाणी शुद्ध साधना सेवीए—साधीए तो सकल कर्म उपाधि नाशे ॥३॥

॥ निर्मल साध्य स्वरूप ए जवि० ॥ मुज सत्तागत एम

૨૦૪ શ્રી મહોપાધ્યાય દેવચંદ્રજી કૃત અતિત સ્તવન ચોવિશી.

॥ પરમ૦ ॥ શુદ્ધ ધ્યેય નિજ જાણિને જીવિ૦ ॥ ધ્યાતાં શિવપદ  
દેમ ॥ પરમ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-જેવું પ્રજુજીનું શુદ્ધ સ્વરૂપ છે તેવુંજ મહારું નિર્મલ સાધ્ય  
માહરી સત્તાગતે છે તે સાધિ પ્રગટ વ્યક્તિ જાવમાં લાવવું એજ  
ઉમેદ કરો. પોતાનો શુદ્ધ ધ્યેય જાણીને યથાર્થ સાધકતાપણે ધ્યાઈએ  
તો દેમકુશલે શિવપદ પામીએ ॥ ૪ ॥

॥ એ વિણ અવર ન સાધ્ય છે ॥ જીવિ૦ ॥ સુખકારણ જગમાંદિ  
॥ પરમ૦ ॥ શુદ્ધ ધ્યેય નિજ સાધવા ॥ જીવિ૦ ॥ સાધન શુદ્ધ  
ઝગાંદિ ॥ પરમ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-સિદ્ધ સમાન નિર્મલ આત્મ સાધ્ય શિવાય પરમ સ્વતંત્ર સુ-  
ખનું કારણ જગત્માં બીજું કાંઈ સાધ્ય નથી અને મોહ દ્રષ્ટિએ જગ-  
ત્માં જે જે રૂપી સાધ્યો જણાય છે તે સર્વે પરતંત્રતા અનિવૃત્તિ ચપ-  
લતા સજયતા આદિ દુઃખનાં કારણ છે એમ જાણવું. નિજ શુદ્ધ ધ્યેય  
સાધવા આત્મવીર્યે કરીને શુદ્ધ સાધનામાં મને ઝચ્ઙાહ છે અને સર્વે  
જીવ્યો પણ એમ ઝચ્ઙાહ ઝમંગ રાખો ॥ ૫ ॥

॥ રત્નત્રયી વિણું સાધના ॥ જીવિ૦ ॥ નિષ્ફલ જાણ સદાય  
॥ પરમ૦ ॥ રત્નત્રયી શિવ સાધના ॥ જીવિ૦ ॥ સાધિ જીવિ  
શિવ પાય ॥ પરમ૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-આત્મજ્ઞાન આત્મદર્શન આત્મ સ્વચ્છવાચરણ એ ત્રણેને  
રત્નત્રય કહીએ એથી ઝિન્ન અન્ય સાધના સદાય નિષ્ફલ જાણવી  
જેમ યસવાલે યંજોલીને સુખ માની લોધું પણ એણે કાંઈ સુખ સા-  
ધ્યું નથી. આત્માના આત્માથી અજેદપણે રહેલા જ્ઞાનદર્શનચરણ  
ગુણો તે અજ્ઞાન મિથ્યાત્વ અને મોહ વશે મલિન થયેલા છે તે અતિ-  
ચાર ટાલી જ્ઞાનદર્શન ચરણ આરાધી નિર્મલ કરવા એજ રત્નત્રય  
મોહ સાધના સાધિ જીવિજીવો મોહ પામે છે ॥ ૬ ॥

शुद्धात्म जाण्या विना ॥ जवि० ॥ परपद ममत उपोय  
॥ परम० ॥ रागादिक वश जीव ए ॥ जवि० ॥ कीधा अनेक  
अपाय ॥ परम० ॥ ७ ॥

अर्थ:-ज्यांसुधी आत्म शुद्धता जाणी नथी त्यांसुधी परपदमां  
ममत उपजे ठे तेथी राग द्वेष मोहादि वश थई जीवे पोताने अनंत  
दुःख उपजे एहवा अपाय खना कऱ्या ॥ ७ ॥

तुज वाणिथी में लह्या ॥ जवि० ॥ निज गुण डव्य प्रजाय ॥  
॥ परम० ॥ पर गुण डव्य प्रजायनुं ॥ जवि० ॥ ममत तजे सुख  
थाय ॥ परम० ॥ ८ ॥

अर्थ:-तमारी वाणी वने पर डव्य गुण पर्यायथी चित्त निज  
डव्य गुण पर्याय जाण्या तेथी जाणुं तुं के पर डव्य गुण पर्यायनुं  
ममत तजवाथीज सर्वे दुष्ट अपायो नाश थई स्वतंत्र सुख प्रगट थशे ॥ ८ ॥

जाण्युं आत्म स्वरूप में ॥ जवि० ॥ वल्लि कीधुं निरधार ॥  
॥ परम० ॥ चरणे निज गुण रमणमां ॥ जवि० ॥ तजि पररमण  
प्रचार ॥ परम० ॥ ९ ॥

अर्थ:-मे आत्मस्वरूप जाण्युं अने सिद्धांत, नयो, प्रमाणो अने  
माहरी बुद्धिवने निरधार कऱ्युं हवे पर रमणनो चाखो तजी शुद्ध स्व-  
ज्ञावाचरणे निज गुण रमण करुं ए माहरी इच्छा ठे ॥ ९ ॥

धीर वीर निज वीर्यने ॥ जवि० ॥ राखी अचल गुण ठाम  
परम० ॥ परसंगे चल नवि करुं ॥ जवि० ॥ नहि परथी निज  
काम ॥ परम० ॥ १० ॥

अर्थ:-धीर वीर थई निजात्म वीर्यने स्वस्वचावमां स्थिर राखी  
पटले ज्ञान दर्शनादि निज गुण स्थानकमां वीर्य अचलपणे राखी  
पुद्गलादि परसंगे वीर्य चलायमान करुं नहीं केमके माहरे परडव्य-

## ॥ कलस ॥ हरिगीत बंद ॥

गत समयना चोवीश जिननी स्तवन चोवीशी करी । मुनि देवचंद  
महंत हितकर सार जश कीरती वरी ॥ द्रव्यानुयोग गंजीर एहनो  
अर्थ जन सुगुरा लहे । मतिमंद न लहे अरथ एहनो साध्य शून्य क्रि-  
या चहे ॥ १ ॥ में तनुमती इह अर्थ कीधो यथाशक्ति प्रमाणमां ॥ बहु  
सूत्र ग्रंथ प्रमाण जोई नव्य लेजो ध्यानमां । उत्सूत्र दोष दुरे करीने  
स्यादवाद सुनय रसे । जे आदरे जिन वचन ते निज आत्म अनुभव  
रस वसे ॥ २ ॥ एकवीश स्तवनो हाथ लाध्यां तीन स्तवन मदयां नहीं ।  
बावीशमा शिवकर श्रीजिनथी स्तवन में रचियां सहो । शुध नय नि-  
क्षेप प्रमाण युक्ते अर्थ एह विचारिये । उपयोग शुद्धे थीर बुद्धे दुष्ट  
परिणति वारिये ॥ ३ ॥ शुद्धात्म परिणति आदरी उपयोग थिरता  
राखिये ॥ निज ज्ञान दरशन चरण वीरज सुमति अनुभव चाखिये ।  
उगणीश पांसठ फादगुणे सुदि पुनम इंडु निरमलो । मन रंगशुं ए-  
अर्थ करतां आत्मगुण लहो जजलो ॥ ४ ॥ जिन आणसंगी तत्त्व रंगी  
नव्यना आग्रह वने । दाहोद नंगरे अर्थ कीधो नव्य धर्म रसे चने ॥  
द्रव्यानुयोग दुरे करे सवि पाप ताप संतापने । शिव अंग “मनसुख”  
रंग विलसे लही आप प्रतापने ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥

श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढालो. १०९

॥ ॐ पस्म गुरुच्यो नमः ॥

॥ श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढालो ॥

॥ श्रीमान् मनसुखलाल हरिलाल कृत ॥

॥ ढाल (१) ॥ पहेली ॥ धन्य धन्य वीर वाणी ॥ ए राग ॥

बहु सुतने जिनवर कहीरे । सोल उपमा सार ॥ बहु सन्माने  
सेवतोरे नवि । लहे जग जयजयकार ॥ साहेली हितकर बहुसुत  
सेव । शासन नायक देव । साहेली ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ उज्ज्वल  
शंखे डुधे नखोरे । वहिरंतर शोभाय । शुरू समण गुण ऊजलोरे ।  
कीरतीवंतो मुनिराय ॥ साहेली ॥ २ ॥ रहे गुरुकुल वासमां रे । उ-  
ज्ज्वल सुतपय पूर । शुरू समाचारी धरेरे नीत । सम शीव मग वरसूर  
॥ साहेली ॥ ३ ॥ अश्व कवोज सुदेशनोरे । वेगवंत गुणवंत ॥ शत्रुथी  
जे नवि हवेरे । जेहना बलनुं तेज अत्यंत ॥ साहेली ॥ ४ ॥ जिन  
शासन शुज देशमारे । उत्तम कुल उत्पन्न ॥ मोक्ष मार्गमां चालतोरे  
मुनि । महा बलिर्त तप धन्न ॥ साहेली ॥ ५ ॥ कुमत्त शत्रुथी नवि  
हवेरे । स्यादवाद नय पूर ॥ कुमत्ति मान मद नजतोरे करे ।  
कुमत्त सकल चकचूर ॥ साहेली ॥ ६ ॥ छादशांग निर्घोपनोरे ।  
नंदी घोष बाजीत ॥ साध्य सिद्ध दर्शावतारे मुनि । जग तारक जग  
मीत ॥ साहेली ॥ ७ ॥ कृमा विनय आदिक गुणेरे । धीर वीर गंजीर ॥  
निस्पृही निरालंबनीरे मुनि । शीघ्र लहे नवतीर ॥ साहेली ॥ ८ ॥  
संवेगे रंगे रमेरे । रम्य शुधातम मांहा ॥ राग रोष वरजित सदावे  
मुनि ॥ शिवमग मांही उठांहे ॥ साहेली ॥ ९ ॥ स्यादवाद प्राक्रम  
वमेरे । ग्रासे कुमत्ति वृंद ॥ जिन जयपडह वजावतोरे साधु । सुत-  
धर विद्या अमंद ॥ साहेली ॥ १० ॥ सुगुण कवोजी अश्वमारे  
वेगवंत गुणवंत ॥ उत्तम शील सुसंजमीरे वर । शास्त्र सुलक्षणवंत  
॥ साहेली ॥ ११ ॥ स्वामि इच्छाए चालतोरे । लखि स्वामी अजि-



११० श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढाखो.

प्राय ॥ पात्राणादिक शब्दथीरे नवि । त्रासी पात्रो जाय ॥ साहेली ॥  
॥ ११ ॥ शस्त्रादिकथी नवि हठेरे । अतिवेगी सम मार्ग ॥ राजादिकने  
मानीतोरे एवो । कंथक तुरग सोजाग ॥ साहेली ॥ १२ ॥ तेम  
प्रधान बहुसुत मुनीरे । ज्ञान क्रिया व्रत धार ॥ निर्जय परवादी  
थकीरे साधु । लहतो जग जयकार ॥ साहेली ॥ १४ ॥ सम्यक  
चरण विराजतोरे । सहुने वल्लभ होय ॥ जिन शासन कीर्ती  
करे मुनि । बहुसुत बंदू सोय ॥ साहेली ॥ १५ ॥ शंख अश्वनी  
उपमारे । कहि प्रथम हितकार ॥ उपमा चौद आगल कहुरे मन-  
सुख बहुसुत जयकार ॥ साहेली ॥ १६ ॥

ढाल बीजी (२) ॥ बेनी मोरी चाखो सुगुरुजीने वंदीये ॥ ए देशी ॥

सजनी शूरवीर अश्वे चढ्यो । अपडिह्य बलवंत हो अलबेली  
हेली । सजनी जीती शके नहीं अन्य को । विद्या अचल अमंद हो  
अलबेली हेली । सजनी सेवो सुतधर चरणने । धरि हृदये सनमान हो  
अलबेली हेली ॥ सजनी सेवो सुतधर ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥  
सजनी नंदि घोष चउ बाजुए, छादशांग तूरनाद हो अलबेली हेली ।  
सजनी बंदीजनो बोले बहु । मंगल आशीरवाद हो अलबेली हेली  
॥ सजनी सेवो ॥ २ ॥ सजनी प्रवचन अश्वारूढ मुनी । वर प्राक्रमी  
अति सूर हो अलबेली हेली ॥ सजनी परवादी बहु जूथथी । जीत  
वरे जय पूर हो अलबेली ॥ सजनी सेवो ॥ ३ ॥ सजनी नंदि घोष  
स्वाध्यायनो । पंचनो अहनीश नाद हो अलबेली हेली । सजनी शिष्य  
सुगुण स्वाध्यायनो । शोभे प्रवचन वाद हो अलबेली हेली ॥ सजनी  
सेवो ॥ ४ ॥ सजनी जीवो जीवो बहुसुत सदा । प्रवचन दीपक  
शुरू हो अलबेली हेली ॥ सजनी ए आदि बिरुदावली । बोले जवि  
मुनि बुरू हो अलबेली हेली ॥ सजनी सेवो ॥ ५ ॥ सजनी जीतो  
कुमतीना वृंदने । स्यादवाद बलवंत हो अलबेली हेली । सजनी तुम

आगे नवि टकि शके । परवादी मतीमंद हो असवेली हेली ॥  
 सजनी सेवो० ॥ ६ ॥ सजनी नाग नागणी जुथ्यनो । स्वामी गॅज  
 बसवंत हो असवेली० । सजनी परमत गजथी नवि हठे । साठ वरस  
 वयवंत हो असवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ७ ॥ सजनी परजुथ्य  
 पती मद माननो । जंग करे ततकास हो असवेली हेली ॥ सजनी  
 अप्रतिहत गज बसधर । डढ तन बस सुविशास हो असवेली हेली  
 ॥ सजनी सेवो० ॥ ८ ॥ सजनी तेम सुतधर बलीउं मुनी । समण  
 समणी गणधार हो असवेली० ॥ सजनी श्रावक श्राविका जुथ्यनो । सत्य  
 सदा आधार हो असवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ९ ॥ सजनी उत्पाता-  
 दिक वुद्धिथी । विद्या वुद्धि विवेक हो असवेली हेली ॥ सजनी शुरू नये  
 सुत अनुजवी । शिव मगनी डढ टेक हो असवेली हेली ॥ सजनी सेवो०  
 ॥ १० ॥ सजनी तीक्ष्ण शीगनो वृषज जे । खंध पुष्ट बस पूर हो असवेली  
 हेली ॥ सजनी बहु गड जुथ्य तणो पती । रोग रहित अति शूर  
 हो असवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ११ ॥ सजनी एणि पेरे शोजे  
 वृषज शो । तेम बहुश्रुत मुनिराय हो असवेली हेली ॥ सजनी  
 न्याय सुतीक्ष्ण शीगथी । जेदे कुमत कुन्याय हो असवेली हेली ॥  
 ॥ सजनी सेवो० ॥ १२ ॥ सजनी संजम रथने चखाववा । वुद्धि खंध  
 डढ पुष्ट हो असवेली हेली ॥ सजनी जे चारंड पेरे सदा । अप्रति-  
 हत अछुष्ट हो असवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ १३ ॥ सजनी  
 उपमा तीन इहां कही । बलि कहिशु अगीयार हो असवेली हेली ॥  
 सजनी शिव संपति मनसुख खहे । बहुसुत जग जयकार हो  
 असवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ १४ ॥

ढास त्रीजी ( ३ ) ॥ हे जी शियस सुरंगी चूनमी ॥ ए राग ॥

हेजी तीक्ष्ण दाढा हो शोजती । हेजी कैशरीसिंह बसवंत हो ॥  
 हेजी राजा मृग पशु आदिनो । हेजी न शके पराजवी जंत हो ॥  
 हेजी बहुसुत जिन शासन जयो । हेजी सुत बस सहजानद हो ॥

११२ श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोख उपमानी ढालो.

हेजी बहु० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ हेजी सप्त नये तिक्कण दाढ ठे ।  
हेजी जेदे कुमतीना मर्म हो ॥ हेजी कुमति पराजवी नवि शके ।  
हेजी जेणे लख्यो द्रढ जिन धर्म हो ॥ हेजी बहु० ॥ २ ॥ हेजी जिन  
शासन मुनि सिंहनुं । हेजी परमती नवि सहे तेज हो ॥ हेजी शुद्धातम  
अनुचव रमे । हेजी विलसे सुमती स्हेज हो ॥ हेजी बहु० ॥ ३ ॥  
हेजी शंख चक्र गदा धरू । हेजी अप्रतिहत वासुदेव हो ॥ हेजी  
जोडो वर बल जय वरू । हेजी तेम बहुसुत मुनि एव हो ॥  
हेजी बहु० ॥ ४ ॥ हेजी परवादीने जीततो । हेजी परशुं गंज्यो न  
जाय हो ॥ हेजी देखत परमत वृंदना । हेजी हृदय मान दीण थाय  
हो ॥ हेजी बहु० ॥ ५ ॥ हेजी दर्शन उज्ज्वल शंख ठे । हेजी ज्ञान  
सुदर्शन चक्र हो ॥ हेजी बहु० ॥ ६ ॥ हेजी रागादिक अंतर अरी ।  
हेजी बाह्य कुवादी सर्व हो ॥ हेजी वासुदेव पेरे प्रबल जे । हेजी  
हणता कुमतीनो गर्व हो ॥ हेजी बहु० ॥ ७ ॥ हेजी चतुरंगी सेना  
सजी । हेजी मह रिद्धि चउ दश रत्न हो ॥ हेजी चक्री नरपती  
बाजतो । हेजी चौद पुरव मुनि रत्न हो ॥ हेजी बहु० ॥ ८ ॥ हेजी  
आतम द्रव्यादिक जली । हेजी द्रढ सेना चतुरंग हो ॥ हेजी दर्शन  
ज्ञान चरण तपे । हेजी एम चउरंग अजंग हो ॥ हेजी बहु० ॥ ९ ॥  
हेजी अथवा दान शीयल तप । हेजी जाव सहित चउ चंग हो ॥  
हेजी सेना मुनिने शोजती । हेजी दाखी श्रीजिन अंग हो ॥ हेजी  
बहु० ॥ १० ॥ हेजी ज्ञानावरणादिक तथा । हेजी रागादिक अरि  
सर्व हो ॥ हेजी हणता प्राक्रम फोरीने । हेजी चूरे कुमतीना गर्व हो  
॥ हेजी बहु० ॥ ११ ॥ हेजी आमोसही पमुहा महा । हेजी रिद्धि-  
धर मुनिराय हो ॥ हेजी ज्ञान रिद्धि अतिशय जस्य । हेजी सुत-  
धर चक्री सोहाय हो ॥ हेजी बहु० ॥ १२ ॥ हेजी सिंह वासुदेवने  
चक्रीनी । हेजी त्रण उपमा कही एह हो ॥ हेजी वलि कहूं आगली  
ढालमां । हेजी मनसुख बहुसुत स्नेह हो ॥ हेजी बहु० ॥ १३ ॥

श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढालो. ११३

ढाल चोथी (४) वाढीना जमरा डाक मीठीरे चांपानेरनी ॥ ए देशी ॥

जीरे शंकर देवींद्र सदेवनो । जीरे सहस्र नेत्र सुररायरे ॥ आतम  
गुण जोगी बहुसुत सेव सोहामणी । जीरे वज्रायुध डढ कर धरे ।  
जीरे दैत्यपुरी हणनाररे । शासनना घोरी बहुसुत इंद्र हृदय - वस्या  
॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ जीरे अवर पुरंदर नाम ठे । जीरे शुति कान्ति  
ज्योतीवंतरे । आतम० ॥ जीरे रिद्धि अधिक सहु देवथी । जीरे  
जश बल अतुल अत्यंतरे ॥ शासन० ॥ २ ॥ जीरे दश दिशि तेज  
प्रकाशतो । जीरे तेम सुतधर मुनिरायरे ॥ आतम० ॥ जीरे विमल  
सूत्र सहस्र नेत्र ठे । जीरे निरमल तेज सोहायरे ॥ शासन० ॥ ३ ॥  
जीरे आतम विद्यायुध वने । जीरे करे कर्म थरी चुररे ॥ आतम० ॥  
जीरे तप तेजे ततखिण दहे । जीरे मोहादि रिपुंनां पुररे ॥ शासन०  
॥ ४ ॥ जीरे सुत शुद्ध डष्टे देखता । जीरे रुपी अरुपी जावरे  
॥ आतम० ॥ जीरे श्रमण देवोना अधिपती । जीरे बहुसुत परम  
प्रजावरे ॥ शासन० ॥ ५ ॥ जीरे सारण वारण चोयणा । जीरे पडि-  
चोयण करनाररे ॥ आतम० ॥ जीरे सकल साधु गुणधर्मनी । जीरे  
करे रक्षा पटधाररे ॥ शासन० ॥ ६ ॥ जीरे जेहनी रक्षा देवो  
करे । जीरे हरिकेशी मुनि पेरे साररे ॥ आतम० ॥ जीरे चार नि-  
कायी देवी देवता । जीरे करे नित रक्षा ऊदाररे ॥ शासन० ॥ ७ ॥  
जीरे जलहल ज्योति प्रकाशतो । जीरे बहुसुत रविकंर तेजरे ॥ आ-  
तम० ॥ जीरे मिथ्या तिमिर नसावतो । जीरे हरे अज्ञान मुनि हेजरे  
॥ शासन० ॥ ८ ॥ जीरे जवि हृदयकमले करे । जीरे जाव धर्म  
सुऊहासरे ॥ आतम० ॥ जीरे रुपी अरुपी नव तत्त्वना । जीरे नय  
निक्षेप प्रकाशरे ॥ शासन० ॥ ९ ॥ जीरे शुद्ध साध्य बलि साधना ।  
जीरे करता सुमग प्रकाशरे ॥ आतम० ॥ जीरे दिनकर पेरे ऊंचो  
ज्वने । जीरे शिव मग करे ऊजाशरे ॥ शासन० ॥ १० ॥ जीरे जा-

११४ श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढाखो.

ज्वल्यमान ज्ञाने करे । जीरे शीत विजाव विनाशरे ॥ आतम० ॥  
जीरे ते मुनि अप्रमत्त जावमां । जीरे जागृत करे जह्वास ॥ शासन०  
॥ ११ ॥ जीरे खट्खट विध तप तेजथी । जीरे द्रव्य जाव विधि  
दोयरे ॥ आतम० ॥ जीरे जेहनं तेज सहे नहीं । जीरे कुमत उलुक  
जेह होयरे ॥ शासन० ॥ १२ ॥ जीरे सोल कला पूरण शैशी । जीरे  
सारद पुनम सोहायरे ॥ आतम० ॥ जीरे ग्रह तारा नक्षत्रना । जीरे  
बहु समूहे दीपायरे ॥ शासन० ॥ १३ ॥ जीरे देत आहद्वाराद जन-  
मन जणी । जीरे करे आतम गुण शुद्धरे ॥ आतम० ॥ जीरे तेम  
सुतधर शुद्ध संघने । जीरे परम समाधि दीये बुद्धरे ॥ शासन०  
॥ १४ ॥ जीरे सम्यक सोल कला ज्ञेयो । जीरे ताप कषाय बूजायरे  
॥ आतम० ॥ जीरे ते सुतधर मुनि सेवतां । जीरे सहज समाधि  
निपायरे ॥ शासन० ॥ १५ ॥ जीरे इंद्र सूरज ने चंद्रनी । जीरे बहु-  
सुतने उपमायरे ॥ आतम० ॥ जीरे उपमा अवर आगे कहूं । जीरे  
मनसुख शीव सदायरे ॥ शासन० ॥ १६ ॥

ढाल पांचमी ( ५ ) हरिवर हरिवर शुं करो ॥ ए देशी ॥

जेम उत्तम कोठारमां । विणसे न धान्य लगार ॥ चोर चुवानोरे  
जय नहीं । न सले दले विकार ॥ बहुसुत ज्ञान कोठार ठे, आतम  
विद्या जंमार । बहुसुत० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ बहुसुत हृदय कोठा-  
रमां । बहु पद धान्य प्रकार ॥ कुमत प्रमाद आदि थकी । विणसे  
नाहि लगार ॥ बहुसुत० ॥ २ ॥ कण रहे अंग उपांगना । सुतधर  
कोठेरे शुद्ध ॥ संघ चतुर विधिनुं सदा । करे रखोपुंरे बुद्ध ॥ बहुसुत०  
॥ ३ ॥ सुदर्शन जंबुतरु । वृद्ध समुहमारें जेम ॥ वींढ्यो जंबु सुद्धि-  
पने । अतिशय शोचे ठे एम ॥ बहुसुत जंबूरे शोचतो ॥ ४ ॥ तेम  
मुनिमां बहुसुतधरु । शोचे अतिशयवंत ॥ वींढ्यो चउ विधि सं-  
घने । धीर वीर वड संत ॥ बहुसुत जंबू ॥ ५ ॥ अधिष्ठाता जंबूरे  
छिपना । देवोनुं शुद्ध स्थान ॥ तेम जिन शासन संघनुं । बहुसुत

जाणो मंकाण ॥ बहुसुत जंबू ॥ ६ ॥ मह रिखित मुनिश्वर । उप-  
 डव टालेरे सर्व ॥ मधुर अरथ सुत फल दीये । कुमतीनो हरे गर्व  
 बहुसुत ॥ ७ ॥ बहु सरितां माहे शोजती । बहु परिवार समेत ॥  
 महासागरमारे जई जले । तेम बहुसुत शिव खेत ॥ बहुसुत ॥  
 ८ ॥ सुनय अनंत तरंग ठे । शांत सुधा जलपूर । आतम ज्ञानेरे  
 शोजता । करे करम रज दूर ॥ बहुसुत ॥ ९ ॥ नीलवंत परवत  
 थकी । सीता सरी उत्पन्न ॥ तेम मुनि उत्तम कुल थकी । उपना  
 तेहनेरे धन ॥ बहुसुत ॥ १० ॥ विनय उदार गंजीरता । आदि  
 गुण पय पूर ॥ सीता सरी सुतधर पदे । नित थिर रहो हजूर ॥ बहु-  
 सुत ॥ ११ ॥ जंबूवृक्ष कोठारनी । सीतासरिता ए तीन ॥ उपमा  
 दाखी आ ढालमां । मनसुख आगे नवीन ॥ बहुसुत ॥ १२ ॥

ढाल ठळी (६) पर्वतमां उत्तम कहोरे, मंदरगिरि गुणवंत ॥ दीलमे  
 वसी रह्यो ॥ बहु ओपधिओ शोजतोरे, दिव्यमान दरसंत ॥ मनमो हसी  
 रह्यो ॥ १ ॥ जावसुत बहु ओपधीरे, सहित दिपे मुनिराय ॥ दीलडे वसी  
 रह्यो जाव रोग हरता सदारें, सारे जविजन काज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ २ ॥  
 सख्य विसख्य संगरोहणीरे, सजीवनी चित्रावेलिरे ॥ दीलडे वसी  
 रह्यो ॥ विपहर शस्त्रनिवारणीरे, थडीजूत दमणी वेलिरे ॥ मनडो  
 हसी रह्यो ॥ ३ ॥ बहु लब्धी ओपधी जखोरे, सुतधर मेरु राज ॥  
 दीलडे वसी रह्यो ॥ डुख दावानल रुज हरे रे, देत शाति शिव  
 राज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ४ ॥ प्रवल प्रवर मुनि गण विपेरे, संजम  
 पुष्टि काज ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ डढ शङ्कातम जावमारे, बहुसुत  
 शासन राज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ५ ॥ मिथ्या अज्ञान कपायनेरे,  
 ततखिण हरतो संत ॥ दीलमे वसी रह्यो ॥ वयरमुनी आठिक पेरेरे,  
 बहुसुत मेरु महंत ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ६ ॥ विविध रत्नजर पूरियोरे,  
 चरमजेलधि जलपूर ॥ दीलमे वसी रह्यो ॥ बहु अतिशय रत्ने जखोरे, दीपे  
 बहुसुत नूर ॥ मनमो हसी रह्यो ॥ ७ ॥ शांतो जल गंजीर ज्यारे, नय अनंत

११६ श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढालो.

कह्योल ॥ दीलमे वसी रह्यो ॥ आतम अनुजव रस जस्योरे, आसय जास  
अतोळ मनमो हसी रह्यो ॥ ७ ॥ हांत्यादिक ज्ञानादिकेरे, जल गंजीर  
अखूट ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ परिसह्यी कोजे नहींरे, संजम जाव  
अतूट ॥ मनमो ॥ ८ ॥ शांत सिद्धांत रसे जस्योरे, गण रक्षक मुनिराज ॥  
दीलडे वसी रह्यो ॥ कर्म खपावे आपणांरे, सारे निज पर काज ॥  
मनडो हसी रह्यो ॥ ९ ॥ ते माटे नित नित करोरे, शुध नये सूत्र अध्येन ॥  
दीलमे वसी रह्यो ॥ सकल विज्ञाव जीती लहोरे, आतम संपति अने  
मनडो हसी रह्यो ॥ १० ॥ उत्तम अर्थ गवेषिनेरे, तजि पर ममता  
राग ॥ दीलमे वसी रह्यो ॥ तारो निज पर जीवनेरे, धरि संवेगे लाग  
मनडो हसी रह्यो ॥ ११ ॥ वार अश्वपर ऐकलोरे, शूरो थइ असवार  
॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ चतुरंगी सेना सजीरे, लहे बहुसुत जयकार  
मनमो हसी रह्यो ॥ १२ ॥ इत उत द्रष्टि निवारिनेरे, चाले सम शिव  
पंथ । दीलमे वसी रह्यो ॥ शुरू साध्य द्रग थापिनेरे, धिर परिणति  
निग्रंथ । मनमो हसी रह्यो ॥ १३ ॥ मेरु चरमजलधी तणीरे, मलि  
उपमा थइ सोल ॥ दीलमे वसी रह्यो ॥ “मनसुख” शिवसंगे लहेरे,  
सहजानंद झकझोल ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ १४ ॥ जेठ शुक्ल त्रयोदशीरे,  
“शा. गीरधर हेमचंद ” ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ आग्रह्यी “दोहदे”  
रच्यारे । बहुश्रुत गुणना ठंद ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ १५ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ ॐ श्री परम गुरुज्यो नमः ॥

॥ ॐ श्रीमान् मनसुखाल हरिखाल कृत ॥

॥ श्री विषय परिहारनी ढालो ॥

॥ जुजंगी ठंद ॥

नमो धीर आपणंद अत्यंत दाता । सदा शीव शांती  
सुत्राता विख्याता ॥ जित्या कर्म आठे सरम्ये रमीने । करुं  
बोध साचो प्रजूनै स्तवीने ॥ १ ॥

॥ माखिनी ठंद ॥

रिखव अजित वंदी, आपणुं वीर्य धारी । विषय विष  
निवारी, जव्यने शांति कारी ॥ जव तरण सुद्धेते, बोध साचो  
विचारी । करिश सरस रंगे, सूत्रमांथी लक्षारी ॥ १ ॥

॥ ढाल पढेली (१) ॥ सहजानंदीरे आतमा ॥ ए राग ॥

चेतन चेतोरे चेतना, आतम तत्त्व विचार ॥ वश करि ईडिय  
चोरने, जिम लहिये शीव सार ॥ चेतन चेतोरे चेतना ॥ १ ॥ पुरो  
शूरो ते मुनि कद्यो, चरण रयण धन जास ॥ छुंटे न ईडिय चोरटा,  
निज गुण रमण विलास ॥ चेतन ॥ २ ॥ ईडिय वश जे नवि हुवे,  
पंडित पण कद्यो तेह ॥ रंक सदा रहे ते नरा, विषय वश होय जेह ॥  
॥ चेतन ॥ ३ ॥ सत्य प्रशसारे तेहनी, नहि विषये वश जेह ॥ ज्ञाना-  
दिक निज गुण विपे, मग्न रहे मुनि तेह ॥ चेतन ॥ ४ ॥ ईडिय  
चपल तुरंग ठे, दुरगति मार्गेरे जाय ॥ धांधी ज्ञाननी राशथी, वश  
करे मुनी अमाय ॥ चेतन ॥ ५ ॥ जावो जव स्वरूपने, ए संसार  
असार ॥ पर परजाय अनित्य ठे, अशरण जीव सदाय ॥ चेतन ॥ ६ ॥  
आवे जावेरे एकलो, सुख दुःख जोगेरे एक ॥ चेतन अव्य अखंरु ठे,  
ए थिर राखो विवेक ॥ चेतन ॥ ७ ॥ चेतनता वीण सर्व जे, आपणुं



कोई ना होय ॥ पुद्गल स्नेह मूरख करे, तुं निज ज्ञानेरे जोय ॥  
 ॥ चेतन० ॥ ७ ॥ देह अशुचि जरपूर ठे, विषय अशुचीनी खाण ॥  
 नरकादिक दुःख आकरां, तुं केम थाय अजाण ॥ चेतन० ॥ ८ ॥  
 ईंद्रिय धुत्तने वश पड्यो, क्षिण विषय सुख हेत ॥ काल अनंतोरे  
 दुःख सहे, जटकी जववन खेत ॥ चेतन० ॥ ९ ॥ तिल तुस मात्र  
 ईंद्रिय विषे, वधवा मति देरे मित्र ॥ प्रसख्या विषय प्रणाममां, जव  
 दुःख देशे विचित्र ॥ चेतन० ॥ १० ॥ निर्मल चारित्र तेहनूं, विषय  
 कीमे न खवाय ॥ चूक्यो क्षिण सुख कारणे, कोटि वरस दुःख पाय ॥  
 ॥ चेतन० ॥ ११ ॥ कीडा लाग्या जे काष्ठमां, ते होय काष्ठ निसार ॥  
 विषय कीमा लागे जिहां, चारित्र तास असार ॥ चेतन० ॥ १२ ॥  
 यत्न करो डढ प्राणिया, विषय जीतण काज ॥ ज्ञानादिक प्रगट हुवे,  
 लहिये शिवपूर राज ॥ चेतन० ॥ १३ ॥ काचनी कांगणी कारणे, हारे  
 रत्न जो क्रोड ॥ चरण हणे विषय रसे, ते महा मूरख जोड ॥ चे० ॥ १४ ॥  
 तिलमित सूख विषय तणूं, फल दुःख मेरू समान ॥ जेह उपाकेरे  
 प्राणिया, ते नवि कहिये सुजाण ॥ चेतन० ॥ १५ ॥ थोडो पण रस  
 विषयनो, क्रोडो जव दुःख देत ॥ तेणे नवि थाउं विषयरसी, ईच्छो  
 आतम हेत ॥ चेतन० ॥ १६ ॥ जोगवतां मधुरा लगे, अति करुवा ठे  
 विपाक ॥ किंविपाकना फल समो, राखो विषयनी धाक ॥ चेतन० ॥ १७ ॥  
 खणतां कंफुरे वंतने, लागे ठे अती मीष्ट ॥ पढी जलनादिक वेदना,  
 उपजे अतीसे अनिष्ट ॥ चेतन० ॥ १८ ॥ जोग थकी अतीसे वधे,  
 तृष्णा दाहनूं जोर ॥ मृगतृष्णा जल जांजुवे, शांति लहे नहीं ठोर ॥  
 चेतन० ॥ १९ ॥ बहु बहु योनी कुजन्मनी, आपे विषय सदाय ॥  
 जगमां वैरी न ए समो, मनसुख ठंमो अपाय ॥ चेतन० ॥ २० ॥

ढाल बीजी (२) विषय विष परिहरो प्राणीआ ॥ ए देशी ॥

॥ अग्नि बूजी शके जलथकी, बूजे नहि कामनी आगरे ॥ क्रोर

સમૂહના જલ થકી, હુષ્ટ અતિ મદનનો રાગરે ॥ વિષય વિષ પરિ-  
 હરો ચેતના ॥ ૧ ॥ કાલ અનંત લગે વલિ વલિ । જોગવ્યા વિષય  
 વિકારરે ॥ તો પણ તૃપ્તિ પામ્યા નહીં, વિષય દુઃખદાઈ અસારરે ॥  
 વિષય ૦ ॥ ૨ ॥ જીવ હિસા વિષય વશ કરે, આદરે જૂઠ અવત્તરે ॥  
 કૂશીલ પરિગ્રહ આદરે, કરી કરી અધિક મમત્તરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૩ ॥  
 સકલ કપાય હોય પદ્ધતી, પાપનાં સ્થાન અઢારરે ॥ જવ જંજાલ  
 પદ્ધતી વધે, લહે ન શુદ્ધાતમ સારરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૪ ॥ વિષય પરિ-  
 ણામ જેણે જીતિયા, મુગતિ સુખ તેહને ગોદરે ॥ મનુષ્ય જવ લહિ  
 જવી આદરો, જિન વચન નિર્મલ વોધરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૫ ॥ વિષય મદ-  
 પાને ઉન્મત્ત થયો, નવિ લહે યોગ્ય અયોગ્યરે ॥ કૃત્ય અકૃત્ય પણ નવિ  
 ગણે, ચાહુ એક વિષય વિષ જોગરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૬ ॥ આવિ વિપાક  
 હાજર હુવે, દીન પરવશ લહે કલેશરે ॥ નરક નિગોદ ગતિમાં પડ્યો,  
 જિહાં નહીં સૂઝનો લેશરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૭ ॥ કીડા વિષ્ટાના વિષ્ટા  
 વિષે, લીંબ કીડા લિંબ માંહિરે ॥ તેમ વિષયી વિષય વિષ વિષે, મા-  
 નિ સુખ મગ્ન રહે તાંહિરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૮ ॥ કૃષ્ણિક ચપલ પરતંત્ર જે,  
 ગભ્યા પણ નવિ રહે જેહરે ॥ વિષય નર નારિના જાણિય, મૂકિયે પદ પર  
 સ્નેહરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૯ ॥ જેમ જેમ અગ્નિ હંધન અતી, નાંખતાં તૃપ્ત  
 નવિ હોયરે ॥ તેમ એ વિષયીને વિષયથી, તૃપ્તિ રતિ હોય નવિ કોયરે  
 ॥ વિષય ૦ ॥ ૧૦ ॥ દેવ મનુષ્ય તીર્યંચના, જોગ સહુ અથિર પરતંત્રરે  
 ॥ જોગતા તેહથી નવિ લહ્યા, નિજ ગુણ સહજ સ્વતંત્રરે ॥ વિષય ૦  
 ॥ ૧૧ ॥ જોગતા રમ્ય મનને લગે. પરિણમે કટુક વિપાકરે ॥ ગીત  
 વિલાપ સમ જાણિય, નૃત્ય વિટંવના થાકરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૧૨ ॥ જૂપણ  
 જાર લપાનુવો, ઇંડ નરીંડના જોગરે ॥ એ જવચક્ર જમતાં લહ્યો, વલિ  
 વલિ પદનો યોગરે ॥ વિષય ૦ ॥ ૧૩ ॥ તો પણ તૃપ્તી નવિ રહી, આ-  
 તમ ધર્મ અજાણરે ॥ ચાર પુદ્ગલપરિચ્છેદમા, તેં લહ્યાં દુઃખ અ-

(૧) દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ અને માવથી એમ ચાર પ્રકારે

मानरे ॥ विषय० ॥ १४ ॥ ॥ आहार नीहार ग्रहि ठांडिया, पुद्गल  
 अनंत अनंतरे ॥ तो पण थीर सुख नवि लह्यो, अमल सुख सहज  
 स्वतंत्ररे ॥ विषय० ॥ १५ ॥ जोगि जव जोगना स्नेहथी, पुद्गल  
 मांहि लपटायरे ॥ जोगनो स्नेह जे नर तजे, ते नरा शिवसुख  
 पायरे ॥ विषय० ॥ १६ ॥ गोलो आलो जेम माटीनो, लागशे जी-  
 तने जेमरे ॥ तिम नरा जोगना स्नेहथी, कर्म रज ग्रहि रहे एमरे ॥  
 ॥ विषय० ॥ १७ ॥ सूको गोलो जेम जीतने, नवि लगे ते कोई वाररे  
 ॥ जोगनो स्नेह जेहने नहीं, ते लहे शिवपद साररे ॥ विषय० ॥ १८ ॥  
 सरिता असंख्यनी आवथी, सागर जेम न पूरायरे ॥ काम अनंतना  
 जोगथी, सुग्ध नर तृप्ति नवि पायरे ॥ विषय० ॥ १९ ॥ देव नर जोग  
 बहु जोगवी, बलि लहे नरकनां दुःखरे ॥ कलकलित अग्नि तपावियुं,  
 ताम्र रस पान नहीं सूखरे ॥ विषय० ॥ २० ॥ कोण हणायो नहीं लो-  
 जथी, नारिथी कोण न ठगायरे ॥ मृत्युए कोण जीव नवि ग्रह्यो, कोण  
 विषय गृह्य नवि थायरे ॥ विषय० ॥ २१ ॥ ज्ञान शुद्धातम तत्त्वनुं, लहि  
 नर धन्य कहायरे ॥ मनसुख चेति चित्तमां सदा, तुं विषय वश नवि  
 थायरे ॥ विषय० ॥ २२ ॥

ढाल त्रीजी ( ३ ) मोरा प्रीतमजी तुं सुण एक मोरी शीख  
 बालमजी ॥ ए देशी ॥

सारा चेतनजी सारा बालमजी, बलि बलि हुं तुज शुं कहुं ॥ च-  
 तुर न जाग्यो चित्त चेतनजी, न लह्युं तें निज हीत चेतनजी ॥  
 बलि० ॥ १ ॥ कामग्रह अति आकरो, सकल कुग्रह शिरदार चेतनजी  
 ॥ दुःख दिए मूरख जीवने, जे एहना थया यार चेतनजी ॥ बलि०  
 ॥ २ ॥ नर ईद्रादिक जग सहू, ब्रह्मा विष्णु महेश चेतनजी ॥ वश  
 करि राख्या केदमां, सहेता विविध कलेश चेतनजी ॥ बलि० ॥ ३ ॥  
 थावर जंगम विषयकी, सिंह सरपने आग चेतनजी ॥ जेह दुःख

लपजे न जीवने, कामथी दुःख अथाग चेतनजी ॥ वलि० ॥ ४ ॥  
 इच्छेथी दुःख लपजे, जोगे विविध असूख चेतनजी ॥ द्विण द्विण  
 कामना वेगीने, नहीं निवृत्तिनुं सूख चेतनजी ॥ वलि० ॥ ५ ॥  
 काम प्रणाम जिहां रहे, एहीज आश्रव आय चेतनजी ॥ कर्म रजे  
 रस पूरमां, आत्म समूझ जराय चेतनजी ॥ वलि० ॥ ६ ॥ जव  
 अनंत जमतां करे, दुःख आक्रंद अनंत चेतनजी ॥ पण जेहू निज  
 गुण जोगमां, मग्न रहे मुनि सत चेतनजी ॥ वलि० ॥ ७ ॥ जोर न  
 रंक अनंगनुं, नवि चले कोइ प्रकार चेतनजी ॥ पंच विषयनी कामना  
 जे तजशे नरनार चेतनजी ॥ वलि० ॥ ८ ॥ पुरुषपणुं धन्य तेहनुं,  
 प्राक्रमवंत महंत चेतनजी ॥ लघु काले शिवपद लही, काम तज्यो  
 जेणे संत चेतनजी ॥ वलि० ॥ ९ ॥ तजे अपेक्षा विषयनी, विघ्न  
 रहित शिव पाय चेतनजी ॥ लघु काले संसारथी, सहज निवृत्ति आय  
 चेतनजी ॥ वलि० ॥ १० ॥ प्रवचन सार एहिज लहो, ए विण नाण  
 अनाण चेतनजी ॥ जीहां राग तिहां विषय ठे, राग तिहां नहीं ज्ञान  
 चेतनजी ॥ वलि० ॥ ११ ॥ ज्ञानीने राग होवे नहीं, राग विण विषय  
 न होय चेतनजी ॥ सार सिद्धांतनो ए लही, विषय तजो सहु कोय  
 चेतनजी ॥ वलि० ॥ १२ ॥ सकल शत्रुमां शत्रु ए, सकल झेरमां झेर  
 चेतनजी ॥ सकल दुष्टमां दुष्ट ए, विषये कस्यो जग जेर चेतनजी  
 ॥ वलि० ॥ १३ ॥ सवि प्रतिबंध ठे विषयथी, ए विण नही प्रतिबंध  
 चेतनजी ॥ प्रतिबंधे बंधन मढ़ा, एहू तजिए कूंध चेतनजी ॥ वलि०  
 ॥ १४ ॥ विषय थकी निरपेक्षने, गोपद सम संसार चेतनजी ॥ तरवो  
 सुगम सूत्रे कह्यो, जिनवर जगदाधार चेतनजी ॥ वलि० ॥ रत्नादेवी  
 वश पड्या, तेणे छोप बंधव दोय चेतनजी ॥ चेती त्यांथी जागीया,  
 शरण मढ्यो देव कोय चेतनजी ॥ वलि० ॥ १६ ॥ देवे कह्युं अय मतं  
 चले, चलतां ठोडिग तूज चेतनजी ॥ रत्नाए थावी चटावीओ, देवे  
 ठोड्यो अचूज चेतनजी ॥ वलि० ॥ १७ ॥ वलि तोहा बीजो बंधव

ગયો, કરિ આવ્યો દેવને શરણ ચેતનજી ॥ રત્ના ચલાવ્યો નવિ  
 ચલ્યો, કરિ શકી દેવી ન હરણ ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૧૭ ॥ દેવે  
 સિંધુ ઉતારીને, મૂક્યો તેહને ચેતનજી ॥ વિષય કુલટથી નવિ  
 ચલે, તેહ લહે શિવ હેત ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૧૮ ॥ જે જમે જવ  
 કંતારમાં, તેહનું વિષય છે મૂલ ચેતનજી ॥ વિષયનું મૂલ અજ્ઞાન છે,  
 જ્ઞાન આતમ અનુકૂલ ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૧૯ ॥ વિષય વિશેષ આ-  
 શક્તને, સુશીલ પાંચ ઢેદાય ચેતનજી ॥ પાંચ રહિત જેમ પદ્મીથી,  
 નવિ આકાશ તરાય ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૨૦ ॥ દ્રવ્ય જાવ દોય  
 શીલની, હોય પાંચ દ્રઢ જાસ ચેતનજી ॥ તરે સંસાર કંતારથી, પામે  
 સિદ્ધિ વિલાસ ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૨૧ ॥ સૂકાં અસ્થી ચાવતો,  
 શ્વાન માને જેમ સૂચ ચેતનજી ॥ ગાલ તાલુ ઢેદન તણું, તતક્ષણ  
 પામે દુઃખ ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૨૨ ॥ તેમ વિષયી વિષય  
 રસે, કરિ નિજ વીર્યની હાણ ચેતનજી ॥ તનુ મન ગત વહુ રોગની,  
 મૂઠ ખોલે દુઃખ ચાણ ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૨૩ ॥ સહેત લીપટિ અ-  
 સી ચાટતાં, પ્રથમ લહે મન સ્વાદ ચેતનજી ॥ જીજ કટે દુઃખવેદના,  
 હોય અતિ વીંચવાદ ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૨૪ ॥ મોહ મદીરા મદ  
 તજો, કરિ જિન વચ સુધાપાન ચેતનજી ॥ રોગ શોગ જવજન્ય ટલે,  
 રહે મનસુખ શિવ આન ચેતનજી ॥ વલિ ॥ ૨૫ ॥

॥ ઢાલ ચોથી (૪) ॥ રાગ પદ્મરી ઠંદ ॥

અશુચી જર નર નારી શરીર, જર મોહ વશે લાંગે રુચીર ॥ નવિ  
 દેખે દુઃખને ચેદ થાક, સદગુરુની પાણ નવિ માને હાક ॥ ૧ ॥ ક-  
 દલી તરુ માંહિ ન કાષ્ટ સાર, તેમ નર નારી તન અતિ અસાર ॥ નારી  
 નદિ યૌવન જલ જરેલ, શૃંગાર રૂપ વહુ આવે વેલ ॥ ૨ ॥ જલ જમર  
 વિલાસ વિલોકિ કોય, તિહાં વૂડે નવિ જે જ્ઞાનિ હોય ॥ નારી નદિ  
 શોક જલે જરેલ, અતિ કૂરુ કપટની ગુહિર વેલ ॥ ૩ ॥ અતિ વૈર

क्लेश बन्दि उपाय, नारी अरणी जाणो सदाय ॥ महिला दुःख खा-  
णी सुख नशाय, ईहां सुख जाणी नर चपल थाय ॥ ४ ॥ दुर्गंधि वहे  
दश दोय द्वार, वश काम मूर्ख मन एहिज सार ॥ पर नारि मिले  
अति हरख होय, दुरदशा आवि नहि मूर्ख जोय ॥ ५ ॥ नारी पर पुरुषयी  
धरत प्यार, नहि मदन विना जग कोइ सार ॥ जाण्यो नहि तत्त्व अतत्त्व  
मर्म, ते किम पामे निज धर्म शर्म ॥ ६ ॥ ते किम रहेसे थइ धीर वीर,  
नारी तन देखी जल गंजीर ॥ नवि लहि मन शक्ति निज कदाय,  
त्रिय नेत्र बाणथी नवि नसाय ॥ ७ ॥ देखी विषधर सहु जागि जाय,  
त्रिय नागणि देखी हरख थाय ॥ ए वरु अचंव मुज मन सदाय, एह  
मोह महीपतिनो उपाय ॥ ८ ॥ द्रष्टीविषयी पण अधिक एह, शुध  
चरण प्राण पण हणत जेह ॥ माटे तज नारी साथ वात, असंजमनी  
ए जाण मात ॥ ९ ॥ श्रुतधर द्रढ चित्त जितेद्रि कोय, युवती पिशा-  
चणी जीति सोय ॥ नवनीत तपे जिम अग्नि संग, मुनि संजम गलत हे  
त्रिय प्रसंग ॥ १० ॥ एह विषय विना रहे तनु निरोग, सुख होय न  
आवे दुःख वियोग ॥ शुज शीलथि वंठित सिद्धि होय, सन्मुख नवि  
देखे वयरि कोय ॥ ११ ॥ जख प्रेत पिशाचनुं विघन जाय, देवादिक  
पण तसु सेवे पाय ॥ शुध शीलवतने सुख सदाय, मंत्रादिक नवनिधि  
सिद्धि थाय ॥ १२ ॥ जेणे ठग्या क्षीणमा महत धीर, एहने जीते ते  
परम वीर ॥ नारी नदि जन तृण खेचि जाय, तस रसिया नवसिधु  
समाय ॥ १३ ॥ एम जाणी धुरथी तजि सनेह, मनमा नवि चित्तो  
नारि नेह ॥ जग धन्य धन्य ते धीर वीर, लहुं आत्म रमण संसार  
तीर ॥ १४ ॥ सिह गुफा वासि मुनि तप सुधीर, बहु मास तपे सोस्युं  
शरीर ॥ घर धन कुटुंब तजि देह राग, धाख्यो तो संजम योग याग ॥  
॥ १५ ॥ क्षिणमां खोयुं जेणे चरण रत्न, जो नवि कीधु नारीथि यत्न ॥  
माटे तजिए नवि काम नेह, मोटो शत्रु जग जाणि एह ॥ १६ ॥ सहु  
काले विषये जल जराय, तव आतम सर अति मलिन थाय ॥ संव-

रतां प्रगटे विसल रूप, करि निर्ऊरणा होय शांति चूप ॥ १७ ॥ करो  
शुरू रमण थिरंथोज आप, विषये विष उतरे जाय पाप ॥ मनसुख  
आतम गुण मग्न होय, शाश्वत शिव संगे अचल सोय ॥ १८ ॥

ढाल पांचमी (५) प्यारा प्राण थको मुनिराज ॥ ए राग ॥

डुविध परिग्रह राग तज्यो जेणे, विषय राग नवि रोषजी ॥ ज्ञानादिक  
निज गुणमां तृप्ति, लह्यो शांति रस पोष ॥ धन्य नर तेहोजी, धीर वीर  
गंजीर गुणना गेहोजी ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ लहे निर्वाण शाश्वत सुख  
पूरण, परमानंद विलासोजी ॥ इंद्र चक्री धनवंत नरो पण, तरुणीना थया  
दासो ॥ धन्य० ॥ २ ॥ सहज शुधातम तत्त्व विचारी, नरत्नव  
सफलो कीजेजी ॥ सार सिद्धांतनो रहस्य एह ठे, विषय विकार  
तर्जीजे ॥ धन्य० ॥ ३ ॥ श्लेषम लिपटी जे मक्कीका, उरुवा समरथ नां-  
हिजी ॥ विषय श्लेषम जे लेपाया, तेह रह्या जवमांहि ॥ धन्य० ॥ ४ ॥  
लेश मात्र पण कामे वश जे, ते नहि मूक्ति समथ्यजी ॥ काम तज्यो  
जेणे तेणे शिव साध्यो, अटल वीरज परमथ्य ॥ धन्य० ॥ ५ ॥ जे सुख  
विलसे ठे वितरागी, ते सुख तेहिज जाणेजी ॥ विष्टा कर्दममां नित रहे-  
तो, जुंरु महा सुख माने ॥ धन्य० ॥ ६ ॥ इंद्रोनुं सुख जुंरु न जाणे, तेम  
विषयी सुख शिवनुंजी ॥ विषय तजि शिव सुख अन्यासो, कारज सिद्धे  
जीवनुं ॥ धन्य० ॥ ७ ॥ ठे प्रतिबंध विषयनो जबलो, मोह उलंग्यो न  
जायजी ॥ तजि विषय निज गुण अवलंवे, मोह समूद्र तराय ॥ धन्य० ॥ ८ ॥  
कामे अंध थया ठेजे नर, धरत न जव जय शंकाजी ॥ विषय तजी जिन  
वचने लीना, ते जव जीरु अवंका ॥ धन्य० ॥ ९ ॥ मुत्र पुरीष वलि पित-  
श्लेषम, चरवी हाड ने सूजोजी ॥ मेद मांसने वमन करंरुके, नरनारी  
तन बूजो ॥ धन्य० ॥ १० ॥ लाल वहे मुख होष्ट डुगंधी, नाके अशूची  
वहेतीजी ॥ चर्म मक्ति तन प्यारी नारी, मनथी मूको वहेती  
॥ धन्य० ॥ ११ ॥ कीरम कीट बहु रोगनुं स्थानक, कूरु कपटनी खा-

णीजी ॥ हीण मती होय एहना रसिया, एह दुर्गतिनी निशानी ॥ धन्य० ॥ १२ ॥ चढ पग जीवने उरपरी खेचर, पास पिजर बंधा-  
याजी ॥ युवती पास पिजरमां पडना, दुर्गति सनमुख धाया ॥ धन्य०  
॥ १३ ॥ प्रत्यक्ष क्षिण क्षिण दुःख अनुभवतो, मोह वशे पण जाण्युं-  
जी । पण नवि ठोडे एह वड अचरिज, किम विषये मन मान्युं ॥ धन्य०  
॥ १४ ॥ युवती ससर्गी नर जे जे, बहु विध दुःख संसर्गजी ॥ काल  
अनत संसार कतारे, जमि लहे नवी अपवर्ग ॥ धन्य० ॥ १५ ॥ वि-  
ह्वी संसर्गे उंदरने, नहि सुपने सुख साचुंजी ॥ नारी संगे तिम ज-  
गमां सुख, न कहुं एह नवि काचुं ॥ धन्य० ॥ १६ ॥ वासुदेव शिवने  
बलि ब्रह्मा, कार्तिक इंद्र ने चंडोजी । देव विद्याधर ने बहु बलिया,  
तेम नरींद्रसुरींद्रो ॥ धन्य० ॥ १७ ॥ जगमां बहु मोटा कहेवाया, पण ते विषय  
वश व्यसनेजी । नारीना किकर हुइ रहिया, धक्क अनीठ एह रसने ॥  
धन्य० ॥ १८ ॥ परिसह ताप सहे ठेवहु जन. बहु विध तप करिकीरियाजी ॥  
अविवेकी ए विषय न त्यागे, प्राण रावण परिहरिया ॥ धन्य० ॥ १९ ॥  
इलाची निज कुटुंबने त्यागी, विवेक राखि न शकीयोजी ॥ जेणे निज  
आतम गुण न संजाव्यो, तेह विषयमां ठकीयो ॥ धन्य० ॥ २० ॥  
नारी देखी मुनि अणचलतो, देखि इलाची वृझ्योजी ॥ विषय वि-  
कार असार लहीने, निरमल शिवमग सूझ्यो ॥ धन्य० ॥ २१ ॥ पाप  
चरित्र बहु नरनां सुणि पण, जे जन विषय न त्यागेजी ॥ जिनवर व-  
चन हृदय नवि धाव्यां, तस किम अनुभव जागे ॥ धन्य० ॥ २२ ॥  
चपल जिवित जल विडु सम ठे, यौवन संध्या रंगोजी ॥ सरिता पूर  
समान ठे लच्छी, तजिये विषय अनंगो ॥ धन्य० ॥ २३ ॥ कर्दममां  
खूतो जिम नागो, सर तीर देखे किनारोजी ॥ पण खूतो आपे थयो  
परवश, होइ शके नहि न्यारो ॥ धन्य० ॥ २४ ॥ विषय कर्दममा जे  
खूता, परवशता दुःख वेदेजी ॥ श्री जिन धर्म कांडक पण जाण्यो, पण  
नहीं वीर्य उमेदे ॥ धन्य० ॥ २५ ॥ श्री जिन वचन सुधारस पीतां



निज गुणमां लय लाग। जी ॥ परम निवृत्ती पदवी मनसुख, लहशे तेह  
सोचागी ॥ धन्य ॥ २६ ॥

॥ ढाल ठठी ॥ (६)

॥ श्री श्री मंदिर साहेव सुणजो नरत क्षेत्रनी वातो रे ॥ ए राह ॥

विषय रसे आशक्त थयो जेह, उद्भट वेष करीनेजी ॥ नव वन  
नव नव नाटक नाचे, पुद्गल रूप धरीनेजी ॥ श्री जिनवचन सुधारस  
पीजे, सहज सधर्म रमीजेजी ॥ श्री जिन ॥ १ ॥ दश द्रष्टांते दूर्लभ  
नरनव, काल अनंत आव्योजी ॥ रत्नी थकी पणी अधिक धर्मनो,  
योग प्रमादे गमाव्योजी ॥ श्री जिन ॥ २ ॥ विषय कागमे जगजन  
ठगिया, रत्न चिंतामणि हरियुंजी ॥ पण मूरख मनमां नवि चेत्यो,  
चरण रयण न समरियुंजी ॥ श्री जिन ॥ ३ ॥ चित्रसाधु बंधव  
विषये वश, अशुभ नियाणु धाखुंजी ॥ ब्रह्मदत्त चक्री पद पामी,  
संजम सार विसाखुंजी ॥ श्री जिन ॥ ४ ॥ नरके परवशताए बहु  
दुःख, आक्रंद करत विलापोजी ॥ तेम विषये वश संजम चूके, ते  
सहे नवदव तापोजी ॥ श्री जिन ॥ ५ ॥ चित्र मुनि संजम रस  
लीनो, रंग रसे शिव लहियुंजी ॥ ते देखी मुज अधिक उमाहे, सं-  
जम मन गहगहियुंजी ॥ श्री जिन ॥ ६ ॥ विषय मयपाने जे पर-  
वश, धिक धिक ते नरनारीजी ॥ नरकादिक दुःख आप स्वकारे,  
संजम सार विसारीजी ॥ श्री जिन ॥ ७ ॥ श्री जिनवचन अमृत  
रस त्यागी, तिव्र विषय मय पीवेजी ॥ चउगति काल अनंत नमे  
ते, परवश दुःखनर जीवेजी ॥ श्री जिन ॥ ८ ॥ इंद्रिय बल घाटुं  
जस अतिशय, मरण निकट पण जाणेजी ॥ बहु नारीथी विषय जा-  
चतां, दुरबल विण सनमानेजी ॥ श्री जिन ॥ ९ ॥ जेहनुं महातम  
ईंद्र न खंमे, जगमां किरती जेहनीजी ॥ एवा पण स्त्रीए वश क्रीधा,  
तो मति रूढि न तेहनीजी ॥ श्री जिन ॥ १० ॥ राजुल देखि रथ-

नेमी चलियो, संजम चित्त विसाखुंजी ॥ राजुल वचन अंकूशे वृद्धो,  
 संजममां चित्त वाढ्युजी ॥ श्री जिन० ॥ ११ ॥ धिक धिक विषय  
 विकारज एहवो, शिवतरु मूल नसावेजी ॥ एम जाणी मनिवत चे-  
 तिने, विषय सामो न जावेजी ॥ श्री जिन० ॥ १२ ॥ मेरु सम डढ  
 धीर पुरुषने, काम मदने चलाव्याजी ॥ एम मन रुरिने जे दुर रहेता,  
 ते सजम घर आव्याजी ॥ श्री जिन० ॥ १३ ॥ सर्प सिंह गजने कोइ  
 जीते, बलवतो धीर वीरजी ॥ तोपण तेणे कंदर्प न जीत्यो, जीते  
 अनुजवी वीरजी ॥ श्री जिन० ॥ १४ ॥ प्यास अनादि विषम विष-  
 यनो, ए संसरण स्वप्नावजी ॥ चपल ईडी मनने जीते, रमत शुद्धा-  
 तम जावजी ॥ श्री जिन० ॥ १५ ॥ कामे तापित जे नर होवे,  
 कलमल अरती नूखजी ॥ दाह व्याधि मरण बहुविध दुःख, इष्ट  
 वियोग असूखजी ॥ श्री जिन० ॥ १६ ॥ काम तजे तस दुःख जाय  
 सब, तन होये विमल निरोगजी ॥ इष्ट संजोग मळे बहु विवथी ॥  
 सुगुरु मित्र संयोगजी ॥ श्री जिन० ॥ १७ ॥ पंच ईदि त्रण योग संवर  
 करी गळे कातर मत वाहोजी ॥ आठे कर्म निर्जरणा करवा, लीजे  
 नरत्नव लाहोजी ॥ श्री जिन० ॥ १८ ॥ रे जीव ! तुं शुं अंध थयो ठे,  
 के धत्तूरो पीधोजी ॥ के सन्निपातनो चालो ठे तुज, संजम लाज न  
 लीधोजी ॥ श्री जिन० ॥ १९ ॥ अमृत सम जिन धर्म ते विषवत,  
 विषय विष अमृत मान्योजी ॥ तो तुं हिज पोतानो दुश्मन, निज  
 हित कांइ न जाण्योजी ॥ श्री जिन० ॥ २० ॥ ज्ञान विज्ञानने किरती  
 तारी, पोते किम विणसावेजी ॥ ठोरु उतावलयी सहु विषयो, सद्-  
 गुरु तुज समजावेजी ॥ श्री जिन० ॥ २१ ॥ ज्ञायकता निज थिर उप-  
 योगे, धर्म शुक्ल डढ धारीजी ॥ आत्म सपति लहिने मनसुख,  
 होवे शिव अधिकारीजी ॥ श्री जिन० ॥ २२ ॥

## ॥ ढाल ( ७ ) सातमी ॥

चेतन ए तन कारमुं ॥ तुमे ध्यावोने ॥ विषय तजी जिन धर्म ॥  
 जविक नीत ध्यावोने ॥ अनंत काले नरजव लह्यो ॥ तुमे ॥ प्रगट  
 करो शिव शर्म ॥ जविक ॥ १ ॥ चिंतामणी सम ए लही ॥ तुमे ॥  
 धर्म योगता सार ॥ जविक ॥ विषय विकार वशे रही ॥ तुमे ॥  
 नवि करो तेह असार ॥ जविक ॥ २ ॥ सूकी जप्मने कारणे ॥  
 तुमे ॥ बाले चंदन कोय ॥ जविक ॥ गज ठोडि वकरो ग्रहे ॥ तुमे ॥  
 ते महा मूर्ख होय ॥ जविक ॥ ३ ॥ धत्तूर वावे आंगणे ॥ तुमे ॥  
 उखेडि कटपवृद्ध ॥ जविक ॥ सूर्ख शिरोमणी ते कह्यो ॥ तुमे ॥  
 कोण कहे तस दद्ध ॥ जविक ॥ ४ ॥ आयु चपलथी चेतने ॥ तुमे ॥  
 तजि प्रमाद थइ सूर ॥ जविक ॥ आतम सत्ता निरमली ॥ तुमे ॥  
 चिदानंद रस पूर ॥ जविक ॥ ५ ॥ जीती दुर्जय विषयने ॥ तुमे ॥  
 दर्शन ज्ञान चरित्त ॥ जविक ॥ सम जावे रंगे रमो ॥ तुमे ॥ पंचा-  
 चारे सित्त ॥ जविक ॥ ६ ॥ अणगमता गमता बहु ॥ तुमे ॥ विषयो  
 पंच प्रकार ॥ जविक ॥ रमण तजि सवि एहनुं ॥ तुमे ॥ चित्त चप-  
 लता वार ॥ जविक ॥ ७ ॥ शब्द सुणी मन अति चले ॥ तुमे ॥ इष्ट  
 अनिष्टे जाय ॥ जविक ॥ रूप देखी तेम जाणिए ॥ तुमे ॥ थिर चित्त दण  
 न रहाय ॥ जविक ॥ ८ ॥ गंधनो धंधमां मन चले ॥ तुमे ॥ चूके ध्याननो ता-  
 ल ॥ जविक ॥ रस विषयथो एम बहु ॥ तुमे ॥ आवे खोटा ख्याल ॥ जविक ॥  
 ९ ॥ फरस विषय रस जस लग्यो ॥ तुमे ॥ जव जंजालनुं मूल ॥ जविक ॥  
 तेम ए पंचे जाणिए ॥ तुमे ॥ जीवने नहि अनुकूल ॥ जविक ॥ १० ॥  
 ए पुद्गल परजाय ठे ॥ तुमे ॥ अथिर चपल परतंत्र ॥ जविक ॥  
 शाश्वत तुं ज्ञायक सदा ॥ तुमे ॥ सहजानंद स्वतंत्र ॥ जविक ॥ ११ ॥  
 काम न एहशुं ताहरे ॥ तुमे ॥ पुद्गल जग जटकाय ॥ जविक ॥ काम  
 सहजात्म स्वभावमां ॥ तुमे ॥ अविचल विमल सदाय ॥ जविक ॥  
 १२ ॥ आतम अंग विचारिए ॥ तुमे ॥ अमर अजर अकलंक

॥ जविक० ॥ कर्म घाम शीत जित नही ॥ तुमे० ॥ निर्जय अटस  
निशंक ॥ जविक० ॥ १३ ॥ वेदन जेदन वेदना ॥ तुमे० ॥ जूख न  
प्यास न दाह ॥ जविक० ॥ इत्यादिक दूषण विना ॥ तुमे० ॥ आतम  
अमल अंगाह ॥ जविक० ॥ १४ ॥ शांति समाधी मय सदा ॥ तुमे० ॥  
अव्याबाध अतंत ॥ जविक० ॥ गुण अनंतनो नाथ ॥ ए ॥ तुमे० ॥  
वीरज परम अत्यंत ॥ जविक० ॥ १५ ॥ पूरण सुखमय आतमा ॥ तुमे० ॥  
ढोनी पुढगल आश ॥ जविक० ॥ समयान चूको चित्तथी ॥ तुमे० ॥  
अनुजव लील विलास ॥ जविक० ॥ १६ ॥ विषय तजी निजगुण रम्या  
॥ तुमे० ॥ दुःखथि निवर्त्या तेह ॥ जविक० ॥ आठ करम दल ठेदिने  
॥ तुमे० ॥ विलसे शिव निज गेह ॥ जविक० ॥ १७ ॥ लेश मात्र ए  
विषयनो ॥ तुमे० ॥ मति करजो विश्वास ॥ जविक० ॥ (गहेर) घेर  
गंजिर समूझमां ॥ तुमे० ॥ पग धरि शी सुख आश ॥ जविक० ॥ १८ ॥  
दुःख समूझमां ते पढ्या ॥ तुमे० ॥ क्लेश अथाह निवास ॥ जविक० ॥  
विषय थकी रही वेगला ॥ तुमे० ॥ करो गुण ज्ञान विलास ॥ जविक० ॥  
॥ १९ ॥ लागती आग बुजावतां ॥ तुमे० ॥ होवे न कांई विनाश  
॥ जविक० ॥ जोर वधे जव आगनुं ॥ तुमे० ॥ वस्तुनी किम रहे आश  
॥ जविक० ॥ २० ॥ देवु रोग अग्नि प्रते ॥ तुमे० ॥ वधवा न दीजे मित्त  
॥ जविक० ॥ सावधान समये रही ॥ तुमे० ॥ लख सुत जाव अमित्त  
॥ जविक० ॥ २१ ॥ समय प्रमाद तजी करो ॥ तुमे० ॥ संजम रंग अ-  
जंग ॥ जविक० ॥ मनसुख मुक्ति गुरे रहो ॥ तुमे० ॥ शिव त्रिय रंग  
सुचंग ॥ जविक० ॥ २२ ॥

ढाल (८) आठमी ॥ वीर कहे गौतम सुणो ॥ ए देशी ॥

वीर वसन हृदये धरो, जवदधि तारक जेहरे ॥ विषय विकार  
निवारतां, प्रगटे निज गुण गेहरे ॥ वीर० ॥ १ ॥ सूत शील विज्ञानने,  
वलि वैरागने चूकीरे ॥ बहु नर जवदधिमां पढ्या, विषयथी लाजने  
मुकीरे ॥ वीर० ॥ २ ॥ रोग सकल प्रतिकारने, विषयी नर सुख मा-

નેરે ॥ આતમ ગુણની વિરાધના, હોય તેહ નવિ જાણેરે ॥ વીર૦ ॥ ૩ ॥  
 ઉદ્ગટ વેષે નારીને, દેહી હુરમતી ચૂક્યોરે ॥ જેણે જિન વચન  
 હૃદય ધર્યાં, રાગ પ્રથમથી મૂક્યોરે ॥ વીર૦ ॥ ૪ ॥ સુખ શાશ્વત  
 જે મુક્તિનું, ઉજ્જ્વલ જશ જેમ ઇંદૂરે ॥ ઠંકિ મોહી ઉપચારથી, સૂઝ  
 વિષય મધુવિંદૂરે ॥ વીર૦ ॥ ૫ ॥ પ્રજલિત વિષય અગ્નિ થકી, ચા-  
 રિત્ર સારને વાલીરે ॥ સમ્યક દર્શ વિરાધીને, અનંત સંસારમાં ઘાલીરે  
 ॥ વીર૦ ॥ ૬ ॥ મૂરખ આપહી આપને, હોય મહાદુઃખ દાતારે ॥  
 વિષય થકી જે દુર રહે, તેહને કોઈ ન અશાતારે ॥ સંસાર અરણ્ય  
 વિહામણો, વિષય તૃણાણ નચાવ્યારે ॥ ચૌદ પૂરવધર મુનિવરા, શ્રેણિ ચૂ-  
 કિ નિગોદમાં આવ્યારે ॥ વીર૦ ॥ ૭ ॥ હા હા વિષય એ વિષમ છે, પ્રતિ-  
 વંધી દુઃખ પામ્યારે ॥ ઈંદ્ર જાલ પેરે ચપલ એ, ઠંડ્યા તેણે દુઃખ  
 વામ્યારે ॥ વીર૦ ॥ ૮ ॥ ફરસ વર્ણ રસ ગંધ છે, શબ્દ સંસ્થાન પ્રજા-  
 યરે ॥ પુદ્ગલના સદુ જાણિયે, દ્વિણ દ્વિણમાં વદલાયરે ॥ વીર૦ ॥  
 ૧૦ ॥ દ્વિણમાં લાગે મનોહ્ર એ, દ્વિણમાં હોય અણગમતારે ॥  
 ઊગણી પુદ્ગલ પરિણતિ, મૂઢ એ સંગે રમતારે ॥ વીર૦ ॥ ૧૧ ॥ એ  
 સંગે રંગે રમ્યા, તેહને સુખની ન ઢાયારે ॥ જેહ તજે એને મૂલથી, તે  
 સુખ સિંધુ સમાયારે ॥ વીર૦ ॥ ૧૨ ॥ ચપલ વિષય ઈંદ્રધનુષ્યને,  
 વિજલી સમ છે રૂપરે ॥ અંધકાર સંસારમાં, મૂંઝી પડે જડ નૂપરે ॥  
 ॥ વીર૦ ॥ ૧૩ ॥ રાગ દ્વેષ દોય કોપતાં, આપે જેટલું દુઃખરે ॥ વિષ  
 શત્રુ પિશાચથી, અગ્નિથી એહવું ન દુઃખરે ॥ વીર૦ ॥ ૧૪ ॥ રાગાદિક  
 વશ જે થયા, દુઃખ સઘલાં છે તેહનેરે ॥ રાગાદિકને વશ નહીં, સવિ  
 સુખ હોવે એહનેરે ॥ વીર૦ ॥ ૧૫ ॥ ક્લેશનો હેતુ સંસાર છે, એહનો હેતુ છે  
 ક્લેશરે ॥ જ્ઞાની ક્લેશ રહિત સદા, નહિ જસ રાગ આવેશરે ॥ વીર૦  
 ॥ ૧૬ ॥ રાગ આશ્રવનું મૂલ છે, દુવિધ કર્મની આયરે ॥ ત્યાગી રાગ  
 સંવર કરે, આઠ કરમ ક્ષય થાયરે ॥ વીર૦ ॥ ૧૭ ॥ મોહ થઈ ત્રિયા  
 રૂપમાં, જગમાં માંડી છે જાલરે ॥ ઈંદ્રાદિક ત્રિય વશ પડ્યા, અનાદિ

जरमनी चाखेरे ॥ वीर० ॥ १७ ॥ विषय जुजंगे मंखीया, तृष्णा अ-  
ग्निमां जखतारे ॥ लक्ष चोराशी योनीमां, जमता दुःखे कलकलतारे ॥  
॥ वीर० ॥ १८ ॥ ग्रीष्म काल संसारमां, विषय उष्ण अति वायुरे ॥  
हित अहित अजाण ते, दुःख सहे चउ गति आयुरे ॥ वीर० ॥ १९ ॥  
ईंद्रिय अश्व चपल घणा, उन्मत उन्मग गामीरे ॥ अणशिरूया  
एह अश्वना, उपर बेठा थड खामीरे ॥ वीर० ॥ २० ॥ तेहने सूख  
किहां थकी, अश्व ईच्छाए चाखेरे ॥ पण सुखिया झानी सदा, जेह  
सम शेरी निहाखेरे ॥ वीर० ॥ २१ ॥ उदाशीनतां मार्गथी, सहजे शिव  
घर लहियेरे ॥ मनसुख आप स्वतंत्रथी, सुमति रंगे रमि रहियेरे ॥  
॥ वीर० ॥ २२ ॥

ढाख नवमी ( १ ) पंथको निहाळुरे बीजा जिन तणोरे ॥ ए देशी ॥

विषय पिपासीत नारिना जे हुवारे, जव वन सर कीच मांझ ॥  
खोटे पण तृप्ती पामे नहीरे, खुति रक्षा दुःखि त्यांझ ॥ विषय निवा-  
रोरे वेगे चेतनेरे, जेम लहो पद निरवाण ॥ विषय० ॥ १ ॥ धृति  
रसी करि बांधे ईंद्रिय अश्वनेरे, राखे आप स्वतंत्र ॥ अश्व रक्षक  
बांधे जेम अश्वनेरे, तो उधमात तजंत ॥ विषय० ॥ २ ॥ धृति रज्जु  
बांधी ईंद्रिय वश करीरे, चाले सम शिव पंथ ॥ ईंद्रिय सर्व खगावे  
संयम काममांरे, ते साचो निर्ग्रंथ ॥ विषय० ॥ ३ ॥ मन वच काय  
योग त्रण वश विनारे, संयम जागे अबुद्ध ॥ उन्मत गज वश विण  
तोडे बागेनेरे, चख योगे शील अशुद्ध ॥ वि० ॥ ४ ॥ तेथी धिर  
कीजे त्रण योगनेरे, होय न चरणनी हाण ॥ दरशन ज्ञान चरण  
व्यक्ति होवेरे, होशे परम कल्याण ॥ वि० ॥ ५ ॥ विषयथी जेम जेम  
होये विरामतारे, तेम तेम दोषनी हाण ॥ निर्मल गुण जे जे अंश  
थयारे, ते होय मोक्ष निदान ॥ वि० ॥ ६ ॥ तेणे दुकर कारज कसुं मानि-  
येरे, तरुणपणे धरि धीर ॥ विषय सैन्या हणि जे निर्जय थयारे, ते  
जगमां वडवीर ॥ विषय० ॥ ७ ॥ धर्म शुक्ल शुभ तेहने परिणमेरे,

त्रिय नयणे न हणाय ॥ अंतर डष्टि धरे शुद्धात्ममारे, परमात्म पद  
 पाय ॥ वि० ॥ ७ ॥ नमो नमो हुं शुद्ध संजमधरारे, शील न चूक्या  
 जेह ॥ हुं शेवक हुं निशदिन तेहनोरे, पाम्या परम पद तेह ॥ वि० ॥  
 रे जीव अधिकुं हुं तुज शुं कहुरे, चाहे जो शिव आरोग्य ॥ ठंकि  
 विषय सेवी उदासीनतारे, लहेशो निज गुण जोग ॥ वि० ॥ १० ॥  
 विणू विषय कषाय होवे नहीरे, तेम वलि जाय प्रमाद ॥ विरती रती  
 आवे चेतन घरेरे, थिर योगे जाय विषाद ॥ वि० ॥ ११ ॥ विषय मूल  
 कह्युं संसारनुरे, तेहनं ममतारे मूल ॥ तेहनं मूल अज्ञान ऊढेदिनेरे,  
 लहो शिवपद अनुकूल ॥ वि० ॥ १२ ॥ चतुर न चूको चित्तथी  
 चेतनारे, दरश ज्ञान उपयोग ॥ वीर्य अनंत ते रम्य सरूपमारे, चरण  
 रमण रस जोग ॥ वि० ॥ १३ ॥ अव्याबाध अनंत स्वतंतठेरे, आत्म  
 अंग अजंग । अमर अजर निर्द्वंद्व नीकल सदारे, जो लहो निज गुण  
 रंग ॥ वि० ॥ १४ ॥ सद्गुरु संगे रंगे नित्य रहीरे, कीजे श्रुत अन्यास ॥ विषय  
 रमण तजि आत्म स्वभावमारे, करो अनुभव सुविलास ॥ वि० ॥  
 ॥ १५ ॥ कालादिक अतिचार नीवारीनेरे, परम विनय सन्मान ॥  
 करि श्रुत सद्गुरु पासे शीखियेरे, होय श्रुतज्ञान सुध्यान ॥ वि० ॥  
 ॥ १६ ॥ आत्म अनात्म लखी सहु तत्त्वनेरे, नय निक्षेप प्रमाण ॥  
 संसृता नासे जासे सहज शुद्धात्मतारे, विषय गये सुख ठाण ॥  
 ॥ १७ ॥ उदाशीन सम्यक् मृगांकनीरे, सेवि पुकी नरनार ॥ वीर्य  
 अचल अचल शाश्वत लहीरे, होवे शिव चरतार ॥ वि० ॥ १८ ॥ संतीधर  
 “गीरधर” आग्रहथी रच्योरे, सुखकर एह प्रबंध ॥ “दाहोद”  
 नगरे जवि हित कारणे रे, साधमींशुं संबंध ॥ वि० ॥ १९ ॥ ओगणीश पांसठ  
 शुद्ध परिणामथीरे, स्यादवाद नय सार ॥ श्री जिन आगम अरथ  
 विचारतांरे, कीधो सार उद्धार ॥ वि० ॥ २० ॥ शुकल पुनम आवण रवी दिन  
 रच्योरे, विषय विषहर तंत्र ॥ नव ढाले नव निधिलहो रंगशुरे, विषनाशक  
 महामंत्र ॥ वि० ॥ “मनसुख” शिव सुख होशे शाश्वतुरे, तजजो विषय  
 विकार ॥ दर्शन ज्ञान चरण निर्मल करीरे, जीव लहो जयकार ॥ वि० ॥ २१ ॥

॥ ॐ श्री वर्धमानाय नमः ॐ श्री परमगुरुभ्यो नमः ॥

॥ ॐ श्रीमान् मनसुखलाल हरिलााल कृत ॥

॥ ममत्व परिहार विषय ॥

॥ वंदो, दोहा, चोपाई, ढाल विगेरे रागोमां ॥

(१) ॥ झुतविलंबित वंद ॥

|| १ || १ || १ || १ || १ || १ || १ || १ || १ || १ ||

विमल आत्म धर्म सुदायकं, अचल मोक्ष सुखं शिव नायकं ॥ नमिय  
आदिश्वरं शिव दायकं, सुख शुधातम जोगत दायकं ॥ १ ॥ सुखन आ-  
त्म धर्म विना कदा, अचल आत्म ज्ञान सुसंपदा ॥ विण शुधातम  
सुख न कोइ हे, थिर शुधातम तारक होइ हे ॥ २ ॥ हित न ज्ञान  
विना दुःख आपदा, लहत ज्ञानि सदा निज संपदा ॥ दुःख न राग  
विना जगमां कदा, ममत आत्म ज्ञान न हे तदा ॥ ३ ॥ सधत  
राग विरोध ममत्तथी, ममत ज्या नहि राग तिहां नथी ॥ सधत  
सुख शुधातम बोधथी, रहत एक अमंद प्रमोदथी ॥ ४ ॥ जजत  
आत्म स्वभाव सुचेनथी, दुरित दोहगनो तस ज्ये नथी ॥ अकल  
राग विना अप्रतंत्र ठे, सकल सिद्धि तणो वर मंत्र ठे ॥ ५ ॥ परम  
पावन आत्म जावमां, रहित राग नरा-शिव दावमां ॥ सहित आत्म  
सुधारस पावना, लहत केवल एक सुजावना ॥ ६ ॥ सुनय आत्म स्व-  
भाव सदा लखे, विगत राग शुधातम ए चखे ॥ समय साधि सहो  
निज संपदा, कुनय त्याग हरे जव आपदा ॥ ७ ॥ सुनय साधन से-  
वत जे नरा, परम आत्म पावन ते खरा ॥ उमग न्यागि रहे नहि  
दुःखमां, सुमग सेवि रहे मनसुखमा ॥ ८ ॥



(२) ॥ चोपाई ॥

मंगल आतम धर्म सदाई, ए विण पर परिणति दुःखदाई ॥ आत्म  
 ज्ञान विनु ममता आवे, जोर महामल मोहनुं पावे ॥ १ ॥ अविरति  
 नारि करे अति चाला, होय प्रमाद कषाय विशाला ॥ खिण खिण  
 जोग चपलता होवे, आतम संपति आप न जोवे ॥ २ ॥ आतम ज्ञाने  
 ममता नाशे, मोह मिथ्यात न आवे पासे । अविरति दासो दूरे नाशे,  
 तव न प्रमाद कषाय विकाशे ॥ ३ ॥ जोग सुथिरता पूरण आवे,  
 आतम परमात्म पद पावे ॥ आतम बोधे राग न होई, सुखियो जन्म जरा  
 जय खोई ॥ ४ ॥ राग विना कांइ दुःख न दीसे, विगत राग सुखियो  
 निशदीशे ॥ ते कारण गुरु चरण हजुरे, रहि सहिये आतम गुण पूरे  
 ॥ ५ ॥ प्रगटे निज संपति जरपूरं, दिन दिन वधते सहज सनूरं ॥  
 जूठ विकल्प व्यथा सहु खोई, निज गुण पज्जाव ज्ञाता होई ॥ ६ ॥  
 परगुण पज्जाव ममता त्यागी, निज द्रव्यादिकमां रहो जांगी ॥  
 निज पद जूझी जे जव जमता, समता विण परवश दुःख खमता ॥ ७ ॥ आ-  
 तम ज्ञाने समता आवे, आतम ज्ञानी राम रमावे ॥ ते निज आतम  
 संपति छीना, परमानंद रसे नित जीना ॥ ८ ॥ सहज सतंत अत्यंता-  
 नंदी, दरशन ज्ञान चरण रस कंदी ॥ ते न रहे परसंगे फंदी, निज  
 रमणे जस बुद्धि अमंदी ॥ ९ ॥ स्नेहनुं बंधन जेह उबेदे, ते पूर्णात्म  
 संपति वेदे ॥ आत्म बोध विणु नहि दुःख अंत, ज्ञानी नर छहे सूख  
 स्वतंत ॥ १० ॥ सकल दोष दुःख ज्ञाने नाशे, परम महोदय प्रगट  
 विस्वासे ॥ सुगुरु सदागम सेवो जावे, शिव कमला मनसुख घर  
 आवे ॥ ११ ॥

(३) ॥ द्रुतविलंबित वंद ॥

|| ५ || ५ || ५ || ५ || ५ || ५ || ५ || ५ ||

सखिय द्रव्य सवे गुण पज्जावा, शुक्ल शुद्ध बही निरभे हुआ ॥  
 ममत जाय शुधात्म ज्ञानथी, सुमति होय तिहां दुःख को नथी ॥ १॥

कुमत होय तिहां जव वास ठे, सुमत संग रहे न विनाश ठे ॥ ममत जावत आवत हे समं, ममत नाशत ईंद्रियको दमं ॥ ५ ॥ गति न चार करे ममता विना, शिव न कोइ लहे समता विना ॥ निफल ज्ञान क्रिया समता विना, अफल साधुपणो समता विना ॥ ३ ॥ तप न दे फल मोह विकारिने, सुमत सेव तुं-एह विचारिने ॥ तिरथ-शेवक जे ममता तजे, तिरथ शेवक ते समता जजे ॥ ४ ॥ दरश ज्ञान चरित सुतीर्थ ठे, अवर जेद अनेक विचित्र ठे ॥ ममत होवत त्यां व्रत-को नहीं, ममत ज्यां नहि त्यां व्रत हे सहो ॥ ५ ॥ सुमत राखत श्रीजिन आणको, सुमत देवत हे निरवाणको ॥ सुमत आत्म ज्ञान विना नहीं, ममत नाशत कर्म रहे नहीं ॥ ६ ॥ लख न लक्षण ओरकुं संग्रहे, दरव लक्षण आप स्वयं ग्रहे ॥ अवर काज न साज न कोइ हे, निज सकारण कारज होइ हे ॥ ७ ॥ चरण होय न आत्म अज्ञानिने, चरण-आवत निर्मम ज्ञानिने ॥ विमल ज्ञान तिहां नहि राग ठे, सुमत त्यां ममता नहि लाग ठे ॥ ८ ॥ ममत दोष अनंतनि माथ ठे, विमल बोधायि दोष नसाय ठे ॥ तिदण जेद विज्ञान सुवाणथी, हरिय मोह महादल ता-नथी ॥ ९ ॥ तजि प्रमाद सदा उपयोगमां, सजिय आत्म सुधारस जोगमां ॥ अचल जे थिर ध्यान सदा धरे, मनसुखे शिव सुंदरि ते वरे ॥

( ४ ) ॥ ललित बंद ॥

सकल शास्त्रनो सार ए सही, सुनय सेविने आत्मता लही ॥ ममत त्यागिने जागिए सदा, परम आत्मनो लाज द्यो मुदा ॥ १ ॥ धरम ते खरो द्वीविधे दया, जरम त्यागिने राखिए सया ॥ शुक्ल ध्यानमां घ्याइ आत्मा, सकल आपणी पाइए रमा ॥ २ ॥ अचल योगथी शुद्धता लहो, सहज जावनी शातिमां रहो ॥ तजि प्रमादने लागिए सदा, विमल ध्यानमां एकता मुदा ॥ ३ ॥ जगत जीवथी वैर ना करो, सम स्वभावमां थीरता-धरो ॥ विमल मंत्र ए ज्ञान हुं सदा, सुथिर धारणा राखिए मुदा ॥ ४ ॥ सम सभावमां साध्य सिद्धि ठे, सम सभावमां सर्व रिद्धि ठे ॥

विषमता तजो राग द्वेषनी, विपति नाशशे बंध क्लेशनी ॥५॥ ममत त्या-  
गयी आत्म सिद्धि ठे, गुण अनंतनो जोग निद्धि ठे ॥ ममत ना करे  
आत्म शुद्ध तो, सुमति आदरे आत्म बुरू तो ॥६॥ विमल देवनी सार  
प्रेरणा, सुमति प्रेरिये शुद्ध हेरणा ॥ द्रग न चूकिये वीर्य राखिण,  
अटल ध्यानमां शांति चाखिए ॥ ७ ॥ कटत मोह तो आत्म ध्यान-  
यी, झटक कर्मकुं ब्रह्म बाणयी ॥ पटक क्रोधकुं खांति पानसें, हृषि  
मिथ्यातकुं ज्ञान जाणसें ॥ ८ ॥ पुरुष आपणी शुद्धता ग्रहे, सवि वि-  
जावनो जोर ना रहे ॥ रिखवदेवनी हो कृपा सदा, मनसुखे लहो  
आत्म संपदा ॥ ९ ॥

### ( ५ ) ॥ राग चौपाई ॥

उत्तम नरजव लाहो लीजे, आतम अनुजव प्याळां पीजे ॥ आल  
पंपाल जंजाळ निवारी, शुद्धातम पदमां मति धारी ॥ १ ॥ समय प्र-  
माद न कीजे चाई, पुद्गल चिंता सर्व मिटाई ॥ सिद्ध समान शु-  
द्धातम ध्यावो, परम महोदय पूरण पावो ॥ २ ॥ श्वेत दिगंबर मेरे  
नांही, ए जरु पर परिणति पर बांही ॥ ते कारण मत जेद न कीजे,  
ज्ञायक ज्ञान सुधारस लीजे ॥ ३ ॥ ज्ञाता दरशन निरमल कीजे,  
ज्ञायक चरण रमण रस लीजे ॥ चेतन वीर्य अचल करि राखो, अं-  
जर अमर अबाधित चाखो ॥४॥ निज गुण पज्जाव अखय अखूटं, निज  
धन सहज अनंत अतूटं ॥ अजय निराकुल आतम ध्यावो, तजि ममत  
दुःख पाप गमावो ॥ ५ ॥ वचन आलाप विकार निवारो, दुष्ट  
विकल्प न मनमां धारो ॥ देह चपलता कांई न कीजे, सकल समय  
अनुजव रस लीजे ॥ ६ ॥ वेद किताब पुराण न जाण्युं, सुमता संगे  
मुज मन मान्युं ॥ व्याकरण बंद किहां शीखीजे, मनसुख शिव  
कमळां रस लीजे ॥ ७ ॥

( ६ ) ॥ अमिल्ल ढंद ॥

चरण कमल कमला वसे श्री जिन पासने, तसु आणाधर जेह खहे  
शिव वासने ॥ आत्म ज्ञाने आत्म लखे निज संपदा, प्रगटे सम्यक  
बोध मिटे सहु आपदा ॥ १ ॥ नाशे अविरति रोग विरति रति अति  
खहे, मीटे दूष्ट प्रमाद जोग थीरता रहे ॥ पुद्गलसँ नहि काम आ-  
राम शुद्धात्ममां, सकल समय निज कार्य सधाम महात्ममां ॥ २ ॥  
ते कारण निज शुद्ध स्वभाव सदा लखो, सकल समय परमाद तजी  
अमृत चखो ॥ परपरिणति निज मानी मिथ्यामति अति वनी, आवी अ-  
विरति नारि ते दुःख देती घणी ॥ ३ ॥ रागादिक कषाय अनेक ते ऊपज्या,  
चळ गति भ्रमण प्रतंत्र शत्रु सम ते वन्या ॥ सद्गुरु विण जग जीव  
न जाणे आत्मता, कुगुरु वशे जटकाय दूःख खहे अणठता ॥ ४ ॥ नय  
अनंतनी युक्ति न जाणे चापका, कुगुरुनुं फाव्युं जोर ठगे चही दोकना ॥  
विधि उद्यम जय वर्णोत्सर्ग अपवाद ठे, उजय मली अे सातनो  
आगम वाद ठे ॥ ५ ॥ ते नवि समजे वाल मुंझाया नित रहे, करि  
करुणा गुरुराज शुधात्मता कहे ॥ जाणि शुधात्म स्वरूपने ममता परि-  
हरो, सवि दुःख दोष विहाय सासय संपति वरो ॥ ६ ॥ लखतां  
आत्म स्वरूप आनंद अनंत ठे, सकल दोष दूःख नाश ससूख स्वतंत्र  
ठे ॥ इव्य सकलना जाणि विशेष स्वभावने, जेद विज्ञाने  
जेदि ग्रहो निज दावने ॥ ७ ॥ कर्त्ता अन्यनो नाहीं होवे कोइ कदा,  
ज्ञाश्वत इव्य स्वभाव रहे ठे थिर सदा ॥ इह विधि निश्चय खायक  
सम्यक पद लहो, मनसुख शिव सद्वास परम सूखमां रहो ॥ ८ ॥

( ७ ) ॥ मंदाक्रांता ढंद ॥

ज्ञानानंदं ममत विण तुं, एक अत्यंत ठेक ॥ कर्त्ता जोक्ता पर दर-  
वनो, तुं नधी ए विवेक ॥ व्यापे व्यापे ससस दरवे, कोइ व्यापे न के-  
मां ॥ ग्राह्यो ग्राहे सवि दरव तो, जेहना तेह तेमां ॥ १ ॥ देत्रे आपे

रहत सरवे, अन्य क्षेत्रे न जावे, जोगादि तो निज निज सदा, आपणा आप पावे ॥ त्यागो मिथ्या जरम परनो, शुद्ध वीवेक धारी, साची वाणी विमल जिननी, सेविये सिद्धिकारी ॥ ९ ॥

(८) ॥ स्वधरा बंद ॥

मैं तो जेव्या जिणंदा वर विमल सदा मुक्तिना हेतु जाणी, नित्ये ध्याने रमावुं सकल समयमां चित्त आनंद आणी ॥ रागं रोषं निवारी ममत परिहारी शुद्ध आनंद लीजे, जाणी सत्ता सतंती मनसुख सुखमां आपणां काज कीजे ॥ १ ॥

(९) ॥ शालिनी बंद ॥

ज्ञाने नाशे मोहनं जोर जारी, ध्याने आवे थीरता सिद्धिकारी ॥ माटे त्यागो पुद्गलो नो प्रसंग, तो ते पामो शुद्ध जावे सुरंग ॥ १ ॥

(१०) ॥ शार्दूलविक्रीमि बंद ॥

हुं नित्ये अमलान ज्ञान रवि तुं, म्हारे न को आपदा। जे जे पुद्गलनी परीणति सवे, म्हारी न जाणुं कदा ॥ म्हारे काम नहीं कदा पर तणुं, म्हारे महा संपदा। चूढयो जेह स्वरूप शुद्ध अपनुं, मोहे मुझायो तदा ॥ १ ॥ को केनो नवि होय द्रव्य कवहू, सत्ता सदा शाश्वती। जोगी आप सदा ससंपति तणो जोगेज जाणे ठती ॥ चूढया जर्म वशे रहे जन सदा, सेवी अनाणी गुरू। ना चूडे नर तेह जे विमल ठे, सेव्या सदा सद्गुरू ॥ २ ॥ सेवे जे समये शुधातम सदा, पावे सहानंदने। जाचे ना विषयो विकार कवहू, ठोडे द्विधा बंधने ॥ सेवो श्री जिन वाणि उज्ज्वल महाआनंद दाई सदा एकांते नवि जोइए तव महा, जागे सुज्योती मुदा ॥ ३ ॥ संतोषे सुख ठे महान जगमां, ते तो सुज्ञाने मले। ईद्रोने पण सूख ए सम न ठे, एतो सकाले चले ॥ ज्ञाने ठे वर शांति साचि जिवने, शक्ती लखे आपणी। जागे जे परमाद ठोडि सममें, पामे रमा ते घणी ॥ ४ ॥

( ११ ) ॥ वसंततिलका वंद ॥

जे ठे विकल्प विधि ते सवि कर्म जाणो, झाता सदा थिर रहे  
निज शुद्ध ध्यानों । त्यागी ममत्व न करे खिण राग रोपं, आपा खखे  
शिव सदा सुख शांति पोपं ॥ १ ॥ कर्ता कळो जिव करे विविधे वि-  
कल्प, तेथी तजो दुर सवे कुविकल्प जल्प ॥ हुं ए मने सकल ठे  
बहु राग मूल, सारं बुरू सुख दुखं नहि सानुकूल ॥ २ ॥ 'आत्मा  
खखे निज सदा शुध रूप ज्यारे, संवे न कर्म दल ते कदि को प्रकारे  
॥ तेथी जजो सुगुरुने श्रुतज्ञान आवे, ध्याई लहो निज जळी निधि  
सिद्धि थावे ॥ ३ ॥ संतोष तृप्ति सगुणे महानंद आपे, साचो शुधा-  
त्म अनुजो सवि वंध कापे ॥ सेवे नरो थिर थई श्रि जिनंद वाणी,  
खावे तदा मनसुखे घर रिद्धि खाणी ॥ ४ ॥

( १२ ) ॥ मालिनी वंद ॥

ममत तजि सुज्ञाने ध्याइए शुद्ध रूपं, सकल विपति नाशे सेवता  
आत्म जूपं ॥ विगत मद कपाया शुद्ध त्याछाद वाणी, सकल त्रम  
नशावे सेविए हेत आणी ॥ १ ॥ कुमत मद हठावे शुद्ध त्याछाद  
जावे, पुरण अचल रिद्धी आत्मनी आत्म पावे ॥ पर परिणति त्यागी  
आप आपे रमावे, सकल दुरित नाशे फेर संसार नावे ॥ २ ॥  
जरम वश जुळीने पुद्गळे आप मानी, नवि लहि निज रिद्धी राग  
रोपे अनाणी ॥ जमत जवदधोमां दूःख जोगे प्रतंत, समय निज न जाणे  
जेद जाणे न तंत ॥ ३ ॥ मनुज जव लहीने शुद्ध त्याछाद जाणो, परिणति  
समजावे सेविये शुक्ल ध्यानों । न रति अरति कीजे त्यागिए अन्य संग,  
मनसुख शिव संगे होय सिद्धी सुरंग ॥ ४ ॥ हरत तिमिर मोहं  
शुद्ध त्याछाद जानं, व्यय उत्पति ध्रुवं द्रव्य सर्वे विनाणं ॥ सकल  
दरव जित्तं जे खखे शुद्ध ज्ञाने, ममत तस न होवे वर्तते शुक्ल

ध्याने ॥ ५ ॥ निज निज परिणामे ड्रव्य कर्ता सदाए, न करत पर  
कामं जाणिए शुद्ध न्याये ॥ करिय ममत चूढ्यो काज ए ठे हमारुं,  
विण लखि निज काजं सूख साचुं न धाखुं ॥ ६ ॥ सत्तर नर नस्यो  
ठे ड्रव्य सर्वे प्रदेशे, सकल समय सत्ता कोइ केनी न खेसे ॥ अखय  
अकल आत्मा शुद्ध निश्चे सदाए, विमल सुथिर जोतां मोहनो नाश  
थाए ॥ ७ ॥ नवि फुरत असत्ता रोकशे कोण शक्ती, विपरित मति  
त्यागो जागशे ज्ञान व्यक्तो ॥ बहिर जबलगे जे राखशे आत्म ड्रष्टी,  
तब लग न लहे ते आत्म आनंद पूष्टी ॥ ८ ॥ सदरवधि अजेदे सर्व  
वर्त्ते प्रजाये, न पर दरवमां ते जाय आवे कदाये ॥ इम लखि निज  
सत्ता शुद्ध आनंद लीजे, मनसुख शिव संगे रंगमां अंग जीजे ॥ ९ ॥

( १३ ) ॥ शिखरणी ठंद ॥

समं ज्ञानादीमां निज पद ग्रहुं हुं निरमलुं, कदा रागे रोषे पर  
परिणतीमां नवि जलुं ॥ ठतो ज्ञाता हुं तो ममत पर ड्रव्ये किम करुं,  
लही शिद्धा साची सुगुरु वचनोने न विसरुं ॥ १ ॥ तरे ते तो साधू  
अप्रमत्त सत्तावे अनुसरे, चूढ्या ते जे मूढा परिणति पराई मन धरे ॥  
कहुं बारे अंगे सुमुनि सगुणोमां थिर रहे, वसे धर्मे शुक्ले अहट  
डुहटे तो नवि रहे ॥ २ ॥ उदासिन्ने चाले परम सम शेरी सरल ठे,  
सदा जे ए मार्गे तस न जय होवे विमल ठे ॥ लहे साचो ज्ञाता  
सुथिर मन जेनुं विनित ठे, रहे जे आणामां जव त्रमणथो जे निरुत  
ठे ॥ ३ ॥ न सेवुं हिंसा हुं निज पर कदाए ड्रुविधथी, सदा यत्ना  
राखुं ड्रुविध सवि प्राणोनि विधिथी ॥ क्षमादो धर्मोने सकल समये  
हुं ड्रढ धरुं, रहुं शुद्धात्मां मनसुख सत्तावे शिव वरुं ॥ ४ ॥

( १४ ) ॥ हरिणी ठंद ॥

पर परिणती त्यागी आपे रहे समजावमां, जिव तब लगे बंधे  
नाही कदापि विजावमां । जब लग करे रागं रोषं फसे पर जावमां,

જિવ સુખ દુઃખ માને છે જ્યાં શુભાશુભ જાવમાં ॥ ૧ ॥ જિવ તવ લગે  
સંચે કર્મ રહે નસજાવમાં, મમત તજિને તે માટે તું જુલે મ વિજાવમાં  
ગુણ પરજયો જે ડઘ્યોના નહીં પરમાં જલે, સનિજ નિજમાં વ્યાપે છે  
તે કદાપિ નવી ટલે ॥ ૨ ॥ પર દરવમાં જોગો નાહીં મિથ્યામતિ મા-  
નિ છે, નિજ દરવમાં જોગો સાચા સુજાણ તે જાણિલે ॥ ચપલ પરમાં  
શ્યાને થાઈ નિધી નિજ ચૂકિને, વિકલપ તજો જલ્યો સર્વે મિથ્યા  
મતિ મૂકિને ॥ ૩ ॥ નરજીવ લલ્યો છે પૂન્યે તો સદાગમ સેવજો, નિજ  
પર જુદા જાવે જેદી અનૂજવને જજો ॥ જિન સમયમાં જે જે જાણ્યું  
યથાર્થ પળે મહો, મનસુખ સુખે રિઠ્ઠી સિઠ્ઠી સદા શિવમાં રહો ॥ ૪

॥ ઢાલ ( ૧ ) પદેલી ॥ નવ તત્ત્વ વિકલ્પ અધિકાર ॥

॥ જવિજન સેવજ્યોરે ॥ ૧ ॥ એ દેશી ॥

વિકલ્પધર સંસારિ જેરે, આત્મવધારી જીવ । નિર્વિકલ્પ જ્ઞાની  
તથા રે, સિદ્ધ અનંત સદીવ ॥ ૧ ॥ તત્ત્વ વિચારણારે, શુધનય  
સાર વિચાર, જવદુઃખ વારણારે ॥ ૨ ॥ આંકણી ॥ જસ વિકલ્પ  
શક્તિ નહીંરે, તે જન જાણ અજીવ । શુભ વિકલ્પથી પુણ્ય ઠેરે,  
અશુભથી પાપ સદીવ ॥ તત્ત્વ ॥ ૩ ॥ ધિણ ધિણ વિકલ્પ જે કરે  
રે, તેતો આત્મવ ચાલ ॥ રોકે વિકલ્પ સંવરીરે, ઘાથી આત્મવપાલ  
॥ તત્ત્વ ॥ ૪ ॥ પુદ્ગલ જોગ હ્રદા તજે રે, દેશ વિકલ્પ વિનાશ  
॥ શુદ્ધાત્મ તૃપ્તી લહીરે, કરે નિર્જરા શ્વાસ ॥ તત્ત્વ ॥ ૫ ॥ વિ-  
કલ્પ વિધિ ડઢ ધારણારે, વંધ કલ્પો જિનરાજ ॥ અઢવિધ યાધે કર્મ  
તે રે, ચાર પ્રકાર અકાજ ॥ તત્ત્વ ॥ ૬ ॥ સર્વ વિકલ્પ વિનાશયીરે,  
પૂરણ મોહ સ્વરૂપ ॥ હમ જાણી નવ તત્ત્વનેરે, જવિ મૂલો જવ  
કૂપ ॥ તત્ત્વ ॥ ૭ ॥



ढाल (२) बीजी ॥ नव तत्त्व कर्त्ता पद अधिकार ॥

॥ क्युं जाणुं क्युं बनी आवशे ॥ ए देशी ॥

शुजाशुज परिणामनो, कर्त्ता ममतावंत हो विनीत । ते संसारी जीव ठे, जाखे श्री जगवंत हो विनीत ॥ १ ॥ तत्त्व विचार सुधारसी, सेवो श्री जिन आण हो विनीत ॥ जव दुःख दोहगता टले, करतां तत्त्व प्रतीत हो ॥ तत्त्व विचार सुधारसी ॥ ए आंकणी ॥ ज्ञानी ने वली सिद्ध ते, नहीं करम करतार हो ॥ शुद्ध परिणामीकता तणा, सकल समय करतार हो ॥ तत्त्व ॥ २ ॥ होय अचेतन द्रव्य ते, नहि परना करतार हो ॥ निज गुण पजावना कह्या, सकल समय जरतार हो ॥ तत्त्व ॥ ३ ॥ शुज परिणामे पुण्यने, करे सुगुण नर कोय हो ॥ अशुज करम पापी करे, मूढ पुरुष जे होय हो ॥ तत्त्व ॥ ४ ॥ शुजाशुज किरियारसी, कर्त्ता आस्ववंत हो ॥ शुजाशुज तजतो सदा, संवरवंत महंत हो ॥ तत्त्व ॥ ५ ॥ पुद्गल जोग इहा तजी, निज गुण जोगे लीन हो ॥ निद्वेष्टरण करता कह्यो, आतम ज्ञाने पीन हो ॥ तत्त्व ॥ ६ ॥ पुद्गल परिणति ऊपरे, करे राग रस बंध हो ॥ करता जावित कर्मनो, ते अज्ञानी अंध हो ॥ तत्त्व ॥ ७ ॥ पर परिणति रस त्यागिने, शुद्धातम द्रव्य होय हो ॥ ममता त्यागी मूलथी, करे मोक्षपद सोय हो ॥ तत्त्व ॥ ८ ॥

॥ ढाल (३) त्रीजी ॥ नव तत्त्व ज्ञोक्ता पद अधिकार ॥

॥ प्रथम गोवाल तणे जवेजी ॥ ए देशी ॥

शुजाशुज परिणामनोजी, जोगी ते जगजीव । जोगी ज्ञानादिक तणाजी, ज्ञानी सिद्ध सदीव ॥ १ ॥ सुगुण नर धारो तत्त्व विचार, ए जिन शासन सार जविक जन धारो तत्त्व विचार ॥ ए आंकणी ॥ जोगदशा जरु द्रव्यमांजी, होय नहीं त्रिहुं काल ॥ विषय कषाय कुजोगतेंजी, बांधे पाप कराल ॥ सुगुण नर ॥ २ ॥ संजम दान दया-

दिमांजी, जोगे रागानंद ॥ गुणवध तेथी करेजी, करुणा रसीयो संत ॥ सुगुण नर ॥ ३ ॥ मिथ्या अविरतिने वलीजी, ग्रहे अज्ञान कषाय । धरी प्रमादने जोगवेजी, पुद्गल जाव सदाय ॥ सुगुण ॥ ४ ॥ रागादिक युत जोगवेजी, योग क्रिया मन लाय । आत्मवधारी ते कळोजी, सूत्रे श्री जिनराय ॥ सुगुण ॥ ५ ॥ पर परिणति रस त्यागतोजी, मग्न शुधातम मांझ । निज गुण संवर जोगमांजी, शिवपद साधे उठाव ॥ सुगुण ॥ ६ ॥ इंद्रिय जोग इहा तजीजी, विलसे निज गुण जोग । तेह निर्जरावंत ठे जी, तजतो कार्य अयोग ॥ सुगुण ॥ ७ ॥ ममत करे पर अव्यमांजी, जोगे राग विरोध । द्रव बंधन ते तो करेजी, लह्यो न आतम बोध ॥ सुगुण ॥ ८ ॥ पर वस्तु ममता तजेजी, न करे राग विरोध । शुद्धातम अनुभव करेजी, मोक्ष होय अविरोध ॥ सुगुण ॥ ९ ॥ पुद्गल जोग तजी सवेजी, जोगे शुरू स्वजाव । थिर अनुभव अन्यासथीजी, प्रगट मोक्ष सजाव ॥ सुगुण ॥ १० ॥

ढाल (४) चोथी ॥ नव तत्त्व ग्राहकता अधिकार ॥

॥ श्री युगमंधर विनवुरे ॥ ५ राग ॥

तन धन आदि वस्तु बहु हो लाल, पर परिणति अनंत हो चेतनजी लाल । ममता जावे जे ग्रहे हो लाल, ते संसारी जंत हो जीवणजी लाल । श्री जिन वचन विचारिण हो लाल ॥ १ ॥ प आकणो ॥ शुरू रूप निज नवि लेख्यु हो लाल, गाणे राग विरोध हो चेतनजी लाल ॥ ग्राहक तेह विजावनो हो लाल, मिथ्या मती जे अवोध हो जीवणजी लाल ॥ श्री जिन ॥ २ ॥ पुरण शुद्धता आत्मनी हो लाल, सहज अनंत प्रजाय ॥ हो चेतनजी लाल ॥ शुध परिणामीकता ग्रहे हो लाल, झानी सिद्ध सदाय हो जीवणजी लाल ॥ श्री ॥ ३ ॥ जरु निज गुण पजाव ग्रहे हो लाल, ग्रहे न अन्य स्वजाव हो चेतनजी लाल ॥ तेह अचेतन अव्यनो हो लाल, शा-

श्रुत एह स्वज्ञाव हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ४ ॥ संजम दान  
 दयादिके हो लाल, ग्रहतो शुभ परिणाम हो चेतनजी लाल ॥ पुण्यवंत  
 ते जाणिए हो लाल, करतो उत्तम काम हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ५ ॥  
 विषय कषाय अशुद्धता हो लाल, ग्रहे मिथ्यात अनाण ॥ हो चेतनजी लाल  
 पापी जीवनी परिणती हो लाल, आत्म स्वरूप अजाण हो जीव-  
 णजी लाल ॥ श्री० ॥ ६ ॥ शुभाशुभ परिणामने हो लाल, ग्रहे ते आस्र-  
 वंत हो चेतनजी लाल ॥ आत्म शुद्धता जे ग्रहे हो लाल, संवर-  
 वंत महंत ॥ हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ७ ॥ ईद्रि विषय रस  
 नवि ग्रहे हो लाल, ग्रहे शुद्धातम जाव ॥ हो चेतनजी लाल ॥ वि-  
 विध विज्ञाव वहावतो हो लाल, निर्जरवंत स्वज्ञाव हो जीवणजी  
 लाल ॥ श्री० ॥ ८ ॥ ग्राहक पर परजायनो हो लाल, रागी अनाणी  
 जीव हो चेतनजी लाल ॥ मिथ्या अविरति आदिथी हो लाल ॥  
 करतो बंध सदीव हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ९ ॥ शुद्ध अखंड  
 स्वज्ञावनो हो लाल, ग्राहक पूर्ण प्रजाय हो चेतनजी लाल ॥  
 शुद्धातम अनुभव करे हो लाल, लहे मोक्ष असहाय हो जीवणजी  
 लाल ॥ श्री० ॥ १० ॥

॥ लाल पांचमी ( ५ ) ॥ नव तत्त्व व्यापकता अधिकार ॥

॥ नमि नमि नमि नमि वीनवुं ॥ ए देशी ॥

व्यापे पर परिणती विषे, रागादिकमां जीव लालरे ॥ वलि मिथ्या  
 अज्ञानमां, ठे संसारी सदीव लालरे ॥ पर पद व्यापकता तजो, लहि  
 आत्म अधिकार लालरे ॥ पर पद ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ जे परमां  
 व्यापे नहीं, गुण पञ्जवथी अज्ञेद लालरे ॥ व्यापे निज निज पञ्जवे,  
 ज्ञानी सिद्ध अखेद लालरे ॥ परपद ॥ २ ॥ वर्णादि पञ्जाव विषे, व्यापे  
 पुद्गल दर्व लालरे ॥ धर्म अधर्म आकाश ते, अजीव प्रजाये सर्व लालरे  
 ॥ परपद ॥ ३ ॥ व्यापे शुभ परिणाममां, पुण्यवंत जे होय लालरे ॥ व्या-

पे अशुच परिणाममां, पापवंत ते जोय लाखरे ॥ परपद० ॥ ४ ॥ व्यापे राग विरोधमां, ते तो आस्रववंत लाखरे ॥ व्यापे शुद्ध स्वभावमां, संवर-  
वंत महंत लाखरे ॥ परपद० ॥ ५ ॥ निज गुण जोगे व्यापतो, इच्छे नहीं परजोग लाखरे ॥ तेह निर्जरावंत ठे, दुविध दया थिर योग लाखरे ॥ परपद० ॥ ६ ॥ व्यापे पुद्गल परिणते, द्रढ मिथ्या अज्ञान लाखरे ॥ अव्रत प्रमाद कपायथी, बंध करे दुःख खाण लाखरे ॥ परपद० ॥ ७ ॥ निरमल निज गुण पज्जवे, व्यापे थह थिर थोज लाखरे ॥ चले न शुद्ध स्वभावथी, मोक्ष अकप अक्षोज लाखरे ॥ परपद० ॥ ८ ॥

॥ ढाल ( ६ ) बछी ॥ नव तत्त्व रक्षकता अधिकार ॥

॥ जांजरिया मुनिवर ॥ ए राग ॥

वर्णादि रागादिनोरे, रक्षक ते जग जीव ॥ रक्षक शुद्ध स्वभाव-  
नोरे, ज्ञानी सिद्ध सदीव ॥ सुन्यायी अप्पा कीजे तत्त्व विचार, जेम  
लहिण जवपार सुन्यायी अप्पा कीजे तत्त्व विचार ॥ १ ॥ जे पर  
गुण राखे नहींरे, जड धर्मादि अजीव ॥ रक्षक निज गुण पज्जवारे,  
पुद्गल आदि सदीव ॥ सुन्यायी० ॥ २ ॥ रक्षक शुच परिणामनोरे,  
पुण्यवंत नर होय ॥ राखे अशुच परिणाम जेरै, ते पापो सुख खोय ॥  
॥ सुन्यायी० ॥ ३ ॥ राग छेप रक्षक सदारै, ते तो आस्रववंत ॥  
रक्षक निज गुण शुद्धतारे, संवरवंत महंत ॥ सुन्यायी० ॥ ४ ॥ रक्षक  
निज गुण जोगनोरे, चहे न ईद्रिय जोग ॥ धर्म शुक्ल करि निर्जरांरे,  
रक्षक संजम योग ॥ सुन्यायी० ॥ ५ ॥ ममता पुद्गल आदिनीरे,  
राखे जर अज्ञान ॥ राग छेप राखे सदारै, साधे बंध विधान ॥  
॥ सुन्यायी० ॥ ६ ॥ राखे निज गुण पज्जवारे, राखे न राग विरोध ॥  
शुद्धात्म अनुभव करे, खहे मोक्ष अवरोध ॥ सुन्यायी० ॥ ७ ॥

॥ ढाल ( ७ ) सातमी ॥ नव तत्त्व रमणता अधिकार ॥

॥ हवेरे राणी पदमावती ॥ ए राग ॥

वर्णादि रागादिमां, रमण करे जग जीव । रम्य रमण शुद्धात्ममां,

જ્ઞાની સિદ્ધ અતીવ ॥ વચનામૃત રસ સેવીએ, સ્યાદ્વાદ સુખકાર,  
 શુદ્ધ નયે જિનરાજનાં, દીલ માંહે ઉદાર ॥ વચનામૃત ॥ ૧ ॥ એ  
 આંકણી ॥ રમણ સ્વજાવ ન જેહમાં, તત્ત્વ અજીવ કહાય ॥ રમે સદા  
 શુદ્ધ જાવમાં, પુણ્ય કરિ સૂઝ પાય ॥ વચનામૃત ॥ ૨ ॥ અઢદશ  
 સ્થાનક પાપમાં, રમે અશુદ્ધ પરિણામ ॥ પાપવંત તે જાણીએ, દુઃખી  
 મહા દુઃખધામ ॥ વચનામૃત ॥ ૩ ॥ મિથ્યા અવિરતિમાં રમે, ધરિ  
 અજ્ઞાન કષાય ॥ જોગ ક્રિયા પરમાદમાં, રમતાં આસ્રવ આય ॥  
 ॥ વચનામૃત ॥ ૪ ॥ રમણ તજી પરજાવનું, રમે શુદ્ધાતમ માંહ ॥  
 સંવરધારી તે કહ્યો, શિવપદ માંહી ઉઠાંહ ॥ વચનામૃત ॥ ૫ ॥  
 વિષય રમણ નવિ આદરે, નિજ રમણે સંતોષ ॥ કરે નિર્જરા કર્મની,  
 લહે શુદ્ધતા પોષ ॥ વચનામૃત ॥ ૬ ॥ પુદ્ગલ પરિણતિમાં રમે,  
 મિથ અવિરતિ અનાણ ॥ લહે ન આતમ શુદ્ધતા, વંધે કર્મ અમાન ॥  
 ॥ વચનામૃત ॥ ૭ ॥ રમણ શુદ્ધાતમ જાવમાં, ધર્મ શુકલ થીર હોય ॥  
 અચલ અકંપ સદા રહે, મોક્ષ લહે નર સોય ॥ વચનામૃત ॥ ૮ ॥

ઢાલ આઠમી (૮) ॥ નવ તત્ત્વ દાન વિષે અધિકાર ॥

॥ આ સંસાર અસારે જીવતા આ ॥ એ દેશી ॥

જે નિજ પરને નિત દિયેરે, ઈંદ્રિ વિષયનું દાન ॥ તે સંસારી જીવ  
 ઠેરે, આતમ તત્ત્વ અજાણે પ્રાણી ધારો તત્ત્વ વિચાર ॥ એ સંસાર  
 અસાર રે પ્રાણી ધારો ॥ ૧ ॥ એ આંકણી ॥ આતમ સંપતિ સુખ  
 દિયેરે, જ્ઞાની સિદ્ધ સદાય ॥ દાતા પદ જેહમાં નહીંરે, તત્ત્વ અજીવ  
 કહાયેરે ॥ પ્રાણી ॥ ૨ ॥ દાયક શુદ્ધ પરિણામનેરે, નિજ પરને જે  
 હોય ॥ પુણ્યવંત તે જાણિયેરે, ઉપચારે સુખી સોયેરે ॥ પ્રાણી ॥ ૩ ॥  
 દેત અશુદ્ધ પરિણામ જેરે, તે દુઃખદાય અજાણ ॥ તે પાપી જગ જીવ  
 ઠેરે, શીલ સ્વજાવ અજાણે ॥ પ્રાણી ॥ ૪ ॥ શુદ્ધાશુદ્ધ પરિણામથી  
 રે, સુખ દુઃખનો દાતાર ॥ આસ્રવવંત તે જાણિયેરે, તે ન લહે જવપા-

ररे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥ तजि शुजाशुच कल्पनारे, दाता संवर जाव ॥  
रोके आस्रव आवनेरे, सहजातम सद्जावरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ इंद्रिय  
जोग लिये नहीरे, नवि दे इंद्रिय जोग ॥ देत शुधातम जोग जेरे,  
निर्जरणा थिर योगेरे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ राग विरोध तणो सदारे,  
निज परने दातार ॥ वलि अज्ञान मिथ्यातनोरे, कर्मबंध करतारे ॥  
प्राणी० ॥ ८ ॥ आतम सपत दान देरे, त्यागी ममता जाव ॥  
सकल समय स्व प्रजायनोरे, अनुजव मोक्ष स्वजावरे ॥ प्राणी० ॥ ९  
ढाल नवमी (ए) नव तत्त्व लाज विषे अधिकार ॥

॥ कहे साहुणो सुण कन्यकारे धन्या० ॥ ए देशी ॥

पुद्गल वस्तु लाज लेरे अप्पा, कर्मबंधनो तेम ॥ विषय कपाय  
कुलाज लेरे ॥ अप्पा ॥ संसारी जीव एम सुज्ञानीअप्पा सेवो सुतत्त्व  
विचार ॥ तजि मिथ्या उपचार सुमग सेवो दुष्ट प्रमाद निवार ॥ १ ॥  
ए आंकणी ॥ निज शक्ति व्यक्ति तणोरे ॥ अप्पा ॥ लेवे लाज सदाय ॥  
ज्ञानी ने वलि सिद्धजीरे ॥ अप्पा ॥ सकल समय सुखदाय ॥ सु-  
ज्ञानी० ॥ २ ॥ लेइ न जाणे लाजनेरे ॥ अप्पा ॥ तेह अचेतन र्व ॥  
लाज लीए शुज जावनोरे ॥ अप्पा ॥ पुण्यवत तजि गर्व ॥ सुज्ञानी०  
॥ ३ ॥ दुःख कपाय अज्ञाननोरे ॥ अप्पा ॥ मिष्ठ प्रमाद अ-  
पाय ॥ आदि लाज लीए सदारे ॥ अप्पा ॥ पापी जीव कहाय  
॥ सुज्ञानी० ॥ ४ ॥ लाज शुजाशुजनो लीयेरे ॥ अप्पा ॥ अप्यवसाय  
असंख ॥ दुविध कर्मनी आयमारे ॥ अप्पा ॥ आस्रवधारी रंक  
॥ सुज्ञानी० ॥ ५ ॥ आत्म शुद्धता लाज लेरे ॥ अप्पा ॥ रोके आस्रव  
आव ॥ तजि ममता निज संवरेरे ॥ अप्पा ॥ राखे शुद्ध स्वजाव  
॥ सुज्ञानी० ॥ ६ ॥ इंद्रिय जोग त्यागी लीयेरे ॥ अप्पा ॥ निज गुण जोग  
सुलाज ॥ शुद्ध निजातम जोगतारे ॥ अप्पा ॥ कर्म निर्जरा लाज  
॥ सुज्ञानी० ॥ ७ ॥ मिथ्या अज्ञान कपायनोरे ॥ अप्पा ॥ लाज

अविरति छेत ॥ बंधे आठे कर्मनेरे ॥ अप्पा ॥ जरु सम जेह अचेत  
॥ सुज्ञानी ॥ ८ ॥ ममता ठेदी मूलथीरे ॥ अप्पा ॥ राग द्वेष जरु  
नाश ॥ लाज शुद्धातम जावनोरे ॥ अप्पा ॥ अनुजव मोक्ष विदास  
॥ सुज्ञानी ॥ ९ ॥

ढाल दशमी (१०) नव तत्त्व उपजोग विषे अधिकार ॥

॥ सहजानंदीरे आतमा ॥ ए देशी ॥

पुद्गल गुण उपजोगमां, वरते ममतारे वंत ॥ राग द्वेष विषये  
रसी, ते संसारीरे जंत ॥ तत्त्वामृत रस अनुजवो, दुष्ट विजाव पला-  
य । आतम परमातम लहे, शिव संपति सुख पाय ॥ तत्त्वा० ॥ १ ॥  
॥ ए आंकणी ॥ ज्ञानादिक उपजोगमां, ज्ञानी सिद्ध महंत ॥ निज  
परिणति रस मग्नता । अक्षय काल अनंत ॥ तत्त्वा० ॥ २ ॥ जस उपजोग  
शक्ति नहीं । ते जरु जाण अजीव ॥ शुद्ध परिणति उपजोगतो । पुण्यवंत  
ते जीव ॥ तत्त्वा० ॥ ३ ॥ खिण खिण होय अशुद्धनो । पापीने उप-  
जोग ॥ तेम होय आस्रववंतने । शुद्धाशुद्ध उपजोग ॥ तत्त्वा० ॥ ४ ॥  
संवरवंत शुद्धात्ममां । करि निज गुण उपजोग ॥ पर परिणति रस  
रोकिने । साधे संयम योग ॥ तत्त्वा० ॥ ५ ॥ शुद्ध निज गुण उपजोगमां ।  
करे निर्जरा शुद्ध ॥ तजि परगुण उपजोगने । संयम राखेरे बुद्ध  
॥ तत्त्वा० ॥ ६ ॥ पुद्गल गुण उपजोगमां । रहे सदा लयलीन ॥ कर्म  
बंध तेहिज करे । ज्ञान विना मति हीन ॥ तत्त्वा० ॥ ७ ॥ आतम  
गुण उपजोगमां । अनुजववंत सदाय ॥ मुक्त होय अरु कर्मथी ।  
परमातम पद पाय ॥ तत्त्वा० ॥ ८ ॥

ढाल अगीआरमी (११) नव तत्त्व वीर्य विषे अधिकार ॥

॥ रुषज जिनेश्वर प्रीतम माहरोरे ॥ ए देशी ॥

करण वीर्य फोरे जगजन सदार । बांधक जावे बाल ॥ आतम  
वीरज परमां फोरतारे । कर्मबंधनी चाल ॥ आत्म वीरज संचालो

परवदूरे । प्रगटे अन्वय सिद्धि ॥ चख वीरजे सवि लुपावि यईरे ।  
 थिर वीरजे होय सिद्धि ॥ २ ॥ अ. आंकणी ॥ तनु मन वच इन्द्रिय  
 विषय विषेरे । फोरे वीर्य सदाय ॥ तनु आदि चख पुद्गल दल विषे  
 रे । वीर्य चले दुःख प्राय ॥ आत्म० ॥ ३ ॥ फोरे वीर्य असंयम कार्य-  
 मारे । ते संसारी जीव ॥ स्वगुण पञ्जवमां वीरज फोरवेरे । ज्ञानी सि-  
 द्ध सदीव ॥ आत्म० ॥ ३ ॥ निज पर करता थइ नवि फोरवेरे । वीर्य  
 रहित ते अजीव ॥ शुजयोगे फोरे वीरज सदार ॥ पुण्यवंत ते जीव  
 ॥ आत्म० ॥ ४ ॥ पाप कार्यमां अहनिश फोरवेरे । करण वीरज चित्त  
 चाह ॥ पापवंत जन तेहने जिन कहेरे । लखे न न्याय अन्याय  
 ॥ आत्म० ॥ ५ ॥ शुजाशुज परिणामे फोरवेरे । करण वीरज धरि राग  
 ॥ आत्मवधारी मंद ते जाणिपरे । पुद्गल रंगे लाग ॥ आत्म० ॥ ६ ॥  
 संवरी संयम योगे फोरवेरे । लब्धि वीरज निज शुद्ध ॥ प्राण हणे न-  
 हि दुविधे जीवनारे । रहे निज पद अविरुद्ध ॥ आत्म० ॥ ७ ॥ निज  
 गुण योगे जोगे फोरवेरे । लब्धि वीरज मतिवंत ॥ चलमल पुद्गल  
 जोग इहा तजेरे । करे निर्जरा संत ॥ आत्म० ॥ ८ ॥ मिच्छ अविर-  
 ति प्रमाद कषायमारे । तिम बलि जोगे जेह ॥ करण वीरज चल  
 करि फोरे नरा रे । वध करे अरु तेह ॥ आत्म० ॥ ९ ॥ शुद्ध निज  
 गुण पञ्जव स्वतंतमारे । अचल वीरज थिर योग ॥ पामे मोह अकंप  
 सजावथीरे । लहे परम पद जोग ॥ आत्म० ॥ १० ॥ दाल अगियार  
 माहे नव तत्त्वनारे । दाख्या जाव उदार ॥ जाणी तजशे जेह विज्ञा-  
 वनेरे । सेवि उपादेय सार ॥ आत्म० ॥ ११ ॥ निज गुण पञ्जव थिर-  
 ता रमणमारे । धरशे जे शुज ध्यान ॥ शिव संगे रंगे मनसुख रहेरे  
 लहेशे परम कल्याण ॥ आत्म० ॥ १२ ॥ संपूर्ण ॥

॥ मंदाक्रांता वंद ॥

॥ बांध्या कर्मों ममत करिने देह पंचे प्रकारे ॥ ईंद्री पंचे मन वच  
 तनू बंध व्यक्ती विकारे ॥ आवे ते तो ममत सहिते एक काले उदे



ते ॥ जाणे जीवो पुद्गल क्रिया काज कीधुं हमे ए ॥ १ ॥ माटे त्या-  
 गो ममत मलने आत्मता शुद्ध जासे ॥ ठेदं चेदं पुद्गल विषे आत्म  
 शांती प्रकाशे ॥ मिथ्या त्यागी अचल सुखमां शुद्ध आनंद लीजे ॥  
 सिद्धी पामे निज पर लखी आत्म ध्याने रमीजे ॥ २ ॥ जोगे कीधुं  
 ममत वशथी में कखुं मूढ माने ॥ जोगोने जे दुःख सुख सदा ठे मने  
 एम जाणे ॥ आठे कर्मों तणि विधि सवी अव्य जावे विचारी ॥ सा-  
 थे आवे उदय पुविधे अव्य लेजो विचारी ॥ ३ ॥ आपा आपे सकल  
 समये आपमां आप मानो ॥ जे ठे जेना गुण परजयो तेहना त्यां व-  
 खाणो ॥ साची सत्ता लखि समयमां शुद्ध आनंद लीजे ॥ त्यागी  
 हिंसा स्वपर पुविधे धर्म शुक्ले रमीजे ॥ ४ ॥ धर्मों राखो स्व-  
 पर जिवना जाव हाणी न कीजे ॥ प्राणो राखो चित धरि दया अ-  
 व्य हिंसा तजीजे ॥ राखे साची चटक चितमां संयमे काज सीधे ॥  
 बूने ते तो धरि प्रमत्तता पुद्गली रंग लीधे ॥ ५ ॥ आ काले ठे मदद  
 सुतनी अव्यने शांति दाई ॥ माटे सेवो मन वच तने आत्ममां हेत  
 लाई ॥ सेवो साचा समदरशि जे शुद्ध बोधाधिकारी ॥ वेगे पामो  
 मनसुख सुखे आत्म संपत्ति जारी ॥ ६ ॥

॥ अमिद्व ठंद ॥

॥ जोगोथो जे थाय तेह कहे में कखुं । ममत ग्रही मिथ्यात शुद्ध  
 पद वीसखुं ॥ जोगने जे जे थाय थयुं ते मुज प्रते । एम माने अज्ञानी  
 ममत मिथ्या मते ॥ १ ॥ मन वच काय त्रियोग पुरवला बंध ठे ।  
 क्रिया अनुक्रम उदय हुवे परतंत्र ठे ॥ जीवे बांध्यु ममत्व मोहनीय  
 कर्मथी । समकाले ते उदय होय लहे कर्मथी ॥ २ ॥ जोग क्रियानुं  
 काम कखुं में मानतो । ज्ञानादिक निज काजनो रहे अजाणतो ॥  
 सुख स्वरूप शुद्धात्म लख्या विण दुःखि रह्यो । पुद्गलमां लखि सूख  
 आठ करमे ग्रह्यो ॥ ३ ॥ अष्ट करम दल बंध अशुद्ध उपयोग जे ।

समकाले विपाक उदय होय जुगपदे ॥ समकाले दो विधयी उदय  
पिठाणिये । तजि ममता अड कर्मनी शक्ति जानिए ॥ ४ ॥ पुद्गल  
जरु चल पंठ सदा परतंत्र ठे । रहे न राख्या कोइ ग्रहे मतिअथ जे ॥  
क्रिया क्लेश करि चाहे सुख-पुद्गल विषे । कर्मबंध वश उपजे  
चउगति दश दिशे ॥ ५ ॥ आत्म अफरसी किम फरसे पुद्गल प्रते ।  
ममता वश पर मानी निज मिथ्या मते ॥ पर परिणति किरियानी  
ममता परिहरो । सुख निधान शुद्धात्म अनुभव अनुसरो ॥ ६ ॥  
पुद्गल अथिर असारने ममताथी ग्रहे । मिष्ठ अनाण कपाय अवि-  
रति पण रहे ॥ वधे प्रमादज दोष अनंता एहथी । बांधे कर्म अनंत  
सुख तेहने नथी ॥ ७ ॥ अध्यवसाय असंख्यनुं ममता मूल ठे । तेहनुं  
मूल अज्ञान आत्म प्रतिकूल ठे ॥ जेदज्ञान लहि शुरू ममत्व नि-  
वारिये । आत्मता लखि शुरू विमल मति धारिये ॥ ८ ॥ जड अचे-  
तन चेतन आत्म स्वभाव ठे । चेतनताथी जिन सकल परभाव ठे ॥  
उदासीनता धारी रागादि परिहरो । मोह अरि दल छेदि कर्म अड  
कय करो ॥ ९ ॥ ज्ञायकता ठे इति क्रिया शुरू आपणी । होयारथ  
परिणाम तजो जे पापणी ॥ दरशन ज्ञान चरित वीरज थिर जावमां ।  
मनसुख शिव विश्राम लहे डड दावमां ॥ १० ॥

॥ आधा आम पधारो पूज्य अम घर वहेरण वेला ॥ ए राग ॥

ए हुं हुं ए एम अज्ञानी मिथ्या मतधर मानेजी ॥ में बीजाने  
बीजे मुजने कछुं माने अजिमाने ॥ मोह निवारोजी ॥ लही शुरू  
जेद विज्ञान निजातम तारोजी ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ हुं बीजानो  
बीजो म्हारो करता एम निरधारीजी ॥ हुं तेह माटे ते मुज माटे डुरमति  
एम निरधारी ॥ मोह ॥ २ ॥ म्हारुं कारज परथी होवे मुजथी परनुं  
होवेजी ॥ धन कुटुंब देहादिक सर्वे मुजथी ठे एम जोवे ॥ मोह ॥  
धन कुटुंब देहादिक पुद्गलने पोतानुं मानेजी ॥ हुं माता पिता पत्नी-

नो देहादिकनो जाणे ॥ मोह० ॥ ४ ॥ हुं हुं वर्णादिकमां एकज वर्णा-  
 दिक सहु मुजमांजी ॥ श्री जिन वचन लह्या विण मूरख सहतो  
 दुःख अरुजमां ॥ मोह० ॥ ५ ॥ वस्तु सकल चउ जेदे जाणे जे  
 जेहना ते तेहनाजी ॥ कोइना परमां जाय न आवे शुद्ध न्याय लहो  
 एहना ॥ मोह० ॥ ६ ॥ द्रव्य क्षेत्रने काल जाव चउ वस्तुना वस्तु-  
 मांजी ॥ अनंत प्रजाय त्रिकाल एकमां द्रवे जेहना तेहमां ॥ मोह० ॥  
 ७ ॥ प्रथम द्रव्य स्वजाव एह ठे होय त्रिकाल अखंडजी ॥  
 निज प्रदेश स्वसत्ता राखे अनंत प्रजाय प्रचंड ॥ मोह० ॥ ८ ॥  
 उपजे विणसे स्व स्वकाळे गुण पज्जवनी व्यक्तीजी ॥ विषेशपणे  
 निज निज पज्जवनी जावे निज निज शक्ती ॥ मोह० ॥ ९ ॥ द्रव्या-  
 दिक ए चार सद्रव्ये अस्ति परनी नास्तिजी ॥ आठ पदना सात  
 सात एम जांगा अस्ति नास्ति ॥ मोह० ॥ १० ॥ निज निज चार  
 निक्षेप द्रव्यना होय अनेद स्वजावेजी ॥ द्रव्य गुण परजाय आपणा  
 ते किम परमां जावे ॥ मोह० ॥ ११ ॥ अनुभव ज्ञान प्रमाणे निजपर  
 जेदि स्व द्रव्ये रहियेजी ॥ ममता मारी समता भारी मनसुख शिव-  
 सुख लहिये ॥ मोह० ॥ १२ ॥

### ॥ हरिगीत ठंड ॥

शुद्ध आत्मता अज्ञानथी नर ममत करि पुद्गल तणुं । करि राग  
 रोष विमोह अतिशय कर्म बंधन करि घणुं ॥ दुःख ताप बहु संताप  
 सहतो उपजि चउदे राजमां । बहु जन्म मरण क्लेश जोगे रहे न  
 निज सुख काजमां ॥ १ ॥ शुद्धात्म ज्ञाने ममत नाशे सहज निज सं-  
 पत्ति लहे । सवि राग द्वेष विमोह नाशे कर्म दाय करि शिव रहे ॥ शुद्ध  
 ज्ञान विण पुद्गल क्रियाथी होय सुख इम जाणिने ॥ रस रोष किरि-  
 या मांदि करतो काज आपणुं मानिने ॥ २ ॥ करि में कराव्युं कछुं  
 तेणे ठीक करुं करावुं ते करे । हुं करिश पोते बलि कराविश तेह क-  
 रसे चित्त धरे ॥ मन वचन काय त्रियोग एना जेद सत्तावीशथी ।

शुभ अशुभ कर्मथी जीव वंधे शांति निवृत्ति तस नथी ॥ ३ ॥ प्रथम  
अंगे वीर जिनवर एम जाखे जाणिने । सुख पुरण अरथे आत्म स्थि-  
रता सेविण सनमानिने ॥ अज्ञान विण नहि ममत परनुं ए विना न  
मिथ्यात ठे । अविरति प्रमाद कपाय दोषो सर्वनो ए तात ठे ॥ ४ ॥  
माटे खहि शुध आत्म ज्ञानने दरश चरण विमल करो । तजि राग  
दोष विमोह दूषण उदासिन समपद वरो ॥ अज्ञान विण नहि दुःख  
जगमां ज्ञान विण सुख को नहीं । शुध ज्ञान दरशन चरण सेवी पामिये  
वर शिव मही ॥ ५ ॥ छादशांगनो सार एह ठे ममत तजिए वेगथी ।  
मनसूख अमला शीवकमला लहे सहज संवेगथी ॥ ओगणीश पांसठ चैत्र  
पूनम दोहदे मन रंगथी । स्वपर हितकर पर ममतहर रच्यो ठंद  
उमंगथी ॥ ६ ॥

( संपूर्ण )

॥ ॐ परमगुरुज्योत्स्नः ॥

॥ श्री सूत्र तत्त्वार्थ सार विचारनी ढालो लिख्यते ॥

॥ दोहरा ॥

ब्रह्माणी वंदी वदू । स्यादवाद शुचि बोध ॥ तत्त्व अधिगम सूत्रथी ।  
निर्मल आत्म शोध ॥ १ ॥ वदू वीर जिनेज्जने । तीर्थपती जिनराज ॥  
आत्म वीर्य अचल लहुं । सिद्धे वंठित काज ॥ २ ॥ गोयम गणधर  
पद नमुं । छादशांग करतार ॥ तसु लब्धि सुपसायथी । लखुं परम श्रुत  
सार ॥ ३ ॥

॥ ढाल ( १ ) पेहेली ॥ प्राणी एकल जावना जाव ॥ ए राग ॥

सम्यक दर्शन ज्ञाननुरे । शुद्ध स्वजाव चरित्त ॥ मारग जाख्यो  
मोक्षनोरे । आदरिये ऊढ चित्तरे ॥ प्राणी आत्म शक्ति संजाख ।  
मोहाधिनता वाररे ॥ प्राणी ॥ ५ आकणी ॥ १ ॥ दर्शन ज्ञान चारित्र

ઠેરે । નિશ્ચય આત્મ અજેદ ॥ જેદ રત્નત્રયી સાધતારે । લહિયે મોક્ષ  
 અખેદરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૨ ॥ એ ત્રણ ગુણ નિરમલ કરોરે । ટાલિ સકલ  
 અતિચાર ॥ એ ત્રણમાં એક ન્યૂનથીરે, કેમ લહિયે જવપારરે ॥ પ્રાણી૦  
 ॥ ૩ ॥ જિન દેશિત સત્ત તત્ત્વનીરે, શ્રદ્ધા રુચી પ્રતિત ॥ નિર્મલ હોવે  
 જેહનેરે, સમકિત કહિયે મિત્તરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૪ ॥ નય નિદેપ  
 પ્રમાણથીરે, આઠ પદ્મ શુચિ બોધ ॥ હોવે જીવાદિક તણોરે, યથા  
 સૂત્ર અવિરોધરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૫ ॥ સમ સંવેગ નિરવેદ ઠેરે, આસ્તા અ-  
 નુકંપા હોય ॥ શંકાદિ દૂષણ વિનારે, નિશંકાદિ અમ્મ જોયરે ॥ પ્રાણી૦  
 ॥ ૬ ॥ નિસર્ગ ને અધિગમ થકીરે ॥ ચ્યાર ગતીમાં ધાર ॥ જ્ઞવ્ય સ-  
 ન્નિ સમકિત લહેરે, લહિ જિન શાસન સારરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૭ ॥ જીવા-  
 જીવાસ્ત્રવ બંધ ઠેરે, સંવર નિર્જર મુક્ત ॥ ઉપયોગવંત તે જીવ ઠેરે,  
 દ્વીવિધ ચેતના યુક્તરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૮ ॥ ધર્મ અધર્મ આકાશ ઠેરે, પુદ્-  
 ગલને વલિ કાલ ॥ પંચ અજીવ એ જાણિયેરે, દ્રવ્ય અચેતન જાલરે  
 ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૯ ॥ કાલ વિના યદ્યપિ દ્રવ્યમાંરે, અસ્તિ દ્રવ્ય ઠે પંચ ॥  
 કાલ દ્રવ્ય ઉપચારથીરે, એમ યદ્યપિ હોય સંચરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૧૦ ॥  
 પર રમણે આસ્ત્રવ કહ્યોરે, રાગાદિકની આય ॥ અષ્ટ કર્મદલ વર્ગણોરે,  
 આત્મ સમૂહ જરાયરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૧૧ ॥ જેદ વેંતાલીશ તેહનારે, પંચ  
 ઈંદ્રિ ચાર કષાય ॥ પંચ અવ્રત ત્રણ જોગ ઠેરે, ક્રિયા પચ્ચીશ મિલાય  
 રે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૧૨ ॥ પયઙ્ગ ઊંચ રસ પ્રદેશ ઠેરે, બંધના ચાર પ્રકાર ॥  
 આત્મ બંધે કર્મથીરે, દ્રવ્ય જાવ વિધિ ધારરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૧૩ ॥ તજિ  
 આસ્ત્રવ શુદ્ધાત્મમાંરે, થિર ઉપયોગ સુરંગ ॥ સિદ્ધ સમો નિજ ધ્યાવ-  
 તારે, પ્રગટે સંવર અંગરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૧૪ ॥ જેદ સત્તાવન્ન તેહનારે,  
 પંચ સમિતિ ગુપ્તિ ત્રિન ॥ પરિસદ્ધ બાવિશ જીતતારે, ક્ષાંત્યાદિ દશ  
 ગુણ લીનરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૧૫ ॥ બાર જાવના જાવિયેરે, ચારિત્ર પંચ  
 પ્રકાર ॥ સમ સંવર જે આદેરેરે, તેહ તરે સંસારરે ॥ પ્રાણી૦ ॥ ૧૬ ॥ યદ્યપિ  
 યદ્યપિ વાહ્ય અચ્યંતરેરે, તપ તપિ નિર્જરા થાય ॥ આત્મ રમણે આત-

मारे, सहजानंद उपायरे ॥ प्राणी० ॥ १९ ॥ शुक्ल ध्यान धरि आतमारे,  
द्वय करि अष्टे कर्म ॥ पूर्ण व्यक्ति म्व प्रजायनीरे, करि विलसे शिवश-  
र्मरे ॥ प्राणी० ॥ २० ॥ सात तत्त्व एणि पेरे कळारे, नव ग्रंथांतर मांढ्य  
पुण्य पाप दोय बंधयीरे, कळ्या विशेषे त्याहारे ॥ प्राणी० ॥ २१ ॥ नय-  
आदिक कांड वर्णवुंरे, संक्षेप तत्त्व विचार ॥ मनसुख सम्यक् दर्शयीरे,  
लहिये शिवपद साररे ॥ प्राणी० ॥ २२ ॥

## ॥ दोहरा ॥

वस्तु अनंत धरम मयी । समकाळे न कढाय ॥ नय वचने जो  
उच्चरे । तो कांड विरुद्ध न थाय ॥ १ ॥ पळ्ळाव गौण दरव मूखे ।  
अव्यार्थिक ए जाण ॥ अव्य गौण पळ्ळाव मूखे । पळ्ळाव अर्थ वखाण ॥  
॥ २ ॥ नैगम संग्रह व्यवहारने, रूजुसूत्र ए चार ॥ अव्यार्थिक नय  
जाणिए । धारो एह विचार ॥ ३ ॥ शब्द समजिरूढने । एवंज्ञूत  
ए तीन ॥ पळ्ळाव नय मन धारतां । पंडित होय प्रवीण ॥ ४ ॥

॥ ढाल ( १ ) बीजी ॥ श्री सुपार्श्व जिन वंदिये ॥ ए राग ॥

सकल वस्तुने जाणीए । चार निक्षेप समेत लखना ॥ न्यास कळ्या  
ए वस्तुना । अव्य प्रजाय अजेद लखना, तत्त्व अष्टि अढ राखीए ॥  
॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ नाम स्थापना अव्यने । जाव सहित होय चार  
लखना ॥ वस्तुना वस्तु विषे । शुद्ध निक्षेप विचार लखना ॥ तत्त्व० ॥  
॥ २ ॥ उपचारे पण वस्तुना । दाख्याचार निक्षेप लखना ॥ सूत्रे विशेषे  
वर्णव्या । इहां दाख्युं संक्षेप लखना ॥ तत्त्व० ॥ ३ ॥ चार निक्षेपे वस्तुनो ।  
जिन्न जिन्न होय बोध लखना ॥ न्यास जे जेहना ते तेहमां । जाणो  
सदा अविरोध लखना ॥ तत्त्व० ॥ ४ ॥ नित्यानित्य वस्तु सवि ।  
तेम वलि एक अनेक लखना ॥ सत्य असत्य पणे सदा । वक्त अव-  
क्तव लेख लखना ॥ तत्त्व० ॥ ५ ॥ आठे पदे जाणीए । जिन्न जिन्न  
सतजंग लखना ॥ स्यादवाद एम जाणतां । लहिये समकित रंग

ललना ॥ तत्त्व० ॥ ६ ॥ स्यादवाद परिणाममां । परिणमे वस्तु सदाय  
 ललना ॥ आपे आप स्वरूपमां । वर्त्ते विण पर सहाय ललना ॥  
 ॥ तत्त्व० ॥ ७ ॥ दोय प्रकार प्रमाण ठे । प्रत्यक्ष परोक्ष ते जाण  
 ललना ॥ प्रत्यक्ष दोय प्रकारनुं । सर्वने देश वखाण ललना ॥ तत्त्व० ॥  
 ॥ ८ ॥ केवल सर्व प्रत्यक्ष ठे । देश अवधि मननाण ललना ॥  
 मति सुत परोक्ष वखाणीए । प्रमेय मापे प्रमाण ललना ॥ तत्त्व० ॥ ९  
 बीजां चार प्रमाण ठे । प्रत्यक्ष अनुमान वचन ललना ॥ चोथुं उप-  
 मान जाणीए । ए चउ धारो मन्न ललना ॥ तत्त्व० ॥ १० ॥ सकल  
 वस्तु प्रमेयने । जे मापे ते ज्ञान ललना ॥ ज्ञान प्रमाण हृदय धरो ।  
 जेम नाशे दुर्ध्यान ललना ॥ तत्त्व० ॥ ११ ॥ सकल तत्त्व निर्देशने ।  
 वलि स्वामित्व विचार ललना ॥ साधन अधिकरण जाणीए । स्थिति  
 विधान खट धार ललना ॥ तत्त्व० ॥ १२ ॥ ए अनुयोगे आत्मनुं ।  
 दर्शन निर्मल होय ललना ॥ थिरता आवे चरणमां । आतम तत्त्व  
 विलोय ललना ॥ तत्त्व० ॥ १३ ॥ सत संख्या क्षेत्र फरसना । कालने  
 अंतर जाग ललना ॥ जाव ने अद्वयबहुत्वए । नव अनुयोगनो लाग  
 ललना ॥ तत्त्व० ॥ १४ ॥ चउदश मार्गणामां करो । सम्यक तत्त्व  
 विचार ललना ॥ निर्मल सुतरस ऊपजे । लहिये दर्शन सार ललना  
 ॥ तत्त्व० ॥ १५ ॥ एम अनुयोगने अनुगमे । प्रगटे सम्यक बोध ललना ॥  
 मनसुख शिवसंपति लहे । सहजातम अविरोध ललना ॥ तत्त्व० ॥ १६ ॥

॥ दोहरा ॥

दर्शन पद वर्णन कखुं । हवे कहुं ज्ञान स्वरूप ॥ आत्म ज्ञान  
 निर्मल लही । जवि मूदो जव कूप ॥ १ ॥

॥ ढाल ( ३ ) त्रीजी ॥ जविका सिद्ध चक्र पद वंदो ॥ ए राग ॥

पंच प्रकार ठे ज्ञाननारे । मति श्रुत अवधि सार ॥ मन पज्जाव  
 केवल जलुंरे । सेवि लहो जव पाररे प्राणी वीर वचन चित्त धरिये ।

जवदधि वेगथी तरियेरे प्राणी० ॥ वीर० ॥ १ ॥ ए'आंकणी ॥ ज्ञान  
 प्रमाण ठे सर्वतुरे । मापे सकल प्रमेय ॥ आप रहे निज रूपमांरे ।  
 ज्ञानानंद अमेयरे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ पंच ईंद्रि एक मन वनेरे । जेद  
 अष्टाविश सार ॥ मन नयन विण चारनारे । व्यजनावग्रह चाररे ॥  
 ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ अथ्था ईहा अवाय ठेरे । चोथो धारणा जेद ॥ पंच  
 ईंद्रि एक मन तणारे । चोविश जेद अखेदरे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ बहु  
 अवहु बहूविधेरे । अवहूविधे जणाय ॥ क्षिप्र अक्षिप्रपणे लखेरे ।  
 निश्चित अनिश्चित लखायरे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥ युक्त अयुक्त पणे लखेरे ।  
 ध्रुव अध्रुव होय लक्ष ॥ चार अष्टाविशथी गुणोरे । तिसय ठत्तिश जेद  
 दक्षरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ उत्पात विनयकी कामिआरे । चोथी परि-  
 णामीआ बुद्धि ॥ त्रणशें चालीश जेद एरे ॥ मतिना जाणो शुद्धिरे ॥  
 ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ मति स्मृती संज्ञा कहीरे । चिंता आजिनिबोधी ॥  
 पंच नाम मतिनां कक्षारे । ते जाणो अविरोधिरे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥  
 अक्षर अनक्षर कह्युरे । सत्री असत्री दोय ॥ सम्यक मिथ्या सुत  
 तथारे । सादि अनादि होयरे ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥ सपज्जवसित कह्युरे ।  
 वलि अपज्जवसित ॥ गमिक अगमिक जाणिएरे । अंग अंगवाह  
 मित्तेरे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥ चौद जेद एम श्रुतनारे । वलि ठे वीश  
 प्रकार ॥ पज्जाव अक्षर पद तथारे । चोथो संघात विचाररे ॥ प्राणी०  
 ॥ ११ ॥ पन्निवत्ती अनुयोग ठेरे । पाहुन पाहुन सत्त ॥ आठमो पाहुन  
 जाणिएरे । नवमो वथ्यु पयत्तेरे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥ पूर्व जेद दशमो  
 कह्योरे । वलि ए दशना समास ॥ मिलतां वीश जेदे हुवेरे । जाणो  
 सुत विलासरे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥ चार जेद चार अंगथीरे । अव्य जाव  
 दोय जेद ॥ एम सुत जेद अनेक ठेरे । करो अज्यास जमेदरे ॥  
 ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥ खट विध अवधि ज्ञान ठेरे । प्रथम कह्यो अनु-  
 गामी ॥ अननुगामी बीजो कह्योरे । त्रीजो वर्द्धमान नामीरे ॥ प्राणी०  
 ॥ १५ ॥ हेयमान चोथो कह्योरे । पंचम ठे प्रतिपाती ॥ आव्युं न



जावे उहि जेरे । ठठो अप्रतिपातीरे ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥ जवप्रत्य  
 नारक देवनेरे । तिर्य मनुज गूणप्रत्य ॥ जेद विशेष असंख्य ठेरे ।  
 सूत्रे जाणो सत्येरे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥ रुजु विपुल दोय जेदथीरे ।  
 कहुं मनपज्जाव नाण ॥ केवल एक अजेद ठेरे । निर्मल जलहल  
 चाणरे ॥ प्राणी० ॥ १८ ॥ रुजुमातिथी विपुलमतीरे । विशुद्ध अ-  
 पडिवायी ॥ मनपज्जावथी उहिनारे । जाव सुणो अधिकाशेरे ॥ प्राणी०  
 ॥ १९ ॥ द्रव्य क्षेत्र काल जावथीरे । अधिक तथा विशुद्ध ॥ मन-  
 पज्जावथी ओहिनारे । स्वामी जाणो बुद्धेरे ॥ प्राणी० ॥ २० ॥ मुनि  
 अप्रमादीने हुवेरे । मनपज्जाव दोय सार ॥ चउ गति दयउपशम  
 गुणेरे । उपजे ओहि उदाररे ॥ प्राणी० ॥ २१ ॥ सर्व एकावन्न जेद  
 ठेरे । ज्ञानना चित्तमां धारो ॥ शुद्ध ज्ञान आराधतांरे । लहिये जव-  
 जल पारोरे ॥ प्राणी० ॥ २२ ॥ रूपी अरूपी विषय ठेरे ॥ मति श्रुत-  
 ज्ञाननो जाणो ॥ असंख्य समयमां ए लेखेरे । निज निज विषय  
 प्रमाणोरे ॥ प्राणी० ॥ २३ ॥ रुपि विषय अवधि तणोरे । पुद्गलनो  
 ए ज्ञाता ॥ मनपज्जाव संझीतणारे । मन जाव जाणे विख्यातारे ॥  
 प्राणी० ॥ २४ ॥ केवल रूपी अरूपिनारे । अनंतानंत प्रजाय ॥ एक  
 समय त्रिहुंकालनारे । जाणे पुरण असहायरे ॥ प्राणी० ॥ २५ ॥  
 विप्रयास पण जाणिएरे । कुमति कुसुत विजंग ॥ होय मिथ्याती  
 जीवनेरे । समकिति ज्ञान सुचंगरे ॥ प्राणी० ॥ २६ ॥ एक समय एक  
 जीवनेरे । मइ सुय ओहि मन होय मइ ॥ सुय ओहित्रिय कोइनेरे । मइ  
 सुय मन त्रिय जोयरे ॥ प्राणी० ॥ २७ ॥ मति सुत दो होय कोइनेरे ॥  
 कोइने केवल एक ॥ एक समय त्रिहुं कालनारे । जाणे जाव अशेखरे ॥  
 ॥ प्राणी० ॥ २८ ॥ जाग अनंत ओहीथकीरे । विषय ठे मनपज्जावनो  
 ॥ अनंत विषय केवल तणोरे । आनंद निज अनुजवनोरे ॥ प्राणी० ॥  
 ॥ २९ ॥ ज्ञान अज्ञान केवल विनारे । दयउपशमथी सात ॥  
 ठदस्थ जावे होयठेरे । केवल अव्याघातरे ॥ प्राणी० ॥ ३० ॥

નિર્મલ જ્ઞાન આરાધતારે । હોય સમાધિ સ્વતંત્ર ॥ મનસુખ શિવસંગે  
સદારે । વિલસે સૂઝ અત્યંતરે ॥ પ્રાણી ॥ ૩૧ ॥

## ॥ દોહરા ॥

કહ્યો જ્ઞાન અધિકાર એ । કહુ કહુ જીવ સ્વજાવ ॥ લલો શુદ્ધ સ્વરૂ-  
પ નિજ । નાશે જેમ વિજાવ ॥ ૧ ॥ દર્શ જ્ઞાનમયી ચેતના । ઉપયોગી  
ગુણવંત ॥ કર્તા જોક્તા આદિ નિજ । ગૂણ અરૂપિ અનંત ॥ ૨ ॥ ચાર  
પ્રાણયુત જીવતો । જીવે ઠે વિદ્યમાન ॥ આગે પણ એમ જીવશે । સ્વપર  
વસ્તુનો જાણ ॥ ૩ ॥ ઇન્દ્રિય વલ આણપાન ઠે । ચોથો આયુ પ્રાણ ॥  
ઠે સંસારી જીવને । ઉત્તર દશવિધ જાણ ॥ ૪ ॥ દર્શન જ્ઞાન ચારિ-  
ત્રને । વીર્ય પ્રાણયુત ચાર ॥ જાવપ્રાણ એ સિદ્ધના । અમલ અચલ સુખ-  
કાર ॥ ૫ ॥ આઠકર્મ આવરણથી । જમે ચતુર્ગતિ માંદા ॥ નિજ ગુણ  
સર્વ મલિન હુવા । નિજ પદ શુદ્ધિ ન કાય ॥ ૬ ॥ પંચ જાવ સંસારીને ।  
લાયક પરિણામીક સિદ્ધ ॥ લાયક પરિણામીક લલો । તે પામ્યો નવ  
નિદ્ધ ॥ ૭ ॥

## ॥ ઢાલ (૪) ચોથી ॥ અનિદ્ધ વંદ ॥

દોય જાવ ઉપશમિક, પ્રથમ મિથ્યાતનો ॥ વીજો ઉપશમ ચરણ,  
મોહની જાતનો ॥ દ્વાયિકસમકિત દ્વાયિકચરણ તે જાણિયે ॥ કેવલ દ-  
ર્શન જ્ઞાન એ, દ્વાયિક માનિયે ॥ ૧ ॥ દાન લાજ ને જોગોપજોગ લલ્લિ  
કહી ॥ અનંત વીરજ લલ્લિ, એ નવ દ્વાયિક સહી ॥ કેવલ વિણ ચહ  
જ્ઞાનને, દર્શન ત્રીન ઠે ॥ ત્રિન અજ્ઞાન ને લલ્લિ, પંચે જિજ્ઞ ઠે ॥ ૨ ॥  
વેદકસમકિત ને વલિ, ધરણ સરાગ ઠે ॥ સંજમાસંજમ મલિ અઠ-  
દશનો લાગ ઠે ॥ ક્યયુપશમથી જીવના, જાવ અઢાર ઠે ॥ કર્મદાય કરિ  
દ્વાયિક, પરચુ સાર ઠે ॥ ૩ ॥ ચતુર્ગતિ ચાર કપાય, લિંગત્રય જાણિયે ॥  
મિથ્યાદર્શનને અજ્ઞાન પ્રમાણિયે ॥ અસંજમ અસિદ્ધત્વને લલ્લિ લેશ્યા  
કહી ॥ જેદ ઉદયના એકવીશ જાણો સહી ॥ જીવ જલ્પ અજલ્પ

परिणामीक त्रण कहा ॥ सौ मली त्रेपन जेद सूत्रमांथी लह्या ॥ द्विविध  
 कह्यो उपयोग जेद तस बार ठे ॥ ज्ञान अज्ञान ए आठ ने दर्शन  
 चार ठे ॥ ५ ॥ ज्ञान पंच अज्ञान तीन साकार ठे ॥ चउ दर्शन सामा-  
 न्यथी नीराकार ठे ॥ उपयोगवंत ते जीव संसारीने सिद्ध ठे ॥ संझी अ-  
 संझी जववासी द्वीविध ठे ॥ ६ ॥ थावर त्रस संसारी दोय प्रकारना ॥  
 पृथ्वि आदि पंच ते थावर धारणा ॥ बी ती चउ पंचेद्रि त्रस विचारिये  
 ॥ इंद्रि पंचने दोय प्रकारे धारिये ॥ ७ ॥ निवृत्ती उपकरण ते द्रव्य इंद्रि  
 कही ॥ लब्धि ने उपयोग ते ज्ञाव इंद्रि सही ॥ फरस विषय ठे आठ पंच  
 रसना तणा ॥ घ्राणना दोय प्रकार पंच द्रव्यना जणया ॥ ८ ॥ सचित  
 अचित ने मिश्रशब्द त्रय श्रोतना ॥ विषय त्रेविश प्रकार तजो थई शुच-  
 मना ॥ सुतगोचर जे विषय ते मननो जाणिये ॥ विषय राग तजि कर्म-  
 नी सत्ता जानिए ॥ ९ ॥ थावर पंचने एकज फरस इंद्रि कही ॥ वि ति  
 चउ पंचेद्रि एक एक वधती लही ॥ पुद्गल विण नहीं जेद सिद्ध शुद्ध  
 जीवमां ॥ सहजानंद स्वतंत्र ते विलसे शीवमां ॥ १० ॥ कर्मयोग कोइ  
 जीवने, विग्रहगति कही ॥ शुद्ध जीव होय सिद्ध ते अविग्रह गति लहि ।  
 जीव परमाणुनुं सम श्रेणीमां गमन ठे ॥ पुद्गल योगे जीवनुं चउगति  
 त्रमण ठे ॥ ११ ॥ गत्यांतर जातां कोइ विग्रहगति करे ॥ बीजे त्रीजे  
 चोथे समये आहरे ॥ एक दो तिन विग्रहथी चोथा समयमां ॥ नौतन धरे  
 प्रजाय करम कृत्य उदयमां ॥ १२ ॥ अविग्रहि अनाहारी एकज  
 समयनो ॥ विग्रहवंत अनाहारी बे त्रण समयनो ॥ समूर्तिम गर्जज उत-  
 पातकी तीन ए ॥ जन्म कहा एम जिन जिन जगजीवने ॥ १३ ॥ देव नर-  
 कने जन्म सदा उतपातथी ॥ मनुष्य तिर्यचने गर्ज समूर्तिम जातथी ॥  
 अंडज पोतज जरायुज त्रण जातना ॥ ए विध गर्ज प्रकार जूइ जूइ जा-  
 तना ॥ १४ ॥ नव प्रकारनी योनि कही ते जाणिए ॥ सचित अचितने शीत  
 उष्ण परमाणिए ॥ संवृत ने विवृत ए खट विध धारीए ॥ सचित अ-

चित मिश्र सप्तमी विचारीए ॥ १५ ॥ उष्ण शीत मिश्रनी आठमी  
जाणीए ॥ सवृत विवृत मिश्र ए नवमी मानीए ॥ चुलसी लम्ब विशेष  
जीव योनी कही ॥ तजिए ममता सर्व विमल शक्ति ग्रही ॥ १६ ॥  
उदारिक वैक्रिय आहारक तेजस तथा ॥ पंचमुं कर्मण नाम शरीर  
होये यथा ॥ एक एकथी सूक्ष्म अनुक्रमे जाणीये ॥ अनंतानंत प्रदेशी  
कर्मण मानीये ॥ १७ ॥ तेथी अनंतमे जाग प्रदेश तेजस कह्यु । तेथी  
अनंतमे जाग आहारक तनु लह्यु ॥ आगे ओठा आंठा प्रदेश ठे  
थूलमां । जेम सूक्ष्म तेम अधिक प्रदेशी मूलमां ॥ १८ ॥ तेजस का-  
र्मण दोय ए अप्रतिघातीने । वज्राटिक नवि रोके ए दोय जातीने ॥  
ए न करे प्रतिघात जगतमां कोईने । तत्त्व विचारो सार सिद्धातमां  
जोईने ॥ १९ ॥ कर्मण तेजस जीव संबध अनादिनो । नव नव ग्रहणे  
होये संबध तेसादिनो ॥ एक समय कोइ जीवने चारे देह ठे । उदारिक  
वैक्रिय तेजस कम्म एह ठे ॥ २० ॥ आहार उदारिक तेजस कर्मण  
पण कदा । वाकी सर्व संसारी ती शरीरी सदा । विग्रहगतिमां तेजस  
कर्मण जाणिये । नित्य निगोठमां तोन्न शरीर प्रमाणिये ॥ २१ ॥  
तेजस कर्मण दोय ते निरूपजोग ठे । उदारिक वैक्रिय आहारकथी  
जोग ठे ॥ गर्ज समूर्तिमने मूल तीनज देह ठे । उदारिक तेजस का-  
र्मण जाणो एह ठे ॥ २२ ॥ उत्पातिकने वैक्रिय आटिक त्रण कहां ॥  
लब्धिवत अधिकै वैक्रिय आहारक लह्यां ॥ तेजस लब्धिवंत करे ते-  
जस कदा । एक मुहुरत स्थिति आहारक अधिकी नहि कदा ॥ २३ ॥  
चौद पुरवधर आहारक शक्ति लही करी । आहारक करतो आवे  
प्रमाद गुणे फरी ॥ अन्याघातने शुच विशुध आहारक कह्यु । चूकि  
उंचेथी ठछम गुणगण लह्यु ॥ २४ ॥ समूर्तिमने नारक सवि नपुंसक  
कह्या । स्त्री पुरुष दोय वेद देव माहे लह्या ॥ गर्जज मनुष्यने तिर्य-  
चने त्रण वेद ठे । मिद्ध जीव निरवेद अचल निरजेद ठे ॥ २५ ॥  
असंख्य वर्षजे आयु युगलियादिकमां । निरूपक्रम ठे आयु नरकने

देवमां । सोपक्रम पण आयु चरम तनुनुं सुण्युं ॥ निरूपक्रम विशेष  
ग्रंथांतरथी मुण्युं ॥ २६ ॥ चरम शरिरीनुं आयु डुविधधी जाणीए ।  
प्राये निरूपक्रम सूत्रथी मानीये ॥ त्यागी सकल विजाव निरायु पद  
खहो । मनसुख विमल स्वजाव छहि शिवधर रहो ॥ २७ ॥

॥ दोहरा ॥

पंच जाव आदि तणुं, वर्णन कीधुं सार । नरकादिक कबु वर्णवुं,  
स्थानक आदि विचार ॥ १ ॥

॥ ढाल (५) पांचमी ॥ बीर जिनेश्वर वदन वचन आवर जवि  
प्राणी ॥ ए राग ॥

रत्न शर्करा बालुप्रज्ञा पंक धुम्र जेह, ठठी तमःप्रज्ञा कही तम-  
तमः सप्त एह ॥ सप्त गोत पुढवीय नाम धम्मा वंशा शेला ठे, अंजना  
अरीष्टा तथा मघा माघवई ए ॥ १ ॥ अनुक्रमे नाम ए सात नरक  
जीव वास तिहां ठे, कम्बुवां फल ठे पापनां परवश दुःख सहे ठे ।  
रत्नप्रज्ञादि सात ए अधो अधो जागे, तीन बलयथी वींटी पहेह ।  
घनोदधि लागे ॥२॥ घनवात बलय बिजो त्रिजो तनुवात बलय ठे । चति  
थो आधार आकाश आकाशने अवर नहीं ठे ॥ एक लाख एंशीहजारे  
जोयण रत्नप्रज्ञा नामे । त्रण जाग तेहना करो त्रीजा जागने ठामे  
॥ ३ ॥ जोयण सोल हजारनो ते उपर खर जाग । चित्रा वज्रा वैभूर्य  
आदि सोल पृथ्वी लाग ॥ सहस्र सहस्र जोयण कही नीचे उपरनी  
ढालो । मध्यनी चौदे पुढवीमां देव निवास निहालो ॥ ४ ॥ किन्नर  
किंपुरुष महोरग गंधर्व यक्ष । जूत व्यंतर देव रहे ठे तिहां पिशाच  
संयुत ॥ नाग विद्युत सुपर्ण ठे अग्नि वायुकुमार । स्तनित उदधि  
छिप दीग ए नव जाती धार ॥ ५ ॥ जुवनवासी नव एहनां निवा-  
सनां स्थान । खरजाग नीचे मध्यलो सहस्र चोराशी मान ॥ जोयणनो पंक  
जाग ठे असुर राक्षस वास । पंक जाग हेठे कबो एंशीहजारनो खास ॥६॥

अबहुल जोयणनो कइयो तिहां नारकी जाणो । नीचे राज एक अंतरे  
 बीजी शर्करा मानो ॥ एक एक राजने अंतरे सातमी क्रमे जाणो ।  
 तमतमः प्रजा कइो महादुःख ठाणो ॥ ७ ॥ नरकावास लक्ष त्रीश ठे  
 रत्नप्रजा मांहे । लाख पच्चीश निवास कइया शर्करा मांहे ॥ पदर लाख  
 वालुप्रजा दश पंकमां धारो । धुम्रप्रजा त्रण लाख ठे नेरइया विचारो ॥  
 ॥ ८ ॥ पंच थोठा लख वास ठे तमः प्रजानी मांहे । पंच वास सतमी  
 विषे तमतमः ज्यां हे ॥ साते नरकना वास कइया ठे लक्ष चोराशी ।  
 नारकी जीव वसे तिहां जोगवे दुःख राशी ॥ ९ ॥ अशुच लेइयाना  
 स्वामि तथा अशुच परिणामी । देह विक्रिया अशुच वली अशुचना  
 स्वामी ॥ खेत्र तनु मन वेदना परमाधामी कृत्य । अन्योअन्य उदी-  
 रतां पूरव फल अकृत्य ॥ १० ॥ पंच प्रकारनी वेदना मुख्ये तिहां  
 जाखी । पण ठे विविध प्रकारनी ग्रंथोमां साखी ॥ पहेलीथी त्रीजी  
 खगे परमाधामी जाए । चार पांच ठ सातमी परमाधामी न जाए ॥ ११ ॥  
 एक तीन सत दश कहुं सत्तर बावीश । ते त्रीशसागरनुं कहुं आयु  
 जगदीश ॥ अनुक्रमे उक्कट आयु ठे सातमी खगे जाणो । दश सहस्र  
 एक सागर तीन सागर मानो ॥ १२ ॥ सात-सागर दश सागर सागर  
 सत्तर प्रमाण । बावीश सागर सातमे जघन्य आयु जाण ॥ अनुक्रमे  
 साते नरकनुं जघन्य आयु दाख्युं । जेणे जिन वचन न आदख्यां तेणे  
 ए फल चाख्युं ॥ १३ ॥ पहेलेथी सातमी खगे दुःख अधिक अधिक ठे,  
 असंझी जीव प्रथम खगे सरिससर्प बीजे ॥ पहि पहेलेथी त्रीत्रिमां  
 चोथि खग सिंह जाय । विषधर सर्प पंचमी खगे ठठि खगे स्त्री जाय  
 ॥ १४ ॥ मनुष्य मत्स्य सातमी खगे एह रीत सदाय । नारकी मरि  
 नवि नरकमां नवि देवमां जाय ॥ जैन धर्म जेणे आदख्यो तेने दुरगती  
 नाहीं । शुद्धातमता जावतो मनसुख शिव मांही ॥ १५ ॥

## ॥ दोहरा ॥

कह्यो नरक अधिकार ए, हवे कहुं क्षेत्र विचार । शुद्ध स्वप्नावे आ-  
तमां, ध्यातां जवजल पार ॥ १ ॥

॥ ढाल ( ६ ) ठठी ॥ नगरि महाण कुंरुमां वसेरे ॥ ए राग ॥

जंबु आदिक द्वीप ठे रे लाला समूद्र लवणादिक । शुद्ध  
नामे ते जाणिए रे लाला एक एकथी ठीकरे लाला एक एकथी  
ठीक ॥ १ ॥ एक एकथी दुगुणा कला रे लाला वलियाकारे  
जाण । समुद्रे वींढ्यो द्वीप ठे रे लाला द्विपे समूद्र वखाण  
रे लाला ॥ द्वीपे ॥ २ ॥ जंबूथी वमणो कह्यो रे लाला लवणसमूद्र  
विचार । लवणथी दूणो धातकी रे लाला दुगुण कालोदधि धार रे  
लाला ॥ दुगुण ॥ ३ ॥ पुष्कर वमणो तेहथी रे लाला दुगुण अ-  
नुक्रमे जाण । स्वयंचूरमण लगे गणोरे लाला दुगुण दुगुणनुं मान  
रे लाला ॥ दुगुण ॥ ४ ॥ मध्ये जंबूद्वीप ठे रे लाला लवणे वींढ्यो  
तेह । लवणने वींढ्यो धातकी रे लाला कालोदधि ए तेह रे लाला  
॥ कालो ॥ ५ ॥ ते वींढ्यो पुष्करारधे रे लाला तेणे पुष्कर समूद्र ।  
स्वयंचूरमण लगे रे लाला द्वीप असंख्य समूद्र रे लाला ॥ द्वीप ॥  
॥ ६ ॥ जंबु मध्ये मेरु ठे रे लाला तनमां नाची जेस । जंबु गोला-  
कार ठे रे लाला लाख जोयननो एस रे लाला ॥ लाख ॥ ७ ॥ लंबो  
चोडो लाख ठे रे लाला परधि जोयण त्रण लाख । सोल हजार ठे  
उपरे रे लाला बसो सत्तावीश लाख रे लाला ॥ बसो ॥ ८ ॥ योजन  
एटला जाणीए रे लाला त्रण कोश उपर जाण । एकशो सत्तावीश  
धनुषने रे लाला साडातेर अंगुल मान रे लाला ॥ साडातेर ॥ ९ ॥  
तेथी कांइ अधिक ठे रे लाला जंबू परधी एह । बे हजार कोशनुं कह्युं  
रे लाला जोयन मानो तेह रे लाला ॥ जोयन ॥ १० ॥ सात खेत्र  
जंबू विषे रे लाला चरत हेमवंत जाण । हरिविदेह रम्यक तथा रे

લાલા હૈરણ્યવંતે સ્વતઃ માન રે લાલા ॥ હૈરણ્ય ॥ ૧૧ ॥ ધૈરાવત ઠે  
 સાતમો રે લાલા જેહથી થાય વિજાગ । તેવા સ્વતઃ પર્વત કહ્યા રે  
 લાલા તે સુણજો ધરી લાગ રે લાલા ॥ તે ॥ ૧૨ ॥ હીમવાન પહેલો  
 કહ્યો રે લાલા ડુતીય મહાહીમવાન । નિપથ ત્રીજો જાણીય રે લાલા  
 ચોથો નીલ વચાણ રે લાલા ॥ ચોથો ॥ ૧૩ ॥ રુક્મી પર્વત પંચમો  
 ર લાલા ઠઠો શિખરી જોય । એ સ્વતઃ પર્વતથી સર્વિ રે લાલા ક્ષેત્ર  
 વિજાગજ હોય રે લાલા ॥ ક્ષેત્ર ॥ ૧૪ ॥ જરત હેમવંતે વીચે રે લાલા ઠે  
 પર્વત હીમવાન । એમ દો દો સ્વતઃ વીચે રે લાલા એક એક પર્વત  
 જાણ રે લાલા ॥ એક ॥ ૧૫ ॥ સુવર્ણમય હીમવાન ઠે રે લાલા  
 રજત મહાહીમવાન । તપત્ત હીમ સમ નિપથ ઠે રે લાલા નીલ મ-  
 યુર સમ જાણ રે લાલા ॥ નીલ ॥ ૧૬ ॥ રુક્મી કૃપામય કહ્યો રે  
 લાલા શિખરી સોના વર્ણ । એ સ્વતઃ પર્વત જાણીય રે લાલા ચિન્ન ચિન્ન  
 જૂ વર્ણ રે લાલા ॥ ચિન્ન ॥ ૧૭ ॥ નીચે ઉપર તેહનો રે લાલા ઢા-  
 ર્યો સમ વિસ્તાર । તે ઉપર સ્વતઃ કહ્યા રે લાલા નામ કહ્યું તસ  
 સાર રે લાલા ॥ નામ ॥ ૧૮ ॥ પદ્મ તથા મહાપદ્મ ઠે રે લાલા ત્રી-  
 ગચ કૈશરિ નામ । મહાપુંરિક ત્રીમ જાણીય રે લાલા પુંડરિક સ્વ-  
 તઃ નામ રે લાલા ॥ પુંડરિક ॥ ૧૯ ॥ સહસ્ર જોયણ પદ્મકહ્યું ઠે રે  
 લાલા પૂર્વ પશ્ચિમ લંબ । અરધો ઉત્તર દક્ષિણે રે લાલા ચોનો દી-  
 શે રમ્ય રે લાલા ॥ ચોનો ॥ ૨૦ ॥ દશ જોજન ઝંડો કહ્યો રે લાલા  
 પદ્મ જોયનનું હોય । રત્નમયી તે જાણજો રે લાલા શ્રીદેવિ રહે સોય  
 રે લાલા ॥ શ્રી ॥ ૨૧ ॥ ડુગુણ ડુગુણ ઠે તેહથી રે લાલા મહાપદ્મ  
 કહ્યું પદ્મ । અનુક્રમે એ પ્રમાણથી રે લાલા ત્રીગચ લગે કહ્યું પદ્મ રે  
 લાલા ॥ ત્રીગચ ॥ ૨૨ ॥ પદ્મકહ્યું અને પદ્મથી રે લાલા ડુગુણ મહાપદ્મ  
 કહ્યું પદ્મ । ત્રીગચપદ્મ તેથી ડુગો રે લાલા એ સમ કૈશરીપદ્મ રે લાલા  
 ॥ ૨૩ ॥ કૈશરિથી અર્ધો કહ્યો રે લાલા મહાપુંડરીક કહ્યું પદ્મ । તેથી



અર્ધો જાણીય રે લાલા પુંડરિકદ્રહ અને પદ્મ રે લાલા ॥ પુંડરિક ॥ ૨૪ ॥  
 ત્રીન પહેલા ત્રીન પાઠવારે લાલા દ્રહ અને પદ્મ સમાન ॥ ચઢતા  
 ઉતરતા માપથી રે લાલા તત્ત્વાર્થે છે વખાણ રે લાલા ॥ તત્ત્વાર્થ ॥ ૨૫ ॥  
 દ્રહ કમલ એ શાશ્વતા રે લાલા વિગત સૂત્રથી જાણ ॥ તિહાં દેવી  
 સ્થાનક કહ્યાં રે લાલા । પ્રંથથી જાણો સુજાણ રે લાલા ॥ પ્રંથથી ॥  
 ॥ ૨૬ ॥ શ્રી હ્રી ધૃતિ કીર્તિ કહી રે લાલા બુદ્ધિ લક્ષ્મી જાણ ॥  
 પદ્મોપમ આયુ કહ્યું રે લાલા કાંતી યુતી અમાન રે લાલા ॥ કાંતી ॥  
 ॥ ૨૭ ॥ બહુ પરિવાર તે દેવિનો રે લાલા જાણ્યો સૂત્ર મોજાર ॥ પંચેંદ્રિ  
 સુખજોગમાં રે લાલા ક્રીડા કરત અપાર રે લાલા ॥ ક્રીડા ॥ ૨૮ ॥  
 રત્નમયી તે કમલની રે લાલા કિરણીકામાં સાર ॥ ઉજ્જ્વલ જવન  
 તિહાં કહ્યાં રે લાલા તિહાં દેવી પરિવાર રે લાલા ॥ તિહાં ॥ ૨૯ ॥  
 પરિષદ સામાનીક તિહાં રે લાલા દે અનેક નિવાસ ॥ દિવ્ય જોગ  
 તિહાં જોગવે રે લાલા કરતા લીલ વિલાસ રે લાલા ॥ કરતા ॥  
 ॥ ૩૦ ॥ મધ્ય કમલ ચંડ ઓરમાં રે લાલા વીજા કમલ અનેક ॥  
 તે સર્વ સૂત્રથી જાણજો રે લાલા રાખી હૃદય વિવેક રે લાલા ॥  
 ॥ રાખી ॥ ૩૧ ॥ સ્થાનક એમ અનેકમાં રે લાલા જીવ અનંતી  
 વાર ॥ આતમ તત્ત્વ લહ્યા વિના રે લાલા જમિયો એ સંસાર રે લાલા ॥  
 ॥ જમિયો ॥ ૩૨ ॥ દર્શન જ્ઞાન ચરણમયી રે લાલા જાણી આત્મ  
 સ્વરૂપ । લહે મનસુખ સમજાવથી રે લાલા સિદ્ધ સમાધિ અનૂપ  
 રે લાલા ॥ સિદ્ધ ॥ ૩૩ ॥

॥ દોહરા ॥

દેવ જવન આદિ કહ્યાં । કહું સરિતાદિ વિચાર ॥ આતમ તત્ત્વ  
 અજાણતો । જમ્યો જીવ સંસાર ॥ ૧ ॥

॥ ઢાલ ( ૭ ) સાતમો ॥ ધણરા ઢોલા ॥ એ દેશી ॥

સાતે ફેર માંહે કહી રે હાં । દો દો નદિ ગંજીર મોહ નિવારિયે ।

सब मखि चौद महा नदी रेहां । जिहां बहे निरमख नीर जवहुःख  
 वारिये ॥१॥ गंगा सिंधु रोहितै रेहां । झोहितो स्याए नाम ॥ मोह० ॥  
 हरीतै हरिकांतो सीतौ रेहां । बखी सीतौदा नाम ॥ जव० ॥ २ ॥ नारी  
 नरकान्ता तथा रेहां । सुवर्ण रूप्यकुखौय ॥ मोह० ॥ रक्तौ रक्तौदो  
 कही रेहां । सरिता बख अतुलाय ॥ जव० ॥ ३ ॥ खेत्र खेत्र दो दो  
 नदी रेहां । सहु मखि चौदे होय ॥ मोह० ॥ बहु परिवारे परिवरी  
 रेहां । खेत्रे बहेती सोय ॥ जव० ॥ ४ ॥ सात युगल नदिनां कछां रेहां ।  
 प्रथम पुरवदधि जाय ॥ मोह० ॥ शेष साते पश्चिम दिशे रेहां । सिंधु  
 माहि समाय ॥ जव० ॥ ५ ॥ इहां ए मुख्य नदी कही रेहां । बत्रीश  
 विजयनी ओर ॥ मोह० ॥ एम अनेक सरिता कही रेहां । बहेती  
 निज निज ओर ॥ जव० ॥ ६ ॥ जंबुद्वीप एक लाखनो रेहां । जरत  
 दोत्र ए मांछ ॥ मोह० ॥ एक सतनेवु जागमां रेहां । विस्तारे सुत  
 मांछ ॥ जव० ॥ ७ ॥ पांचशें ठव्वीश जोजने रेहां । अधिक कला खट  
 जाण ॥ मोह० ॥ तेथी डुगुण डुगुण पणे रेहां । विदेह लगे परमाण  
 ॥ जव० ॥ ८ ॥ उत्सर्पिणी अवसर्पिणि रेहां । जरत ऐरवत जोय ॥  
 मोह० ॥ आयु काय जोगादिके रेहां । बधतुं घटतुं होय ॥ जव० ॥ ९ ॥  
 दश कोडाकोडि सागरू रेहां । उत्सर्पिणिनो काल ॥ मोह० ॥ अवस-  
 र्पिणि पण ए समो रेहां । मखि कालचक्रनी चाल ॥ जव० ॥ १० ॥  
 विजयनी पुढवी पांचमां रेहां । उत् अवसर्पिणि नांहि ॥ मोह० ॥  
 चोथा आरा सम सदा रेहां । वत्तें विदेहनी मांहि ॥ जव० ॥ ११ ॥  
 जुगलिआनुं जाणिए रेहां । एक वी तीय पट्य आय ॥ मोह० ॥  
 गर्जजतिरी मनुष्यनुं रेहां । वत्तें त्यांय सदाय ॥ जव० ॥ १२ ॥  
 पंच मेरु संवधिया रेहां । दाख्या पंच विदेह ॥ मोह० ॥ आयु वर्ष  
 संख्यातनुं रेहां । गज्जनय पणेंदी जेह ॥ जव० ॥ १३ ॥ धातकी खंड  
 माहे कछा रेहां । दो दो जरत ऐरवत ॥ मोह० ॥ एम पुष्कलार्थ  
 द्वीपमा रेहां । वे वे ऐरवत जर्त ॥ जव० ॥ १४ ॥ सोल लाख जोजन

कह्युं रेहां । पुष्करद्वीप प्रमाण ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर पर्वत तिहां  
 रेहां । मध्ये जाण सुजाण ॥ जव० ॥ १५ ॥ जोयण एक सहस्रने रेहां  
 । बांविशनुं ठे मान ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर लग जाणिये रेहां । मनुष्य  
 तणुं रहेगाण ॥ जव० ॥ १६ ॥ गमनागमन मनुष्यनुं रेहां । द्वीप अढीमां  
 आय ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर बाहिर कोइ रेहां । मनुष्य कदाय न जाय  
 ॥ जव० ॥ १७ ॥ ठप्पन अंतर द्वीपना रेहां । मनुष्य कद्या ठे जेह ॥  
 मोह० ॥ अढी द्वीपमां ते रह्या रेहां । बाहिर नहि कोइ एह ॥ जव० ॥  
 १८ ॥ पंच पंच जर्त औरवत ठे रेहां । ज्ञाख्या पांच विदेह ॥ मोह० ॥  
 कर्मचूमी एह जाणिये रेहां । पंदर दाखी एह ॥ जव० ॥ १९ ॥ सुहूर्त  
 दोय घडिनुं कह्युं रेहां । अंदरनो जे काल ॥ मोह० ॥ अंतर्मुहूर्त जाणिये  
 रेहां । तत्त्वार्थनी जाल ॥ जव० ॥ २० ॥ आयु तिर्यच मनुष्यनुं रेहां ।  
 तीन पद्वय उक्कोस ॥ मोह० ॥ जघन्य अंतर सुहूर्तनुं रेहां । एम जाणो  
 निरदोष ॥ जव० ॥ २१ ॥ द्वीप समूद्र असंख्यमां रेहां । नदि जल पर्वत  
 गाण ॥ मोह० ॥ श्री जिन वचन अजाणतां रेहां । जीव जस्यो एह गाण  
 ॥ जव० ॥ २२ ॥ सुहृम इयर एकेंद्रि दो रेहां । विगल त्रीय वलि जाण ।  
 मोह० ॥ सन्नि असन्नि पण इंदि ठे रेहां । सात पज्जाता मान ॥ जव० ॥ २३ ॥  
 अपजत्ता पण सांत ठे रेहां । चउ दश जेद विचार ॥ मोह० ॥ कद्या  
 सूत्रे संक्षेपथी रेहां । ए जीय गाण विचार ॥ जव० ॥ २४ ॥ जीव गाण  
 चौदे कद्या रेहां । संक्षेपे मन धोर ॥ मोह० ॥ पांचसें तैसठ जेद ठे रे  
 हां । कांइ विशेषे विचार ॥ जव० ॥ २५ ॥ सकल जीवगाणे जस्यो  
 रेहां । विण समकित मति हीण ॥ मोह० ॥ परवशताए दुःख  
 सख्यां रेहां । निशदिन दुःखियो दीन ॥ जव० ॥ २६ ॥ ईंद्रि विषय  
 विष सेवतां रेहां । केम आवे जव पार ॥ मोह० ॥ तजे विषय विष  
 ईंद्रिना रेहां । ते तरशे संसार ॥ जव० ॥ २७ ॥ उत्तम नर जव पा  
 मिने रेहां । करि नित श्रुत अन्यास ॥ मोह० ॥ आतम गुण निर  
 मल करी रेहां । पामो शिवपुर वास ॥ जव० ॥ २८ ॥ परमण

तजि आदरे रे हां । आत्म रमण गुण गेह ॥ मोहण ॥ शिव संपति  
मनसुख लहे रे हां । इहां नहि को संदेह ॥ जवण ॥ १६ ॥

॥ दोहरा ॥

देवो चार निकायना । जुवनपती दश जाण ॥ व्यंतर आठ प्रकार-  
ना । जोइस पंच प्रमाण ॥ १ ॥ छद्दश कल्प विमानी ठे । नव प्रैवेक  
वखाण ॥ पंच अनुत्तर वासिना । कल्पातीत सुजाण ॥ २ ॥

ढाल (८) आठमी ॥ राग मारु ॥ निशदिन जोउं तारी

वाटडी घर आवोने ढोला ॥ ए देशी ॥

जुवनवासी व्यंतर विषे, आदि लेइया चार ॥ हांहा रेण ॥ ज्योतीषीमां  
एकली, तेजु लेइया धार ॥ हांहां रे तेजुण ॥ १ ॥ चार प्रकारना देवमां, जेद  
तो दश दाख्या ॥ हांण ॥ इंड्र सामौनीक ने वली, त्रायत्रिंशक जा-  
ख्या ॥ हांहां रे त्रायण ॥ २ ॥ पौरिसद आतमरक्षक, लोकपाल ते  
जाणो ॥ हांण ॥ अनीक प्रकीर्णक जाणिये, औजीयोगीक मानो ॥  
॥ हांण ॥ ३ ॥ किंदिबष तीन प्रकारना, एम दशविध कहिये ॥ हांण  
तत्त्वार्थ टीका थकी, अरथ एह लहिये ॥ हांण ॥ ४ ॥ अणिमा म-  
हिमा आदिक, रिद्धि बहु जेने ॥ हाण ॥ आझा करतो स्वामी ए,  
कद्यो इंड्र ते तेने ॥ हांण ॥ ५ ॥ इंड्र समो रिद्धि खरी, पण इंड्र न  
जेह ॥ हांण ॥ आयु वीर्य जोगादिके, सरखा ठे तेह ॥ हाण ॥ ६ ॥  
सामानिक तेह जाणिये, इंड्र सम परिवार ॥ हाण ॥ हेतु मित्र जे  
इंड्रना, त्रायत्रिंशक धार ॥ हाण ॥ ७ ॥ बाह्य अन्यतर मध्यनी, सजा  
त्रण प्रकार ॥ हांण ॥ वेसे इंड्र मजा विषे, पारीसद धार ॥ हांण ॥ ८ ॥  
इंड्र अंग रक्षण करे, धारी हथियार ॥ हांण ॥ आतमरक्षक जाणिये,  
जेद पंचमो सार ॥ हाण ॥ ९ ॥ कोटवाल सम जे रहे, लोकपाल ठे  
तेह ॥ हांण ॥ सैन्या रुपे जे हुवे, अनीक कहा एह ॥ हां ॥ १० ॥  
प्रजा जे ठे इंड्रनी, प्रकीर्णक जाणो ॥ हांण ॥ इंड्र हुकम हाजर सदा,

आजियोगीक मानो ॥ हां० ॥ ११ ॥ इंद्रादिकथी दुर रहे, जस नहि  
 सनमान ॥ हां० ॥ हीण आदर ठे जेहनो, किद्विषक जाण ॥ हां० ॥  
 ॥ १२ ॥ त्रायत्रिंशक लोकपाल विण, व्यंतर ज्योतिषमां ॥ हां० ॥  
 आठ प्रकारे देव तो, जाख्या सूत्रोमां ॥ हां० ॥ १३ ॥ जुवनपती विश  
 इंद्र ठे, व्यंतर सोल जाणो ॥ हां० ॥ सोल ठे व्याणवंतर तणा, ज्यो-  
 तिषी दोय मानो ॥ हां० ॥ १४ ॥ बार देवलोकना पती, इंद्रो दश  
 कहिये ॥ हां० ॥ सौ मली चोसठ इंद्र तो, सूत्रोमां लहिये ॥ हां० ॥  
 ॥ १५ ॥ नव भैवेक मांहे नहीं, कोइ इंद्र अनेरा ॥ हां० ॥ आपे आ-  
 पहि इंद्र ठे, निज निज घर केरा ॥ हां० ॥ १६ ॥ अनुत्तर पंच विमा-  
 नमां, अहमेन्द्र सवे ठे ॥ हां० ॥ दूकम नहि कोई अन्यनो, स्वतंत्र  
 रहे ठे ॥ हां० ॥ १७ ॥ जुवनपतीथी जाणिये, जाव देव इशान ॥ हां० ॥  
 ॥ देव देवी मैथुननो, जोग मनुष्य समान ॥ हां० ॥ १८ ॥ फरसरूप  
 ने शब्दनो, मन चिंतन जोग ॥ हां० ॥ अच्युत देव लगे जाणिये,  
 यथावत योग ॥ हां० ॥ १९ ॥ सनतकुमारथी मांडीने, बाकी दश  
 देवलोग ॥ हां० ॥ मैथुन जोग एहमां नहीं, नहि रोग ने शोग ॥ हां० ॥  
 ॥ २० ॥ पुद्गल जोग इहा तजो, जेम शिवसुख लहिये ॥ हां० ॥  
 शिवसुंदरी मनसुख घरे, आनंदे रहिये ॥ हां० ॥ २१ ॥

॥ दोहरा ॥

इंद्रादिक वर्णन कछुं, देव नाम कहुं सार ॥ जूदि जूदि निकायना,  
 दाखुं तेह उदार ॥ १ ॥

ढाल (ए) नवमी ॥ राग मारु ॥ गिरि वैताढ्यने ऊपरे

चक्रांका नयरी लो ॥ ए देशी ॥

असुर नाग विद्युत ठे, सूपर्ण कहिजे हो ॥ अहो सूपर्ण ॥ अ-  
 शि वात स्तनितने, ऊदधि लहिये हो ॥ अहो ऊदधि ॥ १ ॥ छीप  
 दीग मली सवे, कूमर दश धारो हो ॥ अहो ॥ जुवनवासीना

जाणीए, एह नाम विचारो हो ॥ अहो० ॥ २ ॥ किन्नर की  
 पुरुष कक्षा, महोरग गंधर्व हो ॥ अहो० ॥ यक्ष राक्षस जा-  
 णिये, चूत पीशाच सर्व हो अहो० ॥ ३ ॥ जेद आठ व्यंतर तणा,  
 अरु व्याणव्यंतरना हो ॥ अहो० ॥ पंच ज्योतिष चल जाणिये,  
 पंच थिर ज्योतिपना हो ॥ अहो० ॥ ४ ॥ सूर्य चंद्र नक्षत्र ठे, ग्रह  
 तारा कहिए हो ॥ अहो० ॥ चल थिर मलि दश जेद ए, सूत्रोथी  
 लहिए हो ॥ अहो० ॥ ५ ॥ चल ज्योतिष मेरु तणी, प्रदक्षिणा करता  
 हो ॥ अहो० ॥ काल विजाग ठे एहथी, गगने विचरता हो ॥ अहो०  
 ॥ ६ ॥ थिर ज्योतिष पंच जाणिये, अढी छीपथी बहारे हो ॥  
 ॥ अहो० ॥ सब मलि ज्योतिष जेद तो, जाख्या विस्तारे हो ॥  
 अहो० ॥ ७ ॥ सौधर्म ईशान ठे, सनत महेन्द्र हो ॥ अहो० ॥ ब्रह्म-  
 देव लांतक तथा, महाशुक्र सुरींद्र हो ॥ अहो० ॥ ८ ॥ सहस्रार  
 आणत जाणिए, प्राणत विचारो हो ॥ अहो० ॥ आरण्य अच्युत जेद  
 ए, वारे प्रकारो हो ॥ अहो० ॥ ९ ॥ नव त्रैवेकना जाणिए, अनुत्तर  
 पंच कहिए हो ॥ अहो० ॥ विजय विजयंत जयंत ठे, अपराजीत  
 लहिए हो ॥ अहो० ॥ १० ॥ सर्वार्थ वीमान ठे, अनुत्तर एह जाणो  
 हो ॥ अहो० ॥ पूरण सुख ईहां देवना, बिलसे मनमानो हो ॥ अहो०  
 ॥ ११ ॥ अच्युत देवना ऊपर, त्रैवेक ते नव ठे हो ॥ अहो० ॥ ते  
 ऊपर अनुत्तर कक्षां, ईक ईक अनुक्रम ठे हो ॥ अहो० ॥ १२ ॥  
 लोकांतिक आलय कक्षां, ब्रह्मदेवना अंत हो ॥ अहो० ॥ सारस्वत  
 आदित्य ठे, त्रिजो बन्धि संत हो अहो० ॥ १३ ॥ चोथो अरुण ए  
 नामनो, पंचम गर्दतोय हो ॥ अहो० ॥ ठठो तुपित जाणिए, अव्या-  
 वाध जोय हो ॥ अहो० ॥ १४ ॥ आठमो आज्ञेय जाणिए, नवम  
 अरिष्ट जाणो हो ॥ अहो० ॥ अंग पुरवधर सुतरसी, आवे एह ठाणो  
 हो ॥ अहो० ॥ १५ ॥ आठ सागरनुं आयु ठे, सह लोकांतिक मान  
 हो ॥ अहो० ॥ श्रुत बोध हृदये रखो, जाव पुरवना जाण हो ॥ अहो०

॥ १६ ॥ तीरथपती दिक्षा समे, लोकांतिक आवे हो ॥ अहो० ॥ दिक्षा  
 अवसर जाणिने, प्रजुने चेतावे हो अहो० ॥ १७ ॥ सुधर्म देवथी  
 जाणिए, स्थिति आयु प्रजाव हो ॥ अहो० ॥ सुख द्युति लेश्या विशुद्धता,  
 ईद्रि विषयना जाव हो ॥ अहो० ॥ १८ ॥ अधिक विषय अवधि तणो,  
 सर्वारथ सिद्ध जाव हो ॥ अहो० ॥ सुधर्मदेवथी अनुक्रमे, अधिका ए  
 जाव हो ॥ अहो० ॥ १९ ॥ सर्वारथ सिद्धि लगे, न्यूनता हवे धारो हो  
 ॥ अहो० ॥ गमन शरीरनी उंचता, मूर्छा मान विचारो हो ॥ अहो०  
 ॥ २० ॥ सुधर्मदेवथी जाणिए, जाव सर्वारथ सिद्ध हो अहो० ॥ अनु-  
 क्रमे चार ए न्यून ठे, दाखी ठे प्रसिद्ध हो ॥ अहो० ॥ २१ ॥ सुधर्मने  
 ईशानमां, तेजुलेश्या कहिए हो ॥ अहो० ॥ सनंत महींद्रने ब्रह्ममां,  
 पद्म लेश्या लहिए हो ॥ अहो० ॥ २२ ॥ वाकी सात विमाननां, लेश्या  
 शुक्ल कट्टी ठे हो ॥ अहो० ॥ अनुक्रमे लेश्या विशुद्ध ठे, सूत्रोथी  
 लहिए हो ॥ अहो० ॥ २३ ॥ विजयादि चार विमानमां, कोइ बे जव  
 नरना हो ॥ अहो० ॥ करी मोक्षपद पामता, जोगी शिव घरना हो ॥  
 अहो० ॥ २४ ॥ विजयादि चार विमानना, कोइ नरजव पामी हो ॥  
 अहो० ॥ ते जवमां सिद्धि वरे, होय शिव वधु स्वामी हो ॥ अहो०  
 ॥ २५ ॥ सर्व विमानीक देवना, कोइ नर जव पामी हो ॥ अहो० ॥  
 आतम संपत्ती पद वरे, होवे शिव गामी हो ॥ अहो० ॥ २६ ॥ सर्वारथ  
 विमानना, नरजव लही सिद्धे हो ॥ अहो० ॥ मनसुख शुद्ध स्वजावनो  
 आनंद रस लीधे हो ॥ अहो० ॥ २७ ॥

### ॥ दोहरा ॥

नामादिक कह्या देवना । वलि कहुं कांइ विशेष ॥ देव जेद आ-  
 दिक सुणो । सूत्र तणो कांइ लेश ॥ १ ॥

॥ ढाल (१०) दशमी ॥ एक दिन गंगाके बीचे सूर साथ बहोरा ॥ ए राग ॥

सवि मली देवना जेद ठे, इगसय अछाणुं ॥ हांहां रे इगसय ॥

जुवनपती दश जाणिये, व्यंतर अरु मानुं ॥ हांहां रे व्यंतर ॥ १ ॥

व्याणव्यंतरना आठ ठे, चळ जोइस पंच ॥ हांहांण ॥ थिर जोइस पण  
 पंच ठे, किलविष तीन संच ॥ हां ॥ १॥ पंदर परमाधामी ठे, तिर्यक  
 जृंवक दश ठे हां ॥ नव जेद लोकांतिकना, जेने अति श्रुत रस ठे ॥  
 हां ॥ ३ ॥ कट्टपवासी वैमानिना, जेद वार प्रकारो ॥ हां ॥ नव  
 प्रैवेकना नव कल्या, तेह मनमां धारो ॥ हां ॥ ४ ॥ अनुत्तर पंच वि-  
 मान ठे, पण नामे लहिये ॥ हां ॥ नवाणु पळ्ळात्त जेद ए, चित्तमां  
 सहहि ए ॥ हां ॥ ५ ॥ अपळ्ळात्ता एहना नवाणु जेद हां ॥ एक सत  
 अछाणु थया ते जाणो अखेद ॥ हां ॥ ६ ॥ ठप्पन अंतर छीपना अ-  
 कम्म जू त्रीश ॥ हां ॥ पंदर कर्मजूमितणा सय एक जगीश ॥ हां  
 ॥ ७ ॥ पळ्ळात्ता अपजत्ता मली, दो सयने दोय ॥ हां ॥ समूर्तिम एकसत  
 एक मली तीनसय तीन होय ॥ हां ॥ ८ ॥ एणिपेरे जेद मनुष्यना  
 चित्तमांहि विचारो हां ॥ पळ्ळा अपळ्ळात नारकी सतना चौद धारो ॥  
 हां ॥ ९ ॥ पण पण सूक्ष्म वादर प्रत्येक तरु ठे ॥ हां ॥ एकेंद्री  
 अगिआरना जेद एकादश ए हां ॥ १० ॥ विगल इंझिना त्रण कल्या  
 जेद ए चउदश ठे ॥ हां ॥ जलचर थलचर खेचरा उरपरि जुजपरि ठे  
 ॥ हां ॥ ११ ॥ समूर्तिम गर्जज मली दश जेद ए लहिए हां ॥ अपजत्ता  
 पळ्ळात्ता मली अरुतालीश कहीए हां ॥ १२ ॥ पणसय त्रैसठ जेदमा  
 ससारी जीव ॥ हां ॥ सिरु अजेद आणंदमां लह्यु शाश्वत शीव ॥  
 हां ॥ १३ ॥ आत्म अजेद गुणे रमे थिरता त्रण योगे ॥ हां ॥ मनसुख  
 शिवसंगे सदा शाश्वत सुख जोगे हां ॥ १४ ॥

॥ दोहरा ॥

देवादिक वर्णन कळुं । हवे कहुं तत्त्व स्वरूप ॥ जीवादिक खट  
 डव्यनुं । सुणजो वचन अनूप ॥ १ ॥

॥ ढाल (११) अगिआरमी ॥ राग चोपाई ॥

धर्माधर्म पुद्गल नज सार । जाख्या अस्ति अजीव ए चार ॥  
 बहुप्रदेशी अचेतन एह । असंख्यप्रदेशी जीवास्ति जेह ॥ १ ॥



अस्ति द्रव्य ए पंच वखाण । खटम काल उपचारे जाण ॥ निजगुण  
 पञ्जावमय तिहुं काल । द्रव्य स्वरूपनी जाणो चाल ॥ १ ॥ वचमां  
 नवि बदलाये जेह । उत्पतिव्यय ध्रुवसत्तज एह ॥ अनंत गुण पञ्जावनो  
 पिंरु । द्रव्य स्वरूप ते जाणो अखंड ॥ २ ॥ द्रव्यार्थिक नय नित्य  
 सदाय । पञ्जाव नये अनित्य कहाय । द्रव्यार्थिक नय एक स्वरूप ।  
 पञ्जाव नयथी अनेक अनूप ॥४॥ द्रव्यार्थिक एक रूप अजेद । पञ्जाव  
 नय जेहमां बहु जेद ॥ सीय वक्तव्य अवक्तव्य होय । लक्षण लक्ष्य  
 अजेदे सोय ॥ ५ ॥ निज द्रव्यादिक अस्ति स्वरूप । पर द्रव्यादिके  
 नास्ति रूप ॥ नित्य अवस्थित निज निज रूप । द्रव्य ग्रहे नहि अन्य  
 स्वरूप ॥ ६ ॥ रूपी द्रव्य ते पुद्गल होय । फरस वरण रस गंधी  
 सोय । शब्दादिक जिहां बहु परजाय । पुद्गल पुद्गल मलतां थाय ॥७॥  
 धर्माधर्म नच एक एक होय । पुद्गल जीव अनंता जोय । अनंत  
 समय दाख्यो ठे काल । पंचास्ति परावर्तन चाल ॥ ८ ॥ पंचास्ति  
 वर्तना परिणाम । अगुरुलघुथी काल ए नाम । नव नव किरिया  
 जे पलटाय । काल चिन्नता एहथी थाय ॥ ९ ॥ मंदगती पुद्गल  
 अणु जाय । क्षेत्रथी बीजे प्रदेशे आय । समय अणु ए सूक्ष्म काल  
 । आवलि आदि स्थूल निहाल ॥ १० ॥ प्रयोग विश्रसा मिश्रसा जेह  
 । क्रिया तीन प्रकारे एह । प्रत्वा प्रत्वे काल स्वरूप । तत्त्वार्थ जोइ  
 लेजो अनूप ॥ ११ ॥ तीन वरस वलि कहिए सात । प्रत्वा प्रत्वे काल  
 विख्यात ॥ पहोर डुपहोर ने तीसरो काल । ए पण प्रत्वा प्रत्वनी चाल  
 ॥ १२ ॥ धर्माधर्म नच अक्रिय जाण । पुद्गल सक्रिय रूप वखाण ॥  
 सक्रिय ठे संसारी जीव । अक्रिय जाणो सिद्ध सदीव ॥ १३ ॥ धर्म  
 अधर्म अने जीव जेह । असंख्य प्रदेशी दाख्या तेह ॥ अनंत प्रदेशी  
 सर्व आकाश । असंख्य प्रदेशी लोकाकाश ॥ १४ ॥ अप्रदेशी कह्यो  
 ठे काल । अस्तिकाया नांही निहाल ॥ पुद्गल संख्य असंख्य अनंत । प्र-

देशी ज्ञाख्यो जगवंत ॥ १५ ॥ नाहि प्रदेश परमाणु मांछ । प्रदेश  
 थवानी सत्ता त्याछ ॥ परशुं मलतां होय प्रदेश । पण पोते नहि कोश-  
 नो देश ॥ १६ ॥ पच अस्थि लोकमांहि रक्षा । अलोकाकाशे नवि  
 कछा ॥ अलोके एकज आकाश । त्यां नहि अवर द्रव्यनो वास ॥ १७ ॥  
 जिहां द्रव्य गुण पक्काव होय । लक्षण विविधे देखिए कोय ॥ ते तुम  
 जाणो द्रव्य स्वरूप । जेह त्रिकाले एक अनूप ॥ १८ ॥ पक्कावथी  
 पलटाये जेह । तोपण द्रव्य अखंडित एह ॥ गुण पक्काव नवि काल-  
 मां होय । द्रव्य उपचारे कह्यो सोय ॥ १९ ॥ अवकाश दान दिये  
 आकाश । क्षेत्र कह्यो ते आपे वास ॥ रहे खेत्रमां खेत्री तेह । धर्मा-  
 धर्म पुद्गल जीव जेह ॥ २० ॥ काल सहित ए खेत्री पंच । नजने  
 अवर खेत्र नहि रंघ ॥ धर्म अधर्म आकाश सदाय । अचल प्रदेशी  
 नित्य कहाय ॥ २१ ॥ तेम अचल ठे सिद्ध प्रदेश । कर्मवंत जीव  
 सचल हमेश ॥ पुद्गल सचल सदाय कहाय । पूरणगलण तेमांहे  
 थाय ॥ २२ ॥ स्रण पण विध्वंसण रूप । एम बहु विध पुद्गलनुं  
 रूप ॥ शब्द बंध ठाया तम जेह । उद्योत प्रज्ञा कान्ति तप देह  
 ॥ २३ ॥ इत्यादिक उपाधि कही । पुद्गल गुण पक्कावनी सही ॥  
 फरस आठ रस पंच वखाण । दोय गंध पंच वर्ण तुं जाण ॥ २४ ॥  
 स्थुल पुद्गलमां बीस गुण एह । उठे चार फरस सोल तेह ॥ सूक्ष्म  
 पुद्गलमा ए लक्षा । परमाणु गुण पंचज रक्षा ॥ २५ ॥ दोय फरस  
 रस एक एक गंध । एक वर्ण एम पंच प्रबंध ॥ कर्त्ता एक द्रव्य ठे  
 जीव, कारण बीजा पंच अजीव ॥ २६ ॥ जीव कारण निज आपे हो-  
 य । निश्चे कारण अवर न कोय ॥ रहे स्वदेहे आपहि आप । जिहा  
 नहीं अन्य द्रव्यनो व्याप ॥ २७ ॥ कर्त्ता शुद्ध स्वभावनो सिद्ध । सं-  
 सारी करे कर्म दुविध ॥ द्रव्यकर्म कर्त्ता व्यवहार । अशुद्ध निश्चय रागा-  
 दिककार ॥ २८ ॥ शुधनय जोक्ता शुद्ध स्वभाव । अशुद्धे रागादि वि-  
 ज्ञाव ॥ अज्ञाने पर ग्रहणे लाग । ज्ञाने सगुण ग्रहे पर त्याग ॥ २९ ॥

मिथ्याते व्यापे पर मांछ । ज्ञाने व्यापकता निज मांछ ॥ आत्म  
 ज्ञान विण परमां रमे । विषय वश पुद्गल गुण गमे ॥ ३० ॥ जब  
 जाणे निज शुद्ध स्वभाव । निज गुण रमतो त्यागि विभाव ॥ पुद्गल  
 विषयनो दानी होय । बांधे कर्म अनंता सोय ॥ ३१ ॥ शुद्ध स्वरूप  
 ज्ञान निज लहे । ज्ञानादिक निज दानी रहे ॥ पुद्गल लाज  
 लिये अज्ञानि । शुध गुण लाज लिये शुध ज्ञानि ॥ ३२ ॥ क्षिण क्षिण  
 चाहे पर उपजोग । कर्मबंध अज्ञाने रोग । निरमल आत्म गुण  
 उपजोग । ज्ञानीने शिव संपत्ति योग ॥ ३३ ॥ पुद्गल वीरज फोरे  
 जेह । बंधे अष्ट कर्मदल तेह ॥ जाव वीरज फोरे जो दक्ष । शुध  
 गुण प्रगटे पूर्ण प्रत्यक्ष ॥ ३४ ॥ इत्यादिक जीव गुण अनंत । श्री-  
 मुख ज्ञाख्या श्री अरिहंत ॥ सर्वगत दाख्यो आकाश । पंच देशगत  
 लोकाकाश ॥ ३५ ॥ कह्यो सर्वगत चेतनज्ञान । जावनयेथी एह व-  
 खाण ॥ लोक खेत्र पंच अस्थि रहे । परगुण पञ्जाव कोइ नवि ग्रहे  
 ॥ ३६ ॥ लक्षण गुण परजाय अनंत । सकल द्रव्यमां सहज स्वतंत ॥  
 निश्चय परसहायी नहि कोय । गुरु सहाय व्यवहारे होय ॥ ३७ ॥  
 व्यवहार क्षेत्र ठे लोकाकाश । असंख्य प्रदेशे होय निवास ॥ जूदा  
 जूदा पंचे दर्व । निश्चे निज खेत्रे ठे सर्व ॥ ३८ ॥ व्यवहारे परखेत्री  
 पंच । निश्चे न कोइ परक्षेत्रे रंच ॥ निश्चे परिणामी सहु दर्व । निज  
 निज गुण पञ्जावना सर्व ॥ ३९ ॥ व्यवहारे जीव पुद्गल दोय । परि-  
 णामी ठे अवर न कोय ॥ काल विना पंचास्ति स्वभाव । काल विन  
 पंच द्रव्यत्व जाव ॥ ४० ॥ वस्तु काल विना ठे पंच । प्रमेय द्रव्य सकल-  
 मां संच ॥ काल विना होय पंचे सत्त्व । द्रव्य सर्वमां अगुरुलघुत्व  
 ॥ ४१ ॥ पुद्गल खंध गुरु लघु होय । शुद्ध द्रव्य अगुरुलघु जोय ॥  
 काल द्रव्य उपचारे जाण । तस गुण उपचारे मन आण ॥ ४२ ॥  
 द्रव्य गुण परजाय विविध । पंचास्तिमां होवे सिद्ध ॥ द्रव्य गुण प-  
 ञ्जाव एक समे । उत्पत्ति व्यय ध्रुवता परिणमे ॥ ४३ ॥ समकाले सा-

मान्य विशेष । तेहिज डव्य कळो श्री जिनेश ॥ डव्य गुण पज्जाव जिहां नांही । व्यय उत्पत्ति स्थिति पण नांही ॥ ४४ ॥ सामान्य विशेष जेहमा नहीं । तेह डव्य उपचारे सहो । परमाणु खेत्र प्रमाण प्रदेश । पंच डव्यना जाण विशेष ॥ ४५ ॥ लोकाकाश असंख्य प्रदेश, प्रति प्रदेशे जाण विशेष । धर्म अधर्म एक एक प्रदेश । पुद्गल जीव अनंत प्रदेश ॥ ४६ ॥ गति स्थिति कारण धर्म अधर्म । अवकाश कारण ठे नच मर्म ॥ कारण प्राण पर्याप्तिनुं होय । ते तो पुद्गल जाणो सोय ॥ ४७ ॥ पुद्गल सुख दुःख कारण कहुं । रागादिक निश्चे सद्वहुं ॥ जीव जीवतुं कारण होय । ज्ञान अज्ञान तणुं पण कोय ॥ ४८ ॥ निश्चे कारण डव्यहि आप । वाकी व्यनहारे आलाप ॥ सकल डव्यमां चार प्रकार । दाख्या ते जाणो सुखकार ॥ ४९ ॥ डव्य क्षेत्र काल जाव ए चार । आप आपणा सहुमा धार ॥ जे जेहनां ते तेहना कळ्या । कोशना कोश मांही नहि रळ्या ॥ ५० ॥ अनंत परमाणु वूटा होय । द्रव्यणुक खंध अनता जोय ॥ त्र्यणुक खंध पण होय अनंत । संख्यातिक एम खंध अनंत ॥ ५१ ॥ असंख्यातिक खंध अनंत, अनंताणुक पण खंध अनंत ॥ अणु अणु मलतां होय संघात । पुद्गल खंध तणो उत्पाद ॥ ५२ ॥ मली खंध बहु इक खंध थाय । जागी खंध विविध खंध थाय ॥ फरसो चाखो सुंधो जेह । देखो सुणो सवि पुद्गल एह ॥ ५३ ॥ सूक्ष्म पुद्गल नवि देखिये । पण गुण पज्जावथी लेखिये ॥ एम पुद्गल परिणमन अनंत । वचने केम कहि शकिए तंत ॥ ५४ ॥ तद्जावथी नवि विणसे जेह । अव्यय नित्य कहीजे तेह ॥ सकल समय निज रूपे रहे । अवर जाव कोइ समय न ग्रहे ॥ ५५ ॥ तेहिज जाणो नित्य स्वजाव । अवयवणुं एम लेखिये दाव ॥ डव्य अनंत धर्ममय एक । एक वचने केम कहिये ठेक ॥ ५६ ॥ नय वचने करि कहिए जेह । अरपित जाव कहावे तेह ॥ प्रयोजन विण नवि कहिए जेह । गोण जाव अनर्पित एह ॥ ५७ ॥ अजिलाप्य धर्म जे होय । वचनद्वारे

कहि शकिए सोय ॥ अनजिलाप्य धर्म जे होय । वचने कही शके नहि कोय ॥ ५८ ॥ केवली जाणे पण न कहाय, अनजिलाप्य धर्म कहे-वाय ॥ एणिपेरे वस्तु धर्म अनंत, दाख्या श्री केवली जगवंत ॥ ५९ ॥ अनजिलाप्यथी गुणा अनंत, अनजिलाप्य जाणिए संत ॥ स्निग्ध रूढ गुण पुद्गल मांछ, अनंतानंत कहा सुत मांछ ॥ ६० ॥ दो गुण अधिक स्निग्ध रुख मले, द्विगुण अधीक रुख स्निग्ध जले ॥ रूढ रूढ मले द्विगुण अधीक, स्निग्ध स्निग्ध मले द्विगुण अधीक ॥ ६१ ॥ एक तीन अधिक नवि मले, सम सम गुण पण नांहिज मले ॥ परमाणू मलि वर्गणा होय, सूक्ष्म स्थूल डुविधथी जोय ॥ ६२ ॥ गुण सकल द्रव्याश्रित होय, गुणमां अवर गुण नहि कोय ॥ पञ्जाव परिणमे द्रव्य स्वरूप, सकल समय एम द्रव्य अनूप ॥ ६३ ॥ द्रव्य गुण परजाय अजेद, स्वपर द्रव्ये लखि ढालो खेद ॥ गुण पर्यायवंत ते द्रव्य, निश्चे जिन क्षेत्री सहु द्रव्य ॥ ६४ ॥ आतम विद्या विद्या एह, ए विण विद्या अविद्या तेह ॥ जेहथी सकल दूःख क्षय जाय, आतम परमातम पद पाय ॥ ६५ ॥ परजावे ऊदासिन थई, आत्म जाव उपयोगे रही ॥ ठोमो अष्ट करमना पास, लहो मनसुख शिव सहज विलास ॥ ६६ ॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो द्रव्य अधिकार ए, कहुं कतु आस्रव रूप ॥ बंधन कारण कर्मनां, जाखुं डुविध स्वरूप ॥ १ ॥

ढाल ( १९ ) बारमी ॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ ए राग ॥

मन वच काय त्रियोगनी ॥ चित्त चेतोने ॥ किरियां आस्रव मूल ॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ जे जे ठे संप्रायनी ॥ चित्त चेतोने ॥ ते आतम प्रतिकूल ॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ १ ॥ मन वच काय त्रियोगथी ॥ चित्त ॥ सकंषे आत्म प्रदेश ॥ चतुरण ॥ चल योगे बंधन कह्युं ॥ चित्त ॥ जिहां निवृत्ति न लेश ॥ चतुरण ॥ २ ॥ पंदर जेद ठे तेहना ॥ चित्त ॥

॥ चउ चउ मन वच जाण ॥ चतुर० ॥ काय योग सातज कहा ॥  
 चित्त० ॥ ग्रंथयी जाण सुजाण ॥ चतुर० ॥ ३ ॥ अशुज प्रवृत्ति योग-  
 यी ॥ चित्त० ॥ होय पापनो वध ॥ चतुर० ॥ शुज प्रवृत्ति योगयी ॥  
 चित्त० ॥ जाण पुण्यनो वध ॥ चतुर० ॥ ४ ॥ हिसा अनृत चोरिमां  
 ॥ चित्त० ॥ अब्रह्म परिग्रह माह ॥ चतुर० ॥ जोग प्रवृत्ते जे समे ॥  
 चित्त० ॥ पाप बंध होय त्याह ॥ चतुर० ॥ ५ ॥ एम अठ दश पापज  
 विपे ॥ चित्त० ॥ जोग प्रवृत्ति अशुद्ध ॥ चतुर० ॥ टालि थिरता आ-  
 दरो ॥ चित्त० ॥ संवर राखी वुद्ध ॥ चतुर० ॥ ६ ॥ दान दया तप  
 शीलमा ॥ चित्त० ॥ पूजादिकमां जेह ॥ चतुर० ॥ शुज प्रवृत्ति जो-  
 गयी ॥ चित्त० ॥ पुण्यबंध होय तेह ॥ चतुर० ॥ ७ ॥ क्षयउपशम  
 शक्ति लही ॥ चित्त० ॥ करणवीर्य त्रय योग ॥ चतुर० ॥ फोरे जेह  
 विजावमां ॥ चित्त० ॥ बंधे कर्म अरु रोग ॥ चतुर० ॥ ८ ॥ क्षयउप-  
 शम त्रण योगनी ॥ चित्त० ॥ शक्ति करि नर नार ॥ चतुर० ॥ मारे  
 मोह जिलिंदने ॥ चित्त० ॥ ते पामे जवपार ॥ चतुर० ॥ ९ ॥ हणाये  
 आतम शक्तिथी ॥ चित्त० ॥ कर्म शत्रु दल फोज ॥ चतुर० ॥ दां-  
 त्यादि मित्रो पोपीने ॥ चित्त० ॥ लहिये निज गुण मोज ॥ चतुर०  
 ॥ १० ॥ विणु कपाय त्रिय योगनी ॥ चित्त० ॥ किरिया इरियापथ्य  
 ॥ चतुर० ॥ कपाय युक्त किरिया कही ॥ चित्त० ॥ नहि आतम गुण  
 पथ्य ॥ चतुर० ॥ ११ ॥ संपरायिक किरिया थकी ॥ चित्त० स्थिति  
 रसनो होय वध ॥ चतुर० ॥ विणु कपाय जे योगनी ॥ चित्त० ॥ प्रकृ-  
 ति प्रदेशनो बंध ॥ चतुर० ॥ १२ ॥ पंच इद्रि विषय रसे ॥ चित्त० ॥  
 बाधे कर्म अजाण ॥ चतुर० ॥ बंधे चार कपाययी ॥ चित्त० ॥ ते  
 नवि कहिये जाण ॥ चतुर० ॥ १३ ॥ सेवत पंच अब्रत जे ॥ चित्त० ॥  
 नहि निवृत्ति कदाय ॥ चतुर० ॥ कर्म बंध बहु विध करी ॥ चित्त० ॥  
 जवसागर जटकाय ॥ चतुर० ॥ १४ ॥ किरिया पचिश प्रवर्ततो ॥  
 चित्त० ॥ बंधे शूज अशूज ॥ चतुर० ॥ इरिया पथ्यनी शूजठे ॥ चित्त० ॥  
 दोषयी शूज अशूज ॥ चतुर० ॥ १५ ॥ तिव कपाये बंध जे ॥

चित्त० ॥ अशुचि तिव्र बंधाय ॥ चतुर० ॥ मंदरस मंदकषायथी ॥  
 चित्त० ॥ अशुचि कर्मनो आय ॥ चतुर० ॥ १६ ॥ मंदकषाये पुण्यनो ॥  
 चित्त० ॥ तिव्र रसबंध जाण ॥ चतुर० ॥ तिव्रकषाये पुण्यनो ॥ चित्त० ॥  
 एम मंदो रस मान ॥ चतुर० ॥ १७ ॥ करणवीर्य विशेषथी ॥ चित्त० ॥  
 होय शुचि अशुचि विशेष ॥ चतुर० ॥ न्यून करणवीर्ये करी ॥ चित्त० ॥  
 उठो कर्म कलेश ॥ चतुर० ॥ १८ ॥ अधिकरण आस्रव तणुं ॥ चित्त० ॥  
 डुविधे होय सदीव ॥ चतुर० ॥ ज्ञावकर्मनुं जीव ठे ॥ चित्त० ॥ द्रव्यक-  
 र्मनुं अजीव ॥ चतुर० ॥ १९ ॥ अग्निप्राय आरंजनो ॥ चित्त० ॥ करतां  
 ठे संरंज ॥ चतुर० ॥ शस्त्रादि कारण मेलवे ॥ चित्त० ॥ ते जाणो समारंज  
 ॥ चतुर० ॥ २० ॥ कस्यो आरंज जेणे समे ॥ चित्त० ॥ ते तो आरंज जाण ॥  
 चतुर० ॥ कृत कारित अनुमोदना ॥ चित्त० ॥ त्रण त्रणथी नव मान ॥  
 चतुर० ॥ २१ ॥ जूत वर्तता आवता ॥ चित्त० ॥ कालथी सत्तावीश ॥  
 ॥ चतुर० ॥ मन वच काय त्रियोगथी ॥ चित्त० ॥ गुणत एकाशी  
 लहीश ॥ चतुर० ॥ २२ ॥ गुणतां सोल कषायथी ॥ चित्त० ॥ वारसें  
 ठडु होय ॥ चतुर० ॥ सूत्रे जेद अनेक ठे ॥ चित्त० ॥ आस्रवना तुं  
 जोय ॥ चतुर० ॥ २३ ॥ मोहनिकर्मना जाणिये ॥ चित्त० ॥ अध्य-  
 वसाय असंख्य ॥ चतुर० ॥ ते सहु आस्रव जेद ठे ॥ चित्त० ॥ जाणो  
 चित्त निशंक ॥ चतुर० ॥ २४ ॥ पण पण ईद्रि अव्रत ठे ॥ चित्त० ॥  
 तेम बलि चार कषाय ॥ चतुर० ॥ पचिश क्रिया त्रण योगनी ॥ चित्त० ॥  
 जेद बेतालीश आय ॥ चतुर० ॥ २५ ॥ आस्रव क्रिया परिणामथी  
 ॥ चित्त० ॥ परिणाम संकटपथी होय ॥ चतुर० ॥ संकटप आत्म अ-  
 ज्ञानथी ॥ चित्त० ॥ कर्मबंध एम जोय ॥ चतुर० ॥ २६ ॥ निश्चय  
 पर रमणे हुवे ॥ चित्त० ॥ आस्रव एक अजेद ॥ चतुर० ॥ बंधे पुद्गल  
 स्नेहथी ॥ चित्त० ॥ बहुविध कर्मना जेद ॥ चतुर० ॥ २७ ॥ ए सवि  
 आस्रव शोकतां ॥ चित्त० ॥ प्रगटे संवर रूप ॥ चतुर० ॥ तजि प्रमाद  
 संवर ग्रहो ॥ चित्त० ॥ मूदो जवजल कूप ॥ चतुर० ॥ २८ ॥ अधि-

करण आस्रव तणां ॥ चित्त० ॥ निर्वर्त्तना निक्षेप ॥ चतुर० ॥ संजोग  
निसर्ग जाणिये ॥ चित्त० ॥ चार जेद संक्षेप ॥ चतुर० ॥ १६ ॥ कि-  
रिया चेष्टा शरिरनी ॥ चित्त० ॥ दुर उपकरण ते जाण ॥ चतुर० ॥  
वीजी किरिया शस्त्रनी ॥ चित्त० ॥ उपकरण निर्वर्त्तना मान ॥  
॥ ३० ॥ पंच प्रकार शरिर तथा ॥ चित्त० ॥ निपावे मन वच काय ॥  
॥ चतुर० ॥ ए मूल गुण निर्वर्त्तना ॥ चित्त० ॥ तत्त्वार्थे मन लाय ॥  
॥ चतुर० ॥ ३१ ॥ काष्ट पापाण चित्रादि ते ॥ चित्त० ॥ कांश् वनावे  
कोय ॥ चतुर० ॥ जे जे कीधुं शस्त्रथी ॥ चित्त० ॥ उत्तर निर्वर्त्तना  
होय ॥ चतुर० ॥ ३२ ॥ निक्षेप कहिये स्थापवु ॥ चित्त० ॥ चार जेद  
तस मान ॥ चतुर० ॥ सहसाधिकरण प्रथम कह्युं ॥ चित्त० ॥ अना-  
जोग विय जाण ॥ चतुर० ॥ ३३ ॥ त्रीजुं दुप्रमार्जना ॥ चित्त० ॥  
अप्रतिपेक्षित चार ॥ चतुर० ॥ निक्षेपा अधिकरण ठे ॥ चित्त० ॥  
अर्थ सूणो तस सार ॥ चतुर० ॥ ३४ ॥ विण विचार उतावले ॥  
॥ चित्त० ॥ उपकरण मूके कोय ॥ चतुर० ॥ सहसाअधिकरण कह्युं ॥  
॥ चित्त० ॥ दोष ईहा बहु होय ॥ चतुर० ॥ ३५ ॥ विण उपयोगे जे  
मूकबुं ॥ चित्त० ॥ अनाजोग ते होय ॥ चतुर० ॥ हाणी कारण जीवनु  
॥ चित्त० ॥ करे दोष बहु सोय ॥ चतुर० ॥ ३६ ॥ प्रमार्जना अयथा-  
र्थथी ॥ चित्त० ॥ मूके संजम हयियार ॥ चतुर० ॥ दोष ईहा बहु  
ऊपजे ॥ चित्त० ॥ तृतीय जेद मन धार ॥ चतुर० ॥ ३७ ॥ विण देखे  
मूके लिये ॥ चित्त० ॥ अप्रतिपेक्षित एह ॥ चतुर० ॥ ए चउ अविधि  
न आदरे ॥ चित्त० ॥ संजमधर ठे तेह ॥ चतुर० ॥ ३८ ॥ शीत उण्ण  
न विचारता ॥ चित्त० ॥ उपकरण मेलवे कोय ॥ चतुर० ॥ ते उपकरण  
संयोजना ॥ चित्त० ॥ प्रथम जेद ए होय ॥ चतुर० ॥ ३९ ॥ गमता आ  
हारने पाननो चित्त० ॥ करे सयोगे जद्द ॥ चतुर० ॥ दोष लगे संजम  
विपे ॥ चित्त० ॥ वीजो जेद प्रत्यक्ष ॥ चतुर० ॥ ४० ॥ दुप्रयोग त्रिय  
योगनो ॥ चित्त० ॥ नीसर्गाधिकरण कहाय ॥ चतुर० ॥ सह मलि



एकादश कह्या ॥ चित्त० ॥ दोष तजे निरमाय ॥ चतुर० ॥ ४१ ॥ एम  
वहु विध आस्रव प्रत्ये ॥ चित्त० ॥ रोके संवरवंत ॥ चतुर० ॥ मनसुख  
शीव स्वतंत्रता ॥ चित्त० ॥ पामे सूख अत्यंत ॥ चतुर० ॥ ४२ ॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो आस्रव अधिकार ए, कर्मबंधनं मूल । जेहथी जेह बंधाय ठे,  
कहुं सूत्र अनुकूल ॥ १ ॥

॥ ढाल ( १३ ) तेरमी ॥ धर्म जिनेश्वर गाऊं रंगशुं ॥ ए देशी ॥

दर्शन ज्ञान चरण गुणवंतनुं, समकित तपसीनुं जेह ॥ सुगुण नर ॥  
अरिहंत सिद्ध आचारज मुनितणुं, पाठक आदिनुं एह ॥ सुगुण नर ॥  
तत्त्व विचार सुधारस पीजीए, लहिये आतम रिद्ध ॥ सु० ॥ १ ॥ ए  
आंकणी ॥ जे नर प्रत्यनीकपणुं आदरे, एहथी विपरीत होय ॥ सु० ॥  
कर्मबंध करि जव जमतो रहे, मूढ जीव जेह कोय ॥ सु० ॥ तत्त्व०  
॥ २ ॥ जे निन्हव होय सुगुरु तणो कदा, तेह मूढमती हीण ॥ सु० ॥  
निंदे सदगुरु आदिक शुभ प्रते, कर्म अशुभने आधीन ॥ सु० ॥ तत्त्व०  
॥ ३ ॥ ज्ञान दर्शन दाता सदगुरु प्रते, जेह बुपावे हो मूढ ॥ सु० ॥  
आप अजाण ठतां कहे जाण हुं, जाण्युं राखे हो गूढ ॥ सु० ॥ त०  
॥ ४ ॥ करे उपघात सुगुरु आदिक तणो, सम्यक शास्त्रनो कोय  
॥ सु० ॥ बंधी दूष्ट करम बहु दुःख सहे, मिथ्या मूढ ते होय ॥ सु०  
॥ त० ॥ ५ ॥ शिवमार्गी जन ऊपर जे करे, निशदिन अधिको हो  
छेष ॥ सु० ॥ अनिष्ट वचन बोले उत्तम प्रते, पामे बहु विध क्लेश  
॥ सु० ॥ त० ॥ ६ ॥ करे अंतराय गुरु आदि तणो, ज्ञानादिकनो हो  
विशेष ॥ सु० ॥ बांधे विविध प्रकारे अंतराय ते, लहे दुःख राशी  
अशेष ॥ सु० ॥ त० ॥ ७ ॥ अरिहंतादिक दर्शनी आशातना, शील  
संजमनी हो जाण ॥ सु० ॥ ते पगले पगले बहु दुःख सहे, पामे  
अधिक अपमान ॥ सु० ॥ त० ॥ ८ ॥ ए खट अशुभ जाव जे आदरे,

वांधे दर्शन ज्ञानावर्ण ॥ सु० ॥ जाणि तजो खट ए अशुच जावने,  
 राखि शुद्धातम चर्ण ॥ सु० ॥ त० ॥ ए॥ देतो देशना जे उनमार्गनी,  
 सुमग नशावे हो कोय ॥ सु० ॥ मूढमती करि देवदरव हरे, जिन  
 मुनि प्रत्यनीक होय ॥ सु० त० ॥ १० ॥ चैत्य सध तणो प्रत्यनीक ते,  
 वांधे दरशनमोह ॥ सु० ॥ कपाय नोकपाय वशे हूवो, जेहने अधि-  
 को हो कोह ॥ सु० ॥ त० ॥ ११ ॥ वांधे चरणमोहनी दोय जेदथी,  
 कपाय तथा नोकपाय ॥ सु० ॥ अधिक आरज परिग्रह जे करे, वांधे  
 नरकनुं हो आय ॥ सु० ॥ त० ॥ १२ ॥ गुरुजक्ति खांति करुणा करु, व्रत  
 जोग कपायनी जीत ॥ सु० ॥ उढ धर्मादानी अज्झवधरु, शातावं-  
 धनी ए रीत ॥ सु० ॥ त० ॥ १३ ॥ विपरित एथी अशाता वेढनी,  
 करि हिंसादि कूकर्म ॥ सु० ॥ वांधे पापस्थानक सेवतो, जेणे न लह्यो  
 शुद्ध धर्म ॥ सु० ॥ त० ॥ १४ ॥ तिर्यक आयु कूरु कपट वशे, वांधे राखी  
 हो शब्द ॥ सु० ॥ मंदकपाय प्रकृती जेहने, दान रुची होय  
 निशब्द ॥ सु० ॥ त० ॥ १५ ॥ मध्यमकपायी मनुष्य आयु  
 लहे, न करे अधिक कूकर्म ॥ सु० ॥ अविरती सम्यकद्रष्टि तथा,  
 बाल तपस्वी शूच धर्म ॥ सु० ॥ त० ॥ १६ ॥ अकाम निर्जरा करतो इडि-  
 जयी, ए आदि वांधे देव आय ॥ सु० ॥ देशव्रती मनुष्य तिर्यच जे,  
 आयु देवनुं निपाय ॥ सु० ॥ त० ॥ १७ ॥ गर्व रहित मद कपट रहित जे,  
 विषयथी कांक्षिक विराम ॥ सु० ॥ मंदकपाय नही पर पीततो, वांधे ठे  
 शूच नाम ॥ सु० ॥ त० ॥ १८ ॥ एहथी विपरित जे होय जगतमां, अ-  
 शुच नाम करे बंध ॥ सु० ॥ गुणपेढी मद कपट रहित सदा, सुतरुचि  
 गुरुमित्र संबंध ॥ सु० ॥ त० ॥ १९ ॥ करे जक्ति जिन गुरुआदि तणी,  
 बंध करे ऊच गोत्र ॥ सु० ॥ एहथी विपरित जे जन जगतमां, बंधे ठे नीच  
 गोत्र ॥ सु० ॥ त० ॥ २० ॥ जिन आणा पूजा जिन मार्गमां, विघ्न करे  
 जन कोय ॥ सु० ॥ दान लाज जोग उपजोगनी, शक्ति हूणे नर सोय  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ २१ ॥ रोके सुख जोगादिक जीवनां, हिंसा वश पण होय

॥ सु० ॥ बांधे दुविध पंच अंतराय ते, वाल मूढ जन सोय ॥ सु० ॥  
 ॥ त० ॥ ११ ॥ दान लाज जोग उपजोगमां, न किजे वीर्य अंतराय ॥  
 ॥ सु० ॥ आत्म लब्धि अनुजव रंगमां, रहिए शीव सदाय ॥ सु० ॥  
 ॥ त० ॥ १२ ॥ दरशन विशुद्धि जेह आदरे, चुके न विनैय योग ॥  
 ॥ सु० ॥ न लगावे अतिचार शियल विषे, क्षिण क्षिण ज्ञान उपयोग  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ १४ ॥ जवनीरू निज शक्ति न गोपवे, दान संवेग तप  
 लाग ॥ सु० ॥ खट विध वाह अज्यंतर तप करे, सुनिसंजाल सोजाग्य  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ १५ ॥ वैयावृच्च करे नित धर्मीनी, अरिहंतादिनी  
 नैक्ति ॥ सु० ॥ तेम सुरिश्चरनी सेवा करे, यथायोग्य निज शक्ति ॥  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ १६ ॥ सुतधर ने सुतपद नित सेवतो, प्रवचननक्ति  
 करे सार ॥ सु० ॥ आवैश्यक नित नित प्रते करे, मार्गप्रज्ञावना उदार  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ १७ ॥ प्रवचन वात्सल्यता नित आदरे, ए सोले पद  
 धाम ॥ सु० ॥ सेवे तन्मय यई निज आत्ममां, बांधे जिनपद नाम  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ १८ ॥ जे जिन शासन अधिक फेलाववा, तारवा जव्य  
 सदाय ॥ सु० ॥ तत्त्वार्थे दाख्यो अधिकार ए, तीर्थपती पद पाय ॥  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ १९ ॥ एम सवि बंधन कारण जाणीमे, तजिए तत-  
 खीण तेह ॥ सु० ॥ मनसुख दरशन ज्ञान चरण लही, लहियेशिव सुख  
 गेह ॥ सु० ॥ त० ॥ २० ॥

### ॥ दोहरा ॥

कर्म बंध कारण कह्यो, कहुं व्रत आदि स्वरूप ॥ लहि निवृत्ति  
 विज्ञावर्धी, लहो समाधि अनूप ॥ १ ॥

### ॥ ढाल ( १४ ) चौदमी ॥

॥ हुं तो नहीं रे नमुं दुजा देवने रे लो ॥ ए देशी ॥

हुं तो नहीं रे तजुं जिन धर्मने रे लो, रूमी रूमी अरिहंत  
 जीनी सेव महाराजाद नहीं रे तजुं जिन धर्मने रे लो ॥ ए आंकणी ॥

व्रत पहेले हिंसा तजी सेविए रे लो, शुद्ध आतम चरण अशेष महारा  
 लाल ॥ दश प्राण हणो नहीं डव्यथी रे लो, जाव प्राण नवि हणिए  
 प्लेश महारा लाल ॥ नहींरे ॥ १ ॥ कांई अलीक वचन नवि  
 बोलिए रे लो, क्रोधादिक वश थई कांई महारा लाल ॥ जिन आणाए  
 वाक्य ऊंचारिये रे लो, उष्टि राखी आतम गुण मांहि महारा लाल ॥  
 ॥ नहींरे ॥ २ ॥ अण दिधी परवस्तु नवि लीजिए रे लो, डव्य  
 जावथी डुविध प्रकार महारा लाल ॥ ज्ञानादिक गुण ग्रही धिर रहो  
 रे लो, पुद्गल ग्रहणे नहि सार महारा लाल ॥ नहींरे ॥ ३ ॥ नर नारी  
 अन्नद्व नवि सेविअे रे लो, छोकि सुमतिनो रंग अजग महारा लाल ॥  
 डव्य जाव परिग्रह त्यागिअे रे लो, नवि राखो काइ मूर्च्छा संग  
 महारा लाल ॥ नहींरे ॥ ४ ॥ मुनि राखे ए पंच व्रत सर्वथीरे लो,  
 ग्रहस्थोने होय देश विवेक महारा लाल ॥ एम चरण शरण डढ  
 आदरोरे लो, जिन धमें अचल डढ टेक महारा लाल ॥ नहींरे ॥  
 ॥ ५ ॥ व्रत थिर अर्थे नित जावियेरे लो, व्रत पंचनी जावना पचीश  
 महारा लाल ॥ शुद्ध आतम गुण प्रगटे सवरे लो, एथी लहिये शुद्धात्म  
 जगीश महारा लाल ॥ नहींरे ॥ ६ ॥ इरियासर्मति सहित नित  
 चालवुरे लो, वारो पापथी मनने सदाय महारा लाल ॥ हिंसाकारी  
 वचन नवि बोलवुरे लो, आदाननिक्षेपण दोष न लगाय महारा लाल  
 ॥ नहींरे ॥ ७ ॥ आहार पाणी विलोक्यो विना न लियेरे लो, पंच  
 पहेला व्रतनी जाण महारा लाल ॥ अहिंसा व्रत एथी विमलुं रहे  
 रे लो, शिव साधन गुणगणखाण महारा लाल ॥ नहींरे ॥ ८ ॥  
 क्रोध लोच जय हास्यथी न बोलवु रे लो, कांई अलीक वचन डुख-  
 दाय महारा लाल ॥ जिन आणा विचारी बोलिए रे लो, निज पर  
 आतम सुखदाय महारा लाल ॥ नहींरे ॥ ९ ॥ क्रोध लोच जय  
 हास्य वश ना थशो रे लो, जाणि ए अहितकारी जाव महारा लाल ॥  
 पंच जावना ए बीजा व्रत तणी रे लो, तेथी नाशे दूष्ट विजाव महारा

लाल ॥ नहींरे० ॥ १० ॥ वस्ति अवग्रह परिमित विचारि ले रे लो,  
 दाता दिधो रजाए आहार पाण महारा लाल ॥ काल क्षेत्र मर्यादा  
 राखिने रे लो, लिये वस्ति अवग्रह शुद्ध जाण महारा लाल ॥ नहींरे०  
 ॥ ११ ॥ वार वार अवग्रह हृद बांधि ले रे लो, ए चोथी जावना होय  
 महारा लाल ॥ अवग्रह परिमित साधर्मिणी रे लो, मागि लेतां त्रीजा  
 व्रतनी जोय महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १२ ॥ वार वार स्त्रीकथा करे  
 नहीं रे लो, स्त्री ईद्रि अंगे निरखे न कोय महारा लाल ॥ पुरव काम  
 क्रिन्ना न संजालता रे लो, अधिक मादक आहार न होय महारा लाल  
 ॥ नहींरे० ॥ १३ ॥ स्त्री नपुंसक पशु जिहां रहे रे लो, वस्ती आसन  
 तेह न लेय महारा लाल ॥ चोथा महाव्रतनी ए पंच जावना रे लो,  
 व्रत राखे सुख होय अमेय महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १४ ॥ शब्द रूपे  
 गंध रस फेरस पंचने रे लो, ईष्ट अनिष्ट न धारे मन मांछ महारा लाल  
 पुद्गल पल्लव माहुरा नथी रे लो, माहुरी ज्ञायकता शिव बांह  
 महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १५ ॥ पंच जावना ए पंच विषय त्यागनी  
 रे लो, धन विषयनो लोचन न कदाय महारा लाल ॥ इम जावना पंच-  
 विश जाविए रे लो, पंच व्रत शुद्ध अखंरु रखाय महारा लाल ॥  
 ॥ नहींरे० ॥ १६ ॥ चित चिते पंच महाव्रत आदरयां रे लो, मन  
 वच कायथी निरमाय महारा लाल ॥ व्रत पाली पलावी अनुमोदतां  
 रे लो, जिन आणा आराधक थाय महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १७ ॥  
 हिंसादि पंच अव्रत सेवतां रे लो, अपकित्ते आलोक परलोक महारा  
 लाल ॥ राजदंभादिक बहु दुःख सहे रे लो, निरय तिरियकनां  
 दुःख थोक महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १८ ॥ हिंसादिक पंच दुःख-  
 दाय ठे रे लो, तजे शाश्वत सुख निरूपाय महारा लाल ॥ वलो मित्रा  
 दिक चार जावना रे लो, जोचो निरमल गुण थिर थाय महारा लाल  
 ॥ नहींरे० ॥ १९ ॥ जगजीव सहु मित्र सम जाणिने रे लो, तेहने  
 तारवांनी कीजीए बुद्धि महारा लाल ॥ करुणा सहु जीव परकीजीए

रे लो, राखि ड्रव्यने जाव विशुद्धि महारा लाख ॥ नहीरे ॥ २० ॥  
 आचारज वाचक मुनि लखी रे लो, साधु साधर्मिथी प्रमोद महारा  
 लाख ॥ धन्य हुं म्हारे उत्तम गुरु मढ्या रे लो, करे उत्तमनो विनय  
 विनोद महारा लाख ॥ नहीरे ॥ २१ ॥ हिंसक मिथ्याती आदि लखी  
 रे लो, ते ऊपर राग न रोप महारा लाख ॥ एम चित्त चोखे चार जा-  
 वना रे लो, जावतां लहे निज गुण पोप महारा लाख ॥ नहीरे ॥ २२ ॥  
 लही चरण करणनी शुद्धता रे लो, करी अनुचव रंग विलास महारा  
 लाख ॥ मनसुख शिव सुदरिशु रमे रे लो, आनंदपुरी शाश्वत वास  
 महारा लाख ॥ नहीरे ॥ २३ ॥

॥ ढाल (१५) पंदरमी ॥ चेतन जाव ते चेतना जीहो, उखट

अचेतन जाव ॥ ए राग ॥

पंचाचार आराधिए साखा टाळी सकल अतिचार, ॥ आतम  
 जावे आतमा साखा, रमत लहो जवपार ॥ सुगुणनर आराधो जिन  
 धर्म, तजि डुरमति कूकर्म ॥ सुगुण ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥

काल विनय बहुमानथी साखा, बलि धारी उपधान ॥ निन्हव-  
 पणुं ठोडी करि साखा, व्यंजन अरथ प्रमाण ॥ सुगुण ॥ २ ॥ व्यं-  
 जन अर्थ उजय मल्ली साखा, लखि लहो तत्त्व विचार ॥ एम शुज  
 ज्ञान आराधतां साखा, लहिये जवजल पार ॥ सुगुण ॥ ३ ॥ शंका  
 कंखा डुगंच्छना साखा, मूढझटि तजि सार ॥ नय आदि मन धा-  
 रिते साखा, कीजे तत्त्व विचार ॥ सुगुण ॥ ४ ॥ गुरु अवगुण नवि  
 वोखिए साखा, थिर करि सम्यकझटि ॥ वात्सल्यता जिन धर्मनी  
 साखा, करि प्रजावना पुष्ट ॥ सुगुण ॥ ५ ॥ एम दरशन निरमल  
 करो साखा, जेह्यी जवजय जाय । चारित्र आवे निरमलुं साखा,  
 स्हेजे शिवसूख थाय ॥ सुगुण ॥ ६ ॥ त्रिप्रणिधान शुद्ध आदरो  
 साखा, पण समिति त्रय गुति ॥ चरण करण आराधतां साखा,

मुनिवर पामे मुक्ति ॥ सुगुण० ॥ ७ ॥ बाह् अच्यंतर तप तपो लाखा,  
 द्वादश विधे अति शुद्ध ॥ कुशलद्रष्टि राखो सदा लाखा, गिलाणता  
 तजि बुद्ध ॥ सुगुण० ॥ ८ ॥ आजीविकादि न ईष्टिए लाखा, नवि  
 चाहो जवजोग ॥ पुद्गल जाव निरीहथी लाखा, तप शिव साधन  
 योग ॥ सुगुण० ॥ ९ ॥ फोरे सदा धर्म कार्यमां लाखा, आतम वीर्य  
 अमाय ॥ तप सुत ध्यानादि आदरे लाखा, गोपे न वीर्य कदाय  
 ॥ सुगुण० ॥ १० ॥ जे जे कारण धर्मनां लाखा, तेहमां मन वच काय ॥  
 धिर वीर वीरज फोरवे लाखा, आलस निंद नसाय ॥ सुगुण० ॥ ११ ॥  
 पंचे आचार आराधिये लाखा, नवि कीजे अतिचार ॥ मनसुख शिव  
 संपत्ति लहे लाखा, अचल विमल सूखकार ॥ सुगुण० ॥ १२ ॥

### ॥ दोहरा ॥

महाव्रतादिक वर्णव्या, देशव्रतादिक सार ॥ जाखुं सूत्राधारथी,  
 शुद्धातम हितकार ॥ १ ॥

॥ ढाल (१६) सोलमी ॥ पाडलीपुरनी शेरिए रमतां, रत्नाचि-  
 तामणि लाघ्युंजी ॥ ए राग ॥

संवेगने निरवेदने अरथे, जगत स्वरूप विचारोरे ॥ जावना अ-  
 नित्यादिक बारे, मनथी कव न विसारो ॥ विरती रस लीजेजी, आत्म  
 अनुभव अन्यास, अमृत रस पीजेजी ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ प्रमाद  
 वशे द्रव्य जाव प्राणनी, हाणी कबहु न कीजेजी ॥ जिन शासन  
 लहि समकित पामी, देशविरती आदरीजे ॥ विरती० ॥ २ ॥ सात  
 धातुने साते मलथी, दुगंठित ए देहोजी ॥ रोग अनेकनुं जाजन  
 एहिज, दुःखदायक दुःख गेहो ॥ विरती० ॥ ३ ॥ जगत पदारथ  
 सवि पुद्गलना, खिण खिण उपजे विणसेजी ॥ खिणमां ईष्ट अनिष्ट  
 खीणमां, देखी मूरख हरषे ॥ विरती० ॥ ४ ॥ सवि पुद्गल अथिर  
 समल जरु, जगनी एंठ प्रतंतजी ॥ मूरख जोगनी बुद्धे देखी, माने

सुख अत्यंत ॥ विरती० ॥ ५ ॥ रागादिक परमाद आदरतां, दुविधे  
हिंसा जन्मेजी ॥ इंद्रि आदि दश ड्रव्यप्राणनी, हाणि करी रस  
मनमें ॥ विरती० ॥ ६ ॥ जावप्राण ज्ञानादि जीवना, ते कवहु नवि  
हणियेजी ॥ जव ज्रमण बहु दुःखनुं कारण, हाणि जाणि परिहरिये  
॥ विरती० ॥ ७ ॥ पंदर जेदे प्रमाद कद्यो ठे, पंच विषय इंद्रिनाजी ॥  
चार कषाय ने विकथा चारे, निंदा रागादिक जीना ॥ विरती० ॥ ८ ॥  
स्वपर जीवना सुख हाणीथी, हिंसा श्रीजिन दाखीजी ॥ स्वपर  
जीव हाणि नवि कोजे, निज गुण निरमल राखी ॥ विरती० ॥ ९ ॥  
वध बंधन ठावि ठेद न कीजे, चार अधिक नवि जरियेजी ॥ जात पाणि  
वीठोह जीवने, प्रमाद वशे नवि करिण ॥ विरती० ॥ १० ॥ मंत्र  
उंसक जूठां देखाडी, कष्टमा कोईने न पाडोजी ॥ गुप्त वात निज ना-  
रिथी जाणी, रहस्य नवी देखानो ॥ विरती० ॥ ११ ॥ मृखा उपदेश  
न दिजे कोईने, कूको लेख न लखिएजी ॥ साचुं पण दुःखकारी न  
बोखो, बिय व्रत रस ईम चखिए ॥ विरती० ॥ १२ ॥ पर ड्रव्य नवि  
हरवुं त्रीजे, थूल जेद तस पंचजी ॥ चोरि आणेली वस्तु न लीजे,  
जेख न कीजे रंच ॥ विरती० ॥ १३ ॥ दान आदिमां राज विरुद्ध  
नहीं, कूमां तोख न मापोजी ॥ मदद कांई चोरने नवि दीजे, त्रीजा  
व्रत फल चाखो ॥ विरती० ॥ १४ ॥ परदारा पर पुरुषथी क्रीडा,  
चोथा व्रतथी न कीजेजी ॥ स्थूल श्रबह्म तजिने आवक, सुमता संग  
रमीजे ॥ विरती० ॥ १५ ॥ अपरिग्रहिता ने पर नारी, अनंग क्रिन्ना  
नवि कीजेजी ॥ पर विवाह जोडावो न कवहु, तिव्र राग ठंडीजे ॥  
॥ विरती० ॥ १६ ॥ धन धान्य क्षेत्रने वस्तु, रूपुं सोनुं जाणोजी ॥  
कूप दुपद चौपद मर्यादा, राखो ड्रव्य प्रमाणो ॥ विरती० ॥ १७ ॥  
दश दिशानो गमण प्रमाण ते, कीजे व्रत गुण हेतेंजी ॥ टाखि पंच  
अतिचार एहना, राखो व्रत अखेदे ॥ विरती० ॥ १८ ॥ उर्ध्व अधो  
तिर्यग दिशि नीमथी, न जाय मर्यादा वधारीजी ॥ एक दिशि त्यागी



बीजी वधारे, एम कुमती निवारी ॥ विरती० ॥ १९ ॥ लीधुं नेम  
 संजाल न राखे, एम पण विधि अतिचारोजी ॥ निर्मल व्रत राखि  
 हित कारण, ए विधि दोष निवारो ॥ विरती० ॥ २० ॥ मदिरा मांस  
 जहण नवि कीजे, फूल फल ने गंध माळाजी ॥ जोग उपजोगनुं नीम  
 करीने, ठोडो मोहना चाला ॥ विरती० ॥ २१ ॥ अजह वाविश नवि  
 वापरिये, अनंतकाय बत्रीशजी ॥ सचित तणो प्रतिबंध न कीजे,  
 अपक तजो निशदीश ॥ विरती० ॥ २२ ॥ छुपक आहारने रंयणी  
 जोजन, कूलां फल निवारोजी ॥ जीव दयानुं कारण जाणी, ए विधि  
 व्रत निरधारो ॥ विरती० ॥ २३ ॥ सचित द्रव्य विगयने वाणी, तं-  
 बोल वस्त्रने कुसुमोजी ॥ वाहन शयन विलेपन स्नानने, ब्रह्म दिशि  
 जक्त नीमो ॥ विरती० ॥ २४ ॥ चौद नीम ए नित्य आदरिये, नवि  
 चूको कोई वारजी ॥ तुच्छ फल विष जह निवारो, राखो व्रत द्रढ  
 सार ॥ विरती० ॥ २५ ॥ अंगारा करी मत वेचो, हारु चाम मति  
 वणजोजी ॥ वन न ठेदावो सरं न फोरवो, कबहू न वणजो किंणजो  
 ॥ विरती० ॥ २६ ॥ जौडीकर्म न कीजे कबहू, निर्लठनं दर्वदाणजी ॥  
 पीलण कर्म न कीजे कबहू, शस्त्रंनुं कर्मादान ॥ विरती० ॥ २७ ॥  
 दंत रस व्यापार न कीजे. विष व्यापार तजीजेजी ॥ केश वणज  
 असंजतिपोषण, तजि व्रत शुरू द्रढ कीजे ॥ विरती० ॥ २८ ॥ पंदर  
 कर्मादान ए मोटां, कारण पाप करमनुंजी ॥ जिन धर्मे द्रढ रंग  
 धरीने, राखो मूल धरमनुं ॥ विरती० ॥ २९ ॥ पंदर कर्मादान तजीजे,  
 गुणव्रत बीजुं धारीजी ॥ विश अतिचार पढ़ना जाणी, चितथी  
 दूर निवारी ॥ विरती० ॥ ३० ॥ आठमे अनरथदंड न कीजे, सज्जन  
 अर्थ विण कोईजी ॥ शस्त्र अग्नि मूशल ने यंत्र, जेदथी हिंसा होई ॥  
 ॥ विरती० ॥ ३१ ॥ तृण काठ मूल मंत्र ने औषध, पोते कांई न दी-  
 जेजी ॥ बीजा पासे नवि देवरावो, अनरथ पाप न कीजे ॥ विरती०  
 ॥ ३२ ॥ न्हवण उवटण विलेपन ए, वस्त्र आसन आचरणजी ॥ विण

कारण कोईने नवि दीजे, कीजे चरणनु शरण ॥ विरती० ॥ ३३ ॥  
 कंदर्प वश कूचेष्टा न कीजे, पाप अधिकरण न दीजेजी ॥ पापकारी  
 शब्द नवि बोलीजे, निरमल व्रत फल लीजे ॥ विरती० ॥ ३४ ॥  
 विषय जोगनी वस्तु कोईने, देवानुं शुं कामजी ॥ आप आपणो आ-  
 त्म शक्तिमां, कीजे थिर आराम ॥ विरती० ॥ ३५ ॥ मिथ्या पाप  
 उपदेश न दीजे, बहु विध अनरथ त्यागोजी ॥ गुणव्रत एम तिन  
 निरमल राखी, आतम काजे लागो ॥ विरती० ॥ ३६ ॥ अनरथ दंरु  
 व्रत एम पालीजे, अणुव्रतने गुणकारीजी ॥ दरशन ज्ञान चरण आ-  
 राधो, मनसुखर्थी शिवकारी ॥ विरती० ॥ ३७ ॥

### ॥ दोहरा ॥

पंच अणुव्रत वर्णव्यां, तिन गुणव्रत सुखकार ॥ चउ शिष्टाव्रत  
 दाखशु, श्री जिन वचनाधार ॥ १ ॥

ढाल (१७) सत्तरमी ॥ हो सुखकारी आ ससार थकी जो मुजने  
 उद्धरे ॥ ए देशी ॥

नवमे सामायक आदरिये, मन वच काया त्रण द्रढ करिये ॥  
 पुद्गल भ्रमता सवि परिहरिये, तजी राग द्वेष प्रातिक हरिये ॥ हो  
 चेतनजी आतम अनुभव अमृत रस जर पीजे, नरजव पामो प्रमाद  
 तजीने संजम लाहो लीजे ॥ ए आकर्णी ॥ १ ॥ दुःप्रणिधान त्रिविध  
 तजिये, दोष घनि आदि थिरता जजिये ॥ टाली परसंग आतम  
 यजिये, धीर वीरज राखी सुमती जजिये ॥ हो चेतनजी० ॥ २ ॥  
 एक ठामे थिर आसन धारी, तन वच मन चंचलता टाली ॥ निरमल  
 निज सत्ता निहाली, जिन आणाए द्रष्टि जाली ॥ हो चेतनजी० ॥ ३ ॥  
 द्रव्य जाव थकी सावय ठंभी, निज दरशन ज्ञान चरण मंडा ॥ शुरु  
 नय सुतपद द्रढ अन्यासी, निज आतम ध्यावो अविनाशी ॥ हो  
 चेतनजी० ॥ ४ ॥ दिशा अवगाहीने रहिए, त्यांथी चारि शब्द

बहुविध कर्म ॥ हो जविया ॥ ४ ॥ जीव मांहे अजीवनी भळा, अ-  
 जीव प्रते जीव माने ॥ धर्म प्रते अधर्म कहे ते, अधर्मने धर्म प्रमाणे  
 ॥ हो जविया ॥ ५ ॥ कुगुरु प्रते सुगुरु निरधारे, सुगुरुने कुगुरु  
 उचारे ॥ मुक्त प्रते अमुक्त कहे एम, अमुक्तने मुक्त स्वकारे ॥ हो  
 जविया ॥ ६ ॥ देवप्रते अदेव कहे एम, अदेव देव करि जाणे ॥ एम  
 बहु विध विपरीत वासना, होय मिथ्या अजिमाने ॥ हो जविया ॥ ७ ॥  
 तीनसय त्रैसठ पाखंफो, बहु मिथ्यातना जेद ॥ सम्यक तत्त्व सुज्ञान  
 लहीने, किजे मिथ्यात उठेद ॥ हो जविया ॥ ८ ॥ देव अदेव सु-  
 गुरु कुगुरुने, मोक्षार्थे आराधे ॥ विनय करे बेहुनो एक सरखो, चउ  
 गति मारग साधे ॥ हो जविया ॥ ९ ॥ जिन देशित नवतत्त्व मांहे  
 जस, शंका विविध प्रकारो ॥ चोथो जेद मिथ्यातनो ए तो, जाणी  
 शंका निवारो ॥ हो जविया ॥ १० ॥ जीव अजोवादिक नवि जाणे,  
 गहल रूप होय अंध ॥ पंच मिथ्यात जेदनो एह, दाख्यो संक्षेप  
 प्रबंध ॥ हो जविया ॥ ११ ॥ खटकायनो हिंसा नवि त्यागे, पंच  
 विषयनो जोग ॥ निज मन थिरता कबहु न धारे, चार ए अविरति  
 योग ॥ हो जविया ॥ १२ ॥ पंच अव्रत थकी न निवर्ते, वलि त्रिजोग  
 क्रियाथो ॥ कर्मबंध करि एहथी बहुविध, नवि निकसे जवमांथी ॥ हो  
 जविया ॥ १३ ॥ पंदर विधे प्रमाद सेवतो, तेम वलि चार कषाय ॥  
 जोग चपलता बहुविध करतो, कर्मबंध बहु थाय ॥ हो जविया  
 ॥ १४ ॥ राग द्वेष वश जीव पुद्गलनो, सर्व प्रदेशो संबंध ॥ प्रकृति  
 स्थिति अनुज्ञाग प्रदेशनो, चार प्रकारे बंध ॥ हो जविया ॥ १५ ॥  
 लोकाकाश असंख्य प्रदेशो, वर्गणा विविध प्रकार ॥ काल अनादि  
 सदाय जरी ठे, ते मांहे कर्मण सार ॥ हो जविया ॥ १६ ॥ आठ  
 प्रयोग ठे तेहनारे, स्नेहथी जीव बंधाय ॥ ज्ञानावरणादिक करमना,  
 आठ प्रकारज थाय ॥ हो जविया ॥ १७ ॥ प्रकृति कहिये कर्म

देवने, स्थिति काखनुं मान ॥ कर्म तणो विपाक शुभाशुभ, ते अनु-  
जव रस जाण ॥ हो जवियाण ॥ १८ ॥ पुद्गल वर्गणा आत्म प्रदेशे,  
बंधे प्रदेशनो बंध ॥ आत्म रमण करि कर्म उठेदो, टाळि अनादि  
कुबंध ॥ हो जवियाण ॥ १९ ॥ मूल प्रकृति आठज जाणो, उत्तर  
एकसय अरुयाली ॥ ज्ञानावरणनी पंचज कहिये, दरशन नवविध  
जाली ॥ हो जवियाण ॥ २० ॥ शाता अशाता दोय वेदनी, मोहनि  
अष्टावीश ॥ अंतरायनी पंच प्रकारे, आयु चार जगीश ॥ हो  
जवियाण ॥ २१ ॥ गोत्र ऊंच नीच दोय प्रकारे, नामकर्मनी त्राणुं - ॥  
सत्ताए एम दाखी श्रुतमां, इगसय वीश बंध मानुं ॥ हो जवियाण  
॥ २२ ॥ उदय होय एकसय वाविश, एम दाखी जगदीश ॥ कर्म  
सत्ता इणि शुद्धातम लही, विलसो स्वगुण जगीश ॥ हो जवियाण  
॥ २३ ॥ कर्मबध पररमणथो होवे, निज रमणे शिव लहिये ॥ शिवसंगे  
रंगे आनंदे, मनसुख शिवघर रहिये ॥ हो जवियाण ॥ २४ ॥

### ॥ दोहरा ॥

स्यूल स्वरूप कहुं कर्मनुं, कहुं कहुं सूक्ष्म रूप ॥ सहजानंद अज्या-  
सथी, आतम सिद्ध स्वरूप ॥ १ ॥

॥ ढाल ( १९ ) ओगाणीशमी ॥ एसो कर्म अतुल बलवान जग-  
तकुं पीरु रह्यो ॥ ए राग ॥

एसो कर्म अतुल बलवान, जगत जीय पीड रह्यो ॥ कोई बंधे तत्त्व  
अजाण, पुद्गल रस कीरु रह्यो ॥ ए आंकणी ॥ निश्चय राग विरोध-  
यीरे, बंधे अडविध कर्म ॥ आतम रमणे आतमारे, हरे कर्मना मर्म  
॥ जगतण ॥ १ ॥ निज ज्ञायकता नवि लखीरे, देखत ज्ञेय अनेक ॥  
ममत करि परज्ञेयमारे, शुध पद चूढ्यो ठेक ॥ जगतण ॥ २ ॥ ममता  
वशार्थी ऊपज्यारे, राग रोष बहु दोष ॥ कर्म वर्गणा ग्रहणथीरे, वध्यो  
कर्मघन पोष ॥ जगतण ॥ ३ ॥ सिद्ध समाधिमय सदारे, जे जाण्ये

निजरूप ॥ दरशन ज्ञान चरणमयीरे, रम्य रमण सुखरूप ॥ जगत०  
 ॥ ४ ॥ व्यवहारे पंचास्त्रवेरे, कर्म वर्गणा आय ॥ रमतां पुद्गल जाव-  
 मारे, अष्ट कर्म बंधाय ॥ जगत० ॥ ५ ॥ ज्ञान विना ममता रहेरे,  
 ममतार्थी मिथ्यात ॥ अविरति प्रगटे तेहथीरे, प्रमाद कषाय विख्यात  
 ॥ जगत० ॥ ६ ॥ जोग चपलता तेहथीरे, पुद्गल स्नेह विकार ॥  
 कर्मबंध तेथी कशीरे, जमे चउगति कंतार ॥ जगत० ॥ ७ ॥ शुजाशुज  
 विकल्पथीरे, लहि निवृत्ती न लेश ॥ ज्ञानादिक चल मल हुवारे,  
 जोगत बहुविध क्लेश ॥ जगत० ॥ ८ ॥ ज्ञानसुधारस पानथीरे, सकल  
 विकल्प विलाय ॥ डढ समता समजावमारे, अष्ट करम दाय थाय  
 ॥ जगत० ॥ ९ ॥ ज्ञान दर्शनावरणनीरे, वेदनी ने अंतराय ॥ तिस  
 कोडाकोमी सागरूरे, स्थिति कही जिनराय ॥ जगत० ॥ १० ॥ सित्तेर  
 कोमाकोडी मोहनीरे, तेत्रिश सागर आय ॥ नाम गोत्र दोय जाणि-  
 एरे, वीश कोडाकोमी थाय ॥ जगत० ॥ ११ ॥ ए उक्कोस स्थिति कहीरे,  
 वेदनी मुहूरत वार ॥ नाम गोत्र अरु मुहूर्तनीरे, जघन्य स्थिति मन  
 धार ॥ जगत० ॥ १२ ॥ पंच कर्म अंतमुहूर्तनीरे, जघन्य स्थिति कही  
 एह ॥ शुद्ध स्वजावाचरणथीरे, स्थिति रस ठेदो एह ॥ जगत० ॥ १३ ॥  
 मोहनी कर्म तणी स्थितिरे, सामान्ये कही जेह ॥ सित्तेर कोमाकोमी  
 सागरूरे, कहुं विशेषे तेह ॥ जगत० ॥ १४ ॥ चालिश कोडाकोडी  
 सागरूरे, स्थिति ठे सोल कषाय ॥ पुरुष हास्य रति तोननीरे, दश  
 कोडाकोडी थाय ॥ जगत० ॥ १५ ॥ जय शोग अरति तथारे, दुगंष्टा  
 नपुवेद ॥ विश कोमाकोडी सागरूरे, उक्कोस स्थितिनो जेद ॥ जगत०  
 ॥ १६ ॥ पंदर कोमाकोमी सागरूरे, नारिवेद स्थिति होय ॥ मिथ्या-  
 मोह तणी कहीरे, सित्तेर कोडाकोमी जोय ॥ जगत० ॥ १७ ॥ सम-  
 कित मिश्रमोहनी तणोरे, होय न बंध कदाय ॥ मिश्रमोहनी उदय  
 तोरे, अंतरमुहूरत थाय ॥ जगत० ॥ १८ ॥ साधिक ठासठसागरूरे,

उदय समकितमोह ॥ निश्चय आतम ध्यावतांरे, मोहनी होय विवोह ॥  
 ॥ जगत० ॥ १९ ॥ घनघाती चळ कर्मनोरे, अशुज कटुक अनुजाग ॥  
 चार अघातीनो कहोरे, शुज अशुज रस लाग ॥ जगत० ॥ २० ॥ मति  
 श्रुंत अवधि मन तथारे, निरमल केवलनाण ॥ पंच प्रकार ठे ज्ञान-  
 नारे, तिन विपरीत अनाण ॥ जगत० ॥ २१ ॥ चक्षु अचक्षु ओहि-  
 नेरे, केवलदरशन होय ॥ निद्रा निद्रानिद्रा कहीरे, श्रीजी प्रचला  
 जोय ॥ जगत० ॥ २२ ॥ प्रचलाप्रचला चोथी कहीरे, थीणरु पंचमि  
 जाण ॥ सहु मलि दरशनावरणारे, ए नव जेद प्रमाण ॥ जगत०  
 ॥ २३ ॥ शाता अशाता वेदनीरे, मोहनि दोय प्रकार ॥ पणवीश चारित्र  
 मोहनीरे, दरशनमोह प्रय धार ॥ जगत० ॥ २४ ॥ कषायमोहनी  
 सोल ठेरे, नोकषाय नव जाण ॥ नरक तिरिय मनु देवनुरे, आयु चार  
 प्रमाण ॥ जगत० ॥ २५ ॥ पिंरु प्रकृती चौदनारे, पासठ जेद ते थाय ॥  
 त्रस आवर दश दश मळेरे, वीश जेद चित्त लाय ॥ जगत० ॥ २६ ॥  
 प्रत्येक प्रकृती आठ ठेरे, सवि मलि त्राणुं थाय ॥ उंच नीच दोय गोत्र  
 ठेरे, दानादि पण अंतराय ॥ जगत० ॥ २७ ॥ द्रव्यथी पुद्गल वर्ग-  
 णारे, बंधे जीव प्रदेश ॥ जावे अशुरू उपयोगमारे, रागादि दोष विशेष  
 ॥ जगत० ॥ २८ ॥ जीव प्रदेश असंख्यमारे, प्रतिप्रदेशे जाण ॥ पुद्-  
 गल वर्गणा जाणिएरे, अनंतानंत प्रमाण ॥ जगत० ॥ २९ ॥ अज्ञानादि  
 टेव जेरे, तेह प्रकृति नाम ॥ एस आठे कम्मपयस्सिनोरे, जथावत  
 प्रकृती नाम ॥ जगत० ॥ ३० ॥ सम्यक चरण रमण करीरे, ठेदि कर-  
 मनुं मूल ॥ शिवसंपत्ति मनसुख लहेरे, सहजातम अनुकूल ॥ जगत० ॥ ३१ ॥

॥ दोहरा ॥

कक्षो कर्म अधिकार ए, वलि कहुं कोई विशेष ॥ आतम शक्ति  
 फोरवी, निज धन लहो अंशेष ॥ १ ॥ समिति गुंति आदि कहुं, संव-  
 रनो अधिकार ॥ जे सेवे मुनिवर सदा, पामे नवजल पार ॥ २ ॥

॥ ढाल ( १० ) वीशमी ॥ प्रथम जिनेश्वर प्रणमीए ॥ ए देशी ॥

आहार निहार विहारने, अरथे मुनिवर जाय ॥ हाथ सामातीन  
मांदि आलोकी आगे चले, जेम जंतू न हणाय ॥ १ ॥ आडु अवधुं  
देखे नहीं, मनमां ज्ञांति न कोय ॥ नहि चित्त राग विरोध बोध सुतनो  
सदा, जेम संजम डढ होय ॥ २ ॥ ज्ञाषा बोले विचारीने, राखी श्री  
जिन आण ॥ अलिक वचन नवि बोले क्रोधादिक वश थई, एवां होय  
सुजाण ॥ ३ ॥ दोष बेतालीश टालीने, आहारादि लीये शुरू ॥ लेत  
आहार चउ दोष तजी बैयालिश ईम, राखे संजम बुद्ध ॥ ४ ॥ संजम  
उपकरणो सवे, जोइ प्रमार्जी विशेष ॥ लेवे मूके अत्रांत प्राणिनी हाणी  
नहीं, कोइ प्रकारे रे लेश ॥ ५ ॥ परठवणा मल मूत्रनी, वलि आहा-  
रादिक कांय ॥ हाण जंतुनी होय न एम संजालता, उपयोगी चित्त  
मांय ॥ ६ ॥ सम्यक समिति पंच ए, राखे मुनिवर शुरू ॥ संजम कारण  
देह नेह विण साचवे, वरते न जीव विरुद्ध ॥ ७ ॥ मन वच काय  
त्रियोगनी, वारि चंपलता दूर ॥ गुप्त राखे संजममां चरण थीरता वधे,  
अनुजव रस जरपूर ॥ ८ ॥ विकल्प तजी समजावमां, ध्यान शुक्ल  
डढ धीर ॥ ध्यातां ड्रव्य प्रजाय अज्ञेद शुद्धात्मयो, मनसुख लहे  
जवतोर ॥ ९ ॥

॥ ढाल ( ११ ) एकवीशमी ॥ वेदनी कर्मना अगिआर परिसह विषे ॥

॥ हुं वारी धना तुज जाण न देश ॥ ए राग ॥

हुं अविनाशी आतमारे अप्पा, अमर अजर निर्दद, हुं निरजय  
एक चेतनारे अप्पा, अक्षय ज्ञानानंद सुज्ञानी अप्पा धारो सहज  
विवेक, ज्ञानानंदमय ठेक ॥ सुज्ञानी० ॥ ए आंकणी० ॥ १ ॥ दुर्धोवंत  
ते देह ठेरे अप्पा, देहथी जित्त हुं ठेक ॥ अदुधित गुणमय सदारे  
अप्पा, ए मुज टेक विवेक ॥ सुज्ञानी० ॥ २ ॥ ज्ञानामृत रस तृप्त तुंरे  
अप्पा, तृषावंत ठे देह ॥ म्हारुं न विणसे तेहथीरे अप्पा, हुं शांति

रस गेह ॥ सुज्ञानी० ॥ ३ ॥ ज्ञानानंद रसे जस्यो रे अत्मा, तृषातु-  
रता नवि होय ॥ तृषा लगी जे देहमां रे अत्मा, देह न म्हारी कोय  
॥ सुज्ञानी० ॥ ४ ॥ फरस रहित हुं आत्मा रे अत्मा, किम करि  
फरसे शीत ॥ फरस विना निरञ्जय सदारे अत्मा, उष्ण तपी नहीं  
नीत ॥ सुज्ञानी० ॥ ५ ॥ वज्रमयी मुज अंग ठेरे अत्मा शुरु असं-  
ख्य प्रदेश ॥ दंशें मशक आदि तणारे अत्मा, डंख न होय प्रवेश  
॥ सुज्ञानी० ॥ ६ ॥ मुज ज्ञायकतामा वसेरे अत्मा, लोकालोक अनत  
॥ देह उदय जे विचरवुरे अत्मा, चर्यो दुःख न संत ॥ सुज्ञानी० ॥ ७ ॥  
थाके दुःखे देह तेरे अत्मा, में जाण्यो तसु मर्म ॥ पर परिणति मा-  
हरी नहिरे अत्मा, में लह्यो आत्म धर्म ॥ सुज्ञानी० ॥ ८ ॥ ममता  
मुज एहनी नहिरे अत्मा, में त्याग्यो पर गर्व ॥ पुद्गल गुणपरजायनुं  
रे अत्मा, काम न वंछू सर्व ॥ सुज्ञानी० ॥ ९ ॥ संजम काज विहार  
ठेरे अत्मा, पर चिंता नहि मुज ॥ देह खेदथी जे विहे रे अत्मा, ते  
तो जाण अवृज ॥ सुज्ञानी० ॥ १० ॥ आत्म इव्यादि चठेरे अत्मा,  
शय्या माहरे एह ॥ पुद्गल शय्या देहनीरे अत्मा, त्यां माहरे इयो  
नेह ॥ सुज्ञानी० ॥ ११ ॥ तन दुःखे मुज दुःख नहींरे अत्मा हुं जा-  
णुं ते सर्व ॥ जेह दुःख कांई अन्यनेरे अत्मा, नहि मुज एहनो गर्व  
॥ सुज्ञानी० ॥ १२ ॥ जिहां तनु त्यां मल उपजेरे अत्मा, देहथी  
जिन्न हुं एक ॥ ज्ञायक रूपी हुं सदारे अत्मा, मल दुःख मुज नहि  
ढेक ॥ सुज्ञानी० ॥ १३ ॥ अजेदी अठेदी तुरे अत्मा, बंधबंधन  
मुज नांहि ॥ ताडन तर्जन देहनेरे अत्मा, अविनाशी पद मुज मांहि  
॥ सुज्ञानी० ॥ १४ ॥ रोगें रहित हुं आत्मा रे अत्मा, रोगी होय ते  
देह ॥ दरशन ज्ञान चरणमयीरे अत्मा, हुं निरोग गुणगेह ॥ सु-  
ज्ञानी० ॥ १५ ॥ फरस रहित मुज अंगनेरे अत्मा, नहि तृष्णादिकफोस  
॥ गुण अनंतमय हुं सदारे अत्मा, में लह्यो ज्ञान विलास ॥ सुज्ञानी०  
॥ १६ ॥ वेदनीकर्म उदय कलारे अत्मा, परिसह ए अगियार ॥



पण नहि आतम अंगमारे अप्पा, परिसहनो प्रचार ॥ सुज्ञानी०  
 ॥ १४ ॥ तजि ममता जेणे देहनीरे अप्पा, तस नहि परिसह ताप ॥  
 ज्ञान चरणमां मग्नतारे अप्पा, रहे अखंडित आप ॥ सुज्ञानी० ॥ १७ ॥  
 ए परिसह अगिआर तो रे अप्पा, जिनवरने पण होय ॥ पण नहि  
 मोहनीकर्म ठेरे अप्पा, वेदक जाव न कोय ॥ सुज्ञानी० ॥ १९ ॥  
 जाववेदना विण कदारे अप्पा, करवा परिसह दूर ॥ कवहु न इच्छे  
 चित्तमारे अप्पा, संजम रस जरपूर ॥ सुज्ञानी० ॥ २० ॥ परिसह  
 दुर करवा कदारे अप्पा, श्याने वंठे तेह ॥ ज्ञान चरण धन मग्नतारे  
 अप्पा, विलसे मुनि गुणगेह ॥ सुज्ञानी० ॥ २१ ॥ अचल अकंप सदा  
 रहे रे अप्पा, भीर वीर धरि ध्यान ॥ मनसुख शिवसंगे लहोरे अप्पा,  
 शाश्वत सुख सुजाण ॥ सुज्ञानी० ॥ २२ ॥

ढाल ( २२ ) बावीशमी ॥ अनिहारे दरशन दीपक निरमलोरे ॥ ए राग ॥

अनिहारे संवर अंबरमां रद्योरे, नवि देखे मुजने कोय ॥ जे दे-  
 खाय ते देह ठेरे, मुजथी तेह जिनज होय ॥ मोहनि मूढ जठेदिपरे,  
 यद् निमोही निरमाय, संजम श्रेणि निहालतारे, शिव संपत्ति सहज  
 लहाय ॥ मोहनि० ॥ ए आंकणी ॥ अनिहारे देह ढांकवा कारणेरे,  
 नहि मुज वंछनुं काम ॥ ज्ञान स्वरूपी हुं आतमारे, निज पद गुप्ता-  
 राम ॥ मोहनि० ॥ १ ॥ अनिहारे काम विकार तनमां रद्योरे, हुं  
 निःकामी निःशंक ॥ कामजोग ममता करे रे, ते नर अविवेकी रंक  
 ॥ मोहनि० ॥ ३ ॥ अनिहारे हाव जाव नौरि तणारे, देखी चित्त चले  
 अजाण ॥ हुं कामी शिवमार्गनोरे, शुद्ध निज गुण काम अमान  
 ॥ मोहनि० ॥ ४ ॥ अनिहारे रति अरति ते पुद्गल विषेरे, करे  
 अज्ञानी जीव ॥ नव नव पक्षाव उपजेरे, वळी व्यय होय सदीव ॥  
 मोहनि० ॥ ५ ॥ अनिहारे निश्चय ध्रुव अविनाशि तुंरे, दायक रूप एक  
 त्रिकाक्ष ॥ रति अरति नही मुजनेरे, पुद्गल परजाय निहाल ॥ मोहनि०

॥ ६ ॥ अनिहारे कठिण वचन कहे कोइ कदारे, करवो न घटे आ-  
 क्रोश ॥ ठोड्या राग वीरोधने रे, तो मुज किण वाते रोष ॥ मोहनि०  
 ॥७॥ अनिहारे वचन तेसर्व पुद्गल दशारे, वचन मुज फरसे न कोय ॥  
 वचन अगोचर आतमारे, वचन दुःख मुज नवि होय ॥ मोहनि० ॥८॥  
 अनिहारे आहारादि संजम अर्थथीरे, जाँचुं तुं हुं तजि मान ॥ विण  
 संजम काल अनतथीरे, बहुविध पाम्यो अपमान ॥ मोहनि० ॥ ९ ॥  
 अनिहारे जिन जेह जाव निपेधियारे, ते आदरु नहि कोई वार ॥ का-  
 लसग ध्यानमा थिर रह्यो रे, हुं न चलु जयथी लगार ॥ मोहनि० ॥ १० ॥  
 अनिहारे वसति आदि जे जे निपेधियुरे, नवि आदरुं कोई प्रकार ॥  
 हुं निशंकित चेतनारे. अक्षय निर्जय सुखकार ॥ मोहनि० ॥ ११ ॥  
 अनिहारे करे सत्कार कोई मुनि तणोरे, मुनि न करे लोच लगार ॥ चेतन-  
 ता सहु जीवनीरे, सरखी संग्रहण धार ॥ मोहनि० ॥ १२ ॥ अनिहारे  
 सात परिसह चारितमोहथीरे, दर्शनमोहनिथी अेक ॥ शंका कं-  
 खा जिन वचनमारे, टाली राखो दरश विवेक ॥ मोहनि० ॥ १३ ॥  
 अनिहारे आहारादिक अणलाजतारे, जाणे पुरव फल अंतराय ॥  
 जावलाब्धि दानादिक जावतोरे, रहे निजगुण मग्न सदाय ॥ मोहनि० ॥  
 ॥१४॥ अनिहारे तनुप्रज्ञा होय कोईनेरे, मनमांनवि माने खेद ॥ धैर्य  
 धरी सुत साधवारे, धारे मन अधिक उमेद ॥ मोहनि० ॥ १५ ॥  
 अनिहारे ज्ञानावरण उदये होवेरे, अज्ञान विविध प्रकार ॥ खेद  
 रहित नित आदरेरे, विनय वैयाच उदार ॥ मोहनि० ॥ १६ ॥  
 अनिहारे गुरु सुत आदि नित सेवतारे, तन्मय राखि श्रुतध्यान ॥  
 प्रगटे ज्ञानादिक गुण सवेरे, निरमल थिर अचल अमान ॥ मोहनि० ॥  
 ॥ १७ ॥ अनिहारे ज्ञानादि निज गुण उपयोगमारे, रहे अचल  
 धरि डढजाव ॥ परिसह ताप तेहने नहिरे, प्रगटे शुद्ध आत्म स्वजा-  
 व ॥ मोहनि० ॥ १८ ॥ अनिहारे धीर वीर थई शिवपद साधशेरे,

लहि श्रुत सिद्धांतनो सार ॥ मनसुख शीव कमला वरे रे, करशे  
जवजलदाधि पार ॥ मोहनि० ॥ १९ ॥

॥ ढाल ॥ ( २३ ) त्रेवीशमी ॥ नयरी महानकुंरुमां  
वसे रे, महारिद्धि रिखवदत्त नामरे ॥ ए राग ॥

परम क्षमागुण आदरोरे मुनि, श्री जिनशासन सार ॥ ड्रव्य  
जाव क्षमा धरिरे मुनि, लहिये जवजल पार हो मुनि लहिये जवजल  
पार ॥ १ ॥ अपराधीशुं पण कदारे मुनि, कोप न कीजे लेश ॥ परप-  
रिणति ममता तजिरे मुनि, तजि मद मान आवेश हो मुनि तजि०  
॥ २ ॥ विनय करी गुणवंतनो रेमुनि, लहिये ज्ञान अत्यंत ॥ पूर्णात्म  
गुण प्रगटशे रेमुनि, निरमल शक्ति अनंत हो मुनि निरमल० ॥ ३ ॥  
मन वच कायनी वक्रता रेमुनि, न करो कपट कदाच ॥ जाय त्यागशी  
प्रगटशे रेमुनि, समसुख अचल अजाय ॥ हो मुनि समसुख० ॥ ४ ॥  
समदरशी समचापीले रेमुनि, जगत जीव होय सीत ॥ निरज्य  
निराकुल सदा रेमुनि, नहि कोइनी होय चीत ॥ हो मुनि नहि० ॥  
॥ ५ ॥ धन विषय त्रीय आदिनो रेमुनि, लोच न कीजे लेश ॥ तजि  
स्पृहा पुद्गल तणि रेमुनि, राखो संजम अशेष ॥ हो मुनि राखो० ॥  
॥ ६ ॥ इछा मूर्छा कामना रेमुनि, नहि पुद्गलनी जास ॥ निरादंज  
निरलोचता रेमुनि, तोरे कर्मना पास ॥ हो मुनि तोरे० ॥ ७ ॥ दर-  
शन ज्ञान चरण गुणे रेमुनि, तृप्त रहो निशदीश ॥ विषय विकार  
इहा तजो रेमुनि, प्रगटे आत्म जगीश ॥ हो मुनि प्रगटे० ॥ ८ ॥  
खट खट बाह्य अच्यंतरे रेमुनि, तप तपि साधो सिद्धि ॥ इच्छा  
निरोधे तप करि रेमुनि, लहिये नित नव नीधि ॥ हो मुनि लहिये० ॥  
॥ ९ ॥ पण पण विषय अव्रत तजि रेमुनि, हणिये चार कषाय ॥ मन  
वच काया थिर करि रेमुनि, निरमल संजम पाय ॥ हो मुनि निरमल०  
॥ १० ॥ ड्रव्य जाव मृखा तजि रेमुनि, निज पर तत्त्व सुज्ञान ॥  
ड्रव्यादिक लखी राखिए रेमुनि, सत्यपणुं सुखखाण ॥ हो मुनि

सत्य० ॥ ११ ॥ रागद्वेष आदि सवे रेमुनि, दोष तजो निरमाय ॥  
 शौच रहो निज रूपमां रेमुनि, निजघर मंगल थाय ॥ हो मुनि निज०  
 ॥ १२ ॥ कंचन तृण तूप आदि ठे रेमुनि, पुद्गल वस्तु जेह ॥ मुनि  
 परिग्रह राखे नहि रेमुनि, अकिंचन गुण गेह ॥ हो मुनि अकिंचन०॥  
 ॥ १३ ॥ सहस्र अठदश जेदथो रेमुनि, तजिएं सर्व अवद्व ॥ अढार  
 हजार शिलांगथी रेमुनि, सेवो पूरण ब्रह्म ॥ हो मुनि सेवो० ॥ १४ ॥  
 दश यतिधर्म आराधीने रेमुनि, रत्नत्रयी करि शुरू ॥ शिवसुंदरि  
 मनसुख बरे रेमुनि, जगत जंतु अविशुद्ध ॥ हो मुनि जगत० ॥ १५ ॥

॥ ढाल ( १४ ) चोवीशमी ॥ इणि पेरे चंचल आउखुं

जीव जागोरे ॥ ए राग ॥

जे जे पुद्गल पज्जावा ॥ तुम जाणोरे ॥ ते सवि जाण अनीत ॥  
 तजो दूरध्यानोरे ॥ विणसे उपजे खिणखिणे ॥ तुम० ॥ तेहशुं केली  
 प्रीत ॥ तजो० ॥ १ ॥ गमता अणगमता क्षिणक्षिणे ॥ तुम० ॥  
 पुद्गल सवि परतंत्र ॥ तजो० ॥ श्रम करि राख्या नावि रहे ॥ तुम०॥  
 ते केम चाहे संत ॥ तजो० ॥ २ ॥ देह त्रियादिक वस्तुनो ॥ तुम०॥  
 बहुविध परिग्रह जेह ॥ तजो० ॥ तसु अधिकारी न आतमा ॥ तुम० ॥  
 तो किम कीजे नेह ॥ तजो० ॥ ३ ॥ ज्ञानादिक निज गुण तणो ॥  
 तुम० ॥ ठे अधिकारी आत्म ॥ तजो० ॥ निज अधिकार न सुंपीए ॥  
 तुम० ॥ वयरी जेह अनात्म ॥ तजो० ॥ ४ ॥ शरण नही ससारमां ॥  
 तुम० ॥ चरण विना कोइ ओर ॥ तजो० ॥ सद्गुरु पण व्यवहारथी  
 ॥ तुम० ॥ जीव शरणनो ओर ॥ तजो० ॥ ५ ॥ मरण कष्ट आदिक  
 थकी ॥ तुम० ॥ बालि नरकादिक दूख ॥ तजो० ॥ एहथी राखी  
 कोण दिए ॥ तुम० ॥ शुद्धातम थिर सुख ॥ तजो० ॥ ६ ॥ घर धन  
 स्त्री आदिक तणो ॥ तुम० ॥ राग न कीजे लेश ॥ तजो० ॥ पुद्गल

राग तजे थके ॥ तुम० ॥ लेश न होय कलेश ॥ तजो० ॥ ७ ॥ संस-  
 रतां संसारमां ॥ तुम० ॥ कस्या अनेक संबंध ॥ तजो० ॥ पत्नी पुत्री  
 पण थई ॥ तुम० ॥ पुत्री पत्नी संबंध ॥ तजो० ॥ ८ ॥ जज्जा ते जगिनी  
 थई ॥ तुम० ॥ जगिनी जज्जा होय ॥ तजो० ॥ मित्र शत्रु पण होय  
 ठे ॥ तुम० ॥ शत्रु मित्र तुं जोय ॥ तजो० ॥ ए ॥ दास होय ठे  
 शेठनो ॥ तुम० ॥ दास शेठपणुं पाय ॥ तजो० ॥ एम अनेक संब-  
 धमां ॥ तुम० ॥ किण पर राग कराय ॥ तजो० ॥ १० ॥ सुख दुःख  
 जोगे एकलो ॥ तुम० ॥ जन्म मरण करे एक ॥ तजो० ॥ नरक  
 निगोदमां एकलो ॥ तुम० ॥ सिद्धि लहे निज एक ॥ तजो० ॥ ११ ॥  
 दरशन ज्ञान पोते लहे ॥ तुम० ॥ चरण लहे निज एक ॥ तजो० ॥  
 राग तजो परपद तणो ॥ तुम० ॥ राखो एक विवेक ॥ तजो० ॥ १२ ॥  
 जीवथी जिन शरीर ठे ॥ तुम० ॥ धन कुटुंब परिवार ॥ तजो० ॥  
 परसंजोग विजोगनो ॥ तुम० ॥ कारण निश्चय धार ॥ तजो० ॥ १३ ॥  
 अन्यत्व जावना जावतां ॥ तुम० ॥ नाशे राग विरोध ॥ तजो० ॥  
 आत्मता आत्म लहे ॥ तुम० ॥ प्रगटे निरमल बोध ॥ तजो० ॥ १४ ॥  
 मलमूत्रादिक बहुविधे ॥ तुम० ॥ रोग अनेकनी खाण ॥ तजो० ॥  
 दूर्गधी वहेती सदा ॥ तुम० ॥ देह ठे एह निदान ॥ तजो० ॥ १५ ॥  
 सात धातु सप्त मल जरी ॥ तुम० ॥ पुरण अशुचीगेह ॥ तजो० ॥  
 दुःखदायक जाणी तजो ॥ तुम० ॥ चलमल देहनो खेह ॥ तजो० ॥  
 ॥ १६ ॥ समय समय परमणथी ॥ तुम० ॥ आस्त्रव डुविधनी  
 आय ॥ तजो० ॥ शुद्धात्म रमणे रमो ॥ तुम० ॥ संवर धारी सदाय  
 ॥ तजो० ॥ १७ ॥ पुद्गल जोग इहा तजी ॥ तुम० ॥ दाहि शुद्धात्म  
 तृप्ति ॥ तजो० ॥ करि निर्जरा कर्मनी ॥ तुम० ॥ लघुकाले लहो  
 मुक्ति ॥ तजो० ॥ १८ ॥ लोकाकाश प्रदेशमां ॥ तुम० ॥ वलि वलि जट-  
 क्यो जीव ॥ तजो० ॥ जन्म मरण बहुलां कस्यां ॥ तुम० ॥ जोग-

व्यां दुःख सदीव ॥ तजो ॥ १९ ॥ चञ्च पुद्गलपरिग्रहने ॥ तुम ॥  
 ग्रहिया पुद्गल सर्व ॥ तजो ॥ ढोढ्या मरणादिक करी ॥ तुम ॥  
 रखो नहि तुज गर्व ॥ तजो ॥ २० ॥ सम्यकदर्शन दोहिलुं ॥ तुम ॥  
 सुखज धन परिवार ॥ तजो ॥ विषयो देव मनुष्यना ॥ तुम ॥  
 विलस्या अनंतीवार ॥ तजो ॥ २१ ॥ तो पण तृप्ति नवि लही ॥  
 तुम ॥ नरजव पास्यो आज ॥ तजो ॥ समकित गुण निरमल करी  
 ॥ तुम ॥ साधो वंठित काज ॥ तजो ॥ २२ ॥ धर्म परम अरिहं-  
 तनो ॥ तुम ॥ साधो थड उजमाल ॥ तजो ॥ ज्ञान चरण निर्मल  
 करो ॥ तुम ॥ लहिये गुणमणिमाल ॥ तजो ॥ २३ ॥ तजी शुजा-  
 शुज कल्पना ॥ तुम ॥ करि परिणति गुण लीन ॥ तजो ॥ मनसुख  
 शिव शाश्वत लहे ॥ तुम ॥ आतम संपत्ति पीन ॥ तजो ॥ २४ ॥

ढाल (२५) पचीशमी ॥ पद्म प्रजु जिन तुज मुज आंतरूरे ॥ पराग ॥

मन वच काया थिर करीरे, तजि सावय डुवीध ॥ दरशन ज्ञान  
 आराधतारे, सामाझक होय सिद्ध ॥ चरण आराधिणरे, तजि पर परि-  
 णति चाल, शिवसुख साधिणरे ॥ ए आंकणो ॥ १ ॥ राग छेप तजि  
 आतमारे, आतम जावे लीन ॥ डढ थिरता शुद्ध जावमांरे, अनुजव  
 अमृत पीन ॥ चरण ॥ २ ॥ शुजाशुज तजि कल्पनारे, निर्विकल्प  
 एक रूप ॥ रम्य रमण शुद्धात्ममारे, निश्चय चरण अनूप ॥ चरण ॥  
 ॥ ३ ॥ प्रमाद वश हुआ दोष जेरे, ठेदि चरण करि शुद्ध ॥ वेदो-  
 पस्थापन धारियेरे, द्वितीय चरण थिर वुद्ध ॥ चरण ॥ ४ ॥ तजि  
 हिंसा तपस्या करेरे, विनय ने सुत अज्यास ॥ चरणप्रजाय विशो  
 धतारे, परिहारविशुद्धि विलास ॥ चरण ॥ ५ ॥ करि कपायने  
 पातळारे, रखो कदु सूक्ष्म लोच ॥ रमण शुधातम एकतारे, करे मुनी  
 थिर थोच ॥ चरण ॥ ६ ॥ जिहां सूक्ष्म संपराय ठे रे, वरते दशम  
 गुणगण ॥ थिरता आत्म स्वजावमांरे, शुक्ल प्रथम शुजध्यान

तेथी न अंतर हुंत ललना ॥ शिव० ॥ ५ ॥ सर्व संसारो जीवथी,  
 सिद्ध अनंतमे जाग ललना ॥ खायक परिणामी जावमां, जीवपणुं  
 गत राग ललना ॥ शिव० ॥ ६ ॥ थोडा कृत्रिम नपुंसक, संख्यगुणी  
 स्त्री सिद्ध ललना ॥ तेहथी संख्यगुणा सदा, पूरुष होये सिद्ध  
 ललना ॥ शिव० ॥ ७ ॥ सिद्धे जिनपद पामीने, ते जिनसिद्ध कहाय  
 ललना ॥ सिद्धया पुंडरिक आदि जे, अजिनसिद्ध सुख पाय  
 ललना ॥ शिव० ॥ ८ ॥ गणधर आदि सिद्धिया, तीर्थसिद्ध कहा  
 तेह ललना ॥ मरुदेवादिक जाणीए, अतिथिसिद्ध ठे एह ललना  
 ॥ शिव० ॥ ९ ॥ गृहिलिंगे जरतादि सिद्धिया, वटकलचिरिय पर-  
 लींग ललना ॥ साधु सकल जे सिद्धिया, जाणो तेह स्वर्लींग ललना  
 ॥ १० ॥ चंदनादि स्त्री सिद्धिया, गौतम आदि पुलिंग ललना ॥  
 गांगेय आदि सिद्धिया, कृत्रिम नपुंसक लिंग ललना ॥ शिव० ॥ ११ ॥  
 करकंरु नमि दुस्सुह आदि, प्रत्येकबुद्ध सिद्ध जाण ललना ॥  
 कारणथी प्रतिबूजीआ, शास्त्रे एम वखाण ललना ॥ शिव० ॥ १२ ॥  
 स्वयंबुध कपिलादिक, सिद्धया जीव अनेक ललना ॥ बुद्धबोहि गुरु.  
 बोधथी, सिद्धया राखि विवेक ललना ॥ शिव० ॥ १३ ॥ एक समय  
 एक सिद्धिया, वीरजिन आदि अनेक ललना ॥ एक समय बहु  
 सिद्धिया, रिषजादि सुविवेक ललना ॥ शिव० ॥ १४ ॥ नवमुं गुणठाणुं  
 नवि लह्युं, नपुंसक ने नर नार ललना ॥ लिंग तीन ए त्यां लगे,  
 आगे न लिंग विचार ललना ॥ शिव० ॥ १५ ॥ पूर्वपरुच्च तिन लिंग  
 ठे, नवमे ठेदे लिंग ललना ॥ ए त्रण लिंग रहित थया, सिद्धया  
 कहिए अलिंग ललना ॥ १५ ॥ लिंग जेद ए द्रव्यथी, जावथकी  
 जिनलिंग ललना ॥ सिद्धे जीव अनंत ए, नवि तिहां लिंगने शींग  
 ललना ॥ शिव० ॥ १७ ॥ सुत तत्त सार विचार ए, सदहशे नर नार  
 ललना ॥ अर्द्धा पुद्गल मांही ते, लहेशे जवदधि पार ललना ॥  
 ॥ शिव० ॥ १८ ॥ निज पर तत्त्व विचारतां, जाय विज्ञाव बलाय  
 ललना ॥ मनसुख शिवसंगे रहे, सादि अनंत सदाय ललना ॥  
 ॥ शिव० ॥ १९ ॥

॥ ढाल ( २८ ) अष्टाव्रीशमी ॥ एसो कर्म अतुल बलवान जगतकुं  
पीर रह्यो ॥ ए देशी ॥

एसे धीर वीर गंचीर परमपद सिद्ध किया, लही आतम तत्त्व  
अबाध मोहमल चूर दिया ॥ ए आंकणी ॥ जरतचक्रि खटखनो, राज  
जोग सुविशाल ॥ जोगी जावी खीण एकमां, अनित्य अशुचि गुण-  
माल ॥ श्रेणि आरूढ जया ॥ एसे ॥ १ ॥ लहि केवल बहु तारिया,  
लख पूरव लगे दौम ॥ लहि निरवाण सुख शाश्वतो, सादि अनत  
थिर एम ॥ स्वगुणरस लीन रखा ॥ एसे ॥ २ ॥ रिखवप्रजुनी नदनी,  
वाह्यी सुंदरी दोय ॥ तप चरण डढ आदरी, शिवपद लहि सुखि  
होय ॥ बिमल सुख जोगी रखा ॥ एसे ॥ ३ ॥ रिखवादिक  
चोविश जिना, राज सुजोग उदार ॥ जोगी चरण ग्रही लहुं, केवल  
ज्ञान श्रीकार ॥ परमपद सिद्ध किया ॥ एसे ॥ ४ ॥ तीरथ थापी  
तारिया, गणधर मुनी अनेक ॥ चउविध संघ चलावियो, दाखी स्वपर  
विवेक ॥ परमपद सिद्ध किया ॥ एसे ॥ ५ ॥ विचरी देश विदेशमां,  
तास्या बहु नरनार ॥ धन्य बाणी जिनवरतणी, जवि शिवसुख आधार  
॥ परम ॥ एसे ॥ ६ ॥ अन्यत्त्व जावना जावतां, मरुदेवा हुआ सिद्ध ॥  
निरमल निज नवनिधि लही, विलसे अनंती रिध ॥ परम ॥ एसे ॥  
७ ॥ अयोध्या नगरे हुआ, चक्री सागर नाम ॥ अजित जिनेश्वर  
समयमां, राजजोग सुखताम ॥ परम ॥ एसे ॥ ८ ॥ पुत्र मरण सुणी  
ऊपन्यो, अति सवेग विराग ॥ अर्जितनाथ समीपे ग्रहुं, चरण शरण  
बढजाग ॥ परम ॥ एसे ॥ ९ ॥ ममता त्यागी मूलगी, ठेयो मोह  
गयद ॥ आठ कर्मदल दूय करी, पाम्या परमानंद ॥ परम ॥ एसे ॥  
१० ॥ सावथ्यी नगरी धणी, चक्री भगवा नाम ॥ रमणी दिह  
अनित्य लखी, लीनो स्वगुण विराम ॥ परम ॥ एसे ॥ ११ ॥ चरण  
रमण डढ आदरी, पाम्यो त्रीजुं सर्ग ॥ नरजव लहि शुद्ध चरणश्री,



सहेशे पद अपवर्ग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १२ ॥ हस्तिनागपुर ऊपन्या,  
 चक्री सनतकुमार ॥ इंद्रे रूप वखाणियुं, जेनो अतुल अपार ॥ परम०  
 ॥ एसे० ॥ १३ ॥ अणसदहतो देव तिहां, आवी निरख्युं रूप ॥  
 कोमादिक अंतर लखी, चेताव्यो तेणे नूप ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १४ ॥  
 संवेग रंग नरनाहने, वलि उपन्यो वैराग ॥ रंगे चारित्र आदख्युं, तन  
 ममता करि त्याग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १५ ॥ तप तपतां लाब्धि घणी,  
 उपनी मुनिने ताम ॥ इंद्रे धैर्य वखाणियुं, आव्यो देव तेणे ठाम ॥  
 परम० ॥ एसे० ॥ १६ ॥ करुं परिक्षा एहनी, इम चिंती मन मांझ ॥  
 वैद्य वैद्य पोकारतो, आव्यो मुनि ठे ज्यांय ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १७ ॥  
 मुनि कहे रोगि तन मुज नहीं, पण ठे रोग विज्ञाव ॥ तेह मिटावा  
 शक्ति तुज, दिशे न ईस्यो प्रज्ञाव ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १८ ॥ इम  
 कहि शुंकथी आंगली, करि चोपडी कोइ अंग ॥ कोरु वरण मटिने  
 हुवो, निरमल कंचन रंग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १९ ॥ स्पृहा नहीं जस  
 देहनी, अवर स्पृहा नहि तास ॥ धैर्यवंत मुनि धन्य ते, वरते ज्ञान  
 विलास ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २० ॥ धैर्यवंत देखी मुनो, अति विस्मि-  
 त हुयो देव ॥ वंदि नमी मुनिराजने, देव गयो ततखेव ॥ परम० ॥  
 एसे० ॥ २१ ॥ चरण रमण तपस्या करीने, विचरे आतम जाव ॥  
 अंते संलेखन करी, आयु मास रह्युं जाव ॥ परम० एसे० ॥ २२ ॥  
 सनतकुमारमां ऊपन्यो, विलसे दिव्य सुजोग ॥ महाविदेहे सिद्धो,  
 धारी संयम योग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २३ ॥ शान्ति कुंथु अर च-  
 क्रिए, त्यागि सकल जवजोग ॥ परपरिणति ममता तजी, लीना निज  
 गुण जोग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २४ ॥ महापद्मचक्रि नवम हुयो,  
 लहि संवेग विराग ॥ संजम साधि सुगति लही, आयो जवजल  
 थाग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २५ ॥ चक्रिहरिषेण कांपिलपुरे, पुरव  
 पुण्य रिद्धि जोग ॥ पांम्यो विलसे सुख घणुं, एक दिन हुयो उपयोग

॥ परम० ॥ एसे० ॥ १६ ॥ ए संसार असार ठे, अनित्य सज्जन रिद्धि  
सर्व ॥ अशुचि जरी एह देहनो, कहो कीम कीजे गर्व ॥ परम० ॥  
एसे० ॥ १७ ॥ रंगे सवेगे वध्यो, लीधुं चरण उदार ॥ केवल लहि  
मुक्ति वरी, पान्यो जवदधि पार ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १८ ॥ राजगृहीमां  
ऊपन्यो, जयचक्री गुणवंत ॥ तृप्ति न देखी जोगथी, चेत्यो तेह  
महत ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १९ ॥ लाहि समकित संजम ब्रह्म, धीर  
वीर गंजीर ॥ आठ करम मल द्य करी, पान्यो जवजल तीर ॥  
परम० ॥ एसे० ॥ २० ॥ अष्टम सुजुमचक्री थयो, करि अति राज्य-  
नो लोच ॥ सिधु कुवो गयो सातमी, नरक जिहां दुःख दोच ॥  
परम० ॥ एसे० ॥ २१ ॥ द्वादशम चक्री हुयो, ब्रह्मदत्त जल नाम ॥  
जोगातुरता वश पड्यो, चित्त न आव्युं ठाम ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २२ ॥  
पूर्व मित्र मुनि उपदिश्यो, पण नवि वूझ्यो लेश ॥ पढ़ोच्यो सानमी नर-  
कमां, जोगे विविध कलेश ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २३ ॥ गणधर वीर  
जिणंदना, वेद वादी अगीश्वार ॥ मान ठेली मद म्हेलिने, आप  
हुआ अणगार ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २४ ॥ बलि पुंरुरिकादिक मली,  
चौदशे बावन धार ॥ श्री जिनशासन प्रेरता, करता बहु उपकार ॥  
परम० ॥ एसे० ॥ २५ ॥ चोविश जिनना ए सवे, सिद्धया प्राकम-  
फोर ॥ सादिअनंतु सुख लहुं, मनसुख शाश्वत ठोर ॥ परम० ॥  
एसे० ॥ २६ ॥

॥ ढाल ( १९ ) ओगणत्रीशमी ॥ कराकन दराखनरो

जावे ॥ कराकन० ॥ ए राग ॥

मोहमल खायक करि जटकोरे ॥ मोह० ॥ अष्ट कर्म  
दल फोज ध्यान धिर राखोने पटको ॥ ए आंकणी ॥  
चंपा नयर सोहामणुं जीहो, श्रेणिकराय सुजाण ॥ धारणी देवी

तस घरे जीहो, शीलरूप गुणखाण ॥ मोह० ॥ १ ॥ तस कूखे अति  
 पुण्यथी जीहो, उपन्यो मेघकुमार ॥ जोवन वय पामी करि जीहो,  
 विलसे जोग उदार ॥ मोह० ॥ २ ॥ वीरजिणंद समोसरया जीहो,  
 गुणशिल चैत्य सोजार ॥ चोत्रीश अतिशय दीपता जीहो, जगतजंतु  
 हितकार ॥ मोह० ॥ ३ ॥ देशना सुणवा आवियो जीहो, मेघकुमार  
 तेणिवार ॥ वर्द्धमान जिन उपदिशे जीहो, सुत चरण जगसार ॥  
 मोह० ॥ ४ ॥ पंचास्त्रव करी जीवने जीहो, बंधे अरुविध कर्म ॥  
 चलगति जवकंतरमां जीहो, दूःख सहे विणधर्म ॥ मोह० ॥ ५ ॥  
 तजि आस्त्रव संवर ग्रहे जीहो, सेवे कारण तीन ॥ सम्यकदरशन  
 ज्ञानने जीहो, चरण शुद्धात्म अजिन्न ॥ मोह० ॥ ६ ॥ ए त्रण कारण  
 सेवतो जीहो, लहे जीव निरवाण ॥ ते माटे नरजव लही जीहो,  
 श्रोता थाओ सुजाण ॥ मोह० ॥ ७ ॥ इम निसुणी प्रभु देशना जीहो,  
 चेत्यो मेघकुमार ॥ अनुज्ञा मात पिता तणी जीहो, लेइ लीयो  
 संयम नार ॥ मोह० ॥ ८ ॥ संयारे सूते थके जीहो, मुनि पग फर-  
 सनुं दूःख ॥ मानी मनमां चितवे जीहो, महेल समो किहां सूख ॥  
 मोह० ॥ ९ ॥ पूढी वीर जिणंदने जीहो, जाइश घर परजात ॥  
 निज घरमां रहेतां थकां जीहो, होय नहीं उपघात ॥ मोह० ॥ १० ॥  
 सूरज जगे आविने जीहो, वीरजिनने कहे एम ॥ जो मुजने अनुज्ञा  
 दीयो जीहो, तो घर जाऊं केम ॥ मोह० ॥ ११ ॥ वीर कहे मेघा  
 सुणो जीहो, पूर्वे तुं गज एक ॥ दावानल वनमां लग्यो जीहो, दुखि-  
 या जीव अनेक ॥ मोह० ॥ १२ ॥ पग उपादि खणतां थकां जीहो,  
 ससलो आव्यो एक ॥ तुज पग स्थाने ते रह्यो जीहो, दया राखि तें  
 विवेक ॥ मोह० ॥ १३ ॥ त्रण दिनमां दव उपशम्यो जीहो, गयो  
 ससलो निज थान ॥ पण तुज पग अटकी रह्यो जीहो, पाम्यो दूःख  
 अमान ॥ मोह० ॥ १४ ॥ एम केइ तीरग जवविषे जीहो, राखि दया  
 तें धीर ॥ साधु चरणथी दूमणो जीहो, केम हुओ तुं अधीर ॥

मोह० ॥ १५ ॥ एम जिन वचन सुणी लह्यो जीहो, अति डढ चित्त  
सवेग ॥ चरणे थिर परिणति करी जीहो, राख्यो एक विवेक ॥  
मोह० ॥ १६ ॥ गुणरत्नसंवत्सर आदरी जीहो, संलेखन एक मास  
पूर्णायु करि ऊपन्यो जीहो, विजयविमाने खास ॥ मोह० ॥ १७ ॥  
वज्रीश सागर आयुमां जीहो, दिव्य जोग सुविलास ॥ विलसी  
पूरण आच्छे जीहो, महाविदेह नर वास ॥ मोह० ॥ १८ ॥ चरण  
लही तिहा सिद्धशे जीहो, मेघकुमरनो जीव ॥ आठ कर्ममल दाय  
करी जीहो, लहेशे शाश्वत शीव ॥ मोह० ॥ १९ ॥ आठ वरस वयमां  
लियो जीहो, अतिमुक्ते संजम जार ॥ पत्र नाव करि नदी विषे जीहो,  
खेले बाल अणगार ॥ मोह० ॥ २० ॥ थिविरे रमतो देखियो जीहो  
कहुं वीरजिनने एम ॥ शिष्य तुमारो सिद्धशे जीहो, अथवा होशे  
केम ॥ मोह० ॥ २१ ॥ वीर प्रभु कहे सिद्धशे जीहो, चरमशरिरी  
एह ॥ एहने तुम कांइ मत कहो जीहो, ठे एह गुणनो गेह ॥  
मोह० ॥ २२ ॥ एक दिन वीर जिनेश्वर जीहो, अतिमुक्ते कहे  
एम ॥ संजम धारी तुं थयो जीहो, दया न राखे केम ॥ मोह० ॥ २३ ॥  
वचन सुणी श्री वीरना जीहो, प्रतिक्रमतां बहु दोष ॥ शुक्लध्यान  
केवल लह्यु जीहो, चार अनंतां पोष ॥ मोह० ॥ २४ ॥ ठेदी आठे कर्मने  
जीहो, पाम्यो पद निरवाण ॥ मनसुख समजावे लहे जीहो, शाश्वत  
सूख अमान ॥ मोह० ॥ २५ ॥

॥ ढाल ( ३० ) त्रीशमी ॥

करकंरु नमिराजजी रे, निग्गइ डुम्मुह नरिंद ॥ कारणथी  
प्रतिवृत्तिया रे, धाखुं चरणानंद ॥ निज गुण रंग लाग्यो  
रंग लाग्यो चौल मजीठ, चरणे रंग लाग्यो ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ केवल  
लहि सिद्धि वख्या रे, एम केइ प्रत्येकबुद्ध ॥ वीरज फोरी सिद्धियारे,  
जगत जंतु अविबुद्ध ॥ निज० ॥ २ ॥ नमिराजा विदेहनो रे, करकंरु

देश कलिंग ॥ दुम्मुह देश पंचालनो रे, निग्गइ गंधारी ठींग ॥ निजण ॥  
 ॥ ३ ॥ दधिवाहन राजा सुतारे, चंदनवाला नाम ॥ ब्रह्मचारी वालक  
 षण्णरे, अहि चारित्र विराम ॥ निजण ॥ ४ ॥ गुरुणी बहु अज्जातणीरे,  
 बहु जविने आधार ॥ संजस साधि सिद्धियां रे, पास्यं जवजल पार ॥  
 ॥ निजण ॥ ५ ॥ रहेनेमी प्रतियूजिओरे, राजुल चरण महंत ॥ धीर  
 वीर प्राक्रम करीरे, आण्यो जवदधि अंत ॥ निजण ॥ ६ ॥ रहेनेमी  
 सिद्धि वस्यारे, ते राजुल उपकार ॥ राजुल वचने थिर थईरे, साध्यं  
 संजस सार ॥ निजण ॥ ७ ॥ सिद्धया जदायल रुपीरे, तप तपि निज  
 गुण दीन ॥ अनुजव रत्त आस्वादसारे, अष्ट कर्म करि लीण ॥ निजण ॥  
 ॥ ८ ॥ दश श्रावक श्री वीरनारे, आणंदादिक धीर ॥ परिसह तापे नवि  
 चट्यारे, धरि व्रत गुण गंजीर ॥ निजण ॥ ९ ॥ सोहस कट्ये जपन्यारे,  
 बलि लहेशे ते सिद्ध ॥ एस जे व्रत जे पालशेरे, ते पामे नवनिद्ध  
 ॥ निजण ॥ १० ॥ अनुत्तर वाली दश हुवा रे, श्री जिन धर्म पसाय ॥  
 व्रत धारी दश सिद्धियारे, वीरज फोरी असाय ॥ निजण ॥ ११ ॥  
 एस अनेक सिद्धि वस्यारे, पुरुष पराक्रम कीध ॥ तजि प्रमाद व्रत  
 आदरे रे, ते पामे निज रिद्ध ॥ निजण ॥ १२ ॥ सिद्धया सिद्धे-सिद्ध-  
 शेरे, समगुण सेवे जेह ॥ परमज्ञान मनसुख लहीरे, शिव संगे रहे  
 तेह ॥ निजगुण रंग लाग्यो ॥ १३ ॥

॥ कलश ॥

गायो गायोरे में तत्त्व सुधारस गायो ॥ निजपर तत्त्व लहुं  
 जेणे जगमां, चरण लही शिव पायो ॥ परमानंद विदास  
 प्रगट करि, पूरण ब्रह्म समायोरे ॥ में तत्त्वण ॥ १ ॥  
 “दाहोद” श्रावण शुक्ल दशमे दिन, आनंद हरख वधायो ॥  
 “कर्पूरां वाई” आग्रहथी, ए अधिकार वनायोरे ॥ में ॥ २ ॥

खीपी मदद करी “शाह गीरधर,” निजपर हेत उपायो ॥ संघ  
सकल मंगल शिव कारण, जणजो गुणजो सदायोरे ॥ में ॥ ३ ॥  
जबलग सिद्ध समाधि विलसे, तबलग रहो ए ग्रंथो ॥ जविजन तत्त्व  
अन्यास करीने, वत्तो वर शिव पंथोरे ॥ में ॥ ४ ॥ श्रोगणीश पांस-  
ठ बुद्ध बुद्धि लखि, शिवमग प्रेरण काजे ॥ मनसुख समजावे शिव  
संगे, विलसे सदा शिवराजेरे ॥ में ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥ श्रीरस्तुः ॥



२१० विंशति विहरमान जिनस्तवनानि बालावबोध सहित.

अर्थः—सहज अनंत सुख निधान शुद्धात्म परिणति, तेनो घात करनार मिथ्यात अज्ञान अने कषाय रुप अनादिकालना महान् शत्रु-ओने जेणे सम्यक्पराक्रम वने जीत्या ठे ते “ जिन ” मां वर अर्थात् प्रधान-शिरोमणि तथा शारीरिक अने मानसिक अनंत असह्य दुःखना हेतुजूनत आ ज्ञानक संसार समुद्रमां परित्रमण करी दुःखी थता दीन जीवोनुं परम करुणाज्ञाव वडे रक्षण करनार तथा अन्य जीवोने पण अहिंसानो उपदेश आपी तेओ पासे पण रक्षण करावनार तथा अबाध्य सिद्धांत वने समीचीन मोक्षमार्गनो उपदेश करी आत्मिक सहज स्वतंत्र परमानंदना दातार होवाथी “ स्वामी ” तथा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख अने अनंतवीर्यरुप आत्म लक्ष्मीना मालीक, देहातीत आत्मसत्ताजूमिमां निरंतर विहरमान हे श्री सीमंधर देव ! आपने समर्थ जाणी आप प्रति अत्यंत उलसित चित्ते नम्रज्ञावे विनंती करुंतुं के सरस संवर जलना प्रवाह वडे ज्ञानावरणादि कर्म रुप मल भोवाई जवाथी स्फटिक मणि समान अत्यंत शुद्ध केवलज्ञान दर्शनात्मक जेम आपनो स्वधर्म सर्वथा प्रगट—व्यक्त थयो ठे “ तेमज अमारो पण सत्तागते रहेसो (ज्ञानावरणादि कर्म वडे क्षित थएलो) लोकासोक प्रकाशक अनंत सुखनिदान आत्मधर्म संपूर्ण रीते प्रगट थाओ ” ए उक्त विनंती—प्रार्थना हे जगवंत ! अमो दीन उपर करुणाझट्टी करी अवधारो—चित्तमां धारो ॥ १ ॥

जे परिणामीक धर्म तुमारो, तेद्वो अमचो धर्म ॥ श्रद्धा जासन रमण वियोगे, वलग्यो विज्ञाव अधर्मरो ॥ स्वामी ॥ १ ॥

अर्थ—सर्वे अव्य “ उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् ” लक्षणवंत होवाथी प्रति समये परमज्ञाव अनुयायी नवा नवा पर्याये परिणमे ठे अर्थात् वर्तमान पर्याय तीरोजूनत थाय ठे अने नूतन पर्यायनो आवीर्णाव थाय ठे अने अव्य ध्रुव रहे ठे. तेथी आपनो आत्म अव्य, ज्ञान

दर्शन चारित्रादि अनंत शुरु पर्याय रूप निरंतर परिणमे ठे-सहज परमानंदना अनुभवमां निमग्नपणे वत्ते ठे तेमज अमारो आत्म डव्य पण कर्मोपाधि निरपेक्ष शुरु डव्यार्थिक नये ( शुरु संग्रह नये ) आपना सदृश सत्तावंत ठे “ जारिस सिध सहावो तारिस जावो हु सव जीवाणं ” तथापि अनादिथी कनकोपल न्याये अशुरु होवाथी शुरु परिणतिनी श्रद्धा ( प्रतीती ), ज्ञासन ( विज्ञान ), रमण-आचरण, स्थिरताना वियोगथी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र रूप अधमें परिणमे ठे अर्थात् आत्माथी परवस्तु जे पुद्गल डव्यथी बनेला विलक्षण धर्मवंत शरीरमां आत्मपणानी श्रद्धा करे ठे, तेनेज आत्म रूप जाणे ठे तेथी ते पौद्गलीक जावमां पोताना आत्म परिणामने स्थित करे ठे-तल्लीन करे ठे पटले पुद्गल डव्यमां इष्टानिष्ट कल्पना करी अनिष्टने दूर करवामां अने इष्टने प्राप्त करवामां तथा स्थिर राखवामां पोतानी आत्म परिणतिने निरंतर रोकी राखे ठे ॥ १ ॥

वस्तु स्वभाव स्वजाति तेहनो, मूल अभाव न थाय । पर विजाव अनुगत परिणतिथी, कर्म ते अवरायरे स्वामी॥वि०॥३

अर्थ-डव्य, अस्तित्व नास्तित्व स्वभाववंत होवाथी अन्य डव्यन्ते परिणाम तेमां कदापि काखे प्रवेश करी शके नहीं अने अस्तित्वपणे रहेला जे अनंत अन्वय गुणो तेमांथी कोइनो पण कोइ पण काखे अभाव थाय नहीं कारणके डव्य मात्र डव्यार्थिक नये नित्य ठे अने “ तद्भावाव्ययं नित्यम् ” एम नित्यनी व्याख्या श्री तत्त्वार्थ सूत्रमां प्रतिपादन करेला ठे तथा वली “ असौणं पविसंता, दिता ओगास मस मसस्स । मेवंताविय णिच्च, सग सग जावं ए विजहंति ” ए न्याय अनुसार आत्मांमां रहेला ज्ञान दर्शन



૨૨૦ વિંશતિ વિહરમાન જિનસ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

ચારિત્રાદિનો સમૂલ અજાવ થવાનો વિલકુલ અસંજવ છે તથા વલી પંચાસ્તિ દ્રવ્ય માત્ર ઊર્ધતા તથા તિર્યગ્પ્રચયવંત હોવાથી પણ તેમજ સિદ્ધ થાય છે. પરંતુ અનાદિ અજ્ઞાન વશે આત્મ પરિણતિને પરક-તૃત્વ, પરજોક્તૃત્વ, પરગ્રાહકત્વ, પરવ્યાપકત્વ, પરરમણતા, પરઆધારાધેયતા આદિ પરાનુયાયી પણે પ્રવર્ત્તાવવાથી શુદ્ધાત્મ પરિણતિ જ્ઞાનાવરણાદિ દુષ્ટ અષ્ટ કર્મવડે અવરાય છે—વ્યાધાત પામે છે એમ શુદ્ધ પરિણતિનો વિયોગ રહે છે ॥ ૩ ॥

જે વિજ્ઞાવ તે પણ નૈમિત્તિક, સંતતિ જ્ઞાવ અનાદિ । પરનિમિત્તે વિષય સંગાદિક, તે સંયોગે સાદિરે સ્વામી ॥ વિ ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ—મનોહ અમનોહ પુદ્ગલોક વિષયમાં ઇષ્ટાનિષ્ટ કલ્પના કરવાથી, ધન ધાન્યાદિ સચિત્ત અચિત્ત મિશ્ર પરિગ્રહમાં મમત્વ બુદ્ધિ ગ્રહણબુદ્ધિ કરવાથી આત્મા રાગ દ્વેષ રૂપ વિજ્ઞાવે પરિણમે છે તેથી તે વિજ્ઞાવ નૈમિત્તિક છે તથા સાદિ સાંત છે તથાપિ પ્રવાહે સંતતિ અનાદિનો છે. જેમ આપણે વર્તમાન સમયે એક પુરુષને જોશ્યે ઠિયે તે પુરુષ તેના પિતાવડે ઉત્પન્ન થયેલ છે તેથી તે આદિ સહિત છે અને તેનો નાશ પણ છે તેથી તે પુરુષ સાદિસાંત જાંગે છે પરંતુ તે પુરુષ તેના પિતાથી ઉત્પન્ન થયો છે તેમ તેનો પિતા પણ વલી તેના પિતાથી ઉત્પન્ન થયો છે એમ તેનો વંશ અનાદિ સિદ્ધ છે ॥ ૪ ॥

અશુદ્ધ નિમિત્તે એ સંસરતા, અત્તા કત્તા પરનો ॥ શુદ્ધ નિમિત્ત રમે જવ ચિદ્ધન, કર્તા જોક્તા ઘરનોરે સ્વામી ॥ વિ ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ—જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ ઉદય રૂપ અશુદ્ધ નિમિત્ત પામી અજ્ઞાન મિથ્યાત કષાય રૂપ અશુદ્ધ પરિણામે પરિણમી જવ સમુદ્રમાં સંસરણ—પરિવ્રમણ કરતાં આત્મા પરદ્રવ્યાદિકના કર્તાપણાનું મમત્વ, અજિમાન કરે છે અર્થાત્ મેં અમુક જીવને માણ્યો, અમુકને ઊગાણ્યો, અમુકને સુખી કર્યો, અમુકને દુઃખી કર્યો, અમુકને રાણ્યો, અમુ-

कने चलाव्यो तथा घटपटादिक में बनाव्या अथवा घर हाटादिकनो में नाश कख्यो, अमुक इष्ट पदार्थोंनो में लाज मेळव्यो, तेओने में माहरा जोगमां लीधा, तेउने में राख्या, दूर जवा नहि दीधा, अमुक वस्तु में शुच मनोइ करी, अमुक वस्तु में अशुच अमनोइ करी, एम हुं करुं तु, जविष्यतमा एम करीश ए आदि पुद्गल रूप त्रण योगनी क्रियामां ममत्व करे ठे एम अज्ञान वशे पर डव्यादिकनो कर्त्ता वनी पुनः ज्ञानावरणादि नवां कर्म बांधे ठे अने बली ते बांधेला कर्मना उदय काले पण उपर प्रमाणे वर्त्ती पुनः ज्ञानावरणादि कर्म बांधे ठे एम परना कर्त्तापणानु ममत्व करी निरंतर सात आठ कर्म बांधतो आ ससार समुद्रमां परिभ्रमण करे ठे अने जन्म जरा मरण तथा रोग शोक त्रय आदि अनेक दुःसह दुःखनो अमाप जार पोताना शिरउपर उपाडो ले ठे.

पण ज्यारे सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सम्यक्चारित्र रूप शुद्ध निमित्तमां रमण करे अर्थात् तेमां तल्लीन थाय, पोतानी आत्म परिणतिने तेमां स्थित करे, पर डव्यादिथी उदासिन्न वृत्ति धारण करे स्यारे पोतानाज स्वभावनो कर्त्ता जोक्तादि थाय, निर्मल प्रशमरतिनो विस्वास पामे अने राग स्नेहथी रहित वर्त्तवाथी कर्म रूप रज तेने स्पर्श करवा पामे नहि तथा पूर्वे बांधेला सचित्त कर्मनो दाय निर्जरा थाय ॥ ५ ॥

जेइना धर्म अनंता प्रगट्या, जे निज परिणति वरिया ॥ परमात्मजिन देव अमोही, ज्ञानादिकगुण दरियारे स्वामी ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्मानो परमजाव जे ज्ञान, तदनुयायी दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, कर्तृता, जोक्तृता, ग्राहकता, व्यापकता, रक्षणता, रमणता, आधारधेयता विगेरे अनंत स्वधर्मों जे अनादिकादिथी कर्ममलवृत्ते लित थएला हता—बाधकजावे परिणमता हता, ते शुक्लघ्याननी

२२२ विंशति विहरमान जिनस्तवनानि बाळावबोध सहित.

तिष्ठण आंच वळे कर्ममल जस्म थइ जवाथी संपूर्ण प्रगट थया  
अर्थात् निराबाध-स्वतंत्र पणे पोतपोताना कार्यजावे परिणमवा  
लाग्या एटले शुद्ध परिणति रूप अनुपम लक्ष्मीने वस्या-तेना  
स्वामी थया. तेज परमात्म जिनेश्वर देव, क्रोध मान माया लोभ  
आदि मोहनीय कर्मनी अछावीश प्रकृतिथी रहित तथा ज्ञानादिक  
गुणना दरिया अर्थात् ज्ञानादि गुणना अखूट निधान ठे एटले जेम  
दरियामांथी जल खूटे नहि तेम तेमनामांथी कोइ पण काळे ज्ञा-  
नादि गुणो-पर्यायो खुटवाना-क्षीण थवाना नथो, अनंतकाल सुधी  
एक सरखी रीते परिणम्यांज करशे ॥ ६ ॥

अवलंबन उपदेशक रीते, श्री सीमंधर देव । जजीये शुद्ध  
निमित्त अनोपम, तजीये जव जय देवरे स्वामी ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ-श्री सीमंधर देवमां साध्य पद पूर्ण पणे प्रगट होवाथी  
तेज पुष्ट-अनुपम निमित्त हेतु ठे ( साध्य साध्य धर्म जेमांदि  
होवेरे ते निमित्त अति पुष्ट, तथा च-पुष्ट हेतु जिनेंजोय,  
मोक्ष सद्भाव साधने ) तथा सर्वज्ञ अने वीतराग होवाथी  
आत्ममोक्षमार्गना साचा उपदेशक तथा सर्वे आत्मरिद्धि संपूर्ण  
पणे प्राप्त होवाथी परम आधार-जव समुद्रमां वूडता जव्य  
प्राणीयोने जहाज समान, जवाटवीमां सथ्यवाह समान ठे.  
न्याय पूर्वक एम सिद्ध होवाथी तेजनी जक्ति करीये अर्थात्  
तेमनी आज्ञा आपणा शिर उपर चढावीए-सन्मानीये. कष्टुं ठे के  
“ आणाकारी जत्तो, आणा ठेइउं अजत्तोत्ति ” माटे तेमनी  
आणा प्रमाणे वर्त्तीय. मिथ्यात, अज्ञान, कषाय, प्रमाद, आविरति रूप  
जयंकर जव जमणनी देवनो त्याग-परिहार करीये ॥ ७ ॥

शुद्ध देव अवलंबन करतां, परिहरीये परजाव । आत्म  
धर्म रमण अनुभवतां, प्रगटे आत्म जावरे स्वामी ॥ ८ ॥

अर्थ-जे अज्ञान कषाय विषय आदि दूषणोथी जरपूर ठे अर्थात् जे सर्वे ड्रव्यना त्रिकालवर्ती पर्यायोने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष पणे जाणी शकता नथी, पोताना आत्म ड्रव्यने पण सर्व नये प्रत्यक्ष पणे जाणता नथी तथा तेथी पोतानी आत्म रिद्धिथी परांगमुख होवाथी निरंतर जे विषय कषायने आधिन वर्त्ते ठे, चाह टाहमा प्रज्वलीत थड रहा ठे, जव समुद्रमां वूरेल ठे तेमां देवपणुं केम मनाय ? पण जे अज्ञान आदि समस्त अधर्म रुप दूषणोथी सर्वे नये मुक्त होवाथी परम निष्कलंक शुद्ध देव ठे. ते श्री सीमंधर स्वामीनुं शरण ग्रहण करता परड्रव्यनी ममता, ग्राहकता, रमणता आदि समस्त परजावनो परिहार-त्याग थाय अने ज्ञान दर्शन चारित्र रुप शुद्धात्म जावमां रमण करतां-तेमां तल्लीन यतां-तृप्त यतां-सतुष्ट यतां-तेनो आस्वादन अनुभव लेतां ज्ञानादि आत्म धर्म, कर्म लेपथी रहित-शुद्ध प्रगट थाय ॥ ७ ॥

आत्म गुण निरमल नीपजतां, ध्यान समाधि स्वजावे ॥

पूर्णानंद सिद्धता साधी, देवचंद्र पद पावेरे स्वामी० ॥८॥

अर्थ-शुद्ध साध्य सन्मुख सद्ध राखी ( यस्मात् क्रिया प्रति फलन्ति न जाव शुन्या ) धर्म शुक्लध्याननुं सेवन करतां तज्जन्य समाधिमां छीन यतां आत्म गुण निर्मल अर्थात् मल रहित-परमपवित्र थाय. एम पूर्णानंदमय सिद्ध पद साधी देवमां चंद्रमां समान अर्थात् देवाधिदेवपदने प्राप्त थडए ॥ ८ ॥

॥ अथ द्वितीय श्री युगमंधर जिन स्तवन ॥ नारायणी देशी ॥

श्री युगमंधर विनवुरे, विनतमी अवधाररे दयालराय ॥

ए पर परिणति रंगथीरे, मुजने नाथ उगाररे ॥ द० श्री० ॥९॥

अर्थ-प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विर-

१२४ विंशति विहरमान जिनस्तवनानि बाह्यावबोध सहित.

मण, मैथुन विरमण तथा परिग्रह संग्रह विरमण रूप पंचमहाव्रत  
तथा द्वांति, मार्दव, आर्यव, मुक्ति, तप, संयम, शौच, सत्य, अकिं-  
चन, तथा ब्रह्मचर्य आदि सर्वे धर्मोमां अनुवृत्ति धरावनार अहिं-  
सा-दया धर्म ठे. जेमां सर्वे धर्मनो समावेश थइ जाय ठे.  
उक्तंच-सव्वाजंवि नइजं, जह सायरंमि निवमंति । तह जग,  
वइ अहिंसिं, सवे धम्मा समिद्धन्ति ॥ तथा जेने सर्व मतावलं-  
बीजं स्विकारे ठे-सन्माने ठे “ अहिंसा परमो धर्म, हिंसा सर्वत्र  
गर्हिता ” परंतु जैन शिवाय अन्य मतावलंबीजं अहिंसा-दयामां  
वर्त्ती शकता नथी कारणके तेजं हिंस्य हिंसा तथा हिंसाना कारणेने  
यथार्थ संपूर्ण उल्लखता नथी.

सर्वज्ञ तीर्थंकर देव द्रव्यहिंसा तथा जावहिंसा एम हिंसाना  
वे प्रकार प्ररूपे ठे-पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय अने  
अनस्पतिकाय एम पंच स्थावरकायिक एकेंद्रि जीवो तथा वैन्द्रिय  
आदि त्रस जीवोनां पांच इंद्रियो, मनोबल, वचनबल, कायबल,  
श्वासोश्वास तथा आयुप्राण ए दश द्रव्यप्राणने मारवुं, कापवुं,  
ठेदवुं, दुःखववुं तथा तेनो वियोग करवो ते द्रव्यहिंसा ठे, पोताना  
द्रव्यप्राणनी हिंसा करवी ते स्वद्रव्यहिंसा अने अन्य जीवना  
द्रव्यप्राणनी हिंसा करवी ते परद्रव्यहिंसा ठे तथा ते कायमां  
ममत्त्व करी रहेखा जीवोना ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, उप-  
योग त्रिगेरे जावप्राणनो मिथ्यात, अज्ञान तथा कषाय वके घात  
करवो ते जावहिंसा ठे अर्थात् मिथ्योपदेशादिवके कोइ जीवना  
दर्शन गुणनो घात करी मिथ्यात्व रूप परिणमाववो, सम्यक्ज्ञानथी  
चूकावी अज्ञान रूप परिणमाववो तथा क्रमा गुणनो घात करी  
क्रोध रूप परिणमाववो तथा विनय गुणनो घात करी मान रूप परि-  
णमाववो तथा आर्यव ( सरलता ) गुणनो घात करी मायारूप परि-

ણમાવવો, મુત્તિ ગુણનો ઘાત કરી લોજ રૂપ પરિણમાવવો, એ વિગેરે તેની શુદ્ધ પરિણતિનો ઘાત કરી અશુદ્ધ પરિણામે પરિણમાવવો તે જાવહિંસા છે. તેમા પોતાના જાવપ્રાણની હિંસા કરવી તે નિજજાવ-હિંસા છે અને પરજીવના જાવપ્રાણની હિંસા કરવી તે પરજીવ જાવ-હિંસા છે અને મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કપાય, પ્રમાદ તથા યોગનું સેવન કરવું તે હિંસાનાં કારણો છે તે કારણો સેવવાથી હિંસા થાય છે કહ્યું છે કે “ કારણ જોગે કારજ નિપજેરે, એહમાં કોઈ ન વાદ । પણ કારણ વિણ કારજ સાધીએરે, તે નિજ મતિ ઝુન્માદ ” એમ સ્યાદ્વાદ નય યુક્ત જિન પ્રકૃપિત ડ્રવ્યહિંસા તથા જાવહિંસાના સ્વરૂપથી અજાણ તથા તેના કારણોથી અજાણ મિથ્યાદ્રષ્ટી જીવો એક સમર્થ માત્ર પણ અહિંસાજાવમાં વર્તી શકવાને અસમર્થ છે તથાપિ મોહમંદ્રમાં બેજાન થયેલા હિંસામાં વર્તતા બતાં હમે દયા પાઠીએ ઢીણ-દર્શાવુ ઢીણ એમ પોતાના જીવહામયથી ગરુડના તથા મનમાં કલુષના કરે છે પણ તેથી શું ? સાચી દયા પાઠ્યા શિવાય તેના પરમોત્તમ ફલ મોહ સુખને પામી શકે નાહિ

પણ જે સ્યાદ્વાદ નય યુક્ત જિન પ્રકૃપિત ડ્રવ્યહિંસા તથા જાવહિંસાના સ્વરૂપનું તથા તેના કારણોનું સમ્યક્જ્ઞાન ધરાવે છે-જે પરમોત્તમ ફલના હત્સક છે, હિંસાનું ફલ જે જવવ્રમણ તેથી હદિમ્ન-જયજીત છે એવા સમ્યક્દ્રષ્ટી જીવોજ અહિંસામાં વર્તી શકવાને સમર્થ છે “ ( પઠમં નાણં તર્હ દયા ) ” જે જે અંશે અહિંસાજાવમાં વર્તે છે તેને તેટલા અંશે અહિંસક કહિયે માટે ચોથા ગુણસ્થાનથી માંની ઉપલા ઉપલા ગુણસ્થાનોમાં અહિંસકદશાનય પ્રમાણ અધિકી અધિકી વર્તે છે પણ હે જગવંત ! આપ હિંસાના સર્વે કારણોથી દૂર વર્તી હોવાથી સર્વોત્કૃષ્ટ તથા સર્વદા અહિંસક જાવમાં વર્તો ઠો, રાગ દ્વેષ રહિત હોવાથી સર્વે જીવો ઉપર એક સરસી રીતે દયા રાખોઠો, તેથી સર્વે

३३६ विंशति विहरमान जिनस्तवनानि वाळावबोध सहित.

दयालु जीवोमां आप राजा समान शिरोमणि ठो, तेथी हे दयालु-  
राय धीयुगमंधर स्वामी ! कर्ण निधान तथा समर्थ जाणी आप प्रति  
विनंती-उचारुं तुं कारणके दयालु तथा समर्थ होय तेज सेवकनी  
विनंति मनोर्थने परिपूर्ण करे माटे मुज सेवकनी विनंती करुणा जावे  
चित्तमां धारी—“ ए परपरिणति रंगथी मुजने नाथ उगार”—हे नाथ !  
हे स्वामी ! अनादि विज्ञाव वशे पुद्गल पर्याय जे शरीरादिक तेमां  
अहंपणुं मानी ते उपर अत्यंत राग करी तेमां तद्धीन थड रह्यो तुं  
तथा ते शरीरादिकने प्रशस्त—हितकारी कुटुम्बी जनो मित्रवर्ग  
नोकर चाकर तथा धन धान्य मणि औषधी आवास आदि अनेक  
पुद्गल पर्यायोमां तथा पंचेंद्रिना अनेक मनोझ विषयमां राग वशे  
तद्धीन थड रह्यो तुं, तेने मेलववा राखवा माटे अनेक प्रयास करुं तुं,  
अनेक विकल्प जाल रचुं तुं, तेनी तृष्णाकूपी आगमां निरंतर प्रज्व-  
लित थाजुं तुं, तेनो वियोग थाय ते माटे जय जोगवुं तुं, तेना वियोगे  
शोक संताप आक्रंद विगेरेनो जोक्ता वनुं तुं, अने पोतानी सहज अ-  
नंत स्वतंत्र, अप्रथग् चूत स्वक्षेत्रवर्ती अविनश्वर सुख निदान आत्म  
परिणतिथी वियोगी रहुं तुं माटे हे जक्त वत्सल प्रभु ! एवी दुष्ट  
परपरिणतिना रंगथी मुजने हवे शीघ्रमेव उगारो ॥ १ ॥

कारक ग्राहक जोग्यतारे, में कीधी महारायरे, दयालराय ॥

पण तुज सरीखो प्रभु लहीरे, साची बात कहायरे, दया ॥ २ ॥

अर्थ—सर्वे द्रव्यो अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व अगुरुलघुत्व  
अने सत्त्व स्वभाववंत होवाथी पोताना गुणपर्यायोना कर्ता, ग्राहक,  
व्यापक आदिपणे पोतानी सत्ताचूजिमां सर्वदा वर्त्ते ठे, तथा वल्ली  
“क्षेत्र काल जावानाम् एक समुदायित्वं द्रव्यत्वम्” क्षेत्र काल  
जावनुं एक समुदायिपणुं ते द्रव्यत्व ठे माटे द्रव्य, क्षेत्र, काल, जाव  
परस्पर अजैद ठे—अप्रथग् चूत ठे तेथी कोइ द्रव्य बीजा द्रव्यना

क्षेत्र काल जावमां प्रवेश करवा सर्वथा असमर्थ ठे माटे निश्चय न-  
ये कोइ डव्य अन्य डव्यनो कारक कर्ता, जोक्ता, ग्राहक, व्यापक, आधार,  
आधेय विगेरे थइ शके नहि, तथापि जीवमां अनादि विज्ञाव स्व-  
ज्ञाव होवाथो हुं मिथ्यात अज्ञान वशे परपरिणति-पुद्गल पर्यायो  
विषे कर्ता, जोक्ता, ग्राहक, व्यापक आदि बुद्धि करी मारी आत्मीक  
स्वतंत्र रिद्धिथी वियोगी रह्यो पण हे युगमंधर स्वामी । आपने  
संपूर्ण नये पोताना परिणामना कर्ता, ज्ञाता तथा तेमांज रमण कर-  
नार तथा तेनोज आस्वादन-अनुभव लेनार होवाथी साचा प्रजु  
जाणी आप प्रति हुं मारी साचो कथा निवेदन करुं तुं ॥ २ ॥

यद्यपि मूल स्वज्ञावमेरे, पर कर्तृत्व विज्ञावरे ॥ दयाल-  
राय ॥ अस्ति धर्म जे माहरोरे, एहनो तथ्य अज्ञावरे ॥  
दयालराय ॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थ-अनादि कालथी जो के माहरा ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्म  
गुणमा परकर्तृत्वादि विज्ञावनो संश्लेष थयेलो ठे तेथी हुं अनादि-  
कालथी परकर्तृत्वादि विज्ञाव रूप परिणमुं तु तो पण सत्तागते रहेला  
माह. ॥ अस्ति धर्ममां-सामान्य स्वज्ञावमां खरेखर ते विज्ञावनो अ-  
ज्ञाव ठे कारण के सामान्य स्वज्ञाव सदा निरावरण ठे, माटे जो हुं  
माहरा अस्ति धर्म तरफ लक्ष आपुं तेने प्रगट करवा रुचि धरुं तो  
निश्चय कर्मजन्य उपाधि रूप विज्ञावनो समूल नाश करी संपूर्ण  
शुद्ध सुखनिधान अस्ति धर्मनो जोगी थाजं, सादिअनतकाल सुधी  
प अवस्थामा अवस्थित रहूं ॥ ३ ॥

पर परिणामिकता दशारे. लढि पर कारण योगरे, दया-  
लगाय ॥ चेतनता परगत थईरे, राची पुद्गल जोग रे,  
दयालगाय ॥ श्री० ॥ ४ ॥



३२७ विंशति विहरमान जिनस्तवनानि वासावबोध संहित.

अर्थ—ज्ञानावरणादि अव्यकर्म तथा जावकर्मना उदय वशे पर परिणामिक दशाने प्राप्त थयो तुं, अर्थात् पर अव्यना परिणामने पोतानो परिणाम मानुं तुं एटले मन वचन अने कायानी क्रियाने आत्म क्रिया मानुं तुं तेथी मारी चेतनता पर परिणाममां व्यापी—परगत थई—पुद्गल पर्यायोते जोगववामां राची—आसक्त थई—लीन थई—त्यांज स्थित थई तेथी आत्म परिणामनो जोग लेवा अवकाश मदयो नहीं ॥ ४ ॥

अशुद्ध निमित्त तो जरु अठेरे, वीर्य शक्ति विहीनरे ॥ द० ॥

तुं तो वीरज ज्ञानधीरे, सुख अनंते लीनरे ॥ द० ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ—आत्माने अशुद्ध परिणामे अर्थात् अज्ञान, मिथ्यात अने कषाय रुप परिणमवामां शुजाशुज कर्मोदय वने पुद्गल अव्य गुण पर्यायनो संबंध ते निमित्त ठे पण ते शुजाशुज कर्मोदय, जरु—चेतनता रहित तेमज वीर्य शक्ति रहित होवाथी तेठ आत्माने अशुद्ध परिणामे परिणमाववामां पोतानो भेले कारण बनवाने असमर्थ ठे, तथा कारण पद तो उत्पन्न पर्याय ठे माटे ज्यारे कर्ता कार्य साधवाधो रुचीवंत थइ तेने निमित्तमां वापरे त्यारे तेमां कारण पद उत्पन्न थाय ठे. “ए कारका कर्तृराधिना” जो आत्मा प्रमाद जावमां वत्ते तो ते शुजाशुज कर्मोदय अशुद्ध परिणामनुं निमित्त थाय पण पोते सचेत थइ पोताना शुद्ध कार्यनो कर्ता थाय त्यारे कारकचक्र सुलटे अने शुजाशुज कर्मोदये अशुद्ध परिणामे परिणमे नहि तो ते पुद्गलो निमित्त पण थइ शके नहि. जेम कुंजार घट कार्यनो रुचिवान थाय नहि, तथा दंरु चक्रादिने ते घट कार्य साधवामां वापरे नहि, तो दंरु चक्रादि तेवारे घट कार्यना निमित्त कहेवाय नहि. पण हुं अनादि विज्ञाव वशे राग द्वेषे परिणमवानी द्रढ देवधी ते पुद्गल जडमां कारण पद उत्पन्न करी अशुद्ध परिणामे परिणमं तुं, तेथी

आत्मिक शुद्ध कार्य करवामां आत्म बोधें अत्यंत हीन यह रक्षो तुं,  
अर्थात् अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुखरूप अनुपम आत्म व्य-  
क्तिधी रहित कंगास बनी अत्यंत पराधिन, दरिद्र-दयामणि अव-  
स्थाने जोगतुं तुं पण हे प्रजु । तमे तो अनंत ज्ञान वीर्यना परिपूर्ण  
पणायी-पूर्ण व्यक्तिधी सहज, अकृत्रिम, स्वतंत्र, एकांतिक, अंता-  
तीत, अव्यावाध आत्मीक सुखमां लीन-संतुष्ट-निमग्न यह रक्षा  
बो ॥ ५ ॥

तिण कारण निश्चय कखोरे, मुज निज परिणति जोगरोद ॥

तुज सेवाधी नीपजेरे, जांजे जव जय शोगरोद ॥ श्री ॥ ६ ॥

अर्थ-तेधी न्याय युक्त ज्ञानदृष्टिधी मने एवो निश्चय थयो ठे के  
हे जगवंत ! कर्म रूप रजधी सर्वथा निर्लेप स्फटीक समान तमारा  
संपूर्ण, निर्मल, पवित्र गुणोनुं सेवन करतां-जक्ति करतां माहरी आत्म  
परिणति रूप अवाध्य अखूट स्वतंत्र पूर्णानंदमय सहज आत्म  
संपदाना जोगनी मने प्राप्ति थशे तथा “जांजे जव जय सोग” अना-  
दि कालधी चार गतिरूप जवसमुद्रमां अज्ञान वशे अनेक दुःसह  
दुःखो तथा तज्जन्य जय, शोक, संताप, आक्रंद विगेरे सहुं तु, तेनो  
सहज लीलामात्रमा नाश थशे ॥ ६ ॥

शुद्ध रमण आनंदतारे, ध्रुव निस्संग स्वजावरे ॥ ७ ॥

सकल प्रदेश अमूर्त्ततारे, ध्यातां सिद्धि उपायरो ॥ ८ ॥

अर्थ-अचल, अवाधित, निरावरण, शुद्ध परमात्म पद रमण-अनु-  
जवजन्य आनंदने तथा पोताना ध्रुव अर्थात् पोताना अव्य क्षेत्र काल  
जावे सदा सत् (दव्व गुण समुदाज, खित्त ओगाह वट्टणा कालो।  
गुण पज्जाय पवत्ति, जावो निअ वत्थु धम्मो सो) अनंत अ-  
न्वय गुणनो पिक तथा निस्संग-सकल परजाव, परिग्रहधी अतीत

२३० विंशति विहरमान जिनस्तवनानि बाह्यावबोध सहित.

एवा आत्मज्ञावने तथा अलेशी, अस्पर्शी, अगंधी, अदुर्णी, अरसी, अक्रोधी, अमायी, अमानी, अलोची, अवेदी आदि अनेक व्यतिरेक गुणना समूहरूप सकल प्रदेश अमूर्ति पिरु आत्म द्रव्यने सर्वे पर-द्रव्यनी मूर्ताथी पोतानी आत्म परिणति वारी पोतानी आत्म जू-मिमां स्थित करी-लीन करी पोतानी सर्वे वीर्य शक्ति एकत्र करी एकाग्र चित्ते ध्यातां अमूर्त परमात्मपदनी सिद्धि थाय-ध्याता ध्ये-यनी एकता थाय ॥ ७ ॥

सम्यक तत्त्व जे उपदिश्योरे, सुणतां तत्त्व जणायरे ॥८॥

श्रद्धा ज्ञानेजे ग्रहोरे, तेहिज कार्य करायरे ॥८॥ श्री० ॥९॥

अर्थ-द्रव्यना सर्व पर्यायना ज्ञान विनाना एकांत वादीयो ( मि-थ्या वादीयो ) ( एकांते होइ मिथ्यतो ) ना विडंबनारूप जव ज्रमणना हेतुजुत दुर्नयथी परिपूर्ण अज्ञान जन्य सिद्धांतथी उपजता अज्ञानरूप अंधकारना समूहनो नाश करनार सकलनय तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणथी अबाधित स्याद्वाद युक्त, अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असंज्ञवादि सकल दूषणो रहित जीवादि तत्त्वोनुं सत्य स्वरूप प्रतिपादन करनार जिनेश्वरना परम कल्याणकारी वचनो श्रवण मनन निधिध्यासन करतां शंसय विपर्यय अने अनध्यवसाय रहित तत्त्व स्वरूपनुं सम्यक्ज्ञान थाय अने सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान युक्त जो आत्म स्वरूप जाणीये-ग्रहण करीये तोज परमात्म सिद्धिना साधक वनी शकीए. ज्यांसुधी आत्मद्रव्यनुं सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन थयुं नथी त्यांसुधी आदरेलुं चारित्र ते सम्यक् विशेषणने प्राप्त थइ शके नहि अने सम्यक्चारित्र विना कदापि काले मोक्षनी प्राप्ति थइ शके नहि. कहुं ठे के “ विरञ्चा सावइज्ञाउं, कषाय हीणा महव्वय धरावी । सम्मदिठी विहुणा, कयावि मुखं न पावन्ति ”

તથા “નયગમ ઝંગ પમાણેદિં, જો અપ્પા સાયવાય ખાવેણે ।  
મુણ્ઠ મોરલ્લ સલ્લં સમદિઠિ સો નેહ” ॥ ૬ ॥

કાર્ય રુચી કર્તા થયેરે, કારક સવિ પલટાયરે ॥ ૬૦ ॥

આતમ ગતે આતમ રમેરે, નિજ ઘર મંગલ થાયરે ॥ ૬૦ ॥ ૬૧ ॥

અર્થ—જ્યાંસુધી જીવ મિથ્યાત ગુણસ્થાને વર્તે છે—સમ્યક્દર્શનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી, ત્યાંસુધી અનાત્મ વસ્તુમાં આત્મવુદ્ધિ—અહંબુદ્ધિ માને છે અર્થાત્ પુદ્ગલ સ્વધોયી બનેલું ચૈતન્યશૂન્ય જે શરીર તેમાં લોલીજૂતપણે પરિણમિ પોતાનું આત્મ અંગ માને છે તથા તે શરીરને જે પ્રશસ્ત, હિતકારી પદાર્થો—સ્ત્રી ધન કુટુંબાદિને પોતાના હિતકારી માને છે, તેમાંનાં રાગરસે રીંકે છે, સંસાર ઝ્રમણ પરિપાટીને વધારે છે ( જો અપસત્થો રાગો, વદ્દઈ સસાર ઝમણ પરિવામી । વિસયા-ઇસુ સયણાઇસુ, ઈઠત્તં પુગ્ગલાઈસુ ) અને તે શરીરાદિને પોતાના સાધ્ય જાણી નિરંતર તેને સાધવા માટે અનેક પ્રયાસ કરે છે—તેનેજ પોતાનું કાર્ય જાણે છે એમ અજ્ઞાન બંશે પોતે પર કર્તૃત્વ જાણે પરિણમે છે તેથી કારકચક્ર શુદ્ધ સ્વજાવધી વિરુદ્ધ વાધકજાધે પરિણમે છે. પણ ય્યારે આત્મા યોગ્ય કારણ વડે સમ્યક્જ્ઞાનનો લાજ પામે, અનંત પરમાનંદમય સંપૂર્ણ સુખના હેતુ પરમાત્મ પદ રૂપ પોતાના શુદ્ધ સાધ્યને ઝંલેલે, ત્યારે પર સાધ્ય તરફથી અરુચી થાય અને પોતાનું શુદ્ધ સાધ્ય સાધવાની રુચી થાય, શુદ્ધ કાર્ય કરવાનો અજિ-લાપી થાય ત્યારે જે કારકચક્ર વાધકજાધે અર્થાત્ આત્માના જ્ઞાન દર્શન સુખ વીર્યનો ધાત કરવા રૂપ કાર્યે પરિણમતું હતું તે સાધક જાણે પટલે શુદ્ધ જ્ઞાન દર્શન સુખ વીર્ય સાધવા રૂપ પરિણમે પટલે આત્મા પોતાના શુદ્ધ પરિણામે વર્તે—તેમાં રમણ કરે—ત્યાજ સ્થિત થાય એમ યત્ના આત્માના સર્વે પ્રદેશે મંગલ થાય અર્થાત્ કર્મ રૂપ રજ ગણી જાય—અત્યંત સુખ નિબાનનો લાજ થાય ॥ ૬૧ ॥

૨૩૨ વિંશતિ વિહરમાન જિનસ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

ત્રાણ શરણ આધાર ઘેરે, પ્રજુજી જવ્ય સહાયરે ॥ ૬૦ ॥  
દેવચંદ્રપદ નીપજેરે, જિન પદકજ સુપસાયરે ॥ ૬૦ ॥ શ્રી ૦૨૦ ॥

અર્થ—હે પ્રજુજી ! આપ ચારે ગતિ રૂપ જવ ત્રમણના દુઃખથી ત્રાણ  
અર્થાત્ રક્ષણ કરનાર તથા મહાન્ દુઃખદાયી જ્ઞાનાવરણાદિ પ્રચંક  
અષ્ટ કર્મ શત્રુજીથી ડરતા જવ્ય પ્રાણીર્જને શરણ ઠો તથા જવ સમુ-  
દ્રમાં વૂરતા જવ્ય પ્રાણીર્જને હસ્તાવલંબન રૂપ ઠો તથા જવ્ય જીવોને  
મોહલક્ષ્મી વરવામાં પરમ સહાયજૂત ઠો, તેથી હે ગુણ સાગર !  
આપના નિર્મલ ચરણ કમલના પસાયથી દેવમાં ચંદ્રમા સમાન પર-  
માત્મ પદની પ્રાપ્તિ થાય એ નિર્વિવાદ છે ॥ ૧૦ ॥ ( સંપૂર્ણ )

॥ અથ તૃતીય શ્રી બાહુજિન સ્તવનં ॥ સંજવજિન  
અવધારીયે ॥ એ દેશી ॥

બાહુજિણંદ દયામયી, વર્તમાન જગવાન ॥ પ્રજુજી ॥  
મહાવિદેહે વિચરતા, કેવલજ્ઞાન નિધાન ॥ પ્રજુજી ॥ બા ૦ ॥ ૧ ॥

અર્થ—મહાવિદેહ ક્ષેત્રમાં વિહરમાન વર્તમાન જગવાન, સડણ પ-  
રુણ વિઠ્ઠસન ધર્મ યુક્ત પૌદ્ગલીક શરીરથી અત્યંત વિલક્ષણ મહાન્  
આત્મ સત્તાજૂમિમાં ( અર્થાત્ જે જૂમિમાં અન્ય કોઈ પણ દ્રવ્યનો  
પ્રવેશ થઈ શકે તેમ નથી તેથી બીલકુલ સંક્રાશ વગરની પરમ રમણીય  
સ્વતંત્ર એવી આત્મ સત્તાજૂમિમાં ) નિરંતર પોતાના પર્યાયોમાં પરિણમતા  
પોતાના ગુણ પર્યાયો સહિત સદા સત્ લક્ષણવંત હોવાથી વર્તમાન,  
આત્મીક અવિચલ અચંક લક્ષ્મીના સ્વામી હોવાથી જગવાન, સા-  
માન્ય કેવલીઓમાં ઇંદ્ર સમાન હે શ્રી બાહુસ્વામી ! આપ સર્વ પ્રદેશે

सर्व काले सर्व जावे दयामयी ठो अर्थात् आपना सर्वे प्रदेशयी हिं-  
साना हेतुनो अज्ञाव थएलो ठे तथा हवे ते हेतुनो समूल "क्षय  
होवाथी कोइ पण काले हिसकजावे परिणमनार नथी तथा ज्ञानादि  
सर्वे धर्मों सर्वे नये पूर्ण पवित्र थया ठे तेथी कोइ पण जाव हिसकजावे  
परिणमे तेमनथी. तेथी आप सर्वांगे सर्वोत्कृष्ट अनुपम दयान्ता जंडार ठो  
तथा जे ज्ञानमा जीवाजीव सर्वे अव्यो पोताना त्रिकालवर्ती सर्वे  
पर्यायो सहित प्रत्यक्षपणे जासे ठे उक्तंच तत्त्वार्थे—( सर्व अव्य  
पर्यायेसु केवलस्य ) एहवा केवलज्ञानना निधान के० अखूट  
खाण ठो. कारण के अव्य ते गुण पर्यायनुं जाजन ठे, ठतीपर्याय तथा  
सामर्थ्यपर्यायनो आधार ठे तेथी कोइ पण काले अव्य ते पर्यायथी  
हीण क्षीण थाय नहि. कारण के तीरोजावे रहेला पर्यायो आबी-  
जावे थाय ठे अने ते पाठा तीरोजूत थाय ठे एम परावर्त्त चक्रे  
परिणमे ठे उक्तंच— संमति ग्रंथे—“द्वं पञ्जाय विउच्यं, द्व  
वियुक्ताय पञ्जाय नठि । उप्पायद्वय जंगाइ दविय लक्खणं एयं”  
तथाच—पंचास्तिकाय समयसारे—“द्वं सद्वक्खणियं, उप्पा-  
द्वय धुवत्त संजुत्तं । गुण पञ्जाय सयं वा, जंतं जसंति  
सवएहु.” ॥ १ ॥

अव्यथकी ठकायने, न हणे जेइ लगार ॥ प्रजुजी ॥ जावदया,  
परिणामनो, एहिज ठे व्यवहार ॥ प्रजुजी ॥ बा० ॥ ॥ ॥

अर्थ—पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय  
अने त्रसकाय ए ठ कायना जीवना अव्यप्राणने हणवा हणाववा तथा  
हणतानी अनुमोदना करवी ए अव्यहिंसा ठे. ते अव्यहिंसामां  
जावहिंसाना कारणनी जजना ठे. तेथी जावहिंसानो त्यागी अव्य-  
हिंसा आदरे नहि—थवा दे नहि—सावचेत पणे वर्त्ते—समिति पूर्वक

૨૩૪ વિંશતિ વિહરમાન જિનસ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

વર્તે અર્થાત્ ઠકાયના જીવોની દ્રવ્યહિંસાનો ત્યાગ કરવો તે જાવ દયાનો તથા જાવદયાના પરિણામીનો વ્યવહાર છે. દ્રવ્યઅહિંસા તે જાવઅહિંસાનો વ્યવહાર-કારણ છે ॥ ૨ ॥

રૂપ અનુત્તર દેવથી, અનંતગુણું અગ્નિરામ ॥ પ્રજુજી ॥ જોતાં  
પણ જગ જંતુને, ન વધે વિષય વિરામ ॥ પ્રજુજી ॥ બા ૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ—સર્વે જીવોને આ સંસાર જન્ય જન્મ જરા મરણાદિ રૂપ જયંકર દુઃખથી ઢોળાવી રત્નત્રય પમાતી અનંત આત્મીક પરમાનંદના જોક્તા કરું એવી ઉત્કૃષ્ટ જાવદયાના યોગે અત્યંત તીવ્ર શુદ્ધ પરિણામ વળે—સર્વોત્કૃષ્ટ પુણ્યાનુબંધી પુણ્યના ઉદયે હે વાહુ જિનેંદ્ર ! આપનું રૂપ લાવણ્ય કાંતિ, વિજય વિજયંત જયંત અપરાજીત અને સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાનવાસી દેવો કરતાં પણ અનંતગુણું અગ્નિરામ, અતિશયયુક્ત, સર્વોપરી, મનોહર, રમણીય, આહવાદકારી છે. ઉક્તંચ—  
“ જાકી દેહહૃતિસો દસો દિશા પવિત્ર જઈ, જાકે તેજ આગે સવ તેજવંત રુકે હૈ । જાકો રૂપ નિરખી થકિત મહા રૂપવંત, જાકી વપુવાસસો સુવાસ ઔર લુકે હૈ ॥ જાકી દિવ્ય ધુની સુનિ શ્રવનકો સુખ હોત, જાકે તન લલ્લન અનેક આઈ ટૂકે હૈ । તેઈ જિનરાજ જાકે કહે વિવહાર ગુન, નિહચૈ નિરખિ શુદ્ધ ચેતનસોં ચુકે હૈ ॥ ” એવું અત્યંત દૈદિપ્યમાન અનુપમ ઔદારિક આપનું મનોહર રૂપ જોતાં—નિરખતાં ઠતાં પણ વિષયાતુરતાને અવકાશ મલતો નથી પરંતુ આયની શાંત, દાંત, ગંજીર અને નિશ્ચંલ મુદ્રાનું દર્શન પામી વિષયોથી ઉપશાન્ત ચિત્ત થાય છે ॥ ૩ ॥

કર્મ ઉદય જિનરાજને, જીવિજન ધર્મ સહાય ॥ પ્રજુજી ॥

નામાદિક સંજારતાં, મિથ્યા દોષ વિલાય ॥ પ્રજુજી ॥ બા ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-“ સર્વિ જીવ કરું શાસન રસી, ઇસિ જાવદયા મન  
 ઝલ્લસી ” એવા અત્યંત તીવ્ર શુભ રાગ યુક્ત જાવદયાના, પરિણામ  
 વડે વંધાયલા તીર્થંકર નામકર્મના ઝડપ વડે હે ત્રિલોક; પૂજ્ય ! આ  
 પારાવાર દુઃખનિધાન સંસાર સમુદ્રમાં વૃદ્ધતા જવ્ય પ્રાણિયોનો  
 ઝડાર કરવા માટે સર્વે દૂષણો રહિત અને પાંત્રીશ ગુણ સહિત નય  
 નિક્ષેપ પદ્મ પ્રમાણ યુક્ત જીવા જીવાદિ તત્ત્વનો સમ્યક્ પ્રકારે ઉપ-  
 દેશ આપો ઠો એ આપનો કર્મ ઝડપ નિર્વિવાદ પળે “ જીવિ જન  
 ધર્મ સહાય ” અનાદિ કાલથી જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ રજ વડે મલિન  
 થયેલા-લિપ્ત થયેલા જવ્ય જીવોના આત્મ ધર્મને એવજૂત નયે પ્રાપ્ત  
 થવા સહાય-નિમિત્તજૂત છે. તથા હે તીર્થનાથ ! આપના નામાદિક  
 ચાર નિક્ષેપ સંજારતા-સ્મરણ કરતાં-લક્ષમાં લેતાં મિથ્યાત્વાદિ દુષ્ટ  
 દોષોનો તત્કાલ અત્યંત અજાવ થાય. “ તીર્થ-સંસાર નિસ્તરણો-  
 પાયં કરોતોતિ તીર્થકૃત્ ” ઇતિ વચ્ચનાત્ જન્મ મરણ રૂપ સંસાર  
 સાગરથી તરી જવાનો ઉપાય જે સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન ચારિત્ર તે તીર્થ  
 છે. ઝલ્લચ તત્ત્વાર્થ સૂત્રે “ ( સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન ચારિત્રાણિ મોક્ષ  
 માર્ગઃ ) ” તે રત્નત્રયરૂપ તીર્થને જવ્ય જીવોના હૃદયમાં સ્થાપન  
 કરનાર પુષ્ટ નિમિત્ત હોવાથી આપ તીર્થંકર નામને સંપ્રાપ્ત ઠો. તથા  
 આપના નિર્મલ અસંખ્યાત્ આત્મ પ્રદેશમાં તે રત્નત્રય જરૂર અજોય  
 પળે વસી રહ્યાં છે તે સ્થાપનાનિક્ષેપો. તથા આપનો આત્મ ડ્રવ્ય તે  
 જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર રૂપ જાવનું સર્વદા કારણ છે તે ડ્રવ્યનિક્ષેપો.  
 અને ઘાતીકર્મના ક્ષયથી અનંત ચતુષ્ટય અનંત શુદ્ધ પર્યાય પળે  
 પ્રગટ્યા તે આપનો જાવ તે જાવનિક્ષેપો. એમ આપના ચાર નિક્ષેપ  
 આપથી તન્મય પળે એક ક્ષેત્રે રહ્યા છે. ઝલ્લચ-“ ઇહ જાવોઘ્ચિય  
 વઘુ, તય સુનેદિં કિંચ સેસેદિ. નામાદયો વિજાવા, જં તે વિહુ



३३६ विंशति विहरमान जिनस्तवनानि आलावबोध सहित.

बहु पञ्जाया ” तथा वली-“अहवा बहुजिहाणं, एणमं ठव-  
णाय जो तयागारो । कारणयासे दधं, कज्जय वन्नं तयं जावो ॥  
अने आप पण जीव डव्य ठो अने हुं पण जीव डव्य हुं माटे स्व-  
जाती हुं तेथी आपनुं स्वरूप यथार्थ पणे जाणतां माहरुं स्वरूप पण  
यथार्थ जणाय “ जो जाणइ अरिहंतं, दध गुण पज्जवंतेहिं ।  
सो जाणइ अप्पाणं, मोहो खलु जाइ तस्स लयं ” अने पो-  
ताना आत्म स्वरूपनी प्राप्ति थतां मिथ्यात्व अज्ञान आदि दोषो  
तत्काल विलयमान थाय, कर्मबंधनो नाश थाय, मोक्ष पदवीनी प्राप्ति  
थाय. उक्तं च-“ दर्शन मात्म विनिश्चित, रात्म परिज्ञान मिष्यते  
बोध । स्थिति रात्मनि चारित्रं, कुत एतेन्यो जवति बन्धः ॥”  
तथा “ योगात् प्रदेश बन्धः स्थिति बन्धो जवति तूकषायात् ।  
दर्शन बोध चरित्रं, न योग रूपं कषाय रूपं च । ” ॥ ४ ॥

आत्म गुण अविराधना, जाव दया जंमार ॥ प्रभुजी ॥  
ह्यायिक गुण पर्यायमें, नवि पर धर्म प्रचार ॥ प्रभुजी ॥  
॥ बा० ॥ ५ ॥

अर्थ-ज्ञान दर्शन चारित्रादि अनंत आत्म गुणो ते जावप्राण ठे  
अने ते जावप्राणनो विषय कषायादिके घात करवो ते जावहिंसा ठे.  
अने ते जावप्राणनुं समिति गुप्ति आदि संवर वने रक्षण करवुं घात  
न थाय एम अप्रमत्त जावमां वर्त्तवुं ते जावदया ठे. ते जावदयाना  
आप जंडार-निधान ठो. कारण के जावप्राणना घातक मिथ्यात्वादि  
दुष्ट हेतुठनो आपना आत्म प्रदेशमांथी सर्वथा नाश थयो ठे, ह्यायिक  
लब्धिने पाम्या ठो. तेथी आपनी सत्ताचूमिमां मिथ्यात्वादि दोषोनो  
रंच मात्र पण प्रवेश-प्रचार थई शके तेम नथी अने तेथी आपमां

જાવહિંસાનો બીસકુલ અજાવ છે તેથી આપ નિર્વિવાદ પણ જાવ  
દયાના જંમાર છે ॥ ૫ ॥

ગુણ ગુણ પરિણતિ પરિણમે, વાધક જાવ વિહીન ॥ પ્રજુ ૦ ॥

હવ્ય અસંગી અન્યનો, શુદ્ધ અહિંસક પીન ॥ પ્રજુજી ॥

॥ વા ૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-આપનો આત્મ દ્રવ્ય જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર દાન સાજ જોગ  
ઉપજોગાદિ અનંત ગુણનો પિંડ છે ( દ્વ ગુણ સમુદાઓ ) તે સર્વે  
ગુણો વાધકજાવ રહિત પોતાના શુદ્ધ પરિણામે પરિણમે છે. કારણ કે  
“ સર્વે સપજ્જવા ગુણા, અપજ્જવે જાણણા નહિ ” પણ તે  
ગુણો જો વાધકજાવે ઘટલે જ્ઞાન અજ્ઞાનપણે, દર્શન અદર્શનપણે,  
ચારિત્ર મિથ્યાચરણ રૂપ એમ પરિણમે તો આત્મ સ્વગુણનો રોધ કરે-  
શુજાશુજ કર્મબંધ કરે- આત્મીક સદ્જ અવાધિત સુલની હાણી કરે  
“ ( સાયાસાયં હઃસ્વં, તવિરહંમિય સુહં જજ્જેણં । દેહિં-  
દિયેસુ હઃસ્ક, સુસ્વં દેહિંદિયા જાવો ) ” પણ આપના સર્વે ગુણો  
અવાધકજાવે પરિણમે છે તેથી આત્મ અનંત ગુણના આનંદના  
જોક્તા છે જ્યાંસુધી આત્મા વાધકજાવે પરિણમે ત્યાંસુધી અશુદ્ધ છે  
પણ જ્યારે સર્વે પરદ્રવ્યના રાગ-સંગ રહિત વર્તે ત્યારે શુદ્ધ છે, અહિં-  
સક છે, કર્મવંધનો અકર્તા છે તથા પોતાના અનંત આત્મ વીર્ય વડે  
પુષ્ટ છે. ઉક્તવ “ પરદ્વરજં વદ્ધજ્ઞ, વિરજં મુચેજ્ઞ અઠ કમ્મેહિં-  
એસો જિન ઉવએસો, સમાસજં વંધ મોસ્વસ્સ ” ॥ ૬ ॥

દેવે સર્વ પ્રદેશમેં, નહિ પરજાવ પ્રસંગ ॥ પ્રજુજી ॥

અતનુ અયોગી જાવથી, અવગાહના અજગા ॥ પ્ર ૦ ॥ વા ૦ ॥ ૭ ॥

३३७ विंशति विहरमान जिनस्तवनानि बालावबोध सहित.

अर्थः—जेम सोनुं खाणमां पथ्यर माटी विगेरे अनेक कुधातुंथी मलेलुं होय ठे पण ज्यारे योग्य युक्ति वने तेने सर्वथा जूडुं पाडी गाली शुद्ध सोनुं करी लक्ष्म त्यार पढी ते सोनाने काट लागी शके नहि.

तेमज अनादिकालथी आत्म प्रदेशे लागेला ज्ञानावरणादि कर्मनो आपे शुक्लध्यान रुप अश्विबडे सर्वथा नाश कर्यो ठे, सर्वे प्रदेशे शुद्ध निर्मल परम पवित्र थया ठो तेथी आपना कोइ पण प्रदेशे परज्ञाव—राग द्वेषादिनो—विषय कषायादिनो रंच मात्र पण संश्लेष नथी, थवानो संज्ञव पण नथो.

ज्यांसुधी आत्मा औदारिकादि शरीरमां तेमज मन वचन काय योगमां ममत्व करी वसे ठे तेथी ते चल पुद्गल योगे आत्म प्रदेश सकंप थाय ठे पण ज्यारे सर्वथा तेनुं ममत्व त्याग करे त्यारे शुद्धात्म जावे अरुपी ज्ञायक स्वरूप प्रगटे. उक्तंच आचारांगे—से एदीहे ए हस्से ए वट्टे ए तंसे ए चउरंसे ए परिमंमले ए किन्हे ए एलीले ए लोहिए ए हादिहे ए सुकिद्धे ए सुरहिगंधे ए डुरहिगंधे ए तित्ते ए कमुए ए कसाये ए अंबिले ए महुरे ए कख्वमे ए मजए ए गुरुए ए लहुए ए सीए ए जणहे ए णिध्वे ए लुख्वे ए काऊ ए रुहे ए संग ए इत्थी ए पुरिसे ए अन्नहापरिसे सणणे उवमा ए विज्जाए अरुवी सत्ता अपयस्स पयं एत्थि से ए सहे ए रुवे ए गंधे ए रसे ए फासे इच्चेतावात तिवेमि ” एम अतनुअयोगी आत्म अंग आत्म जावमां स्थिर थाय त्यारे कोइ पण आत्म प्रदेश रंच मात्र पण सचल थाय नहि. अन्नंग अवगाहनाने प्राप्त थाय. ॥ ७ ॥

ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવ પણે, સહેજે પરિણતિ થાય ॥ પ્રજુજી ॥

ઠેદન યોજનતા નહિ, વસ્તુ સ્વજાવ સમાય ॥ પ્રજુજી ॥ ૫ ॥

અર્થ:-સ્વજાવ જાવે પરિણમવામાં અન્ય દ્રવ્યની સહાય જોઈતી નથી. જેમ અગ્નિ સહેજે દાહકજાવે પરિણમે છે તેમ સર્વે દ્રવ્યો ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવ યુક્ત સદાકાલ હોવાથી સહેજે પોતાના સ્વજાવ પર્યાયમાં પરિણમે. અન્ય દ્રવ્યની મદદ જોઈ નહિ. ઉક્તંચ “દિવિ-યદિ ગઢદિ તાઈ, તાઈ સ્વજાવ પજ્જયઈજં, દિવિયં તજ-સુતે અણ્ણજૂદ તુ સત્તાદો” વસ્તુને સહેજે પરિણમવામાં કંઈ પણ દૂર કરવાની તથા કંઈ પણ સંયોગ કરવાની આવશ્યકતા નથી કારણ કે દ્રવ્ય તથા પર્યાયનો અજેદ જાવ છે. જેમ અગ્નિને દાહક પરિણામ વગરનો તથા અગ્નિ વગર દાહક પરિણામને આપણે કદાપી કાલે જોતા નથી અર્થાત્ અગ્નિને જ્યારે જોઈએ ત્યારે દાહક પરિણામ સહિત જ હોય છે તેમ સર્વે દ્રવ્ય સદાકાલ પોતાના પરિણામે વર્તતા જ હોય છે. પરિણામ વગર દ્રવ્ય અજાવ-શૂન્યપણાને પામે. ઉક્તંચ-“ પજ્જય વિજુદં દઘં દઘ વિજુદાય પજ્જયાણઠિ દોણં અણ્ણજૂદં, જાવં સમણા પરુવિંતિ ॥” વર્તમાન પર્યાયનો વ્યય થાય અને નૂતન પર્યાયનો ઉત્પાદ થાય તો પણ દ્રવ્યાર્થિક નવે દ્રવ્ય સદા ધ્રુવ છે. જેમ સોનાનું કદુ જાગી મુકુટ વનાવીએ તેમાં કમ્બોનો નાશ અને મુકુટનો ઉત્પાદ થતાં હતાં પણ સોનું દ્રવ્ય સદા ધ્રુવ છે. ઉક્તંચ-“ જાવસ્સ ણથ્થિ-ણાસો, ણથ્થિ અજાવસ્સ ચેવ ઉપ્પાદો. ગુણ પજ્જયેસુ જાવા, ઉપ્પાદ વયે પકુવંતિ ।” ॥ ૫ ॥

ગુણ પર્યાય અનતતા, કારક પરિણતિ તેમ ॥ પ્રજુજી ॥

२४२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

जे मुग्ध प्राणीउ ते विषयोने सुख हेतु जाणे तेउने तेनी कामना  
थाय अने तेज तेनी चाहरूप दाहमां प्रवेश करी पोताना आत्म  
जोगने दग्ध करे पण आप तो केवल सम्यक्ज्ञानी होवाथी शुद्ध-  
शुद्ध-शाता अशाता बनेना उदयने आत्मगुणना रोधक होवाथी  
दुःख रूपज जुठो तेथी आपने तेनी कामनानो बीलकूल संजव  
नथी, निरंतर निष्कामी ठो. तथा शुद्धात्म ज्ञान दर्शन चारित्र गुणने  
स्वाधिन अविनश्वर तथा परमानंदना हेतु जाणी निरंतर तेमांज  
रमण करवावाला तथा तेनाज जोगमां परम संतुष्ट ठो. एवी आपनी  
परमोत्कृष्ट अवस्था जोइ ते पद साधवानी मने रुची थइ तथा ते  
पद साधवानो समीचीन मार्ग पण आपे बताव्यो तेथी खरेखर मारा  
मनने परम विश्रामना हेतु आपजठो. ॥ १ ॥

केवलज्ञान अनंत प्रकाशी, जविजन कमल विकाशी रे ।  
॥ प्र० ॥ चिदानंदधन तत्त्व विलासी, शुद्ध स्वरूप नि-  
वासी रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ—अनंत केवलज्ञान रूप सूर्यनो प्रकाश करी जव्य जीवोना  
हृदयकमलने विकस्वर करनार ज्ञानानंदना समूह आत्म तत्त्वमां  
विलास करनार तथा तेज शुद्ध स्वरूपमां निवास करनार ठो.

अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्मवडे आह्वादित थयेला  
अनंत केवलज्ञान रूप जलहलाटमान अद्वितिय सूर्यने, कर्म पक-  
लनो नाश करी संपूर्णपणे प्रकाशमान करो अज्ञानरूप अंधकार वने  
आवृत थएला जव्य जीवोना हृदयकमलने ज्ञानकिरणो वडे परम  
प्रफुल्लित करनार ठो. रूप रस गंध स्पर्शादि परद्रव्यना पर्यायनो  
जोग, रमण, आस्वाद, मूर्छा, कामना विगेरेनो समूल नाश करी राग  
द्वेषादि विज्ञावनो परिहार करी पोताना सहज अविनश्वर ज्ञानसे-  
मूह आत्म तत्त्वमां विलास करनार अर्थात् तेना जोगमां निमग्न ठो.

तेज शुद्धात्म स्वरूपमां सदा निवास करो ठो अथात् आपनो उपयोग  
त्यांथी समय मात्र पण चलतो नथी-परद्वयादि तरफ जतो  
नथी ॥ २ ॥

यद्यपि हुं मोहादिके बलियो, पर परिणतिशुं नलियो रे ॥  
प्र० ॥ हवे तुज सम मुज साहिव मलियो, तिणे सवि  
जवजय टलियो रे ॥ प्रजु अंतरजामी ॥ ३ ॥

अर्थ-जो के हुं मोहादि बने उगायो, परपरिणतिमां तल्लीन थई  
रह्यो, पण हवे तमारा जेवा साहेवनी वाणी सांजली मने प्रतित  
थवाथी भारो सर्वे जवजय दूर थयो जो के मोह अज्ञान मिथ्या-  
त्वादि दुष्टोण मने वश करी मारी ज्ञानादि संपदा उगी लीधी ठे,  
माहारा सहज अनुपम सुख जोगथी मने वियोगी कयों ठे, तेथी हु ते  
दुष्टोना वशमां पडो अत्यंत कंगाल अवस्थाने जोगवुं तुं

परपर्याय-शरीर स्वजन परिजन तथा धन धान्यादिमां अहं मम-  
त्व करी तेनेज सुख तथा सुख हेतु जाणी तेनीज इच्छा कामनां  
करी जेम लीवडामां वसतो कीडो लीमडाना रसनेज मधुर मानी  
तेमां तल्लीन रहे ठे, त्यांथी निकलवा चाहातो नथी, तेम हुं तेमां  
तल्लीन थई रह्यो, तेथी विरत थयो नहि, पण हवे हे करुणा निधे !  
सर्वज्ञ अने वीतराग आप जेवा समर्थ स्वामीनी मने प्राप्ति थई-  
आपनुं दर्शन पाम्यो तेथी अनंत रोग शोक जय क्रोध मान माया  
खोज अरति आदिके जरेखा जव समुद्रमां जमण करवानो जय दूर  
थयो. कारण के ते जव जमणनो हवे अवधि आवी उक्तंच-  
“अंतो मुहुत्त मित्तंपि फासिअं दुज्ज जेहिं सम्मत्तं, तेसिं अवह  
पुग्गल, परिअट्ठो चेव संसारो” ॥ ३ ॥

ध्येय स्वप्नावे प्रजु अवधारी, दुर्ध्याता परिणति वारी रे

१४४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बाळावबोध सहित.

॥ प्र० ॥ ज्ञासन वीर्य एकता कारी, ध्यान सहज संजारी  
रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ४ ॥

ध्याता ध्येय समाधि अज्ञेदे, पर परिणति विभेदे रे ॥ प्र०  
॥ ध्याता साधक जाव उभेदे, ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र० ॥  
॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थः—प्रज्ञापदने पोतानुं शुरु ध्येय जाणी पोताना हृदयमां  
स्थापन करी, दुर्ध्यान रूप परिणतिने निवारी, पोताना ज्ञान वीर्यनी  
संपूर्ण एकता अज्ञेदता करनां सहज आत्म ध्यान संजारे; तेथी पर  
परिणतिनो समूल विच्छेद थाय, त्यारे ध्याता ध्येय समाधिमां तद्घीन  
थाय अने ध्येय पदनो सिद्धि प्राप्तिने वेदे—योगवे. त्यारे ध्यातामांथी  
साधकपद दूर थाय.

ज्ञानावरणादि सकल कर्मना संबंधथी सर्वथा मुक्त केवलज्ञान  
दर्शन चारित्र वीर्यमय सहज आत्म गुणना समूह रूप श्री सुबाहु  
स्वामीना परमात्म पदने शुरु ध्येय ( ध्याववा लायक वस्तु ) धारी—  
ज्ञान पूर्वक निश्चय करी, जन्म जरा मरण रूप संसार च्रमणना हेतु  
नूत, शुरु परिणतिथी विमुख आर्त्त रौद्र परिणाम वारे—दूर करे,  
( कारण के ज्यांसुधी दुर्ध्यान परिणाम वर्त्ते त्यांसुधी शुरु ध्यानने  
अवकाश मले नहि जेम मलीन वस्त्र उपर केशरनो रंग लागे नहि )  
अने पर परिणामानुगत थयेला पोताना आत्म वीर्यने समेटी मात्र  
शुरु ज्ञान दर्शन चारित्र परिणाममां आत्म वीर्यने एकत्र तद्घीन  
करे—अज्ञेद करे एवं सहज आत्म ध्यान आदरे, जेथी ध्येय समाधि  
अर्थात् शुद्धात्म अनुभव रूप निर्विकल्प निराकुल निरूपचरित स्वतंत्र  
परम समाधिमां मग्न—तद्घीन थाय; ते वारे आत्म परिणति मनोझ  
अमनोझ कोइ पण पर द्रव्यमां राग द्वेष रूप अशुरु परिणामे वर्त्ते

( गमन करे ) नहि, ते वारे ध्येय पदनी अर्थात् शुरु परमात्म पदनी सिद्धि थाय. तेना अचल अनंत जोग उपजोगनो स्वामी थाय. उक्तंच- एको मोक्ष पथोय एष नियतो, जग्झति वृत्त्यात्मकः स्तत्रैव स्थिति मेति यस्तमनिशं, ध्यायेच्चतं चेतसि; तस्मिन्नैव निरंतरं विहरति ज्व्यान्तराण्य स्पृशन् । सोवश्यं समयस्य सार मचिरान्नित्योदय विन्दति

अर्थ:- सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक मोक्ष मार्गमां जे पुरुष स्थित थाय ठे, तेनेज जे निरंतर ध्यावे ठे वली तेनेज जाणे, ठे तेनेज अनुजवे ठे वली तेनाज विषे विहार करे ठे-प्रवर्त्ते ठे पण अन्य ज्व्यमां रंच मात्र स्पर्श करतो नथी ते अल्प कालमां नित्योदय परमात्म पदने पामे ठे त्वारे ध्यातामांथी साधक जावनो उच्छेद थाय ठे; कारण के ध्येयनी संपूर्ण सिद्धि थ्या पठी साधवानुं कंइ बाकी रहुं नथी. ज्यांसुधी कंइ साधवानुं बाकी होय त्यांसुधी साधक जाव कहेवाय जेम (कारण पद उत्पन्न, कार्य थये न लह्योरी).॥४॥५

ज्व्य क्रिया साधन विधि याची, जे जिन आगम वाची रे ॥ प्र० ॥ परिणति वृत्ति विज्ञावे राची, तिण नवि थाये साची रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ:-शुरु ध्येय जे परमात्म-मोक्ष पद तेनुं यथार्थ स्वरूप श्रद्धान पूर्वक में न जाणुं तथा साध्य सापेक्ष आचरणा न आदरी त्यांसुधी माहुरी चित्त वृत्ति विज्ञावमां राची रही अर्थात् आ लोक संबंधी पंच ईंद्रियोना मनोइ जोग्य पदार्थों तथा परलोक संबंधी स्वर्गादिना जोगमां आशक्त रही-तेनी मनोकामना रही तेथी आपना सत्य प्रमाणिक आगममां वतावेली समिति गुप्ति परिपह महन तथा चारित्र तप नियमादि परमात्म पदनी साधन जूत ज्व्य



૨૪૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

ક્રિયાઈ પણ વિષ ગરલ અને અન્યોન્ય અનુષ્ઠાન રૂપ હોવાથી પરમાર્થ-  
મોક્ષ પદને આપવા સમર્થ થઈ નહિ. જ્યાંસુધી સમ્યગ્જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ  
થઈ નથી ત્યાંસુધી સર્વે ક્રિયાઈ શુદ્ધ જાવ વિનાની અશુદ્ધ વિષ  
ગરલ અન્યોન્ય અનુષ્ઠાન રૂપ જાણવી ઉક્તંચ “શુદ્ધ ક્રિયા તો  
સંપજે, પુજ્જલ આવર્તને અર્ધ રે” ॥ ૬ ॥

પણ જય નહિ જિનરાજ પસાયે, તત્ત્વ રસાયણ પાયે રે  
॥ પ્ર૦ ॥ પ્રજુ જગતે નિજ ચિત્ત વસાયે, જાવ રોગ મિટ  
જાયે રે ॥ પ્રજુ૦ ॥ શ્રી૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:-પણ હવે મને જય નથી કારણ કે જિનરાજના વચન પસાયે  
તત્ત્વ રસાયણની પ્રાપ્તિ થઈ છે તેથી માહરું ચિત્ત પ્રજુની જક્તિમાં વસ-  
વાથી જાવ રોગ મટી જશે. પણ હવે હે તરણ તારણ શ્રી સુવાહુ જિને-  
શ્વર ! બત્રીશ દોષ રહિત તથા વાણીના પાંત્રીશ ગુણ સહિત પરમા-  
મૃત રૂપ આપના વચનોના પસાયે જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ રોગને અત્યંત  
દૂર કરી આત્મ વીર્યની સંપૂર્ણ વૃદ્ધિ પુષ્ટિ કરનાર દેવતત્ત્વ, ગુરુ તત્ત્વ,  
અને ધર્મતત્ત્વની મને પ્રાપ્તિ થઈ છે તેથી માહરી ચિત્ત વૃત્તિ મનોહ  
અમનોહ પર હવ્યથી નિવૃત્ત થઈ પ્રજુની આજ્ઞા પાલવા રૂપ જક્તિમાં  
લીન થશે તેથી માહરા જ્ઞાનાવરણાદિ સર્વે જાવ રોગો સૂર્યથી જેમ  
અંધકાર નષ્ટ થાય તેમ તત્કાલ વિનાપ્રયાસે નષ્ટ થઈ જશે. એવા  
નિશ્ચયથી મારો જવ જ્રમણનો અત્યંત જય દૂર થયો છે ॥ ૭ ॥

જિનવર વચન અમૃત અનુસરિયે, તત્ત્વ રમણ આદરિયે રે  
॥ પ્ર૦ ॥ હવ્ય જાવ આસ્રવ પરિહરિયે, દેવચંદ્ર પદ વરિયે  
રે ॥ પ્ર૦ ॥ શ્રી૦ ॥ ૮ ॥

અર્થ:-જિનેશ્વરના અમૃત સમાન વચન અનુસારે વર્તીએ, તત્ત્વ  
રમણના ગ્રાહક થઈએ, હવ્યાસ્રવ તથા જાવાસ્રવનો ત્યાગ કરીએ તો  
દેવમાં ચંદ્રમા સમાન સિદ્ધ પદ વરિયે-

हे सुबाहु जिनेश्वर ! आप सर्वज्ञ अने वीतराग होवाथी साचा  
 आस ठो. आपनांज वचन आ चार गति रूप अत्यंत जयंकर पारावार  
 जव समुद्रथी पार उतारी शिव स्थानके पहुँचाकरवाने अछितीय  
 नौका समान ठे तथा दुष्ट ज्ञानावरणादि कर्म रोग बडे पीडाता  
 दुर्बल आत्म वीर्यथी हीण थएवाने ते रोग दूर करो आत्म वीर्ये  
 संपूर्ण पुष्ट करवाने अमृत समान ठे. माटे जो आपना वचनेने हमे  
 अनुसरीये-ते प्रमाणे वर्त्तीए अने शुद्धात्म तत्त्वनु रमण करीए-तेमा  
 छीन थईए तथा अजिनिवेशादि पांच मिथ्यात्व, हिंसादि पांच अव्रत,  
 तथा क्रोधादिक कपाय, विकथादि प्रमाद तथा औदारिक काय योग  
 आदि योगनो परिहार करीए-राग द्वेषादि विजावनो त्याग करीए  
 तो नवां कर्म आवतां बंध थाय अने पूर्व संचिन कर्मनी निर्जरा थाय  
 तेथी देवमा चंद्रमा समान परमात्म पदनी प्राप्ति थाय-अर्त्तीझिय  
 अव्याबाध अनंत सुखनी प्राप्ति थाय उक्तंच “ पंचासव्व विरत्ता,  
 विषय विजुत्ता समाहि संपत्ता, राग दोष विमुत्ता, मुणिणो सा-  
 हंति परमव्व, ” ॥ ८ ॥ ( संपूर्ण )

॥ अथ पंचम श्री सुजात स्वामीजिन स्तवन ॥

देहुं देहुं नणद हठीछी ॥ ए देशी ॥

स्वामी सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे, मन मो-  
 हना जिनराया । जिणे पूरण तत्त्वनिपाया, अव्यास्तिक नय  
 ठहराया रे, मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

पर्यायास्तिक नय राया, ते मूल स्वजाव समाया रे, मन  
 मोहना जिनराया । ज्ञानादिक स्व परजाया, निज कार्य करण  
 वरतायारे, मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ २ ॥

अर्थ:—हे सुजात स्वामी ! सर्वे स्वपर्यायनुं कारण द्रव्य ठे पण द्रव्यनुं कारण अन्य द्रव्य होइ शके नहि तेथी आप स्वयं सिद्ध ठो, स्वयं बुद्ध ठो, सर्व पर द्रव्यनी कामनाथी रहित परम संतुष्ट ठो, तथा अतीन्द्रिय, अव्याबाध, अनुपम, निरूपचरित, स्वाधीन, अपृथग्भूत, अनंत, सहज, आत्म सुखना निरंतर जोक्ता, अनुभव लेनार ठो, सुखात्मा ठो, उक्तंच “जादो सयं स चेदा, सवण्डू सव जोग दर-सीय । पप्पोदि सुहमणंतं, अवावाहं सगम मुत्तं” ॥ माहरा चित्तने सुहंकर लाग्या ठो, अनंत गुणना निधान आप स्वजातिनुं दर्शन यतां अपूर्व आनंद रूप जल वरे माहरूं चित्त सरोवर जरपूर थयुं, अज्ञान कषायना पात्र पर द्रव्यादिनी चाह दाहमां निरंतर प्रज्वलित यतां शुद्धात्म अनुभव रूप सुगंधथी रहित हरिहरादि कुदेवोने करीरादि वृक्षोनी पेठे त्यागी शुद्धात्म अनुभव रूप अनंत सुगंधथी जरपूर आपना पद कमलमां माहरूं मन मोहित थयुं ठे, त्यांथी रंच मात्र पण खसवा चाहातुं नथी; माटे हे जिनेश्वर ! जगत् त्रयमां आपज द्रव्य जीवोना मन मोहन ठो. जे आपे अनादि कालथी लागेला आत्म गुण रोधक ज्ञानावरणादि कर्म मलने बाह्य अज्यंतर तप वरे दूर करी पोताना आत्म तत्त्वनी एवंभूत नये सिद्धि करी ठे अर्थात् सर्वे आत्म गुणो संपूर्ण निर्मल तथा स्वाधीन करी लीधा ठे माटे हवे कंई पण करवानुं आपने बाकी रह्युं नथी तेथी आप निष्क्रिय विरुद्धने संपूर्ण प्राप्त थया ठो, अनंतानंदना स्वामी थया ठो तथा आत्म धर्मने मलिन करवाना तथा जव त्रमणना निमित्त अज्ञान मिथ्यात्व कषाय अने योगनो सर्वथा अज्ञाव कयों ठे तेथी आपनो कोइ पण गुण पर्याय हवे कोइ पण काले रंच मात्र पण मलिन थवानो नथी तथा तेमज ते सिद्धि अवस्थाथी आप कोइ पण काले च्युत थवाना नथी. द्रव्या-स्तिक नये आप सदा अवस्थित रही चेतनतामां समाता पोताना

શુદ્ધ અનંત પર્યાયનું રાજ્ય જોગવો ઠો. જ્ઞાનાદિક સર્વે પર્યાયોને સ્વકાર્ય કરવામાં નિરંતર પ્રવર્ત્તાવો ઠો અર્થાત્ જ્ઞાન ગુણ વહે અનંત ડ્રવ્યના ત્રિકાલવર્ત્તી અનંત ગુણ પર્યાયને સમકાલે પ્રત્યક્ષ પળે જાણો ઠો, દર્શન ગુણ વહે સર્વે ડ્રવ્યના અસ્તિત્વાદિ સામાન્ય સ્વજાવને સમ કાલે દેશ્વો ઠો, ચારિત્ર ગુણ વહે સર્વ પરજાવથી નિવૃત્ત પળે અનંત જ્ઞાનાદિક સ્વધર્મમાં નિરંતર રમણ કરો ઠો અને આપનું આત્મ વીર્યે તે પળ જ્ઞાનાદિક અનંત સ્વધર્મ પરિણમાવવામાં વર્તે ઠે. એમ આપના સર્વે પર્યાયો પોત પોતાનું કાર્ય કરવામાં સ્વાધીન પળે વર્ત્તાવો ઠો વહી દે સર્વે નીતિમાનમાં શિરોમણિ ! ડ્રવ્યના યથાર્થ સ્વરૂપનો બોધ થવા માટે આપે ડ્રવ્યાસ્તિક અને પર્યાયાસ્તિક એ બે મૂલ્ય નયો ઠરાવ્યા ઠે. જેમાં સર્વે નયનો સમાવેશ થઈ જાય ઠે તે નયના યથાર્થ જ્ઞાનવહે વસ્તુનું સ્વરૂપ યથાર્થ સાક્ષાત્ વત્ જણાય ઠે—જાણે ઠે॥૧૧॥

અંશ નયમાર્ગ કહાયા, તે વિકલપ જાવ સુણાયારે ॥ મન ૦ ॥

નય ચાર તે ડ્રવ્ય અપાયા, શબ્દાદિક જાવ કહાયારે ॥ મન ૦ ॥ ૩

અર્થ—નય તે પદાર્થના જ્ઞાનને વિષે જ્ઞાનના અંશ ઠે, વસ્તુ અનંત ધર્માત્મક ઠે અર્થાત્ જીવાદિક દરેક પદાર્થમાં અનંતા ધર્મ ઠે તેમાંથી જે સ્વાજિષ્ઠ એક ધર્મને મુખ્યતાએ ગવેયે ઠે તેમાં રહેલા બીજા ધર્મ, પ્રતિ ઉદાસિનતા રાખે ઠે તે નય ઠે ઠક્ત્વ—સ્યાદ્વાદ મંજરીમા “ નીયતે પરિચિદ્યતે એક દેશ વિશિષ્ટોર્થ આગ્નિરિતિ નીતયો નયાઃ તથા રત્નાકરે, નીયતે યેન શ્રુતાલ્લ્ય પ્રમાણ વિષયી કૃતસ્યાર્થ સ્યાંશસ્તદિતરાશૌદાસી ન્યતઃ સ પ્રતિપત્તુરગ્નિપ્રાય વિશેષો નયઃ” એમ દરેક નયો વસ્તુના સ્વાજિષ્ઠ એક અંશને પ્રતિપાદન કરે ઠે તેથી તે વિકલ્પ માર્ગ ઠે. જે એકાંતે પોતાનાં અજિષ્ઠ ધર્મનેજ સ્થાપન કરે ઠે તેમાં રહેલા બીજા

૨૫૦ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

ધર્મોને તિરસ્કારે છે, ઓઢવે છે, અપેક્ષા રાખતો નથી તે ડુર્નય અથવા નયાજ્ઞાસ છે. “સ્વાજ્ઞિપ્રેતા દંશા દિતરાંશા પલાપી પુનર્નયા જ્ઞાસઃ” અને જે વસ્તુમાં રહેલા કોઈ પણ ધર્મને તિરસ્કારતો નથી અર્થાત્ તેની અપેક્ષા રાખે છે એમ બતાવવાને સ્યાત્પદ યુક્ત અજ્ઞિષ્ટ ધર્મનું પ્રતિપાદન કરે છે તે સુનય છે, સ્યાદ્વાદ છે, પ્રમાણ વાક્ય છે, તેજ હે જિનેશ્વર ! આપના પરમ આગમનું બીજ (જીવન) છે, જે સર્વે ઇકાંતિ વાદે મચેલા ઉન્મત્ત હાથીઉંના મદને ઝંઝન કરવાને સિંહ સમાન છે, વસ્તુનું યથાર્થ સર્વાંગે સ્વરૂપ જાણવા દિવ્ય જ્ઞાનદ્રષ્ટિ છે, ઉક્તંચ-સ્યાદ્વાદમંજરૌ-રાગ-ઉપેંદ્રવજ્રા ॥ “સદેવ સત્સ્યાત્ સદિતિ ત્રિ-ધાર્થો, મીયેત ડુર્નીતિ નય પ્રમાણૈઃ યથાર્થ દર્શીતુ નયપ્રમાણ, પથેન ડુર્નીતિ પથં ત્વમાસ્થઃ” અર્થ-સત્યજ છે, સત્ છે અને સ્યાત્ સત્ છે એવી રીતનો ત્રણ પ્રકારનો અર્થ અનુક્રમે ડુર્નય, નય અને પ્રમાણ વળે માપી શકાય છે અને યથાસ્થિત પદાર્થને જોનારા એહવા હે પ્રજ્ઞ ! આપેજ નય અને પ્રમાણના માર્ગ વળે ડુર્નય માર્ગને દૂર કર્યો છે તે નયના વિસ્તારથી અનેક જેદ છે (વ્યાસતો નેક વિકલ્પઃ) કારણ કે વસ્તુ અનંત ધર્માત્મક છે અને તે અનંત ધર્મનું નિરૂપણ કરવાને વચન માર્ગ પણ અનંત હોય માટે જેટલાં વચન તેટલા સર્વ નયવાદ કહેવાય “જાવડ્યા વયણ પહા, તાવડ્યા ચેવ હુન્તિ નયવાયા” તો પણ તે સર્વે નયવાદોનો સંગ્રહ કરનારા એહવા સાત અજ્ઞિપ્રાયની કલ્પનાના દ્વારે કરીને સાત નયો પ્રતિપાદન કરેલા છે તેનાં નામ-નૈગમ, સંગ્રહ, વ્યવહાર, રૂઝુસૂત્ર, શબ્દ, સમજિરૂઢ અને એવંતૂત. તેમાંથી પ્રથમના ચાર નયો હવ્યાર્થિક નયમાં અને શબ્દાદિ ત્રણ નયો પર્યાયાર્થિકમાં સમાય છે તે ત્રણ જાવનય છે.

“સમાસતો દ્વિજેદઃ હવ્યાર્થિકઃ પર્યાયાર્થિકઃ તત્ર હવ્યાર્થિક

अतुर्धा नैगम, संग्रह, व्यवहार, रजुसूत्र जेदात् पर्यायार्थि  
कस्त्रिधाः शब्द समञ्जिष्ठ एवंभूत जेदात् ”

श्री सिद्धसेन दिवाकर रजुसूत्रनयने पर्यायार्थिकमा गणे ठे माटे  
तेमना अजिप्राये नैगमादि त्रण नय अव्यार्थिक अने रजुसू-  
त्रादि चार नय पर्यायार्थिक ठे. अव्यने सामान्यपणे निरूपण  
करनारा प्रमाताना अजिप्रायो जेशोनो आद्यना चार नयमां समावेश  
याय ठे ते अव्यार्थिक ठे अने जे अजिप्रायो शब्दना अर्थनी मूल्यता,  
धरावे ठे ते शब्दादिक त्रण नय पर्यायार्थिक ठे माटे आदिना चार  
नय ते अविशुद्ध ठे अने शब्दादिक त्रण नय ते विशुद्ध ठे उक्तच-  
आद्य नय चतुष्टय मविशुद्ध पदार्थ प्ररूपणा प्रवणत्वात्  
अर्थ नया. नाम अव्यत्व सामान्य रूपा नयाः शब्दादयो  
विशुद्ध नयाः शब्दावलंबार्थ मूल्यत्वात्  
तथा च स्याद्वादमंजरौ “ ये केचनार्थ, निरूपण प्रवणाः प्रमात्र  
जिप्रायास्ते सर्वेऽप्याद्येनय चतुष्टयेऽन्तर्भवति ये च शब्दविचार  
चतुरास्ते शब्दादि नय त्रय इति ॥

॥ तथा रत्नाकरावतारिका ग्रंथे “ ज्वति जोप्यति अड्ड-  
वत् तांस्तान् पर्यायानिति ज्वयं तदेवार्थः, सोऽस्ति यस्य  
विषयत्वेन स अव्यार्थिक ”

“ पर्येति उत्पाद् विनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः स एवार्थः स  
अस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिक ” ॥ ३ ॥

डर्नय ते सुनय चलाया, एकत्त्व अजेदे ध्यायारे ॥ मन० ॥  
ते सवि परमार्थ समाया, तसु वर्त्तन जेद गमायारे ॥ मन० ॥ ४

૨૫૨ . વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

અર્થ:-સુનયનું લક્ષણ કહે છે. “સ્વાર્થ ગ્રાહી ઇતરાંશપ્રતિ-  
ક્ષેપી સુનય ઇતિ સુનય લક્ષણ” કુનયનું લક્ષણ કહે છે. “સ્વાર્થ  
ગ્રાહી ઇતરાંશપ્રતિક્ષેપી હુર્નય ઇતિ હુર્નય લક્ષણ” અર્થ:-સ્વા-  
જિષ્ઠ ધર્મને ગવેષતાં વીજા ધર્મોની અપેક્ષા નહિ રાખનાર વીજા  
ધર્મોને ઓલવનાર જે હુર્નયો તેને દુર કરી સ્વાજિષ્ઠ ધર્મથી ઇતર સર્વે  
ધર્મોની અપેક્ષા રાખી સ્યાત્પદે શોજતા સુનય-અનેકાંત વાદની  
પ્રવૃત્તિ કરી તે અનેકાંત-સ્યાદ્વાદનયે વસ્તુનું સંપૂર્ણ સ્વરૂપ જાણી  
સર્વે ધર્મો વસ્તુથી એકત્વ તથા અજેદ અર્થાત્ કોઈ કાલે જૂદા  
નહિ પડે એમ ચિત્તમાં ચિંતન કરી ધારણા કરી તે સર્વે નયોને પરમાર્થ  
પટલે શુદ્ધ દ્રવ્યસ્વરૂપમાં સમાવ્યા, તજ્ઞાન્ય એક શુદ્ધાત્મ અનુજૂતિને  
જોગવવા લાગ્યા, નયોની વર્તના રૂપ વિકલ્પનો નાશ થયો ઉક્તંચ-ઉ-  
પેંદ્રવજ્ઞા.

ય એવ મુક્ત્વા નય પદ્મપાતં, સ્વરૂપ ગુપ્તા નિવસન્તિ નિત્યં  
વિકલ્પજાલ ચ્યુત શાન્તચિત્તા, સ્ત એવ સાદ્દાદમૃતં પિવ-  
ન્તિ ॥ ૪ ॥

સ્યાદ્રાદી વસ્તુ કહીજે, તસુધર્મ અનંત લહીજે રે ॥ મન ૦ ॥  
સામાન્ય વિશેષનું ધામ, તે દ્રવ્યાસ્તિક પરિણામ રે ॥  
મન ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-વસ્તુ અનંત ધર્માત્મક છે અર્થાત્ અનંતા ધર્મો વસ્તુમાં સમ-  
કાલે હોય છે. જેમ સ્વદ્રવ્યાદિ ચતુષ્ટયે વસ્તુ અસ્તિ સ્વજ્ઞાવંત છે, પર  
દ્રવ્યાદિ ચતુષ્ટયે વસ્તુ નાસ્તિ સ્વજ્ઞાવંત છે. તેમજ નિત્ય, અનિત્ય,  
એક, અનેક, જેદ, અજેદ, જવ્ય, અજવ્ય, વક્તવ્ય અવક્તવ્ય, વિગેરે  
સ્વજ્ઞાવંત વસ્તુ હોય છે માટે જો તેમાંથી સ્વાજિષ્ઠ એકસ્વજ્ઞાવને એકાંતે

ગવેષીયે, નિશ્ચય કરીયે તો વસ્તુનું જ્ઞાન યથાર્થ થાય નહીં પણ જો સ્યાત્ અસ્તિ, સ્યાત્ નિત્ય, સ્યાત્ એક વિગેરે અનેકાંતે ગવેષીયે તો વાકી રહેલા બીજા ધર્મોની પણ સૂચના થાય એમ સર્વે વસ્તુ સ્યાદ્વાદ અનંત ધર્માત્મક છે. તેથી સ્યાદ્વાદ વળે વસ્તુમા રહેલા અનંત ધર્મનો વોધ થાય.

વસ્તી અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, ડ્રવ્યત્વ, અગુરુલઘુત્વ, પ્રમેયત્વ, સત્ત્વ, એ ૭ મૂલ સામાન્ય તથા અસ્તિસ્વજાવ, નાસ્તિસ્વજાવ, નિત્યસ્વજાવ, અનિત્યસ્વજાવ, એકસ્વજાવ, અનેકસ્વજાવ, જ્ઞેદસ્વજાવ, અજ્ઞેદસ્વજાવ, જ્ઞવ્યસ્વજાવ, અજ્ઞવ્યસ્વજાવ, વક્તવ્યસ્વજાવ, અવક્તવ્યસ્વજાવ, પરમસ્વજાવ વિગેરે ઉત્તરસામાન્ય સ્વજાવ વસ્તુમાં અનંતા છે તથા જીવમાં ચેતનતા અનુયાયી અનેક વિશેષ સ્વજાવ છે તેમ ધર્માસ્તિકાયમાં ગતિ સહાયાદિ, તથા અધર્માસ્તિકાયમાં સ્થિતિસહાય આદિ તથા આકાશમાં અવગાહદાન આદિ તથા પુદ્ગલમાં પૂરણ ગલનાદિ અનંત ધર્મો છે તે અનંત સામાન્ય સ્વજાવ તથા વિશેષ સ્વજાવનો આધારજૂત જે અસ્તિત્વધર્મ તે સર્વે ડ્રવ્યમાં સદાય સમકાલે પરિણમે છે. હકંચ. “ નિત્યત્વાદીનાં ઉત્તર સામાન્યાનાં પરિણામિકત્વાદીનાં વિશેષ સ્વજાવાનામાધારજૂત ધર્મત્વં અસ્તિત્વં ” વિગેરે ॥ ૫ ॥

જિનરૂપ અનંત ગણીજે, તે દિવ્યજ્ઞાન જાણીજે રે ॥ મન ૦ ॥  
શ્રુત જ્ઞાને નય પથ લીજે, અનુજવ આસ્વાદન કીજે રે ॥  
મન ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:- જિનેશ્વર નિર્મલ જ્ઞાનાનુયાયી અનંત રમણીય ગુણના સમૂહ અનંત ધર્મે વિરાજમાન છે, અપ્રતિહત્ મહાન્ તેજસ્વી અલંકાર એક જ્ઞાન મૂર્તિ છે, ઇન્દ્રિય વિષયથી અતીત છે, જ્ઞાનસ્વરૂપી જ્ઞાનગમ્ય છે, તેથી તેઓને રાગદ્વેષ રૂપ મલીનતાથી રહિત માત્ર શુદ્ધ દિવ્યજ્ઞાનવળે જાણી શકીયે માટે જિનેશ્વર તે અનંત ગુણાત્મક અર્થાત્ જિનેશ્વરના અનંત



૪૫૪ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ ઘાલાવવોધ સહિત.

ગુણોને શુદ્ધ નયે જાણવું તેજ સુંદર અનુપમજ્ઞાન છે. તે માટે અનંત ગુણાત્મક જિનેશ્વરને સમ્યક્પ્રકારે જાણવા માટે જીવસમુદ્રમાં નૌકા સમાન સર્વજ્ઞ વીતરાગ પ્રરુપિત શ્રુતજ્ઞાનના પ્રસાદથી સુનય-સ્યાદ્વાદ માર્ગ ગ્રહણ કરીએ. અને શુદ્ધ નયે જાણી તત્સ્વરૂપના અનુજીવનો આનંદ પામીએ-જોગવીએ. ઉક્તંચ-રાગ-વસંત તિલકા વૃત્તમ્-“ નૈકાન્ત સંગત દૃશા સ્વયમેવ વસ્તુ, તત્ત્વ વ્યવસ્થિતિમિતિ પ્રવિલોકયન્તઃ ॥ સ્યાદ્વાદ શુદ્ધિ મધિકા મધિગમ્ય સન્તો, જ્ઞાની જીવન્તિ જિન નીતિ મલન્ધયન્તઃ ” જાવાર્થ-સર્વે વસ્તુ સહજ અને કાંતાત્મક છે માટે જિનેશ્વરના સ્યાદ્વાદ ન્યાયને નહિ ઉલંઘન કરતાં વસ્તુ તત્ત્વની અનેકાંતાત્મક વ્યવસ્થા સન્મુખ દ્રષ્ટિ રાખી સ્યાદ્વાદની અધિક શુદ્ધિને અંગીકાર કરી સત્પુરુષો જ્ઞાની બને છે-જ્ઞાનપદ ધારણ કરે છે. ॥ ૫ ॥

પ્રજુ શક્તિ વ્યક્તિ એક જાવે, ગુણ સર્વ રહ્યા સમજાવેરે ॥

॥ મન૦ ॥ માહેરે સત્તા પ્રજુ સરખી, જિન વચન પસાયે પરખીરે ॥ મન૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-હે ત્રિલોકપૂજ્ય પ્રજુ ! આપની જ્ઞાન દર્શન સુખ ધીર્યાદિ સર્વ શક્તિ ઉ વ્યક્ત અર્થાત્ નિરાવરણ થઈ છે, અવાધિત પણે પોતાના શુદ્ધ કાર્યે પરિણમે છે, આગામી અનંતકાલ સુધી એમજ પરિણમવાને શક્તિમાન છે, કોઈ પણ કાલે ક્ષીણતા પામે તેમ નથી કારણ કે દ્રવ્યમાં સામર્થ્ય પર્યાય તથા ઢતી પર્યાય અનંત છે માટે આપની શક્તિ વ્યક્તિ એક જાવે છે તથા આપ અમુક વર્તમાન સમયે સર્વે દ્રવ્યના ત્રિકાલવર્તી પર્યાયોને સમકાલે પ્રત્યક્ષ પણે જાણો છો અર્થાત્ આ સમયે આવી રીતે પરિણમે છે, આવતે સમયે અમુક રીતે પરિણમશે પછી બીજે સમયે અનાગતને વર્તમાન પણે જાણો છો અને વર્તમાન

परिणतिने जूतपणे जाणो ठो एम उत्पाद् व्ययने जोगवो ठो पण आपनी कोइ पण शक्ति हवे आवृत्त नथी के जे हवे प्रगट व्यक्त थाय माटे सर्वे शक्ति व्यक्ति एक जावे ठे. तथा ज्ञान शुद्ध ज्ञानपणे, दर्शन शुद्ध दर्शनपणे, एम आपना सर्वे गुणो राग द्वेष मोह विगैरेथी रहित समजावे परिणमे ठे कारण के विषय परिणामना हेतु अज्ञान मिथ्यात्व कपायनो आपे समूल नाश कयों ठे वली जेम आप अचल सिद्ध स्वक्षेत्रमां बसी स्वतंत्र पणे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अव्यावायता, अटल अवगाहना, अगुरुलघुत्व, अमूर्तिरत्व अजरता, अमरता, निर्जयता, निरामयता, निराकुलता, निरुद्धता, निस्पृहता आदि अनंत गुण जन्य आनंद समूहना विलासी थया ठो तेमज हुं पण संग्रह नये आप समान सत्ताधारी हुं. जो आपनी आज्ञाने मस्तके चढावी तदनुसार सम्यक्पराक्रम बजावी सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्रने आदरुं—सेवुं तो आप सदृश परमानंद जोगने निःसंदेह प्राप्त थाउं. उक्तंच—“ तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं, यथार्थ हेयोपादेय परीक्षा युक्त ज्ञानेन सम्यग्ज्ञानं, स्वरूप रमणं पर परित्याग रूपं चारित्रं येतज्जन्त्रयी रूप मोक्ष मार्ग साधनात् साध्य सिद्धिः ” एम में आपना न्याय युक्त अवाच्य वचनना प्रसादे परीक्षा पूर्वक माहरी सत्तानो निर्धार कयों ठे ॥ ९ ।

तुं तो निज संपत्तिनो जोगी, हुं तो पर परिणतिनो योगी रे  
॥ मन० ॥ तिणे तुम प्रजु माहारा स्वामी, हुं सेवक तुज गुण ग्रामी रे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थः—हुं अनादिथी कर्म शत्रुनी जेसमां पड़ेसो होवाथी अनंत काख सुधी माहरी ज्ञानादि अखुट लक्ष्मीनुं मने दर्शन पण न मळ्युं तेथी जरु चल जगत् जीवनी एंव, जसना परपोटा जेवी क्षणजंगुर,

૨૫૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવવોથ સહિત.

પરાધીન, ચાહદાહથી વાલનાર, માહરાથી દૂરવર્તી થઈ અનેક પ્રકારના શોક દુઃખ ઉપજાવનાર, તેના કાલ પ્રમાણે વર્તનાર, સદા શત્રુસ રાક્ષનાર, જેનો જોગ કિંપાકફલની પેઠે પ્રાણ ઘાતક, એવી જે પુદ્ગલ પરિણતિ ( પૌદ્ગલીક વિષયો ) તેમાં હું જોગ સુખ માની મગ્ન, તલ્લીન થઈ રહ્યો, માહરી કર્તૃત્વ, જોકર્તૃત્વ ગ્રાહકત્વ, વ્યાપકત્વ, દાન, લાજ, જોગ, ઉપજોગ આદિ પરિણતિને તદ્ગત કરી સંસાર પરિપાટીને વધારી જીતેલ—“ જો અપસથ્યોરાગો, વહ્દશ સંસાર જમણ પરિવામી ।

વિસયાશ્સુ સયણાશ્સુ, ઇઠત્તં પુગ્ગલાશ્સુ ॥ ” માહરી અનુપમ અઘૂટ જ્ઞાનાદિક સંપદાથી વિયોગી રહ્યો પણ હે જગવંત ! આપ તો આત્મ સંપદાના જોગમાં અંતરાય કરનાર કર્મશત્રુનો સમ્યક્ ચારિત્ર વડે સમૂલ નાશ કરી અનંતજ્ઞાન, અનંતદર્શન, અનંતસુખ, અનંતવીર્ય અનંતદાન, અનંતલાજ, અનંતજોગ અનંતઉપજોગ આદિ સ્વસંપદાનો લાજ મેલવી સ્વાધીન કરી નિરંતર નિષ્કંટક પણે જ્ઞાનાદિ અનંત અચલ નિરુપચરિત અનુત્તર આત્મ સંપદાના જોગમાં અત્યંત મગ્ન થયા ઠો તેથી હે પ્રજુ ! આપનેજ માહરા સ્વામી જાણું હું, આપથીજ માહરો મનોર્થ પરિપૂર્ણ થશે. આપનાજ દર્શનથી મારી અઘૂટ લક્ષ્મી માહરાઉપર પ્રસન્ન થઈ માહરે સ્વાધીન થશે માટે હું આપની સેવાને નિરંતર ચાહનાર આપનો સેવક આપનાજ ગુણ ગ્રામમાં સંતોષ વૃત્તિ ધારણ કરું હું ॥ ૯ ॥

ए संबंधे चित्त समवाय, मुज सिद्धिनुं कारण आय रे ॥

मन० ॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्यान धारणा धरवी रे ॥ मन० ॥ ९ ॥

तुं पूरण ब्रह्म अरूपी, तुं ज्ञानानंद स्वरूपी ॥ इम तत्त्वा-  
लंबन करिये, तो देवचंद्र पद वरिये रे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थ:-आपनी सेवामा जो माहुरं चित्त एकाग्र थाय, अजेद संबंध धारण करे तो तत्काल माहुरा उपादानमां सिद्धिनुं कारणपद उत्पन्न थाय माटे में तो निश्चय क्यों ठे के हे जिनेश्वर ! अन्य सकल परद्रव्यनी सेवा तजो आपनीज सेवामां निरंतर वसतुं, आपने शुद्ध ध्येय जाणी आपनाज ध्यानमां निश्चल वृत्ति धारण करवी. ॥ ९ ॥

कारण के हे जिनेश्वर ! कोइ पण द्रव्यनी कामना आपमां जणाती नथी तथा पोताना ज्ञानादि सर्वे पर्यायोना आप कारण तथा ज्ञाता जोक्ता होवाथी आप पूरण ब्रह्म ठो. रूप रस गंध स्पर्श संस्थान आदि पुद्गल द्रव्यना कोइ पण पर्यायनो आपने रंच मात्र पण संश्लेष नथी तेशी आप अरूपी ठो. आप पोताना ज्ञानजन्य आनंदमां सदा लीन ठो-तद्रूप ठो माटे आपनुं अवलंबन धारण करुं, तुं. कारण के जेम काष्ठना अवलंबने लोहुं जलमां तरी जाय तेम हुं आपना अवलंबने आ जयंकर जवारणवमांथी तरी देवमां चंडमा समान शुद्ध सिद्ध परमात्म अवस्थाने प्राप्त थईश. ॥ १० ॥

## ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षष्ठम श्री स्वयंप्रज जिन स्तवनं ॥

मो मनडो हेमाळ हो मिसरि ठाकुरो महदरो ॥ ९ वेशी ॥  
स्वामी स्वयंप्रजने हो जाउं जामणे, हरखे वार हजार ॥  
वस्तुधरम पूरण जसु नीपन्यो, जावकृपा किरतार ॥  
स्वामी० ॥ १ ॥

अर्थ:-महान् अखूट वैभवधारी इन्द्र चंद्र चक्रवर्ती आदिना समूहवडे पण वंदनीक, स्वयं बुरु, स्वयं आत्म लक्ष्मोना स्वामी श्री स्वयंप्रजु स्वामीने हजारवार-वारंवार, निरंतर, जामणे जाउं-अत्यंत

૨૫૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવવોધ સહિત.

પ્રમોદ જાવના વડે ગુણાનુરાગી થઈ સેવા જ્ઞાતિમાં લીન થાજું. કે જેનો “વસ્તુ ધરમ પૂરણ નીપન્યો” અર્થાત્ અનાદિ કાલથી જ્ઞાના-વરણાદિ કર્મવડે આવૃત્ત થઈ રહેલા હોવાથી જ્ઞાનાદિ આત્મ ધર્મો પોતાનું કાર્ય શુદ્ધ રીતે કરી શકતા નહોતા, પરવશ પરાનુયાયી થઈ રહ્યા હતા, કર્મબંધનના હેતુ થઈ રહ્યા હતા, તે સર્વે ધર્મો સંપૂર્ણ પ્રગટ-વ્યક્ત થયા છે, તદન નિરાવરણ થયા છે, અપ્રતિહત્ પણે પોતાના શુદ્ધ કાર્યે નિરંતર પરિણમે છે તેથી અશ્વંડ અચલ અવિનાશી પરમાનંદ દશાને પ્રાપ્ત થયા છે. પરમ નિર્જય નિરાકુલ દશામાં અનંત શુદ્ધાત્મ અનુજૂતિમાં તહ્લીન થઈ રહ્યા છે. તથા “જાવ કૃપા કિરતાર” અર્થાત્ ચાર ગતિરૂપ અપરિમિત જયંકર જવાટવીમાં વિષય કષાય વશે ઠેંદન જેદન તારુન તર્જન તિરસ્કાર વિયોગ શોક જય આક્રંદ વિગેરે અનેક પ્રકારનાં અસહ્ય શારીરિક તથા માનસિક દુઃખો દીન અનાથપણે જોગવતાને, અત્યંત કારુણ્ય જાવનાવડે સમ્યક્દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્રરૂપ મોક્ષ માર્ગે દોરી, તેડના દુઃખનો સમૂલ નાશ કરી પરમાનંદમય શિવપુરીમાં વિરાજમાન કરો હો. એજ શ્રી સ્વયંપ્રજ્ઞ સ્વામીની દયા પરમોત્કૃષ્ટતા ધરાવે છે. પણ જે વિષય કષાયની વૃદ્ધિ કરનાર ઉપદેશ, તથા પદાર્થો આપી, અજ્ઞાની જીવોની વિષય કષાય તથા હિંસાની પ્રવૃત્તિને વધારે છે-તેનાં કારણોને પુષ્ટ કરે છે અને હમે દયા કરીએ ઢીણ એમ કહેનાર મિથ્યાજિમાની જીવો તો હે પ્રજ્ઞ ! દયાલુ નહિ પણ વાસ્તવિક ન્યાયે આપના વચનાનુસાર હિંસાના અનુમોદક પ્રતિત થાય છે. ॥ ૧ ॥

જવ્ય ધરમ તે હો જોગ સમારવા, વિષયાદિક પરિહાર ॥

આતમશક્તિ સ્વજાવ સુધર્મનો, સાધનહેતુ ઉદાર ॥

સ્વામી ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-પ્રાણાતિષ્ઠાત; મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન, પરિગ્રહ, ક્રોધ

मान, माया, लोच, राग, द्वेष, कलह, अज्याख्यान, पैशुन्य, रति-  
 अरति, परपरिवाद, मायामृपावाद तथा मिथ्यात्वशब्द ए पापस्था-  
 नमां मन वचन कायाने न प्रवर्त्तावतां स्याद्वाद युक्त जिनेश्वरना  
 पवित्र कल्याणकारी वचनो वांचवा, सांजलवा, विचारवामां तथा तेना  
 उपदेष्टा सद्गुरू आदिना विनय वैयावच्चादिमां तथा ज्ञान दर्शन  
 चारित्रनी वृद्धि तथा स्थिति करवामां प्रवर्त्तावतां तथा “ विषयादिक  
 परिहार ” अर्थात् वीणा, सारंगी, डुडुजि, विगेरे बाजीत्र तथा  
 मेना, पोपट, छी, किंनरी आदिना ललित, मनोहर स्वर ते श्रवण-  
 इन्द्रियो विषय, तथा स्त्री पुरुष पशु पक्षी बालक वाग वगीचा तथा  
 मनोहर आवास विगेरेना चित्र विचित्र मनोज्ञ वर्ण तथा घाट ते  
 नेत्रइन्द्रियो विषय, तथा पारिजातक, कुंद, कमल, मालति, गुलाब,  
 अग्र, तगर, चंदन, केशर, मलयागर विगेरे पदार्थोनी मनोज्ञ सुगंध  
 ते घ्राणेंद्रियो विषय, तथा स्वादीम, खादीम, पेय आदि वस्तुना  
 मनोज्ञ मधुरादि स्वाद् ते जीव्हाडन्द्रियो विषय, तथा स्त्री पुरुषादिनां  
 मनोहर अंग तथा अय्या आसन विगेरे पदार्थोना मनोज्ञ स्पर्श ते  
 स्पर्शेंद्रियो विषय, ए पंचेन्द्रिना विषयोना त्याग करवो अर्थात् ते  
 विषयोने इष्ट रम्य जोग्य सुहकर जाणी तेओमां राग, कामना, मूर्च्छा  
 करवी नहि, प्राप्त स्वाधीन तथा जोगववानुं सामर्थ्य होवा उतां पण  
 ते विषयादिने स्वजावाचरणथी चुकवाना हेतु तथा दुःखना निर्दान  
 जाणी तेओनो परिहार करवो ते साचो त्याग ठे. पण नहि मर्लवाथी  
 न जोगवतुं ते कंई त्याग नथी, उक्तंच—( दश वैकालिके ) “—जे  
 य कंते पिए जोए, लडे विपिठि कुबड ॥ साहीणे चयड जोए,  
 सेहु चार्इत्ति वुञ्चड ”—एम त्रिजोगनुं समारवुं तथा विषयादिनो त्याग  
 ते आत्माना मलिन थयेला ज्ञान दर्शन चारित्र आदि स्वजाविक  
 धर्मने शुद्ध प्रगट करवामां कल्याणकारी साधनो होवाथी अव्यधर्म

૨૬૦ : વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

હે અર્થાત્ જાવ ધર્મના કારણો છે. ઉક્તંચ—“ કારણ યાસે દ્વં ” અને કારણ વગર કાર્ય સિદ્ધિ અલભ્ય છે, ઉક્તંચ—કારણ જોગે હો કારજ નીપજેરે, એહમાં કોઈ ન વાદ । પણ કારણ વિણ કારજ સાધિયેરે, તે નિજ મતિ ઉન્માદ—માટે વિષય પરિગ્રહાદિ જે રાગાદિ અશુદ્ધોપયોગના હેતુઓ છે તેનો ત્યાગ કરવો અને જ્ઞાન ધ્યાનાદિક, જે રાગાદિનો નાશ કરી શુદ્ધાત્મ જાવ પ્રગટ કરવાના હેતુઓ છે તે આદરવા, જેથી કાર્ય સિદ્ધિ થાય. ॥ ૨ ॥

ઉપશમ જાવે હો મિશ્ર દ્વાયિકપણે, જે નિજ ગુણ પ્રાગ્જાવ ॥

પૂર્ણાવસ્થાને નીપજાવતો, સાધન ધર્મ સ્વજાવ ॥સ્વામી ॥ ૩

અર્થ:—એમ ત્રિજોગનું સમારવું તથા વિષયાદિકનો ત્યાગ, એ જ્ઞાનાદિ ધર્મો પ્રગટ કરવાનાં સાધનો છે તે ઉપશમ દ્વાયોપશમ તથા દ્વાયિકજાવે પ્રગટ થયેલા આત્મ ગુણોને પૂર્ણ શુદ્ધ અવસ્થાને અર્થાત્ સિદ્ધદશાને પ્રાપ્ત કરે છે. જે કંઈ આત્મ ધર્મ ઉપશમપણે દ્વાયઉપશમપણે વા દ્વાયિકપણે પ્રગટ—પ્રાપ્ત થયો તે ક્રમે ક્રમે આત્મ ગુણોની શુદ્ધિ કરતો સંપૂર્ણ શુદ્ધાવસ્થાને—સિદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરવાને કારણ રૂપ છે. જેમ સમક્ષિત પ્રાપ્ત થયાથી વિરતિની પ્રાપ્તિ થાય, અને વિરતિવળે અપ્રમત્ત જાવની પ્રાપ્તિ થાય, તથા અપ્રમત્ત ગુણ વડે સંપૂર્ણ કષાયોનો નાશ થાય, કષાયોના નાશવડે વીતરાગતા પ્રાપ્ત થાય છે, અને વીતરાગતા વડે કેવલજ્ઞાન થાય. એમ ક્રમે ક્રમે આત્મ ગુણોની અધિક અધિક શુદ્ધિ થઈ સંપૂર્ણ શુદ્ધિ થાય. તેથી જે ગુણ પ્રાપ્ત થયો તે અધિક ગુણની પ્રાપ્તિનો હેતુ છે. જેમ કોઈ માણસ મહાન્ વ્યાધિગ્રસ્ત હોવાથી જરા પણ ખોરાક લઈ પચાવી શકવાને અસમર્થ હોય, અત્યંત નિર્બલ હોય પણ તે કોઈ રીતે થોડું બલ પામે તો તે બલવડે ધીમે ધીમે અધિક અધિક ખોરાક પચાવી અધિક અધિક બલવાન થતો પૂર્ણ બલવાન થાય. ઉક્તંચ—“

प्रशमरति ग्रंथे—आर्या वंद ॥ पूर्व करोत्यनंतानुबन्धि नाम्नां  
द्वयं कपायाणाम् । मिथ्यात्व मोह गदणं, क्षपयति सम्यक्त्व  
मिथ्यात्वम् ॥ सम्यक्त्व मोहनीयं, क्षपयत्यावतः कपायांश्च ।  
क्षपयति ततो नपुंसक, वेदं स्त्रीवेद मथतस्मात् ॥ दास्यादि  
ततःपङ्क. क्षपयति तस्माच्च पुरुषवेदमपि ॥ संज्वलनानपि इत्वा,  
प्राप्नोत्यथ वीतरागत्वम् । सर्वोद्धातित मोहो, निवृत्त क्लेशो  
यथाहि सर्वज्ञः॥ज्ञात्यनुप लक्ष्य राह्मणोन्मुक्तः पूर्ण चन्द्रश्च॥”  
तेषां समकित प्राप्ति माटे अत्यंत उद्यम करी प्रथम समकितनी  
प्राप्ति करवी जेथी बीजा सर्वे गुणो प्रगट थाव. ॥ ३ ॥

समकित गुणधी हो गेलेगी लगे, आत्म अनुगत भाव ॥  
संवर निजरा हो उपादान हेतुता, साध्यालवन दाव ॥  
स्वामी० ॥ ४ ॥

अर्थ.—अनादि विज्ञाव योगे आत्म परिणति परानुगत थपली ठे  
अर्थात् ज्ञानशक्ति परद्रव्यने जाणवामां, दर्शनशक्ति परद्रव्यने  
देखवामां—निर्धार करवामां, चारित्रशक्ति परद्रव्यमां आचरण रमण  
करवामां, एम सर्वे गुणो आत्मगुणना बाधकपणे परानुयायी प्रवर्त्ते  
ठे पण ज्यारे समकितनो खान पामे त्यारे परानुगत थपली आत्म  
परिणतिने शुद्धात्म अनुगत पणे प्रवर्त्ताववानो अजिज्ञापी थाय, शुद्ध  
कार्य सन्मुख परिणति करे अर्थात् “ समकित गुणधी ” पटखे  
चोया गुणस्थानधी मांडी “ शेषेशी गुण खगे ” पटखे चौदसा गुणस्थान  
मुभी परानुगत थपली आत्म परिणतिने घागी प्रमे प्रमे अधिक अधिक  
शुद्धताए प्रतापतो जाय. जेम जे परिणति अनात्म गन्तुने आत्म जाणवा—  
मरणा शिगेरेमां प्रवर्त्तनी हनी ते चोये गुणस्थाने आत्माने आत्मा  
जाणवा—मरणा शिगेरेमा प्रवर्त्ताये नया जे परिणति तिमादि पाव



२६२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

अव्रतमां वर्त्तती हती ते पांचमे ठे गुणस्थाने अहिंसादि पांच  
व्रतमां वर्त्तावे तथा मद विषय कषाय निंझा विकथामां जे परिणति  
वर्त्तती हती ते वारी सातमे गुणस्थाने अप्रमत्त जावे आत्मगुण रम-  
णमां वर्त्तावे एम आठमे गुणस्थाने रसघात स्थितिघात गुणसंक्रम  
गुणश्रेणि करे, अपूर्व स्थिरतामां आत्म परिणतिने प्रवर्त्तावे, संज्वलन  
क्रोध मान माया विगेरेथी आत्म परिणतिने वारी नवमे गुणस्थाने  
ते कषाय रहित-अकषायपणे-समज्ञावमां वर्त्तावे, सूक्ष्म लोभ शिवाय  
बाकीना कषायथी आत्म परिणतिने वारी दशमे गुणस्थाने अधिक  
शुद्ध समपरिणामे प्रवर्त्तावे, सर्वे कषायनो क्षय करी बारमे गुणस्थाने  
वीतराग यथाख्यात चारित्रमां वर्त्ते, चार घातीया कर्मनो समूल  
क्षय करी तेरमा गुणस्थाने अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र,  
अनंत वीर्यपणे आत्म परिणतिने वर्त्तावे-योग क्रियानी सकल चप-  
लता वारी चौदमा गुणस्थाने अयोगी अवस्था करो पूर्ण परम  
निवृत्ति पद पामे. एम दरेक गुणस्थाने आत्म गुणनी अधिक अधिक  
शुद्धि करतो संपूर्ण सिद्धावस्थाने प्राप्त थाय. एम दाव राखी साध्यने  
आधारे साध्य सन्मुख उपादान-आत्म परिणतिनी शुद्धताना हेतुए  
वर्त्तवुं तेज संवर अर्थात् नवाकर्मनुं रोकवुं तथा निर्जरा एंटले पूर्व  
संचित कर्म क्षय थवानो हेतु ठे, उक्तंच-“ जो संवरेण जुत्तो,  
अप्पष्ठ प्रसाधगोहि अप्पाणं । मुणिउण जादि णियदं, णाणं  
सो संधुणोदि कम्मरयं” ॥ ४ ॥

सकल प्रदेशे हों कर्म अज्ञावता, पूर्णानंद स्वरूप॥ आत्म  
गुणनी हो जे संपूर्णता, सिद्ध स्वज्ञाव अनूप॥ स्वामी० ॥ ५ ॥

अर्थ:-आपना आत्म अंगना सर्वे प्रदेशथी ज्ञानावरणादि कर्म मलनो  
सर्वथा अज्ञाव थयो ठे तेथी सर्वे प्रदेश स्फटिकमणि समान शुद्ध  
संपूर्ण निरावरण थया ठे, कोइपण काले हवे कर्म मलनो रंच मात्र पण

સંશ્લેષ થવાનો સંજવ નથી, તેથી આત્મ અંગમાં વસતા અનંત ગુણ પર્યાયના સર્વે અવિજાગો સંપૂર્ણ શુદ્ધ થયા છે, શુદ્ધ કાર્યે પરિણમે છે તેથી હે જગવંત ! આપ પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ ઠો. અર્થાત્ જગત્જીવ તો ઉપાધિના પ્રતિકારથી આનંદ માને છે, પરદ્રવ્યને જોગ જાણી તેમાં લયલીન થઈ રહે છે તેથી જગત્જીવનો આનંદ તો ક્ષણજંગુર અપૂર્ણ તથા જયસહિત છે, પણ આપ તો પોતાના સ્વાધીન અવિનશ્વર એક હેત્રાવગાદી ગુણ પર્યાયોના જોક્તા ઠો, તેમાં રમણ કરો ઠો, તેમાં સંતુષ્ટ તટ્વીન થઈ આનંદ જોગવો ઠો તેથી આપનો આનંદ કોઈપણ કાલે નાશ થાય અથવા દૂર જાય તેમ નથી તથા સ્વાધીન અને સહજ હોવાથી જય આકુસતા સ્પૃહા રહિત છે તેથી આપનોજ આનંદ એકાંતિક આત્યંતિક પૂર્ણપદને યોગ્ય છે. જગત્જીવનો આનંદ તો સાચો આનંદ નથી, અજ્ઞાન વશે આનંદ મનાય છે. એમ આરમગુણની સંપૂર્ણ શુદ્ધતા, કર્તૃતા, જોક્તા, પરિણામીકતા, પ્રાદુક્તા, વ્યાપકતા આદિ તેજ આપનો અનુપમ સિદ્ધ સ્વજાવ છે. હવે કંઈપણ કાર્ય કરવાનું શેષ નથી, કંઈપણ આદરવાનું તેમ ઠોમવાનું બાકી નથી તેથી અચલ અવાધિત શાશ્વત પરમાનંદના સ્વામી ઠો ॥ ૫ ॥

અચલ અવાધિત હો જે નિઃસંગતા, પરમાતમ ચિજૂપ ॥

આતમજોગી હો રમતા નિજપદે, સિદ્ધ રમણ એ રૂપ ॥

સ્વામી ॥ ૬ ॥

અર્થ—આત્મ પરિણામને ચલ કરનાર જે રાગ દ્વેષ મોહ પરિણામ તેનો સર્વથા અજાવ હોવાથી અચલ, તથા આત્મ પરિણામને શુદ્ધપણે પરિણમવામાં ઘાત, સ્વલના કરનાર જ્ઞાનાવરણાદિક ઘાતીકર્મનો અજાવ હોવાથી અવાધિત ઠો તથા ધન ધાન્ય દ્વેષ વસ્તુ હિરણ્ય આદિ બાહ્ય પરિગ્રહ તથા મિથ્યાત્વ ક્રોધ માન માયા લોભ હાસ્ય રતિ અરતિ જય શોક જુગુપ્સા પુરુષવેદ સ્ત્રીવેદ નપુંસકવેદ એ ચૌદ

૨૬૪ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

અન્યંતર પરિગ્રહ, એમ બાહ્ય અન્યંતર પરિગ્રહથી સર્વથા રહિત હોવાથી નિઃસંગઠો. તથા જ્ઞાનાનુયાયી સર્વે ધર્મો સંપૂર્ણ શુદ્ધ નિર્મલ હોવાથી પરમાત્મા ઠો. તથા સંસાર અવસ્થામાં કર્મ સંયોગે શરીરમાં લોલ્લી-જૂતપણે વસી શરીર રૂપે પુદ્ગલ રૂપે સંસારીજીવ પોતાને માને છે પણ આપ તો શરીરથી સર્વથા અતિત થયાઠો તેથી માત્ર જ્ઞાનરૂપ-જ્ઞાનમૂર્તિ ઠો તથા પુદ્ગલ જોગનું રમણ તજી આપ પોતાના શુદ્ધ જ્ઞાન દર્શનાદિ ગુણોમાં રમણ કરવાવાલા આત્મ જોગી ઠો, શુદ્ધ સ્વાધીન અવિનશ્વર રમ્યમાં રમણ કરો ઠો તેથી આપનું રમણ સંપૂર્ણ અને અવિનશ્વર હોવાથી સિદ્ધપદ ધારણ કરે છે ॥ ૬ ॥

एहवो धर्म हो प्रचुने नीपन्यो, ज्ञाख्यो एहवो धर्म ॥  
जे आदरतां हो जवियण शुचि हुवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥  
स्वामी० ॥ ७ ॥

અર્થ:-એમ હે પ્રજુ ! આપના જ્ઞાનાદિ સર્વે ધર્મો કર્મ મલ્લથી રહિત શુદ્ધ પ્રગટ થયા. અચલ, અવિનાશી, અનંત, અજ, અલેશી, અષેદી, અકપાયી, અચલ, અક્રિય, નિત્ય, સ્વાધીન, નિર્ઘ, પરમાનંદ દશાને પ્રાપ્ત થયા ઠો. અને જે રીતે આપ એ દશાને પ્રાપ્ત થયા તેજ ઉપાય, તેજ ધર્મ, પરમ કરુણા વને જવ્વ જીવોને આ સંસાર સમુદ્ર-માંથી પારંગત થઈ શિવજૂમીએ પહોંચવા પ્રરૂપ્યો-ઉપદેશ્યો છે. તે સમ્યક્દર્શન જ્ઞાન ચારિત્ર રૂપ ધર્મ આદરતાં-સેવતાં જવ્વ જીવો દ્રવ્યકર્મ, જાવકર્મ અને નોકર્મ એ ત્રણ પ્રકારના કર્મનો નાશ કરી પરમ પવિત્ર શુદ્ધ નિરાવરણ થાય. ॥ ૭ ॥

नाम धरम हो ठवण धरम तथा, जव्य क्षेत्रतिम काल ॥  
ज्ञावधर्मना हो हेतु पणे जला, ज्ञाव विना सहु आल ॥  
॥ स्वामी० ॥ ८ ॥

अर्थ:-नामधर्म, स्थापनाधर्म, द्रव्यधर्म, क्षेत्रधर्म, कालधर्म तथा जावधर्म एम धर्म स्वरूप अनेक प्रकारे ठे, पण नाम, स्थापना, द्रव्य क्षेत्र तथा काल ए जो जावधर्मना सन्मुख, जावधर्मना हेतु होय अर्थात् जावधर्म साधवामां कारणभूत होय तो प्रशंसनीय, कार्यकारी ठे पण जो ते जावधर्मनी अपेक्षा शून्य होय तो आल अर्थात् निरर्थक धुल उपर लीपण जेवा जाणवा. “जाव शून्या क्रिया न फलन्ति इति” अथवा एकडा विनानां मीडां जेवा जाणवा पण जो जावधर्मनी सापेक्षताए होय तो एकडा उपरना मीडांनी माफक गुणकारी ठे. ॥ ७ ॥

श्रद्धा जासन हो तत्त्व रमण पण, करता तन्मय जाव. ॥  
देवचंझ जिनवर पद सेवतां, प्रगटे वस्तु स्वजाव ॥  
॥ स्वामी ७ ॥ ८ ॥

अर्थ:-शुद्धात्म तत्त्वनी श्रद्धा अर्थात् जो हुं जिन प्ररूपित सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप धर्म आदरुं तो हुं पण शुद्धात्म तत्त्वनो जोगी थई शकुं. एम श्रद्धा करे, नय निक्षेप प्रमाण युक्त एम जाणे, तथा ते शुद्धात्म तत्त्वनेज पोतानुं रम्य जाणी तेमांज रमण करे, परद्रव्यादिमायी रमणता टाले, तो आत्म स्वजावमांज तल्लीन थाय-तद्रूप थाय. श्रीमान् देवचंझ मुनिवर कहे ठे के एम जिनेश्वरना द्रव्यचरण जावचरणने सेवतां आपणो आत्म स्वजाव संपूर्ण शुरू प्रगटे, परमानंदनी प्राप्ति थाय. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

૨૬૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

॥ અથ સપ્તમ શ્રી રુષજ્ઞાનન જિન સ્તવનમ્ ॥ વારી હું

ગોમ્તી પાસને ॥ એ દેશી ॥

॥ શ્રી રુષજ્ઞાનન વંદિયે, અચલ અનંત ગુણ વાસ જિનવર ।

॥ દ્વાયિક ચારિત્ર ઝોગથી, જ્ઞાનાનંદ વિલાસ જિનવર ॥

॥ શ્રી૦ ॥ ૧ ॥

અર્થ:-ધર્મ ધુરંધર, ધર્મ તીર્થંકર, અશરણ શરણ, શ્રી રુષજ્ઞાનન પ્રજુને આ લોક પરલોકના વિષય સુખની અજિલાષા સ્પૃહા રહિત તથા માન પૂજાના લોજ રહિત, આ સંસાર સમુદ્રમાંથી તારણ તરણ જહાજ જાણી, અત્યંત વિશુદ્ધ જાવનાએ પરમ આદર પૂર્વક વંદિયે-સેવા ઝંક્તિ કરિયે. કે જે પ્રજુ અચલ અર્થાત્ પ્રદેશ માત્ર પણ દૂર ન થાય તથા રાગ દ્વેષ મોહ જન્ય ચપલતા રહિત એહવા જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણના વાસ-નિધાન છે તથા ક્રોધ માન માયા લોજ હાસ્ય રતિ અરતિ જય શોક જુગુપ્સા તથા ત્રણ વેદ એ ચારિત્રમોહનીય પ્રકૃતિનો સત્તા સહિત ક્ય કરી યથારૂયાત્ સ્વજ્ઞાવાચરણ જ્ઞાન દર્શન આદિ અનંત સ્વજ્ઞાવિક ઝોગ જન્ય આનંદમાં અનંત જ્ઞાન સહિત વિલસે છે ॥ ૧ ॥

॥ જે પ્રસન્ન પ્રજુ મુખ ગ્રહે, તેહિજ નયન પ્રધાન જિનવર ॥

॥ જિન ચંરણે જે નામીયે, મસ્તક તેહ પ્રમાણ જિનવર ॥

॥ શ્રી૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-હે જગવંત ! આપનો જ્ઞાન દર્શનાદિ સર્વે ઝોગ ઉપજોગે આપને સદા સ્વાધીન વર્તે છે. કોઈ પણ કાલે પ્રદેશ માત્ર પણ દૂરવર્તી થાય તેમ નથી તેથી આપ સદા શોક રહિત તથા તે ઝોગ ઉપજોગને કોઈ પણ વાધા પીડા તથા હરણ કરી શકે તેમ નથી તેથી પરમ

निर्देश, तथा ते योग दृष्टयोगो एव उच्यते तेन-सर्विषया इति  
 तथा गुण शेषाधी एव विष्णोर् इति, तथा ते योग दृष्टयोगो  
 एव उच्यते एव शेषाधी एव इति इति, एव शेषादि गर्व  
 कथाय इति शेषाधी एव एव गुणवत्तम एव शेषादि एव  
 प्रत्युक्ति प्रत्युक्ति ते, इति एव ते एव एव एव शेषादि एव  
 इति एव एव, ते तेन ते दृष्ट योग एव तेन तेन प्रधान शेषादि  
 एव नू तथा शेषा शेषादि एव शेषादि एव शेषादि एव  
 एव एव, ते, शेषादि ते दृष्ट योग एव शेषादि एव  
 एव नू ॥ २ ॥

॥ अग्निदा पदयज्ञ अग्नीर्वे, नक्षत्रीति ने ह्यत्र जिनार ॥

॥ प्रह्म गण विनयनें गे, नेहज मन मुखाय विनय ॥

॥ श्री० ॥ ३ ॥

[illegible]

૨૬૭ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

કરને તેની ગ્રાણેંદ્રિ કમલની સુવાસમાં મોહીત કરી તે સ્થલે ઘેરી  
રાખી તેના વહ્નજ પ્રાણનો ત્યાગ કરાવે છે તેમ જો માહરૂં મન, ઇંદ્રિયો  
તથા અંગોપાંગ, વિષય કષાયના પદાર્થોં ઉપાર્જન કરવામાં, મેલવવામાં,  
તેનું સેવન, તેની રક્ષા કરવામાં રોકાય, સ્વપર જીવના દ્રવ્ય જાવ  
પ્રાણની હિંસા કરવામાં વર્તે—મદદકારી થાય, પાપ કર્મનું ઉપાર્જન  
કરી જવ ઝ્રમણના હેતુ થાય, તો એહવા મન તથા ઇંદ્રિયોના લાજથી શું?  
તથા દશ દૃષ્ટાંતે દૂર્લજ એહવા મનુષ્ય જવનો લાજ પણ નિષ્ફલ—યચુક્ત—  
“યઃ પ્રાપ્ય દુઃપ્રાપ્યમિદં નરત્વં, ધર્મં ન યત્ને ન કરોતિ મૂઢઃ  
॥ ક્લેશઃ પ્રવંધેન સ લબ્ધ મબ્ધૌ, ચિંતામાણિં પાતયતિ પ્રમાદાત્”  
॥ તથા “તે ધતૂર તરૂં વપંતિ જવને પ્રોન્મૂલ્ય કલ્પજુમમ્ ।  
ચિંતારત્ન મંપાસ્ય કાચશકલં સ્વીકૂર્વતે તે જમાઃ ॥ વિક્રીય  
દ્વિરદં ગિરીંઙ સદૃશં ક્રીણંતિ તે રાસજં । યે લબ્ધું પરિહૃત્ય  
ધર્મમધમા ધાવંતિ ઝોગાશયા” ॥ ૩ ॥

જાણો ઠો સહુ જીવની, સાધક બાધક જ્ઞાંત જિનવર ॥ પણ  
શ્રીમુખથી સાંજલી, મન પામે નીરાંત જિનવર ॥ શ્રી૦ ॥ ૪ ॥

અર્થઃ—હે ત્રિલોક પૂજ્ય ! દર્પણ તલની માફક આપની કેવલ—  
જ્ઞાન મય ઉત્કૃષ્ટ જ્યોતિમાં સર્વે દ્રવ્યો પોતાના ત્રૈકાલિક સંપૂર્ણ  
પર્યાયો સહિત પ્રયાસ વિના યથાવત્ પ્રતિબિંબિત થાય છે. તેથી સર્વે  
જીવોની સાધક બાધક જ્ઞાંતિ આપ જાણો ઠો અર્થાત્ અમુક જીવ  
આ સમયે સમ્યક્ જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર રૂપ મોક્ષ સાધનમાં વર્તે છે  
કે રત્ન ત્રયના પ્રત્યનીક પણ જવ ઝ્રમણના હેતુ કર્મ બંધનમાં વર્તે  
છે એ સર્વે વૃત્તાંત હે કરુણા નિધિ ! આપ તો પ્રત્યક્ષ પણ જાણો ઠો જ.  
પણ જો આપના મુખારવિંદથી હું સાધક જાવમાં વર્તું હું એમ

सांजलुं तो माहुरुं मन निरांत पामे, जव त्रमणना जयनो क्लेश शमे-  
दूर थाय ॥ ४ ॥

तीन काल जाणंग जणी, शुं कहिये वारंव्वार ॥ जि० ॥

पूर्णानंदी प्रभुतणुं, ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥

श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ.-त्रणे कालनी परिणतिने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष पणे  
समकाले जाणवा देखवावाला प्रभु प्रत्ये वारवार शुं कहुं? मने तो  
हे प्रभु! स्वयंजूरमण समूझनी पेठे अखूट आनंद रसथी जरपूर  
आपनाज पदनुं ध्यान-आपना पदमां एकाग्रचित्त-तल्लीनता तेज  
जव समुझथी तरवामां उत्कृष्ट आधार चूत ठे. ॥ ५ ॥

कारणथी कारज हुवे, ए श्री जिनमुख वाण ॥ जि० ॥

पुष्ट हेतु मुज सिद्धिना, जाणी कीध प्रमाण ॥ जि० ॥

श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ:-जगत् दिवाकर, संपूर्ण तत्त्व वेत्ता, श्री केवली जगवंत एम  
प्रक्षेपे ठे के योग्य कारणना योग वडे कार्य सिद्धि थइ शके. अर्थात्  
कार्यना स्वरूपनो यथार्थ जाणनार कार्यनो अजिज्ञापी कर्ता, उपा-  
दान अने निमित्त कारण वडे कार्य सिद्धि पामी शके. उपादान-जे  
पदार्थ कार्य सन्मुख थाय तथा तेज संपूर्ण कार्य रूप थाय-कार्य  
सिद्धि जेनी हयाति जणाय ते उपादान कारण जाणवुं. जेम घटनुं  
उपादन कारण माटी तथा पटनुं उपादान कारण रु अथवा सूतर,  
कारण के माटीनो पिंड थाय, पिंडथी स्थास कुसलादि पर्यायो थइ  
माटीज संपूर्ण घट रूप थाय, संपूर्ण घट यये पण माटीनी हयाती ठे  
माटे माटी घटनुं उपादान कारण समजवुं माटीथीज घट उत्पन्न  
थइ शके पण अन्य वस्तुमांथी घट थइ शके नहि. उक्तंच-"यदात्मकं



२७० विंशति बिहरमान जिन स्तवनानि वासावबोध सहित.

कार्यं दृश्यते तदिह तद् द्रव्य कारणं उपादान कारणं च  
तंतवः पटस्य इति ”

निमित्त—जे उपादान कारणथी जिन होय ठे पण ते विना  
कार्य सिद्ध थइ शकतुं नथी. कार्य सिद्ध करवामां जेनी खास जरूर  
ठे ते निमित्त कारण ठे. ते निमित्त कारण पद, कर्त्ताने आधिन वर्त्ते  
ठे. जेम घटनुं उपादान कारण माटी ठे अने माटीथी दंड चक्र  
धीवर. आदि जीन ठे तो पण कुंजारने घट सिद्ध करवामां दंरु  
चक्रादिनी अवश्य जरूर ठे, ते विना घट बनावी शके नहि, तेथी  
दंड चक्रादि घटनां निमित्त कारण जाणवां पण ते दंरु चक्रादिने  
कुंजार ज्यारे माटीने घट रूप करवामां प्रवर्त्तावे ( उपयोगमां ले )  
त्यारेज तेउ ( दंरु चक्रादि ) निमित्त कारण कहेवाय पण कुंजार  
घट कार्य करवामां दंरु चक्रादिने वापरतो न होय तो ते कारण  
कहेवाय नहि. कार्य करवा मांडतां पहेला तथा कार्य सिद्ध थइ गया  
पढी ते दंडादिमां कारण पद नथी. कारण के कार्य कारण एक  
समये ठे पण जे कार्यानंतर तथा प्रथम अप्रयुक्त काले दंरुादिकने  
निमित्त कारण कहे ठे ते मात्र नैगम नयनो मत जाणवो. एम कार्यना  
स्वरूपनो जाणनार कार्यनो अजिलाषी कर्त्ता साचा उपादान तथा  
निमित्तना योगे कार्य सिद्धि पामे पण कारण वगर कार्य सिद्धिनो  
आकाश पुष्पवत् अज्ञाव जाणवो. तेथी हे प्रभु ! ज्ञान पूर्वक निर्धार  
करतां माहरा परमात्म सिद्धिना पुष्ट हेतु आपने जाणी आपनुंज  
शरण अंगीकार करुं हुं. निमित्त कारणना वे जेद ठे. ( १ ) पुष्ट-  
निमित्त ( २ ) अपुष्ट निमित्त. “ कार्यस्य आसन्न निमित्तं  
इति तदेव पुष्टं ” “ दूर तरं कारण नैमित्तिकं तत् अपुष्टं ”  
अर्थात् साध्य धर्म जेमां प्रगट—विद्यमान होय तथा जेमां कदापि

कार्यनो ध्वंसक जाव न होय ते पुष्ट निमित्त जाणवुं. जेम तीर्थकर जगवतमा परमात्म पद प्रगट-विद्यमान ठे तथा परमात्म पदना घातक जावनो जेमां सर्वथा अजाव ठे माटे तीर्थकर जगवंत परमात्म पद साधवामां पुष्ट निमित्त ठे एम जाणवुं. (पुष्ट हेतु जिने-जोयं मोक्ष सज्ञाव साधने)

अपुष्ट निमित्त-जेमा साध्य पद विद्यमान न होय, जे कर्त्तानी प्रेरणाधी कारण थाय ठे, वली तेमां ध्वंसक जाव पण रहेलो होय ते अपुष्ट निमित्त ठे जेम दंड ते घटनुं अपुष्ट निमित्त ठे कारण के दंडमां घट पणुं विद्यमान नथी वली कुंजार ज्यारे घट करवामां प्रवर्त्तवे तोज घटोत्पत्तिनुं निमित्त कहेवाय पण जो कुंजार घट ध्वंस करवामा वापरे तो ते घट ध्वंसना निमित्त कहेवाय माटे दंड ते घटनु अपुष्ट कारण जाणवुं. माटे हे कृष्णज्ञानन जगवंत ! आप मारा परमात्मपदना पुष्ट निमित्त ठो माटे आपनीज सेवाधी मारी सिद्धि थशे एम जाणी आपनीज सेवा अंगीकार करुं तुं. ॥ ६ ॥

शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगे पूर्ण न थाय ॥ जि० ॥

त्यां लगे जगगुरु देवना, सेवुं चरण सदाय ॥ जि० ॥

श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ:-अज्ञानरूप अंधकारनो अत्यंत नाश करनार तथा सम्यक्-ज्ञान दर्शन चारित्र आदि संपूर्ण आत्म गुणनी सिद्धिने प्राप्त हो-वाथी जगतगुरु तथा जगत्देव हे कृष्णज्ञानन स्वामी ! ज्यांसुधी शुद्धात्म तत्त्वरूप स्वाभाविक अखंड अखूट अनुत्तर संपदानी मन्त्रे संपूर्णपणे सिद्धि प्राप्ति न थाय त्यासुधी हे दीन दयाल ! आपना डव्य जाव रूप चरण युग्मनुं निरंतर सेवन करु एम जावना जावुं तुं ॥७॥

३९२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

कारज पूर्ण कर्या विना, कारण केम मूकाय ॥ जि० ॥

कारज रुचि कारण तणा, सेवे शुद्ध उपाय ॥ जि० ॥

श्री० ॥ ८ ॥

अर्थः—जेम समूद्र पार पासवानो इच्छक पुरुष जो समूद्र वच्चे वहा-  
एनो त्याग करे तो समूद्र पार जइ शके नहि अने वच्चे सूवी जाय.  
माटे हे जगवंत ! परमात्म सिद्धिरूप माहरुं कार्य ज्यांसुधि सिद्ध  
थयुं नथी त्यांसुधि पुष्टालंघन रूप आपना चरण युग्मनी सेवना  
केम ठोरुं ? कारणके कार्य सिद्धिनो रुचिवंत पुरुष कार्य सिद्ध  
यता सुधी शुद्ध कारणोने यथार्थ पणे सेवे—आदरे ए नीति ठे. ॥८॥

ज्ञान चरणसंपूर्णता, अव्याबाध अमाय ॥ जि० ॥ देवचंद्र

पद पामीये, श्री जिनराज पसाय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थः—स्तवन कर्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे ठे के तरण तारण  
सामान्य केवलीओमां राजा समान श्रीरूपज्ञानन तीर्थकरना चरण  
पसाये सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्रनी संपूर्णता तथा पूर्ण  
अव्याबाध पणुं तथा अमायी, अलेशी, अफंदी, अलोत्तीपणा आदि  
सर्वे आत्म गुणनी संपूर्णता रूप देवमां चंद्रमा समान परमात्म  
पदनी सिद्धि पामीये, कृत कृत्य थश्ये, अनंत काल सुधि सहज  
अखंड परमानंद विदासने पामीए. ॥ ९ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ અષ્ટમ શ્રી અનંતવીર્ય જિન સ્તવનમ્ ॥

ચરણાલી ચામુંડા રણ ચડે ॥ એ દેશી ॥

॥ અનંત વીરજ જિનરાજનો, શુચિ વીરજ પરમ અનંતરે ॥

॥ નિજ આત્મ જાવે પરિણમ્યો, ગુણ વૃત્તિ વર્તનાવંતરે ॥

॥ મન મોહ્યું અમ્હારું પ્રજુ ગુણે ॥ ૧ ॥

અર્થ.—સામાન્ય કેવલીઝંમાં રાજા સમાન શ્રી અનંતવીર્ય જગવંત !  
આપનું “વીર્ય” જ્ઞાનદર્શનાદિ સર્વે ગુણોને વર્તવામાં આધારજૂત આ-  
ત્મવીર્ય તે “શુચિ” પર પરિણામિકતાથી સર્વથા રહિત અત્યંત નિ-  
ર્મલ તથા “પરમ” જગત્વાસી કોણે જીવોમાં એવું આત્મવીર્ય  
નથી તેથી સર્વોત્કૃષ્ટ તથા “અનંત” જ્ઞાનાંદિ અનંત ગુણોમાંથી  
કોણે ગુણને વર્તવામાં જરાપણ સ્વલના (વ્યાધાત) ન પામે તથા  
કોણે કાલે હીણ ફીણ ન થાય તેથી અનંત છે.

એવું શ્રીઅનંતવીર્ય જગવંતનું પરમ પવિત્ર પરમોત્કૃષ્ટ અનંત આત્મવીર્ય  
તે ફક્ત જ્ઞાન દર્શનાદિ પોતાના જ અનંત ગુણને પરિણમવામાં નિઃપ્રયા-  
સપણે સહાયરૂપ સદા પરિણમે છે. એમ શ્રી જિનેશ્વરના, પરજાવરૂપ  
મહિનતાથી સર્વથા રહિત પરમ પવિત્ર જ્ઞાતાદિ અનંત ગુણ જોડે તેમાં  
માહરું મન મોહ્યું—રત થયું—હીન થયું—ગુણાનુરાગી થયું. ॥ ૧ ॥

॥ યદ્યપિ જીવ સદા, વીર્ય ગુણ સત્તાવંતરે ॥ પણ

કર્મે આરુત્ત ચલ તથા, વાલ વાધક જાવ લહંતરે ॥

॥ મન ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ.—વીર્ય એ જીવનો મૂલ ગુણ છે તેથી સર્વે જીવો ત્રણે કાલે  
વીર્ય ગુણનો સત્તા સહિત છે એટલે કોણે જીવ કોણે કાલે વી-  
ર્ય વગરનો નથી; તથાપિ સંસારી જીવોનું વીર્ય અનાદિયો કર્મ પટલ

૨૭૪ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

વડે આવૃત્ત હોવાથી આત્મગુણો સંપૂર્ણ શુદ્ધ કેવલજ્ઞાન, કેવલદર્શન, યથાભ્યાત્ ચારિત્રાદિરૂપ પરિણમિ શક્તા નથી અને તેથી પોતાની અનંત અવ્યાબાધ આત્મીય સદ્ગતિ સમાધિથી વિયોગી રહે છે. તથા “ચલ” અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ આત્મ પરિણતિમાં નિશ્ચલ-સ્થિર નહિ રહેતાં રાગ દ્વેષ વશે અનેક પુદ્ગલ-પર પરિણતિમાં ચલ્લાયમાન થઈ રહ્યું છે, પર કાર્ય-માં રોકાઈ રહ્યું છે. જેમ કોઈ પુરુષ પરકાર્યમાં પોતાની શક્તિ રોકે તો તે સ્વકાર્ય સાધી શકે નહિ તેમજ તે વીર્ય “વાલ” હિતાહિતના જ્ઞાનથી રહિત હોવાથી “વાધક” અર્થાત્ પોતાને અહિતકારી પણે પરિણમે છે કારણ કે વાલ વાધક વીર્ય વડે જગત્ જીવો અજ્ઞાન મિથ્યાત્ કષાય રૂપ પરિણમી અનેક પ્રકારના કર્મો વાંધે પોતાને અત્યંત અહિતકારી-દુઃખ સમૂહ રૂપ જીવોપાધિ વહેરી લે છે. પણ જો પોતાના વીર્ય ગુણને માત્ર સમ્યક્ જ્ઞાનાદિ આત્મ પરિણામમાં જ વાપરે તો અનંત સુખના સ્વામી થાય ॥ ૨ ॥

અત્પ વીર્ય દ્વયોપશમ અઠે, અવિજ્ઞાગ વર્ગણા રૂપરે ॥

પ્રમુગુણ એમ અસંખ્યથી, આયે યોગસ્થાન સ્વરૂપરે ॥

॥ મન ૦ ॥ ૩ ॥

સુદમ નિગોદી જીવથી, જાવ સન્નીવર પજ્જત્તરે ॥ યોગનાં

ઠાણ અસંખ્ય છે, તરતમ મોઢે પરાયત્તરે ॥ મન ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-સર્વે ઠદ્મસ્થ જીવોનું આત્મ વીર્ય દ્વયોપશમ જાવે સદા હોય પણ સર્વથા આવૃત્ત થાય નહિ. જો સર્વથા આવૃત્ત હોય તો ચેતનતાનો સમૂલ અજાવ થાય તેથી ઠદ્મસ્થ જીવોનો પણ વીર્ય ગુણ દ્વયોપશમ જાવે હોયજ અર્થાત્ ઠદ્મસ્થ જીવોને પણ વીર્યાંતરાયનો સદા દ્વયોપશમ હોય અને વીર્યાંતરાયના દ્વયોપશમ વડે ઠદ્મસ્થ જીવોને અત્પવીર્યની પ્રગટતા હોય છે અને તે અત્પવીર્યની પ્રગટતાના

કારણથી રત્નત્રયની મલિનતાને યોગે પોતાના કર્તૃત્વ સ્વજાવને લીધે, કર્મ ( ક્રિયા ) રંગે આત્મ પ્રદેશ ચલાયમાન કરે છે એટલે “ આત્મ પ્રદેશ પરિસ્પંદો યોગઃ ” એ સૂત્ર પ્રમાણે યોગી બને છે. યદ્યુક્ત-  
 “ ઇન્દ્રિય વીર્ય લેશ્યા સંગે, અગ્નિસંધિજ મતિ અંગેરે ॥  
 સૂક્ષ્મ શૂલ ક્રિયાને રંગે, યોગી થયો ઇન્દ્રિયેરે ॥ ” એમ યોગ વશે કર્મનો ગ્રાહક થાય છે. તે યોગનું સ્વરૂપ નિચે પ્રમાણે “ વીર્યાતરાય દ્વયોપશમોત્પન્નો મનો વચન કાય વર્ગણાલંબનઃ કર્માદાનં દેતુચૂત આત્મપ્રદેશ પરિસ્પંદો યોગઃ ” વીર્યાતરાય કર્મના દ્વયોપશમ બને ઉત્પન્ન મન વચન અને કાય વર્ગણાનું અલંબન કરનાર કર્મ ગ્રહણ કરવામાં કારણચૂત આત્મ પ્રદેશનું પરિસ્પંદ ( સચલન ) તે યોગ છે. તિહાં જઘન્ય વીર્યવાલો જે જીવપ્રદેશ તે વલી કેવલીના તીક્ષ્ણ વુદ્ધિ રૂપ શસ્ત્રે કરી ઘેદતાં જે વીર્યાંશનો વીજો વિજાગ થઈ શકે નહિ તે વીર્ય વિજાગ છે અને જાવાણુ પણ તેનેજ કહીયે. તેવા લોકાકાશથી અસંખ્યાત ગુણા જે વીર્યાણુ તેણે કરી સહિત જે જીવપ્રદેશ તેનો સમુદાય એટલે જીવપ્રદેશની શ્રેણી તે પ્રથમ વર્ગણા, તેથી એક વીર્ય વિજાગે અધિક એવી જે જીવ પ્રદેશની શ્રેણી તે વીજી વર્ગણા, બે વીર્યવિજાગે અધિક એવી જે જીવ પ્રદેશની શ્રેણી તે ત્રીજી વર્ગણા, એમ એકેક વીર્યવિજાગે અધિક વીર્યવાલા પ્રદેશની શ્રેણી તે ઘનીકૃત લોકનો એક પ્રદેશિક સૂચી શ્રેણીને અસંખ્યાતમે જાગે જેટલા આકાશ પ્રદેશ હોય તેટલી વર્ગણા એક સ્પર્ધક થાય, તે પ્રથમ સ્પર્ધકની હઠ્ઠાવોર્યાંશ વર્ગણાથી એટલે ઘેઘી વર્ગણાથી એક બે અથવા સંખ્યાતે વીર્યવિજાગે અધિકા કોઈ જીવ પ્રદેશ નથી પરંતુ અસંખ્ય લોકાકાશ પ્રમાણ વીર્યાંશે અધિક જીવ પ્રદેશની શ્રેણી તે વીજા સ્પર્ધકની પ્રથમ વર્ગણા

૨૭૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવવોધ સહિત.

જાણવી, વલી તેથી એકેક વીર્યવિજાગે વધતા વધતા જીવ પ્રદેશની વર્ગણા કરી વીજો સ્પર્ધક થાય, તેથી વલી અસંખ્ય લોકાકાશ પ્રદેશ જાગ પ્રમાણ વીર્યાંશે અધિક વીર્યવંત જીવ પ્રદેશની શ્રેણી તે ત્રીજા સ્પર્ધકની પ્રથમ વર્ગણા, એણી પેરે શ્રેણી પ્રદેશ અસંખ્યેય જાગ પ્રમાણ સ્પર્ધકે પહેલું જઘન્ય યોગસ્થાનક થાય, તેથી અંગુલના અસંખ્યાતમા જાગના આકાશ પ્રદેશ પ્રમાણ સ્પર્ધકે વધતું વીજું યોગસ્થાનક હોય, તેથી વલા તેટલેજ સ્પર્ધકે વધતું ત્રીજું યોગ સ્થાનક હોય, એમ અસંખ્યાતા યોગસ્થાન થાય. વીર્યાંતરના ક્ષયોપ-શમતા અસંખ્ય જેદ છે તેથી હપર પ્રમાણે યોગના પણ અસંખ્યાતા જેદ થાય અર્થાત્ સૂક્ષ્મ નિગોદીઆ લબ્ધિ અપર્યાપ્તા જીવને જવ પ્રથમ સમયે સહુથી જઘન્ય યોગ હોય છે અને સન્નિ પંચેંદ્રિ પર્યાપ્તા મનુષ્ય સૌથી ઉત્કૃષ્ટ યોગ પામી શકે છે એમ મોહની તરતમતા વશે ( વીર્યાંતરાયના ક્ષયોપશમના જેદ વશે ) સૂક્ષ્મ નિગોદિયા લબ્ધિઅપર્યાપ્તા જીવના જવ પ્રથમ સમયથી માંડી સન્નિ પંચેંદ્રિય મનુષ્ય સુધી અસંખ્યાત યોગસ્થાન જાણવાં ॥ ૩ ॥ ૪ ॥

॥ સંયમને યોગે વીર્ય તે, તુમ્હેં કીધો પંક્તિ દહરે ॥ સાધ્ય  
રસી સાધક પાણે; અન્નિસંધિ રમ્યો નિજ લહરે ॥ મન૦ ॥

॥ ૫ ॥

અર્થ:-જ્યાંસુધી સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી ત્યાંસુધી સંસારી જીવ મિથ્યાત અજ્ઞાનવશે પૌદ્ગલીક કાર્યને પોતાનું કાર્ય માની વીર્યાંતરાયના ક્ષયોપશમ વડે પ્રાપ્ત થયેલા આત્મવીર્યને અસંયમમાં અર્થાત્ સ્વપર જીવની દ્રવ્યજાવ હિંસામાં વાપરે છે, પો-તાના વીર્યને બાલ બાધક જાવે પરિણમાવે છે, પોતાના વીર્ય વડે કર્મ-બંધ કરી જવ ત્રમણની ઉપાધિ પ્રાપ્ત કરે છે. પણ હે જગવંત ! આપે સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાન વડે પોતાનું શુદ્ધોપયોગ રૂપ કાર્ય જાણી

बाल बाधक जावनो परिहार करी क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला वीर्यने सयम कार्यमां जोड्युं अर्थात् ज्ञानदर्शन चारित्र्यने निर्मलपणे परिणमवामां सहायकारी कर्युं मन वचन तथा काययोगने संयम कार्यमां जोड्या एम आत्मवीर्यने पंक्तिजावे तथा हितकारी जावे परिणमाव्युं. सच्चिदानन्दमय शुद्धात्म इव्यने पोतानुं शुद्ध साध्य जाणी तेना रसीआ-ते साधवाना उमंगी थइ अजिसंधिज वीर्यने ( जे मतिपूर्वक उपयुक्त वीर्य ते अजिसंधिज वीर्य) निज लक्ष्मां पटले अनंतसुख पिंरु जे शुद्धात्मपद ते साधवामां रमाव्युं-वापर्युं. एम अजिसंधिज वीर्यने शुद्ध कारक प्रवृत्तिमां जोनी अवंधक जावे परिणमाव्युं ॥ ५ ॥

॥ अजिसंधि अवंधक नीपने, अनजिसंधि अवंधक आयरे ॥ स्थिर एक तत्त्वता वर्त्ततो, ते दायिक जाव समायरे ॥ मन० ॥ ६ ॥

अर्थ:-एम हे जगवंत ! आपनुं अजिसंधिज वीर्य अवंधक जावे वर्त्तवाथी अनजिसंधिज वीर्य पण अवंधक जावे परिणम्युं (मन चिंतना पूर्वक आहार विहारादिक जे करण व्यापार ते अजिसंधिज वीर्य कह्ये अने जे मन चिंतना विना केवल वचन अने कायाना व्यापार ते अनजिसंधिज वीर्य कह्ये) माटे जेनी मनोवृत्ति-अंतरंग उपयोग अवंधक जावमां वर्त्ते ठे तेनी वचन अने कायानी क्रिया पण अवंधक जावमांज गणाय, संवर हेतुज गणाय. "यद्युक्तं-जावास्त्रवाजावमयं प्रपन्नो, ज्ञव्यास्त्रवेज्यः स्वत एव जिज्ञः ज्ञानी सदा ज्ञान मयैक जावो, निरास्त्रवो ज्ञायक एक एव." एम इव्यसंवर तथा जावसंवरना स्वामी थइ कर्मबंधनो परिहार करी आत्मवीर्यने निर्मल रत्नत्रयमां सहायचूत करी पोताना



૨૭૭ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાહ્યાવબોધ સહિત.

નિર્મલ્લ એક પરમાત્મ તત્ત્વમાં સ્થિર તદ્દીન પણે વર્તતાં “ દ્વાયિક જાવ સમાયે ” શુદ્ધાત્મ પરિણતિનો વ્યાધાત કરનાર ઘાતીયા કર્મનો સમૂલ દ્વાય કરી અનંતજ્ઞાન અનંતદર્શન અનંતસુખ અનંતવીર્ય રૂપ પોતાની અનુપમ અવિનશ્વર કેવલ લક્ષ્મીને વર્યા, તેરમા ગુણસ્થાને વિરાજમાન થયા ॥ ૬ ॥

॥ ચક્ર ચ્રમણ ન્યાય સયોગતા, તજી કીધ અયોગી ધામરે ॥ અકરણ વીર્ય અનંતતા, નિજગુણ સહકાર અકામરે ॥ મન૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:-પઠી ચક્રચ્રમણ ન્યાયે અર્થાત્ ચક્રને ફેરવવા માટે કુંજાર ચક્રમાં દંડ ઘાલી બહુ જોરથી એકદમ ચક્રને ફેરવે છે તેથી તે વલના વેગ વઠે દંડ કાઢી લીધા પઠી પણ કેટલીકવાર સુધી ચક્ર ફર્યા કરે છે. તેમ અનાદિ કાલથી આત્મા અજ્ઞાન વશે પર કાર્યને પોતાનું કાર્ય માની મમત્વ સહિત યોગ ક્રિયામાં પ્રવૃત્તિ કરે છે તેથી કેવલ જ્ઞાન થયે પણ દંડ કાઢી લીધા પઠી ચક્ર જેમ ફર્યા કરે છે તેમ તેરમા ગુણસ્થાને પૂર્વ ઉદયવઠે નિર્મમત્વપણે યોગક્રિયા થાય છે તેથી તેરમા ગુણસ્થાને પણ સયોગીપણું છે. તે ચક્રચ્રમણ ન્યાયે રહેલી સયોગતા એટલે સયોગીપણાનો પણ હે જગવંત ! આપ ત્યાગ કરી “ કીધ અયોગી ધામરે ” અયોગી ગુણસ્થાને પધાર્યા-કરણવીર્ય એટલે ઇંદ્રિજન્ય વલવીર્યનો ત્યાગ કરી અર્તીંદ્રિય અનંત આત્મીક વીર્યની પ્રગટતા કરી. જે વીર્ય માત્ર જ્ઞાનાદિગુણ વર્તનામાંજ સહાયકારી થાય પણ અન્યદ્રવ્યની કામનામાં કદાપિકાલે ચલાયમાન થાય નહિ. તેથી હે જગવંત ! આપ અકરણ વીર્યના પ્રજાવ વઠે અનંતકાલ સુધી અકામ તથા સ્વાનુજૂતિ જન્ય પરમાનંદમાં નિરંતર વિલાસ કરશો. ॥ ૭ ॥

॥ શુદ્ધ અચલ નિજ વીર્યની, નૈરુપાધિક શક્તિ અનંતરે ॥

॥ ते प्रगटी में जाणी सही, तेणे तुमहिज देव मंदंतरे

॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थः—सर्व विज्ञाव रूप संश्लेष रहित जे आत्म वीर्य ते शुद्ध ठे, तथा तेज वीर्य कामना रहित मात्र पोताना स्वगुण पर्यायमां वर्त्तवायी परगुण पर्यायमां चलायमान थतुं नथी तेथी अचल ठे, एवा शुद्ध अने अचल वीर्यनी नैरूपाधिक अर्थात् स्वाभाविक अनंत शक्ति ठे अर्थात् ते वीर्य वने अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन विगेरेनी वर्त्तना थाय ठे माटे ज्यांसुधी वीर्यगुणमां अशुद्धपणुं तथा चलपणुं ठे त्यांसुधी अल्पबल ठे, अनंत ज्ञानदर्शनरूप अनंत शक्ति होइ शके नहि. पण हे जगवंत ! ते शुद्ध अने अचल वीर्यनी स्वाभाविक अनंतशक्ति आपमां प्रगटपणे ठे एम में निसंदेह जाणुं कारण के एक समयमां सर्व पदार्थना त्रैकालिक पर्यायने प्रगटपणे जाणो देखो ठो तेथी हे जगवंत ! आपज देव ईडादिकने पूजवा लायक देवाधिदेव ठो, अनंत केवल लक्ष्मी वने सदा देदिप्यमान ठो ॥ ८ ॥

॥ तुज ज्ञाने चेतना अनुगमी, मुज वीर्य स्वरूप समायरे ॥

॥ पंक्ति दायिकता पामशे, ए पूरण सिद्धि उपायरे

॥ मन० ॥ ९ ॥

अर्थः—हे जगवंत ! तमारा निरंतर शुद्ध परिणमता केवल ज्ञानादि गुणोने माहरी चेतना अनुगमे अर्थात् मारो चैतन्य उपयोग तदनुयायी वर्त्ते, केवलज्ञान केवलदर्शन रूप परिणमवानो रसीयो. थाय तो माहरं आत्मवीर्य “स्वरूप समायरे” राग डेपादि सर्व विज्ञाविक कार्यमां उत्सुक तथा स्फुरायमान थतुं अटकी केवल आत्म गुणनेज सहायजूत पणे वर्त्ते. एम माहरं वीर्य पंडित जावे अवंधक पणे वर्त्ततां दायिक लब्धिने प्राप्त करशे एज पूर्णपदे सिद्ध थवानो सांचो उपाय ठे ॥ ९ ॥

२७० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वालावबोध सहित.

॥ नायक तारक तुं धणी, सेवनथी आतम सिद्धिरे ॥

॥ देवचंद्र पद संपजे, वर परमानंद समृद्धिरे ॥ मन० ॥ १०॥

अर्थ:-हे अनंत वीर्य प्रभु ! आ जगत्त्रयमां सर्वेथी उत्कृष्ट अनंतवीर्य आपनुं होवाथी आपज नायक ठो, वली जवसमुद्रमां मूवता जव्य प्राणीयोने आपे निर्माण करेला चरण जहाजे वेसामी जवसमुद्रमांथी तारवाने आपज समर्थ होवाथी तारक ठो, वली मोहादि शत्रुर्धथी रक्षा करवामां आपज समर्थ होवाथी धणी ठो, तेथी हे जगवंत ! आपनेज सेववाथी मारी सिद्धि थशे तथा देवमां चंद्रमा समान अरिहंत पदनी प्राप्ति थशे तथा परमानंदरूप उत्तम समृद्धिनी संप्राप्ति थशे. ॥ १० ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री सूरप्रज्ञ जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कम्बुखानी ॥

सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता, तेणे चिरकाळनो मोह जीत्यो ॥ जाव स्याद्वादता शुद्ध परगास करी, नीपन्यो परमपद जग वदीतो ॥ सू० ॥ १ ॥

अर्थ:-अनादिकालासथी लागेलो मोहरूप महान् शत्रु के जे दर्शन-मोहनीय प्रकृति वने आत्माना सम्यक् दर्शन गुणनो, तथा क्रोध वने आत्माना रुमा गुणनो, मान वने आत्माना मार्दव गुणनो, माया वडे आत्माना आर्यव गुणनो, तथा लोभ वने आत्माना मुक्ति-निर्लोभ-निस्पृह गुणनो, एम अनेक गुणनो घात करी आत्माना शुद्ध सहज अपरिमित आत्मीय समाधिनी नाश करी जवरूप जेखानामां त्रिलोकपूज्य आत्माने केद करी राखे ठे.

तेनो (मोक्षनो) जगत्त्रयना ईश्वर, जगत् शिरोमणी श्री सूर  
प्रज्ञुष अत्यंत तीक्ष्ण सम्यक्पराक्रमयी सम्यक् ज्ञान चारित्र रूप  
अत्यंत तीक्ष्ण मर्म जेदक शस्त्रो वडे विन्न विन्न करी अल्प-  
कालमां पराजय-समूल नाश कर्यो के अविष्यमां कोई पण काले  
एवं दुष्ट कृत्य करवाने पुनः समुत्थित-सजीवन थाय नहि. अने  
जीवादि पंचास्तिनी शुद्ध स्याद्वादपणे तथा लक्ष्य लक्षण  
अज्ञेदपणे शुद्ध निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहैला  
अनंत धर्मात्मक शुद्धात्म डव्यने कर्म मलयी रहित अत्यंत शुद्ध प्रगट  
करी जगत् त्रयमां पूज्य, प्रशसनीय, आह्लादकारी, आदरणीय पर-  
मात्म (मोक्ष) पद निपजाव्यु-संप्राप्त कर्यु यद्युक्त-शार्ङ्ग विक्की-  
मितम् ॥ “त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायि तत्किल पर डव्यं समग्रं स्वयं,  
स्वडव्ये रति मेति य. सनियतं सर्वापराधच्युतः, बन्धध्वंस  
मुपेत्य नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-चैतन्यामृतपूर पूर्ण  
महिमा शुद्धो ज्वन्मुच्यते” ॥ १ ॥

प्रथम मिथ्यात्व हणि शुद्ध दंसण निपुण, प्रगट करि  
जेणे अविरति पणाशी; शुद्ध चारित्रगत वीर्य एकत्वयी,  
परिणति कलुषता सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥

अर्थः—हवे श्री सूरस्वामीए परमपूज्य परमात्म पद जे रीते सिद्ध  
कर्यु ते साधना क्रम सहित वखाणे ठे.

प्रथम तों, जेना उदय वने आत्मा शुद्ध देवने, अदेव, अदेवने  
शुद्ध देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म,  
जीवने अजीव, अजीवने जीव, मोक्षने अमोक्ष, अमोक्षने मोक्ष  
मानेठे, जीवादि तत्त्वमां विपरित अज्ञान करे ठे तथा उत्कृष्ट सीतेर

१७२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

कोडाकोडी सागरोपमनी स्थितिनो बंध करे ठे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनो नाश करी चिंतामणि रत्न समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध निर्मल सम्यक्दर्शन संप्राप्त कर्युं के जे इंद्रत्व, चक्रित्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षथी पण अधिक दुःप्राप्य ठे. उक्तंच—“इंदत्तं चक्रित्तं, सुरमणि कप्पहुमस्स कोमीणं । लान्नो सुलहो डलहो, दंसणो तीथ्यनाहस्स ॥”

तथा जे विना नवपूर्व सुधीनुं ज्ञानपण अज्ञान कहेवाय ठे तथा जे विना दशमा पूर्वनुं ज्ञान तो थतुंज नथी, वली जे विना संसार परित्रमणनी सीसा आवती नथी, जे विना सम्यक्चारित्र-संयमनी प्राप्ति थई शक्ती नथी, जे विना द्रव्यचारित्र पालनार प्रथम गुणस्थाने वत्तें ठे माटे श्री जिनेश्वर, सर्व धर्मनुं मूल तथा मोक्षनुं प्रथम पगथीउं कहे ठे. यद्युक्तं—श्रीमदन्नयदेव आचार्येण—“दंसण मूलो धम्मो, उवइठो जिणवरेहिं सीसाणं । तं सोजण सकन्ने, दंसण हीणो न वंदिद्वो ॥” लोकालोक प्रकाशक श्री जिनेश्वर देव पोताना शिष्यो प्रत्ये सर्वे धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शनने वतावे ठे माटे दर्शन हीण पुरुषने वंदना करवी नहि. उक्तंच—“सम्मत्त रयण ञ्छा, जाणंता बहु विहावि सत्ताइं । सुधाराहण रहिआ, ञ्चमंति तत्तेव तत्तेव ॥”

सम्यक्दर्शनथी ञ्च पुरुष बहु प्रकारना शास्त्र जाणता ठतां पण शुद्ध आराधना रहित होवाथी संसार चक्रवालमां ज्यां त्यां ञ्चमण कर्यां करे ठे कारणके सम्यक्दर्शन विना शुद्ध आराधनानी प्राप्ति होय नहि. “शुद्ध क्रिया तो संपजे, पुग्गल आवत्तने अध्धरे”

“जह मूलंमि विण्णे, डुमस्स परिवार नत्ति परिवुद्धी । तह जिण दंसण ञ्छा, मूल विण्णठा ण सिद्धंति ॥”

जेम मूल विनष्ट वृद्ध शाखा परिशाखानी परिवृद्धि पामे नहि,  
तेम धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शन नष्ट यतां मोक्ष प्राप्ति थाय नहि.

“जिण पसुत्तं धम्मं, सहहमाणस्स होइ रयणमिणं ।  
सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोक्कस्स ॥”

गुण रत्नाकरमां सारजूत जे सम्यक्दर्शन ते श्री जिन प्ररूपित  
धर्मनी श्रद्धा राखनारने होय ठे अर्थात् नयनिक्षेप पद्ध प्रमाण युक्त  
जिन प्ररूपित तत्त्वनी यथार्थ श्रद्धा ते सम्यक्दर्शन ठे जे माहनुं प्रथम  
सोपान (पगथीउं) ठे.

“संजम रहिछं लिंगं, दंसण जठं न संजमं जणियं ।  
आणा हीणं धम्मं, निरत्ययं होइ सव्वंपि ॥”

साधुनो लिंग-वेश, संजम बिना शोभा पामे नहि तथा फल पामे  
नहि. अने सम्यक्दर्शन ज्ञप्तेने संजम कह्युं नथी. एम जिनेश्वरनी  
आणा रहित सर्वे धर्मक्रिया निरर्थक अर्थात् मोक्ष फल आपी शके नहि.

तथा योगनी वीशीमां कह्युं ठे के “एणाण गुणेंहिं विहिणा,  
किरिया संसार वढ्ढणी जणिया” ज्ञान गुण वगरनी क्रिया  
संसार वधारनारी कही ठे कारणके सम्यक्ज्ञान वगर संवर थाय  
नहि, अने संवर बिना सर्वे समये कर्मबंध थाय अने कर्मबंधथी सं-  
सार वृद्धि थाय ए स्पष्ट ठे. तथा सम्यक्दर्शन रहितने व्रत पाळता  
वतां पण तत्त्वार्थसूत्रमां अवती कहे ठे “निशट्यो व्रती” मिथ्या-  
त्वशट्य, मायाशट्य, अने निदानशट्य रहित व्रतधारी होय ते व्रती  
ठे. तथा वली श्रीमान् यशोविजयजी कहे ठे के “रागमद्वार-जावी-  
जेरे समकीत जेह्यी रुखडुं, ते जावनारे जावो मन करी परवहुं ।  
जो समकीतरे ताजुं साजुं मूलरे, तो व्रत तरुं दीये शिवपद अनु-

૪૬૪ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

કૂધરે । ટૂટક-અનુકૂલ મૂલ રસાલ સમકીત, તેહ વિણ મતિ અંધરે ।  
જે કરે કિરિયા ગર્વ ઝરિયા, તેહ જૂઠો ધંધરે ॥ ” માટે જો સમકીત-  
મૂલે તાજું હોય તો વ્રતતરુ શિવ ફલ આપી શકે માટે મોક્ષફલના  
ફલક પુરુષે સર્વથી પહેલાં સમકીત રત્ન પ્રાપ્ત કરવાનો ઉદ્યમ કરવો  
જોઈએ. માટે સમકીત શી વસ્તુ છે તે જાણવું જોઈએ.

“ જિય અજિય પુણપાવા-સવ સંવર બંધ મુક્ત નિઝારણા ।  
જેણે સદ્દહ્મ તયં, સમ્મં સદ્ગાહ વહુ જેઅં ॥ ”

જીવા જીવાદિક નવ તત્ત્વનું સ્વરૂપ શ્રી જિનેશ્વરના આગમ  
પ્રમાણે નયનિદેષ પદ્ધતિ પ્રમાણે યથાર્થ જાણી સદ્દહ્મ તથા હેય તત્ત્વને  
ઠોડવાની રૂચી તથા ઉપાદેય તત્ત્વને આદરવાની રૂચી તે સમકીત  
જાણવું. તથા ચ તત્ત્વાર્થ સૂત્રે-“ તત્ત્વાર્થ શ્રદ્ધાનં સમ્યગ્દર્શનમ્-”

“ જીવાજીવાસ્તવ બંધ સંવર નિર્જરા મોક્ષાસ્તત્ત્વમ્-” તેમાં  
જીવતત્ત્વ, સંવરતત્ત્વ, નિર્જરાતત્ત્વ, અને મોક્ષતત્ત્વ એ ચાર તત્ત્વ  
ઉપાદેય છે તથા અજીવ આસ્તવ બંધ એ ત્રણ તત્ત્વ આત્મ ગુણના  
રોધક હોવાથી હેય છે. માટે ઉપાદેયને આદરવાની રૂચી તથા હેય  
તત્ત્વને ઠોડવાની રૂચી હોય તેનેજ સમકીતી જાણવો પણ માત્ર  
જીવહાથે બોલવાથી સમકીત નથી. કારણ કે શ્રી જિનેશ્વર સમકી-  
તનાં પાંચ લક્ષણ કહે છે. અને લક્ષણ વિના લક્ષ્યનો અસદ્જાવ  
હોય એ ન્યાય છે માટે “ ઉપશમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા અને  
આસ્તિક્યતા ” એ પાંચ લક્ષણો જે જીવમાં ન હોય તે જીવને  
સમકીત છે એમ કેમ મનાય ?

ઉપશમ-ક્રોધાદિ કષાયોને ઉપશાંત કરે.

સંવેગ-સહજ નિરૂપાધિક પરમાત્મ પદ પ્રગટ કરવાની રૂચી.

निर्वेद—संसारने तथा षोडशीक विषयोने हावाहल विष समान जाणी तेथी निवृत्त थवानी श्ची.

अनुकंपा—स्वपर जीवना डब्य जाव प्राण घात करवानो परिणाम नहि.

आस्तिक्यता—अनंतज्ञानी अने वीतरागी आस श्री जिनेश्वरनुं एक पण वचन अन्यथा न होय एवी श्रद्धा.

एम सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रनुं मूल—कारण सम्यक्दर्शन ठे एम जाणी श्री सूर प्रजुजीए दर्शनमोहनीय प्रकृतिनो नाश करी अत्यंत शुद्ध निपुण द्वायिक समकीत प्रगट करी “ अविरति पणारी ” पांच इंद्रिज तथा मननो निग्रह नहि तथा पदकाय जीवना डब्य जाव प्राणनी हिंसानो त्याग नहि एवं चार प्रकारनी अविरति तेनो नाश कर्यो. पंच इंद्रिजना त्रेवीश विषयोमां तथा मनना शुजाशुज सकल्योमां आत्म परिणामने विदित करवाथी तथा स्वपर जीवना डब्य जाव प्राणनी हिंसाथी ज्ञानावरणादि कर्मनो बंध थाय ठे अने कर्मबंध वडे सहज आत्म समाधिनी घात थइ अत्यंत दुःखदायक आ संसार समुद्रमां परिभ्रमण करवुं पडे ठे. एम द्वायिकसमकीत वने जेणे श्रद्धा पूर्वक जाणुं तेनो परिणाम अविरतिमां केम प्रवेश करे ? एम अविरतिनो नाश थवाथी परजाव राग रूप विजावादिकनो त्याग तथा ज्ञान दर्शन चारित्रादि स्वगुण-मां रमण रूप शुद्ध चारित्र्यथी पोताना आत्म वीर्यनी एकता करी अर्थात् सकल आत्म वीर्यने स्वजावाचरणमांज वर्त्तवी “ परिणति कलुषता सवि विणारी ” आत्म परिणाममां कपायनो प्रवेश थवा दीधो नहि एम कलुषता परिणतिनो नाश कर्यो. ॥ २ ॥

वारि परजावनी कर्तृता मूलथी, आत्म परिणाम कर्तृत्व



२७६ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

धारी । श्रेणी आरोहतां वेद हास्यादिनी, संगमी चेतना  
प्रभु निवारी ॥ सूर० ॥ ३ ॥

अर्थः—आत्म स्वरूपना अज्ञान बडे जीव, परजावनो कर्त्ता बने ठे  
अर्थात् अमुक पदार्थने में सुवर्ण कस्यो, अमुकने में कुवर्ण कस्यो,  
अमुकने में मनोइ रसवालो कस्यो, अमुकने में अमनोइ रसवालो  
कस्यो, अमुकने में सुगंधी कस्यो, अमुकने में दुर्गंधी कस्यो, अमुकने  
में मनोइ स्पर्शवालो तथा अमुकने में अमनोइ स्पर्शवालो कस्यो,  
तथा में सुंदर असुंदर शब्दादिक कस्यो, पण रूप रस गंध स्पर्शादि  
जे पुद्गल द्रव्यनो परिणाम तेने आत्मा कदापी काले करी शके  
नहि ठतां पर द्रव्यना परिणामने अज्ञान बडे पोतानी क्रिया मानी  
ले ठे. तथा अमुक जीवने में सुखी कस्यो अमुकने में दुःखी कस्यो  
एम परजीवना कर्मफलने पोतानी क्रिया मानी ले ठे. मन वचन कायाना  
योगनी क्रियानुं ममत्व करी ते क्रियानो कर्त्ता पोताने माने ठे.  
तथा परजीवे मने सुखी वा दुःखी कस्यो एम पोताना कर्मफलने  
परजीवनी क्रिया मानी ले ठे. एवा मिथ्याजिमानबडे ज्ञानावरणादि  
कर्मनो बंध करे ठे पण श्री सूरस्वामीए सम्यक्ज्ञानवने एवा मिथ्या-  
जिमाननो नाश करी पोतानी सहज आत्मीय ज्ञानादि क्रियामां  
पोतानुं कर्त्तापणुं आदर्युं, यद्युक्तं—“आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं,  
ज्ञानादन्यत् करोति किम ? परजावस्य कर्त्ताऽत्मा, मोहोयं  
व्यवहारिणाम् ॥” माटे वस्तुतः परद्रव्यनो कोइपण कर्त्ता थइ शके  
नहि ए न्याय ठे—“यःपरिणमति स कर्त्ता, यःपरिणामो भवेत्  
तु तत् कर्म । या परिणतिः क्रिया सा, त्रयमपि त्रिन्नं न वस्तुतया”

अर्थः—जे परिणमे ते कर्त्ता ठे अने परिणाम ते तेनुं कर्म ठे अने  
परिणति ते तेनी क्रिया ठे एम ए त्रये जाव वस्तुतः अत्रेद ठे.

तथापि—“आ संसारत एव धावति परं, कुर्वेऽह मित्युच्चकै—  
 दुर्वारं न तु मोहिनामिह महाहंकार रूपं तमः । तद्भूतार्थ परि-  
 ग्रहेण विलयं यद्येकवारं ब्रजेत्, तत्किं ज्ञान घनस्य बन्धन  
 महोज्ञयो ज्ञेदात्मनः”

अर्थः—आ जगत्मां मोही अज्ञानी जीवो जाणे ठे के “हं पर  
 डव्यने करं तुं” एवो पर डव्यना कर्तृत्वना अहंकाररूप अतिशय  
 दुर्वार अज्ञान अंधकार अनादिकावधी चाट्यो आवे ठे पण जो  
 तेनो शुरु निश्चय ज्ञानबडे एकवार पण समूल नाश करी नांखे तो  
 शुरु केवलज्ञाननी प्राप्ति थाय अने पठीथी कदापि एवा अज्ञान  
 अंधकारने न करे—कर्मबंध करे नहि. तथा “श्रेणी आरोहतां”  
 रूपक श्रेणीए चढतां हास्य रति अरति शोक जय जुगुप्सा ए हा-  
 स्यादि पदक तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अने नपुंसकवेद, एम नव नोक-  
 पायमांथी पोतानी आत्म परिणतिने वारी अकपाय जावमां—शुरु  
 स्वरूपमां तल्लीन करी. ॥ ३ ॥

ज्ञेदज्ञाने यथा वस्तुता जलखी, डव्य पर्यायमें अइ  
 अज्ञेदी । जाव सविकल्पता वेदि केवल सकल, ज्ञान  
 अनंतता स्वामी वेदी ॥ सूर० ॥ ४ ॥

अर्थः—“डव्यना सर्वे धर्मो तेना परमगुणना अनुयायीपणेज वर्त्ते”  
 ए न्यायानुसारे आत्मानो परमगुण जे चेतनता तदनुयायीपणे वर्त्तता  
 ज्ञान दर्शन चारित्र तप वीर्यादि परिणामोने पोताना परिणाम  
 जाण्या सहहा अने एथी विपरित, चेतनताने अनुयायीपणे नहि  
 वर्त्तता, रुप रसगंध स्पर्शादि तथा चलन सहायादिक परिणामोने  
 पर डव्यना परिणाम जाण्या सहहा. एम जेदविज्ञानना प्रवल  
 पराक्रम बने पोताना गुण पर्याय तथा पर डव्यना गुण पर्यायने

૨૬૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ ઘાલાવબોધ સહિત.

યથાર્થ જિન્ન જિન્ન જાણી પર દ્રવ્યના ગુણ પર્યાયમાંથી અહંમત્ત્વ  
જગવી રાગ દ્વેષાદિ વિજ્ઞાવ પરિણામને દુઃખદાયક તથા કર્મવંધના  
હેતુ જાણી, પોતાની આત્મ જૂમિમાંથી તેનો તદન અજ્ઞાવ ક-  
રી, પોતાના ગુણ પર્યાયને પોતાથી અજ્ઞેદ સ્વરૂપ જાણી તેમાંજ  
અજ્ઞેદપણે તટ્વીન થયા. સંકટપ વિકટપ રૂપ સમક્ષ પરિણામને  
તજી નિર્વિકટપ-અચક્ષ પરિણામરૂપ યથાશ્યાત્ ચારિત્ર-દ્વાદશમ  
ગુણસ્થાન પામી અંતર મુદ્હૂર્તમાં ઘાતીકર્મનો નાશ કરી શ્રી સૂરસ્વામી  
અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત ચારિત્ર, અનંત વીર્યના સ્વામી તથા  
જોક્તા થયા. યદ્યુક્તં

માલિની ટંદ-નિજ મહિમરતાનાં જ્ઞેદવિજ્ઞાન શક્ત્યા;  
ઝવતિ નિયતમેષાં, શુદ્ધ તત્ત્વોપલમ્બઃ । અચલિત મલિ-  
લાન્ય દ્રવ્ય દૂરે સ્થિતાનાં, ઝવતિ સતિ ચ તસ્મિન્ન દાયઃ  
કર્મ મોદ્ધઃ ॥

અર્થ:-જે પુરુષ જ્ઞેદવિજ્ઞાનની શક્તિવડે આત્મ સ્વરૂપની મહિમામાં  
લીન થાય છે તેને નિશ્ચય શુદ્ધ તત્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે; અને શુદ્ધ  
તત્ત્વની પ્રાપ્તિ થવાથી સર્વ પરદ્રવ્ય તથા પરદ્રવ્યના પરિણામથી દૂર  
વર્તે છે, અદ્વય મોદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે. માટે જ્યાંસુધી જ્ઞેદ  
વિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી ત્યાંસુધી અવશ્ય સર્વે સમય કર્મવંધ થાય  
છે અને જ્ઞેદવિજ્ઞાનવડે કર્મવંધથી મુક્ત થવાય છે.

“જ્ઞેદ વિજ્ઞાન તઃ સિદ્ધાઃ, સિદ્ધા યે કિલ કેચ ન । તસ્યૈવા  
જ્ઞાવતો વદ્ધા, વદ્ધા યે કિલ કેચ ન ”

અર્થ:-જે કોઈ સિદ્ધ થયા તે જ્ઞેદવિજ્ઞાન વડેજ સિદ્ધ થયા છે અને જે  
કર્મથી વંધાય છે તે જ્ઞેદવિજ્ઞાનના અજ્ઞાવથીજ વંધાય છે માટે જો  
કર્મવંધનો અજ્ઞાવ કરવાની રુચી હોય તો જ્ઞેદવિજ્ઞાન-સમ્યક્  
જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરવી જ સાર છે. ॥ ૪ ॥

વીર્ય દ્વાયિકવલેં ચપલતા યોગની, રોધિ ચેતન કર્યો શુચિ  
અલેશી; જાવ શૈલેશીમેં પરમ અક્રિય થઈ, દય કરી ચાર  
તનુ કર્મ શેષી ॥ સૂર૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-એમ શ્રી સૂરસ્વામી અનંત ચતુષ્ટયને પ્રાપ્ત કરી તેરમા ગુણ-  
સ્થાને તીર્થંકર નામકર્મના ઉદયે જવ્ય જીવોને આ દુઃખદાયક  
જવ સમુદ્રમાંથી તારનાર સ્યાદ્વાદ નય યુક્ત જીવાજીવાદિ તત્ત્વનો  
ઉપદેશ આપી-પઠી પ્રાપ્ત કરેલા દ્વાયિકવીર્યના વલ વને, કરણ  
વીર્ય વને થતી ચપલતા દૂર કરી મેરૂ પર્વતની પેઠે નિઃપ્રકંપ-શૈલેશી  
કરણ કરી, મન વચન અને કાયાની ક્રિયાનો ત્યાગ કરી પોતાના  
આત્મ દ્રવ્યને પવિત્ર-પુદ્ગલ પરિણામના સંશ્લેષ રહિત-અલેશી  
કરી પરમ અક્રિય અવસ્થા ધારણ કરી, વાકી રહેલા વેદનીય, નામ,  
ગોત્ર, અને આયુ એ ચાર અઘાતીયા કર્મનો સર્વથા નાશ કરી  
“પૂર્વ પ્રયોગાદસંગત્વાદ્બન્ધહેદા તથા ગતિ પરિણામાન્ન”  
પૂર્વ પ્રયોગના હેતુએ અસંગ હોવાથી કર્મવધનો સર્વથા નાશ હોવાથી  
તથા ગતિ પરિણામવને તુંવીના દ્રષ્ટાંતે આઠમી ઇશિપ્રજારા પૃથ્વી  
અર્થાત્ સિદ્ધ અવસ્થામાં વિરાજમાન થયા ॥ ૫ ॥

વર્ણ રસ ગંધ વિનુ ફરસ સંસ્થાન વિનુ, યોગ તનુ સંગ  
વિનુ જિન અરૂપી । પરમ આનંદ અત્યંત સુખ અનુજવી,  
તત્ત્વ તન્મય સદા ચિત્સ્વરૂપી ॥ સૂર૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-શ્રી સૂરસ્વામી સિદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત થયા. તે સિદ્ધ સ્વરૂપ  
કેવું ઠે-પાંચ પ્રકારના વર્ણ, પાંચ પ્રકારના રસ, વે પ્રકારની ગંધ, આઠ  
પ્રકારના સ્પર્શ, ઠ પ્રકારનાં સંસ્થાન, ત્રણ પ્રકારના યોગ, પાંચ પ્રકારનાં  
શરીર તથા અંતરંગ અને ઘણા એ વે પ્રકારના પરિગ્રહ્યો રહિત તથા  
રાગ દ્વેષાદિ વિજ્ઞાવથી પણ રહિત હોવાથી સર્વે નયે અરૂપી અવસ્થાને

१६० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

संप्राप्त ठे कारणके जीवन्तुं शुरू स्वरूप वर्णादि तथा रागादि जावथी रहित ठे. यद्युक्तं—“ तत्थ ज्वे जीवाणं, संसारत्थाण होंति वस्साइ । संसार पमुक्काणं, एत्थिहु वस्सादञ्चो केइ ॥ जीवस्स एत्ति वस्सो, एवि गंधो एवि रसो एविय फासो । एवि रुवं ए सरीरं, एवि संठाणं ए संहणणं ॥” पण संसार अवस्थायां जीव कर्मबंधयुक्त होवाथी शरीरादिमां अहंमत्व करी वसे ठे तेथी, व्यवहार नये रूपी कहेवाय ठे. जेम जे घडामां घृत जरेलुं होय ते घीनो. घडो कहेवाय पण वास्तविक रीते जोतां घमो कांई घीनो नथी माटीनोज ठे. यद्युक्तं—“ पज्जातापज्जातय, जे सुहुमा वाय-राय जे चेव । देहस्स जीव सस्सा, सुत्ते व्यवहारदो उत्ता ॥ ”

पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म, बादर, एकेंद्रिय वेइंद्रिय विगेरे शरीरने जे जीव संज्ञा कही ठे ते व्यवहार नयनी अपेक्षा जाणवी. कारण के चौदे जीवस्थान ते पुद्गल संगे ठे, जीवनो मूल स्वभाव नथी. पण श्री सूरस्वामी तो कर्मबंधथी—संसार अवस्थाथी सर्वथा मुक्त होवाथी व्यवहार तथा निश्चय बने नये अरूपी अवस्था जोगवे ठे तथा “ परम आनंद अत्यंत सुख अनुजवी, तत्त्व तन्मय सदा चित्स्वरूपी ” परम आनंद—सर्वोत्कृष्ट आनंद जेनुं आ त्रिलोकमां कोई उपमान नथी एवा परमानंदने तथा जे सुखनो कोईकाले अंत नथी एवा सहज अकृत्रिम अनुपचरित सुखने संप्राप्त—ते सुखने सदा निष्कण्टक पणे अनुजवे ठे—तेमांज निमग्न ठे तथा पोताना शुद्धात्म तत्त्वथी तन्मय तथा चित्स्वरूपी अर्थात् अखंड अनंत ज्ञान स्वरूपमां सदा सादिअनंत जांगे अवस्थित थया ठे. ॥ ६ ॥

ताहरी शूरता धीरता तीक्ष्णता, देखी सेवक तणो चित्त

राच्यो । राग सुप्रशस्तथी गुणी आश्चर्यता, गुणी अद्-  
भुतपणे जीव माच्यो ॥ सूर० ॥ ७ ॥

अर्थ:-उपसर्ग परिसहादि तथा अनेक प्रकारना शुजाशुज कर्म  
उदय आवता ठतां पण अत्यंत धैर्य आदरी आत्म सत्ताभूमिमां  
निर्जय निष्कंपपणे अमोल रही अतिशय शौर्य पूर्वक ज्ञान वाणना  
प्रहार वडे तथा अपरिमित आत्म वीर्यनी तीक्ष्णता वडे मोहादि कर्म  
शत्रुओने निर्वश कर्या. ते आपनी शूरता, धीरता अने तीक्ष्णता  
जोई हुं सेवकनुं चित्त तेमां राच्युं-रत थयुं.

तथा आपना सर्वोपरी कल्याणकारी अद्भुत ज्ञानादि आत्मगुणो  
जोई अत्यंत आश्चर्यता पामी सुप्रशस्त राग वडे आपना गुणमां  
माहुरो आत्मा माच्यो, कारणके आलोक परलोकना विषयसुखनी  
आकांक्षा रहित अरिहंतादि पंच परमेष्ठी तथा आगम, साधर्मीक  
उपर पक्षपात विना गुणीपणा माटे जे राग ते प्रशस्तराग जाणवो,  
ते जोके पुण्यबंधनो हेतु ठे तथापि ठता आत्मगुणने स्थिर थवानो  
तथा नवागुण प्रगट करवानो हेतु ठे. यद्युक्तं “नाणाइसु गुणेषु,  
अरिहताइसु धम्म ऋवेषु । धम्मोवगरण साहम्मिएसु ध-  
म्मं ज्ञेयं गुणं रागो ॥ सो सुपसत्थो रागो, धम्म संयोग  
कारणो गुणदो । पढमं कायव्वो सो पत्तगुणे खवइ  
तं सच्चं” ॥ ७ ॥

आत्मगुण रुचि अये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति  
निर्वाण थावे । देवचंज शुद्ध परमात्म सेवन थकी, परम  
आत्मीक आनंद पावे ॥ सूर० ॥ ८ ॥

अर्थ:-ज्ञानादि अनंत आत्म गुणोने शुद्ध संपूर्णपणे प्रगट कर-  
वानी रुची थाय तोज ते पुरुष तत्त्व साधनानो रसीठ थइ संपूर्ण

२६४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

आत्माने तीक्ष्ण शब्द तुल्य असह्य दुःख क्लेश आपनारा क्रोध  
मान माया लोभ शोक वियोग मिथ्यात्व अज्ञान विगेरे महान्  
दुर्निवार सन्निपातिक रोगो उपजे ठे जे रोगोना प्रजाव बडे बली  
ज्वर, अतिसार, जलोदर, कठोदर, जगंदर, क्षय, कुष्ठ, प्रमेह, उप-  
दंश, नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग, विगेरे अनेक शारीरिक रोग जन्य  
वेदनाउ चोगववी पडे ठे. पण हे विशाल प्रभुजी ! आपेज सम्यक्  
दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रनी ऐक्यतारूप अमृत औषधीनुं  
दान करी ते सर्वे सन्निपातिक रोगोथी जव्य जीवोना समूहने मुक्त  
करी अनंत आत्म वीर्ये जरपूर तुष्ट पुष्ट करी आगामि कोइ पण  
काले ते रोग पुनःउत्पन्न न थाय एवा अत्यंत निरोगी कर्या. माटे  
हे प्रभुजी ! आ जवन्त्रयमां निःसंदेहपणे अमोघ-साचा-सफल  
( जेनो उपाय निष्फल जाय नहि एवा ) वैद्य आपज ठो. ॥ १ ॥

जवसमुद्र जल तारवा, निर्यामक सम जिनराजरे ॥

चरण जहाजे पामीए, अक्षय शिवनगरनुं राजरे ॥

॥ अक्षय ० ॥ अरि ० ॥ ३ ॥

अर्थः—राग रूप जले परिपूर्ण दुस्तर आ जयानक जवसमुद्र  
के जेमां हुं अनादिकालथी निराधारपणे ज्यां त्यां त्रमण करी  
दुःसह जय क्लेश रोग शोक वियोग तृष्णा आक्रंद विगेरे अनेक  
दुःखो सहन करुं तुं, अत्यंत सहज समाधिप्रद माहरी शुद्धात्म  
चूमिरूप शिवनगरथी अत्यंत दूरवर्ती—वियोगी थइ रह्यो तुं. ते जव  
समुद्रथी पारंगत करी निर्विघ्नपणे शिवनगरे पहुँचाकवा माटे हे  
विशालप्रभु जिनेश्वर ! आप निर्यामक अर्थात् जहाजना सौधी अग्ने-  
सर चलावनार ठो माटे जो बीजा सर्वनी आकांक्षा ठोकी आपना  
स्वप्नावाचरणरूप पंचमहाव्रतरूप जहाजनो आश्रय लइए—तेमां  
अमारा आत्माने स्थापन करीए तो सहजे लीखामात्रमां निःप्रयासे

आ जयंकर जवसमुद्रथी पारंगत थइ कोइपण रीते जेनो नाश न  
थाय—सदा शाश्वत रहेनार एवं शिवनगरनुं निष्कंटक राज्य पामी  
एकांतिक शाश्वत सहज परमानंदना स्वामी थइए. ॥ ३ ॥

जव अटवी अति गहनथी, पारंग प्रजुजी सबवाहरे ॥  
शुद्ध मार्ग देशक पणे, योग क्षेमंकर नाहरे ॥ योग ० ॥  
॥ अरि ० ॥ ४ ॥

अर्थः—आ जवरूप अटवी—जंगल के जेमां अमारी आक्रंद  
परिताप जोइ करुणा रसवने जेनु हृदय जिजे तथा अमारी दया  
करे एवा सद्गुरुरूप सज्जननो समागम अत्यंत दुःप्राप्य ठे  
तेथी निर्जन, तथा जेथी पारंगत थवानो साचो—सुगम मार्ग  
पामवो अतिशय मुश्किल होवाथी अत्यंत गहन—घोर, तथा  
जेमां अमारी ज्ञानदर्शनादि अमूल्य आत्म संपदाने लुंटी लेवावाला  
तीव्र अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्ट स्वभावना धारक कुगुरु रूप लुंढाराओ  
वसे ठे, तथा अमारा ज्ञानदर्शनादि आत्मप्राणनो धात करनार  
क्रोध मान माया लोभ विगेरे निर्दय आपदो वसे ठे एवा घोर जंग-  
लमां जूलो पनेलो हुं मारा आत्मीय कुटुंब तथा लक्ष्मीना वियोग  
बडे दयामणी अवस्थामां जय, त्रास, रोग, शोक, वियोग, तृष्णा,  
आताप विगेरे परितापो सहन करूं तुं, शांतिप्रद संवर रूप जलना  
अज्ञाव वने अत्यंत तृष्णा क्लेश सहूं तुं तेथी ( जवाटवीथी ) पारं-  
गत थइ आत्म लक्ष्मी वने परिपूर्ण शिवनगरे दोरी लइ जनार  
आपज समर्थ सार्थवाह ठो. कारण के आपज शुरू—अविसंवाद  
मार्गना वताववावाला, कल्याणकारी सिद्धिपद योगना नाथ—मालीक—  
प्रणेत्या यथार्थपणे प्रगट करनार ठो. तथा हे नाथ ! आपना मन  
वचन अने काय ए त्रणे योग क्षेमकर, कल्याणकारी, पाप व्लेशथी



२६६ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

मुक्त करनार ठे. अने संसारी जीवोए मन वचन काया स्त्री पुत्र धन कुटुंबादि अनेक योग कर्या ते योग बहु वार विनाश थया—हेम कुशल न रह्या. पण प्रभुजी शुद्धात्म अनुभव योग करावी शाश्वती केवलज्ञानादि लक्ष्मीनो शिवयोग करावो ठो माटे योगहेमं-  
कर ठो ॥ ४ ॥

रक्षक जिन ठ कायना, वली मोह निवारक स्वामी रे ॥  
श्रमण संघ रक्षक सदा, तेणे गोप ईश अग्निरामरे ॥  
तेणे० अरि० ॥ ५ ॥

अर्थः—जे अज्ञान विषय अने कषायादि दोषोथी निवृत्त थया नथी एवा कुदेवादि “अहिंसक” पदने योग्य नथी कारण के तेउ सर्वे जीवस्थान तथा सर्वे जीवोना द्रव्यज्ञाव प्राणने तथा द्रव्य ज्ञाव प्राणनी हिंसाना हेतुउने तथा ते हेतुउना प्रतिकारने यथार्थ जाणता नथी तथा विषय कषायादि सहित होवाथी प्रमाद अव-  
स्थामां अनेक जीवना द्रव्यज्ञाव प्राणने हणी परने तथा पोताना आत्माने दुःखदायक थाय ठे. पण हे विशालप्रभु! आप तो अज्ञान विषय अने कषायादि दोषोथी सर्वथा निवृत्त होवाथी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, तथा त्रसकाय ए ठ कायना जीवोना द्रव्यज्ञाव प्राणना यथार्थ ज्ञाता ठो तथा विषय कषायादि दोषोए रहित होवाथी निरंतर अप्रमाद अवस्थामां अव-  
स्थित रही कोइपण जीवना द्रव्यज्ञाव प्राणोने रंच मात्र पण दुषवता नथी माटे सत्य न्याये आ त्रिभुवनमां “जीव रक्षकनुं” विरुद आपनेज लायक ठे.

तथा स्थितिवंध अने रसबंधनो हेतु सर्वे कर्मनो राजा तथा संसारी जीवोना अजीत शत्रु एवा मोहरूप महान् शत्रुथी संसारी जीवोने

वचाववा माटे तथा ते मोहने नाश करवानो साचो उपाय वतावनार  
तथा ते उपायमां प्रवृत्त थवाने प्रेरणा करनार एक आपज समर्थ  
शुजट ठो तेथी साचा मोहनिवारक पण आपज ठो.

तथा अत्यंत दुःखदायक जवाटवीमांथी नोकळी अत्यंत  
कल्याणकारी मोक्ष नगरे जवाना जिज्ञासु, मोक्ष सन्मुख साचा मार्गे  
गमन करनार, क्रोध मान माया लोभ आदिने दूर करी सम परिणामे  
वर्तनार जे श्रमण समूह तेनी आप रक्षा करनार ठो, कारण के मोक्ष  
मार्गमां विघ्न करनार मिथ्यात्व कपाय आदि चोर लुटाराउने बरोबर  
उलखावनार तथा तेउं विघ्न नहि करी शके एवा उपायो वतावनार  
तथा आगेवान अइ पोताना अत्यंत बल वीर्य बडे तेउने निर्विघ्नपणे  
मोक्ष नगरे पद्दोचाडनार होवाथी हे परमेश्वर ! आपज अष्टीतिय  
गोप तथा ईश्वर ठो ॥ ५ ॥

जाव अहिंसक पूर्णता, माहणता उपदेश रे ॥ धर्म अ-  
हिंसक नीपन्यो, माहण जगदीश विशेषरे ॥ माहण० ॥

॥ अरि० ॥ ६ ॥

अर्थ:-हे जगदीश्वर ! आपना सर्वे ज्ञानदर्शनादि जावो पूर्ण  
अहिंसकपणे वर्तते ते तथा संसारो जीवोने पण स्वपर जीवना अव्य  
जाव प्राण न हणवा एवो उपदेश आपो ठो तथा कोइपण, जीवना  
अव्य जावप्राणनी हिंसाना कर्त्ता न थाय एवा केवलज्ञान केवलदर्शनादि  
अनंत धर्मो सपूर्ण शुद्ध प्रगट-व्यक्त थया ठे. तेथी आप अष्टीतिय  
माहण-अहिंसक पदवीना धारक ठो. ॥ ६ ॥

पुष्ट कारण अरिहंतजी, तारक ज्ञायक मुनिचंदरे ॥  
मोचक सर्व विजावथी, झीपावे मोह अरींदरे ॥ झी० ॥

॥ अरि० ॥ ७ ॥

શ્રુણુ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

અર્થ:-સત્તાગતે રહેલા અનંત આત્મધર્મોને સંપૂર્ણ શુદ્ધ પ્રગટ કરવામાં અર્થાત્ આ સંસાર સમુદ્રથી પારંગત થઈ મોક્ષ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવામાં હે વિશાલપ્રભુ અરિહંત ! આપ પુષ્ટકારણ-અનંતર કારણ ઠો. ઉક્તંચ-સિદ્ધસેન પૂજ્યૈ: “ પુષ્ટ હેતુર્જિનેંદ્રોયં મોક્ષ સદ્ગ્જાવ સાંધને ” તેથી સર્વે મુનિર્-જ્ઞાનીર્-માં ચંદ્રમા સમાન પ્રધાન લોકાલોકના જ્ઞાયક આપજ આ જયંકર જવસમુદ્ર-માંથી તારનાર ઠો; તથા રાગ દ્વેષ મોહ વિગેરે સર્વે વિજ્ઞાવથી મુક્ત કરવાવાલા તથા સર્વે શત્રુર્-માં શ્રેષ્ઠ અત્યંત બલવાન્ મોહ શત્રુથી જીતાવવાવાલા ઠો. ॥ ૭ ॥

કામકુંજ સુરમણિ પેરે, સહજે ઉપગારી થાય રે । દેવચંદ્ર  
સુખકર પ્રભુ, ગુણ ગેહ અમોહ અમાયરે ॥ ગુણ ૦ ॥  
॥ અરિ ૦ ॥ ૮ ॥

અર્થ:-જેમ કામકુંજ તથા ચિંતામણી રત્ન, વિનાસ્વાર્થે અન્ય જીવોને વાંઠિત ફલના દાતાર થાય છે, તેમજ હે પ્રભુ ! આપણ સંસાર જન્ય સકલ ક્લેશથી જઘ્ય જીવોને મુક્ત કરવામાં વિનાસ્વાર્થે સહજે મદદકારી થાઉં ઠો એ આપની પરમ સજ્જનતા સુચવે છે. દેવચંદ્રમુનિ કહે છે કે હે પ્રભુ ! આપ નિઃપ્રયાસિક અને નિરુપચરિત સુખના કરવાવાલા તથા જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણના ગેહ-નિધાન ઠો; તથા પરિવાર સહિત મોહરાજાનો સમૂલ ધ્વંસ કરી નાંખ્યો છે તેથી અમોહી, તથા અમાય કહેતાં કપટ રહિત શુદ્ધ સ્વરૂપના પ્રકાશક ઠો. ॥ ૮ ॥ ॥ સંપૂર્ણ ॥

॥ अथ एकादशम श्री वज्रधर जिन स्तवन ॥

॥ नदी यमुना के तीर ॥ ए देशी ॥

विहरमान जगवान सुणो मुज विनती, जगतारक जग-  
नाथ अगे त्रिजुवन पतिः चासक लोका लोक तिणे जाणो  
वती, तो पण वीतक वात कहुं वुं तुज प्रति ॥ १ ॥

अर्थः—महा विदेहमां विचरता, जव्यसमुहने जवाब्धिथी उद्धार.  
नार, सर्वे प्राणीओना हितचितक तथा रक्षा करनार, त्रिलोक पूज्य,  
त्रिलोक स्वामी, हे श्री वज्रधर जगवंत ! आपने जीवाजीवादि क कोई  
पण पदार्थ उपर रचमात्र पण राग, द्वेष, मोह वा ममत्व परिणाम नथी,  
तेथी कोईपण ड्रव्य आपना सहजे परिणमता ज्ञान प्रकाशने व्याघात  
करी शके तेम नथी, तेथी आप कोईपण ड्रव्य, कोईपण क्षेत्र, कोई  
पण काल वा कोईपण जावमा स्वखना नहि पामतां स्वक्षेत्रे स्थिर  
रही सकल लोका लोकना त्रैकालिक जावने इस्तामलकवत् प्रत्यक्ष  
समकाले जाणो ठो. यद्युक्तं—महा जाण्ये, “सर्व ड्रव्य गतान् सर्वा-  
नपि पर्यायान् केवलं ज्ञानं जानाति” तथा तत्त्वार्थ सूत्रे,—“सर्व  
ड्रव्य पर्यायेषु केवलस्य” तोपण हुं मोहवशे अजाण होवाथी  
अविवेकी तथा अधीर थई मे चार गतिरूप घोर जवाटवीमां जसतां  
जे जे दुराचरण तथा दुःख क्लेशादि सेव्यां ते सर्वे आपने अशरण  
शरण विलोकी आप प्रति सनमृता निवेदन करुं ते करुणा पूर्वक  
सांजलशो, लक्ष्मा लेशो. ॥ १ ॥

हुं स्वरूप निज ठोमी रम्यो पर पुद्गलें, ऊँल्यो ऊलट  
आणी विषय तृष्णा जले; आस्रव बंध विज्ञाव कर्शं रुचि  
आपणी, जूँल्यो मिथ्यावास दोष यु परजणी ॥ २ ॥

અર્થ:-અચલ, અબાધિત, નિરુપાધિ, સ્વતંત્ર અને સહજ પરમાનંદ-મય મારા આત્મસ્વરૂપને અનાદિ અજ્ઞાનવશે નહિ જાણતાં સહજ આત્મીય પરમાનંદનો વિયોગી રહી મારા આત્મ દ્રવ્યથી પર, દાણ-જંગૂર, તથા અચેતન જે પુદ્ગલ દ્રવ્ય તેમાં સદા આસક્ત-લીન રહ્યો તથા જે પૌદ્ગલીક વિષયો-શાર્દૂલ વિક્રીડિતવૃત્તમ્-“ ઝુંજંતા મહુરા વિવાગ વિરસા, કિંવાગ તુહ્વા ઇમે । કઢકંમુ અણંવ હુઃખ જણયા, દાવિંતિ બુદ્ધિં સુદે ॥ મણ્ણહે મય તિણિહઅવ સયયં, મિહ્ઞાજિસંધિપ્પયા । યુત્તાદિંતિ કુજમ્મ જોણિ ગદ્દણં, જોગા મહા વેરિણો ”અજ્ઞાનવશે જોગવતાં મધુર-પ્રિય લાગે છે પણ વિપાક કાલે કિંપાકફલની પેઠે વિરસ, પ્રાણઘાતક છે, તથા જેમ યસને સ્વર્ણતાં શાંતિ થતી નથી પણ ઝલટી ચેલ વધે છે, તેમ વિષયો જોગ-વતાં શાંતિ-તૃપ્તિ થતી નથી પણ ઝલટી તૃષ્ણા વધે છે તેથી પરિણામે હુઃખવર્ધક છે, તથા તે વિષયોમાં લીન થતાં મૃગતૃષ્ણાની પેઠે નિરંતર દુષ્ટ અજિપ્રાયો ઉપજે છે તથા તે જોગવ્યાથી અનેક પ્રકારે કર્મબંધ થવાથી નરકાદિ હુઃખદાયક કુગતિ, કુયોનિની પ્રાપ્તિ થાય છે તથા ગાથા-વિષય રસાસવ મત્તો, યુત્તાયુત્તં ન જાણઈ જીવો ॥ છૂરઃ કલુણં પઢા, પત્તો નરયં મહાઘોરં ॥ જદ્દ નિંબ હુમ્મ પત્તો, કીમો કમુઅંપિ મન્નહે મહુરં । તદ્દ સિદ્ધિ સુદ્દ પરુક્કા, સંસાર હુદ્દં સુદ્દં વિંતિ ॥ ” વિષય રસ રૂપ મદિગમાં મદોન્મત્ત થતાં યોગ્ય અયોગ્યનું-હેયાદેયનું જ્ઞાન નષ્ટ થાય છે. અને તેથી જ્યારે મહા હુઃખમય ઘોર જયંકર નરકાદિ ગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે અતિશય પૈશ્વૈતાપ જોગવવો પડે છે. જેમ લીંબડામાં વસતો કીડો લીંબડાના કટુક રસને પણ મધુર માની સેવે છે, તેમજ મિથ્યાદ્રષ્ટી વળે મોહ

सुखथी परोक्ष-विपरीत जे विषय जोग वास्तविक रीते दुःख ठे तेने सुख मानी सेवे ठे तथा जे जलना प्रवाह तथा विजलीना चमत्कारनी पेठे क्षणिक ठे तेथी अवश्य जेनो वियोग थवानो ठे एवा महान् शत्रुरूप पुद्गल विषयोनी तृष्णारूप जलमां हुं सदा-हर्ष पूर्वक क्रिया करतो निमग्न रह्यो तेथी आत्म स्वरूपने जूली शुद्धात्म स्वरूपथी पराङ्मुख थई अत्यंत दुःखदायक जवसमुझ्मां भ्रमण करावनार ज्ञानावरणीयादि कर्मना आस्रव ( पांच प्रकारना मिथ्यात्व, वार प्रकारनी अविरती, पचीस कपाय तथा पंदर योग ) तथा प्रकृति, स्थिती, अनुज्ञाग अने प्रदेशबधना हेतु राग द्वेष मोहादि विज्ञाव तरफ में रुचि करी तथा मिथ्यावासमा अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थाने वसतां मिथ्यात्वना आवेशमा सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्यमय आत्म स्वरूपने जूली अनेक प्रकारनां कर्म बाधी तेना दुष्ट फलनो जागी थयो अने ते दुष्ट विपाकना अवसरे माहुरा पूर्वकृत कर्मनो दोष न विचार्यो, अने "सवे पुव्व कयाणं, कम्माणं पावए फल विवागं । अवराहेसु गुणेषु अ, निमित्त मित्तं परो होइ "

आ अमूढ्य जिनवचननु विस्मरण करी अमुके मने क्रोध उपजाव्यो, मानमां पाड्यो, माया तथा लोभमां प्रवृत्त कय्यो तथा शोक, जय, अरति, जुगुप्सा विगेरे कपायो उपजाव्या एम कही परने दोष दीधो. श्रान जेम लाकडी मारनारने नहीं पण लाकमीने करडवा तथा-जसवा मांके ठे तेम में पण मारा पूर्वकृत दुष्ट कर्म तरफ लक्ष नहि देतां निमित्तमात्र जे परडव्य तेने दोष दीधो अने हाल पण तेमज वर्तुहुं " जो कत्ता सो ज्ञोत्ता, " एवा जगजाहेर तथा सर्वमान्य जिनेश्वरना वचननो निरादर कय्यो, ॥ २ ॥

अवगुण ठांकण काज, करुं जिन मत क्रिया, न तजुं अव-

૩૦૨ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

ગુણ ચાલ અનાદિની જે પ્રિયા; દૃષ્ટિ રાગનો પોષ તેહ  
સમકીત ગણું, સ્યાદ્વાદની રીત ન દેખું નિજપણું ॥ ૩ ॥

અર્થ:-અનાદિથી અજ્ઞાન વશે પ્રિય થઈ પમેલી, કુદેવ, કુગુરૂ  
અને કુધર્મને સન્માનવા આદરવા રૂપ મિથ્યાત્વ અજ્ઞાનનો તથા  
ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, હાસ્ય, રતિ, અરતિ, જય, શોક, જુગુપ્સા  
તથા વેદરાગ વિગેરેની ડુષ્ટ ચાલ પ્રકૃતિનો તો ત્યાગ કસ્યો નહિ  
અને કદાચ શ્રી જિનેશ્વરે વતાવેલી સામાયિક, પોસહ, પ્રતિક્રમણ,  
વંદન, સ્તવન, પૂજા વિગેરે ક્રિયાઈ, અપમાન નિંદા તથા ડુરાચરણ  
ઢાંકવા માટે, આલોક પરલોકના વિષયજોગની આકાંક્ષા સહિત,  
તથા માયા મિથ્યાત્વ અને નિદાનશબ્દ સહિત આદરી. “ વૈરાગ્ય  
રંગો પર વંચનાય, ધર્મોપદેશો જન રંજનાય ” એમ વિષ ગરલ  
અને અન્યોન્યાનુષ્ઠાન સેવતાં સંસારીક ડુઃખથી મારી નિવૃત્તિ  
થઈ નહિ. કારણ કે “ નિચ્ચુન્નો તંબોલો, પાસેણ વિણા ન હોઈ  
જહ રંગો; તહ દાણ સીલ તવ જાવણાઈ અહલાઈ જાવ  
વિણા ” જેમ ચુના વિના તાંબૂલ, અને પાસ વિના વસ્ત્ર રંગ પામે નહીં  
તથા જેમ અંક વિના મીંડાં નિષ્ફલ થાય તેમ શુદ્ધાત્મ જાવ રહિત  
દાન, શીલ, તપ અને જાવના સંસારથી મુક્ત કરી શકે નહીં. જલ  
વિના જેમ સરોવર, સુગંધી વિના જેમ કમલ, ચંદ્રમા વિના જેમ  
રાત્રી, સૂર્ય વિના જેમ દિવસ તથા જીવ વિના જેમ શરીર શોજા  
પામતાં નથી; તેમ જાવ વગર સાધ્ય નિરપેક્ષ ક્રિયાઈ શોજા પામતી  
નથી. પણ જો તે આવશ્યક આદિ કરણીઈ જાવપૂર્વક કરવામાં  
આવે તો તે મોક્ષનું કારણ થાય. જેમ અંક સહિતનાં મીંડાં દશગુણી  
સંખ્યા વધારનાર થાય છે. માટે જાવનું સ્વરૂપ જાણવું જોઈએ.  
“ ઉવચ્ચોગો જાવ ઇતિ ” અર્થાત્ સૂત્રની સાથે વોતરાગની આ-

ज्ञाए ज्ञान पूर्वक हेय उपादेयनी परीक्षा करी अजीव तत्त्व तथा  
 आस्रव तत्त्व तथा बंध तत्त्व उपर त्याग जाव अने जोवना गुण जे  
 सवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्व उपर उपादेय परिणाम ते जाव ठे. माटे  
 शुद्धात्म जाव सन्मुख अर्थात् आपणा आत्माने राग, द्वेष, मोहृथी  
 मात्र निवृत्त करवाना परिणाम सहित जो आवश्यकदि करणीउं  
 करवामा आवे तो ते अवश्य मोक्षनु कारण थाय. वली  
 “सम्मत्तेणं सुद्धो, सच्चसु किच्चो हवइ सिव हेऊ,  
 संवर बुद्धी तद् निज्जराय धम्म मूलं च सम्मत्तं ॥” तथा-  
 “मूलं दारं पइछाणं, आहारो जायणं निहि; डसुक्कं साविधम्म-  
 स्स, सम्मत्तं परिकित्तिं ॥” शुद्ध समकित तेज शिवनो हेतु,  
 तथा संवरनी वृद्धि करनार, निर्जरानुं कारण होवाथी सर्वे धर्मनुं मूल,  
 तथा मोक्ष महेलमां प्रवेश करवा माटे द्वार समान, चारित्र महेलनी  
 पोठिका, तथा रत्नत्रयना जाजन रूप ठे. एहवां आपनां पवित्र  
 वचनो वांची सांजली में समकितने अमृद्वय रत्न समान तो जाणुं  
 पण हे जगवंत ! आप तो “नय जंग पमाणेहिं, जो अप्पा साय-  
 वाय जावेण, जाणइ मोक्क सरूवं, सम्मदिछिउ सो नेउ”  
 नय जंग पद्म प्रमाण सहित स्याद्वादनये जीवादि तत्त्वने यथार्थ  
 जाणे ठे तेमज श्रद्धा करे ठे तथा हेयने त्याग करवानी तथा उपा-  
 देय जावने आदरवानी रुचि होय तेने समकीतो कहो ठो. पण ते  
 प्रमाणे तो में स्याद्वादनये आत्म तत्त्वनु स्वरूप यथार्थ जाणु, सद्वहुं  
 नहि तथा समकितना जे समसठ ( चार सद्वहणा, त्रण लिंग, दश  
 प्रकारे विनय, त्रण शुद्धि, पांच दूषणनो नाश, आठ प्रकारे प्रजाविक  
 पणुं, पांच जूषण, पांच लक्षण, ठ यतना, ठ आगार, ठ जावना तथा  
 समकितनां ठ स्थानक ) धोल आपे कहा ठे ते जाण्या शिवाय तथा



३०४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

जे होवा जोइए तेनी मारामां प्रगटता थइ ठे के नहि, तेनो विचार कस्या विना, समकीतना लक्षणोनी प्राप्ति विना, मात्र दृष्टी-रागना पोषने अर्थात् नय, निक्षेप, पक्ष, प्रमाण वडे परीक्षा कर्या शिवाय कुलक्रमानुगत देव गुरू धर्मनी द्रव्यपरंपराए श्रद्धाने समकित गणी क्रियानुष्ठान सेव्यां पण निश्चय समकीत विना मने मोक्ष फलनी प्राप्ति थइ नहि. ॥ ३ ॥

मन तनु चपल स्वप्नाव वचन एकांतता, वस्तु अनंत स्वप्नाव न जासे जे ठता । जे लोकोत्तर देव नमुं लौकी-कथी, दुर्लभ सिद्ध स्वप्नाव प्रज्ञो तहकीकथी ॥ ४ ॥

अर्थः—जेम पुंगोना स्वरमां लीन थइ नाग पोताना मस्तकने पुंगी प्रमाणे डोलावे ठे. तेम हुं पण पांच ईंद्रियोना विषयोमां लीन थइ माहरा आत्म परिणामने चपल करी कर्मजालमां फसायो “चलइ फंदइ” तथा मिथ्यात्वना आवेशमां अनंत धर्मात्मक वस्तुमांथी कोइक धर्मने मुख्यतया बखाणतां बाकीना धर्मोनी गौणपणे पण अपेक्षा नहि राखवा रुप एकांत वचन अर्थात् दुर्नयने ग्रहण कर्यो, ते प्रमाणे में वस्तु स्वरूप सद्वहुं तथा बीजाने पण तेमज एकांते उपदेश आप्यो “दोहिंवि एयेहिं एीयं सत्थं मूलसु तहवि मिच्छत्तं; जस्स विसयप्पहाणं, तणेणं अणुणणा निरवेस्कं ” इति विशेषावश्यके—पण अनंत धर्मात्मक वस्तु स्वरूपने में यथार्थ जाण्युं नहि “अज्जिलाप्ये जावेच्चयः अनज्जिलाप्या अनंत गुणा ” एम अनंत गुण पर्यायनो जाजन ते द्रव्य—वस्तु ठे माटे दरेक वस्तुमां अनंत जाव ठता ठे—मा-

लिनिवृन्द—“बहु विह नय जंगं, बहु णिच्चं अणिच्चं । सद सद-  
निलप्पं, लप्पमेगं अणोगं” ते में एकांत-मिथ्यात्व वशे न जाण्या-  
एम मिथ्यात्व जावमां फसी रह्यो अने तेथी इंद्रगणे वंदित, त्रिलोक  
पूज्य जे लोकोत्तर अरिहंत देव तेउने लौकीक रीते अर्थात् अज्ञान  
अने राग सहित, परजावना कर्त्ता हर्त्ता जाणी आलोक परलोक  
संबंधी विषयोनी प्राप्ति अर्थे, तथा मान पूजा आदि अर्थे नमुं तुं-  
वंदन स्तवन पूजा प्रमुख करुं तु पण तेथी जिनेश्वरे बतावेलो जे  
अत्यंत दुर्बल सिद्ध स्वजाव तेनी प्राप्ति केम थाय ? ॥ ४ ॥

महाविदेह मज्जार के तारक जिनवरु, श्री वज्रधर अरिहंत  
अनंत गुणाकरु । ते निर्यामक श्रेष्ठ सही मुज तारशे,  
महा वैद्य गुणयोग रोग जव वारशे ॥ ५ ॥

अर्थ.—महाविदेह क्षेत्रमा विचरता आ जीम जवाण्वमांधी जव्य  
समूहनो उद्धार करनार, सर्वे केवलीउमां इंद्र समान, शिरोमणी,  
ज्ञानादि अनंत गुणना आकर—निधान हे वज्रधर अरिहंत । आप,  
चरण जहाजने चलावनाराउमां अग्रेसर—प्रधान सर्वोत्तम निर्यामक  
होवाथी आ जयकर जवाब्धिमांधी नि.संदेह अति त्वराए माहुरो  
उद्धार करशो तथा महावैद्यरूप यइ माहुरा आत्म परिणाममां  
सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रनो योग करी मिथ्या आचरण बडे उप-  
जेला जवरोगनो वेगे समूल विनाश करशो एवी माहुरा चित्तने उद  
प्रतिष्ठे ॥ ५ ॥

प्रजु मुख जव्य स्वजाव सुणुं जो माहुरो, तो पामे प्रमोद  
एह चेतन खरो । थाये शिवपद आश राशि सुख वृंदनी,  
सहज स्वतंत्र स्वरूप खाण आणंदनी ॥ ६ ॥

अर्थ.—“जवन व्यय विणु कार्य न निपजे हो, जिम

દૃશદે ન ઘટત્વ” તેમજ જેમાં જ્ઞવ્ય અર્થાત્ પલટન સ્વજ્ઞાવ નથી  
 એટલે જે જીવમાં મિથ્યાત્વથી પલટી સમકીત જ્ઞાવે પરિણમવાનું  
 સામર્થ્ય નથી તેને અજ્ઞવ્ય કહીએ તથા અવિરતીથી પલટી વિરતી-  
 જ્ઞાવે પરિણમવાનું સામર્થ્ય નથી તથા પ્રમાદ જ્ઞાવથી પલટી અપ્રમાદ  
 જ્ઞાવે પલટવાનું સામર્થ્ય નથી, તથા કષાય જ્ઞાવથી પલટી અકષાય  
 (શમ) જ્ઞાવે પરિણમવાનું સામર્થ્ય નથી (એટલે પૂર્વ અહિતકારી)  
 પર્યાયનો વ્યય, નવા પ્રશસ્ત પર્યાયનું જ્ઞવન કરવાનું સામર્થ્ય જેમાં નથી  
 તેનું કાર્ય થાય નહીં. એ ધિગેરે વિજ્ઞાવથી પલટી સ્વજ્ઞાવ રૂપે પરિ-  
 ણમવાનું સામર્થ્ય નથી એવા અજ્ઞવ્ય જીવો અનંત કાલસુધી અનંત  
 ઉપાય કરતા ઠતાં પણ “કોટી જતન કરી નિશદિન ધોવત  
 ઝજરી ન હોવત કામર કારી” એ પ્રમાણે આ સંસાર ચક્રવાલ-  
 માંથી મુક્ત થઈ સિદ્ધિ સુખ પામી શકે નહીં. કારણ તેઓ વ્રત, સમિતિ,  
 ગુપ્તિ આદિ પાલતા ઠતાં પણ મિથ્યાત્વ, અજ્ઞાન અને પરાચરણ (મિથ્યા-  
 ચરણ)નાં સેવક છે ઉક્તંચ “વદ સમિદી ગુત્તીઝ, સીલ તવં જિણ-  
 વરેહિ પેસંતં; કુવંતોવિ અજ્ઞવો, અણ્ણાણી મિઠ્ઠદિઠીઝ”  
 કારણકે અજ્ઞવ્ય જીવોનો સ્વજ્ઞાવજ એવો છે કે શ્રુત અન્યાસ કરે,  
 જ્ઞવ્યથી પંચમહાવ્રત આદરે પણ આત્મતત્ત્વની યથાર્થ શ્રદ્ધાવિના કોઈ,  
 પણ કાલે પ્રથમ ગુણસ્થાનને મૂકી શકે નહિ માટે તેઓ સિદ્ધિપદ પામ-  
 વાને યોગ્ય નથી. પણ હે જિનેશ્વર! આપની આજ્ઞા પ્રમાણે આ સંસાર-  
 થી નિવૃત્ત થઈ મોક્ષ સ્વરૂપ સાધવાની મને રુચિ છે, જ્ઞવજ્ઞમણથી  
 જ્યેજીતું, તથા સત્ય ન્યાયને સ્વિકારું તું, એ આદિ કેટલાક જ્ઞાવ-  
 વડે “હું જ્ઞવ્ય તું” એવું અનુમાન થાય છે તો પણ હે સર્વજ્ઞ દેવ!  
 આપના મુખારવિંદથી “તું જ્ઞવ્ય તું” એવું વચન સાંજલું, તો માહરા  
 જ્ઞવ્યત્વની મને સંપૂર્ણ પણે પ્રતીત થાય અને સહજ સ્વતંત્ર સચ્ચિદા-  
 નંદમય અનંત સુખ સમૂહરૂપ શિવપદ પ્રાપ્તિનો જરોંસો થાય ॥ ૬ ॥

वलग्या जे प्रभु नाम धाम ते गुण तणा, धारो चेतन  
राम एह थिर वासना ॥ देवचंड जिनचंड हृदय स्थिर  
आपजो, जिन आणा युत जक्ति शक्ति मुज आपजो ॥७॥

अर्थ:—हे जगवंत ! जे पुरुषो आपना स्मरण, कीर्त्तन, जक्ति विगेरेमां  
लीन ठे तेज पुरुषो गुणना धाम कहेतां जाजन ठे माटे हे चेतनराम !  
निरतर प्रभुना स्मरणमां थिर वासकर, एक पण समय प्रभुपदने  
विस्तार नहि. देवचंड मुनि कहे ठे हे जिनेश्वर देव ! मने लब्धि  
वीर्यनुं दान करी आपनी आझा प्रमाणे आपनी जक्ति करवानी मने  
शक्ति आपो कारण के आपनी आझाथी विपरीतपणे करेलां सर्वे  
क्रिया अनुष्ठान निष्फल ठे “जो कोइ आणा रहिउं, पूआ पमुहं  
करेइ तिक्कालं । तस्सवि सवम सुखं, आणावज्जं अणुछाणं ॥”  
जे कोइ पुरुष आझा रहित पणे त्रणे काल पूजा प्रमुख करणी करे  
तो पण आणा रहित होवाथी तेनुं सर्वे अनुष्ठान अशुरू जाणवुं.  
“जहतुस खंण मय मंणुणइ रुणुणइ सुन्न रत्नंमि ॥ विह-  
लाइ तह जाणसु, आणा रहियं अणुछाणं” जेम तुस-कुस-  
कानुं खांडवुं, मुडदाने शणुगारुं तथा सुना वगडामां विलाप करवो  
निष्फल ठे तेम जिन आझा वगरुनु अनुष्ठान पण निष्फल जाणवुं.  
“जह जोयण मविहिकयं, विणासए विहिकयं जियावेई;  
तह अविहिकउं धम्मो, देइ जवं विहिकउं मुखं” जेम अवि-  
धिए करेलुं जोजन विनाश करे तथा विधिए करेलुं जोजन जीवन  
आपे तेमज अविधिए आदरेखो धर्म जवज्रमण आपे अने विधिए  
आदरेखो धर्म मोक्ष सुख आपे, माटे आपनी आझानुं ज्ञान तथा  
ते आझामां वसवा रूप सदाचरण ए धनेनुं हे करुणा निधान ! मने  
दान आपो. ॥ ७ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ અથ શ્રી દ્વાદશ શ્રી ચંડાનન જિન સ્તવનમ્ ॥

॥ વીરાચાંદલા એ દેશી ॥

ચંડાનન જિન સાંજલિયે અરદાસરે, મુજ સેવક જાણી, ઠે  
પ્રજ્ઞનો વિશ્વાસરે ચંડાનન જિન ॥ ૧ ॥

અર્થ:—હે જગવંત ! આપ રૂપી તેમજ અરૂપી, નિકટવર્તી તેમજ દૂરવર્તી, સૂક્ષ્મ તેમજ સ્થૂલ, સર્વે પદાર્થોને તેના ત્રૈકાલિક ગુણ પર્યાય સહિત એક સમયમાં હસ્તામલકવત્ પ્રત્યક્ષ જાણનાર હોવાથી સર્વજ્ઞ, તથા અનંત આનંદમાં પોતાના ગુણપર્યાયોમાં નિરંતર તટ્વીન-સ્થિર હોવાથી અન્ય કોઈપણ દ્રવ્ય પર્યાયમાં આપનો રાગ દ્વેષરૂપ પરિણામ થતો નથી તેથી વીતરાગ ઠો, અને સર્વજ્ઞ તથા વીતરાગ હોવાથી આપની દિવ્ય બાણીમાં પ્રત્યક્ષ પરોક્ષાદિ કોઈપણ પ્રમાણબદ્ધે વિસંવાદ આવી શકતો નથી, કોઈપણ પ્રકારના રંચમાત્રપણ દૂષણને અવકાશ મળતો નથી, માટે હે પ્રજ્ઞ ! આપજ આ જીષણ જવસમુદ્રમાંથી જવ્ય સમૂહને ઉદ્ધારવા સમર્થ ઠો. પણ આપથી વિમુક્ત બુદ્ધ કપિલાદિ અન્ય તીર્થીઓ કે જે તેઓનાં આચરણ તથા બાણીબદ્ધે અજ્ઞાન તથા રાગ દ્વેષાદિ દૂષણોયુક્ત જરપૂર કલંકિત પ્રતીત થાય છે, જવસમુદ્રમાં નિમગ્ન જણાય છે, અને તેથી તેઓના વચનમાં પ્રત્યક્ષ પરોક્ષાદિ પ્રમાણબદ્ધે અનેક દૂષણો દ્રષ્ટિગોચર થાય છે, તેઓ જવસમુદ્રમાંથી કેમ ઉદ્ધારી શકે ? “ જે નવિ જવ તર્યા નિર્ગુણી તારશે કિણપરે તેહરે ” માટે પોતે બૂઢનાર તથા આશ્રિતને બૂઢાવનાર પથરની નાવનો કેમ વિશ્વાસ રખાય ? તેથી હે ત્રિલોક પૂજ્ય ! આ જવસમુદ્રમાંથી મુક્ત થવા માટે હું સેવકને આપનોજ વિશ્વાસ-આધાર છે, માટે સમતારૂપ અમૃત સમુદ્રને વૃદ્ધિગત કરનાર, તથા જવ્યરૂપ કુમુદ સમૂહને વિકશ્વર કરનાર, તથા કષાય તાપને સમાવવામાં, આત્મવીર્યની વૃદ્ધિ કરવામાં

समर्थ एवी तत्त्वोपदेशरूप निर्मल चांदनीने आ जूमंगलमां फेलावनार हे जगत् चूडामणि चंद्रानन जिनेश्वर ! अज्ञान तथा कषाय जन्य दुःखथी जयजीत थएलो हुं जवजीर आप प्रति विनंती करुं हुं ते कृपाकरी सांजलो-अवधारो.

जरतक्षेत्र मानवपणोरे, लाध्यो दुःसम काल ॥ जिन पूर्वधर विरदथीरे, डलदो साधन चालोरे ॥ चंद्रानन ० ॥ १ ॥

अर्थ:-मेरुपर्वत जेटला राइना ढगलामां पडी गयेलो सरसवनो दाणो मली शकवो जेम अत्यंत मुश्केल ठे तेमज मनुष्य जव पण आ जवसमुद्रमां त्रमण करतां पामवो अत्यंत दुर्लज ठे तेम ठतां कदाच मनुष्य जवनी प्राप्ति थाय तो, आर्यक्षेत्र, लांबु आयुष्य, नीरोगता, उचकुल विगेरे उत्तरोत्तर अतिशय दुःप्राप्य ठे ठतां ते सर्वे सामग्रींठ कोई माहुरा महत् पूण्य प्रसादे आ दुःपमकालमां (पांचमा आशामां) हे चंद्रानन प्रभु ! मने प्राप्त थइ पण केवलज्ञानी, चौद पूर्वधर, दश पूर्वधर, तथा प्रत्येक बुध के जेठ तत्त्वना यथार्थ ज्ञाता उपदेष्टा ठे, जेनां वचनो प्रमाण जूत ठे, निशंकपणे विश्वास पात्र ठे, जेना वचनानुसारे सर्वेनां वचनो परखी शकाय ठे, एवा गुण समुद्र पूज्य पुरुषोना वियोग वडे सहजानंदरूप मोक्षपद साधवानो साचो मार्ग अतिशय दुर्लज थइ पड्यो ठे- ॥ १ ॥

जव्य क्रिया रुचि जीवना रे, आव धर्म रुचि हीन ॥ उपदेशक पण तेद्वारे, शुं करे जीव नवीनरे ॥ चंद्रानन ० ॥ ३ ॥

अर्थ:-हे जठ्यो ! अनादिकालथी आपणो आत्मा जे अज्ञान, मिथ्यात्व, अने कषाय वडे मलीन होवार्थी आ जयानक जवसमुद्रमां त्रमण करतां जन्म जरा मरण रोग शोक वियोग ताडन तर्जन आदि अनेक प्रकारनां शारीरिक तेमज मानसिक दुःखो सहन करे ठे,

૩૧૦ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

પોતાની અનંત આનંદમય દશાથી દૂરવર્તી થઈ રહ્યો છે, તેથી અજ્ઞાન મિથ્યાત્વ અને કષાયાદિ દૂષણોથી મુક્ત કરી, અનંત જ્ઞાન દર્શન સુખ વીર્યમય પરમ નિર્મલ શુદ્ધ સિદ્ધ પદમાં વિરાજમાન કરવો અર્થાત્ પૂર્ણ શુદ્ધાત્મ જાવ પ્રગટ કરવો—પ્રાપ્ત કરવો, એજ આપણું પરમ કર્તવ્ય છે તથા એજ આપણું સર્વોત્કૃષ્ટ અનંત સુખપ્રદ અવિનશ્વર સાધ્ય છે. પણ મોહનિય કર્મના પ્રબલ ઉદય વડે પોતાના સર્વોત્કૃષ્ટ સાધ્ય સાધવાની રુચિથી પરાંકુલમુખપણે ધર્મનું મૂલ જે સમકીર્ત (સમ્મત્તેણં સુધ્ધો, સન્નસુ કિન્નો હવણ સિવહેજ, સંવર વુઢી તદ્દ નિજ્જરા ય ધમ્મ મૂલં ચ સમ્મત્તં) તે પ્રાપ્ત કર્યા વગર પોતાના હુણ્કૃતો ઢાંકવા માટે, અથવા માન પૂજાને અર્થે, અથવા આ જીવ સંબંધી કામજોગના પદાર્થો મેલવવા માટે, અથવા દેવાદિક ગતિના મનોહર વિપુલ જોગો પ્રાપ્ત થવા માટે ઘણા જીવો સામાયિક, પ્રતિક્રમણ, પચ્ચલાણ, તથા સમિતિ પરિસહસહનાદિ અનેક દ્રવ્ય ક્રિયાઈ રૂચિ સહિત આદરે છે પણ હે જગવંત ! તે સર્વે ક્રિયાઈ શુદ્ધ સાધ્ય નિરપેક્ષ અર્થાત્ પરમાર્થ વિમુક્ત હોવાથી વિષ, ગરહ, તથા અન્યાનુષ્ઠાન રૂપે આસ્ત્રવ હેતુ થઈ પડે છે. યદ્યુક્તં શ્રી આચારાંગ સૂત્રે “જે આસવા તે પરિસવા, જે પરિસવા તે આસવા” માટે તે બાલકની ક્રિયાવત્ નિર્વાણ પદ આપવાને અસમર્થ છે, યુક્તં ચ પરમઠ્ઠિહિદુઅઠિદો જો કુણ્ણ તવં વયંચ ધારેણ, તં સવં બાલ તવં, બાલવયં વિંતિ સવણ્ણ ॥ વયણિયમાણિ ધરંતા, સીલાણિ તહા તવં ચ કુવંતા । પરમઠ્ઠ બાહિરા જે, નિવાણં તેણ વિંદંતિ ॥ તથા ઉપદેશ માલાયામ્—સંસાર સાગરમિણં, પરિન્નમંતેહિ સવ્વ જીવેહિં । ગહિયાણિ અ મુક્કાણિય, અણંતસો દવ્વ લિંગાઈ—અર્થઃ—અરે આ સંસાર સમુદ્રમાં પરિન્નમણ કરતાં જીવોણ દ્રવ્યલિંગ અનંતીવાર ગ્રહણ કર્યા

गेढ्या पण ते ड्रव्यलिग, समकित रहित तथा साध्य निरपेक्ष होवाथी सिद्धिना हेतु थइ शक्या नहि. जेम घटनो ईच्छक कोइ कुंत्तार घट उत्पन्न करवानां साधनो जे द्रु चक्रादि तेनो रात दिवस निरंतर घणो व्यापार करे पण साध्य जे घट ते सिद्ध करवा तरफ जो लक्ष आपे नहि अर्थात् माटीने चक्र उपर मूकी तेमांथी स्थास कुशल बुझादि पर्यायो निपजावे नहि तो कोइ पण काले घट सिद्ध थाय नहि. पण जो ते घट सिद्ध करवा तरफ लक्ष स्थापी स्थास कुशल बुझादि पर्यायो उपजाववामां दंरु चक्रादिनो योग्य व्यापार करे तो अवश्य घट सिद्ध करी शके अने त्यारेज तेनो दंरु चक्रादिनो सर्वे व्यापार सफल कहेवाय—तेमज जवन्नमणथी उद्भिन्न थएल जव्य जीव शुद्धात्म जाव सिद्ध करवानी रूचि धरी ते तरफ पुरतो लक्ष आपी गुणस्थान प्रमाणे योग्य व्यवहार आदरे अर्थात् प्रथम समकीत गुण प्राप्त करवानो व्यवहार आदरे कारण के ते मोक्षनुं प्रथम पगथीउं ठे “ जिन पणुत्तं धम्मं, सहहमाणस्स होई रयण मिणं ॥ सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोक्खस्स ” पठी देश विरति सर्वविरती थवानो व्यवहार आदरे, पठी अप्रमत्तादि गुण स्थान प्राप्त थवानो योग्य ( आगमप्रणीत ) व्यवहार आदरे तो केवल-ज्ञानादि अनुपम लक्ष्मीनो स्वामी थाय, पोतानुं अजर अमर शुद्धात्म ( निर्वाण ) पद प्राप्त करे. अने तेम करतां तेनो व्रत तप पच्चस्वाण प्रतिक्रमणादि सर्वे व्यवहार सफल कल्याणकारी कहेवाय. पण हे चंद्रानन प्रभु ! अनादि कालथी पुद्गल ड्रव्यना गुण पर्यायोने अनुजवता, तेमांज तल्लीन थएला संसारी जीवोने सम्यक् दर्शन ज्ञान चाग्नि रूप जावधर्मनी रूचि क्यांथी थाय ? जो कदाच एम पोतानी मेळे थवी मुश्केल तो सद्गुरूना उपदेश वडे पण थइ शके पण आ निकृष्ट पंचम आरामां जावधर्ममां स्थापन करनार परमो-



३१२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

पकारी सद्गुरुनी अतिशय विरलता अने जावधर्म एक कोरे मूकी साध्य शून्य द्रव्यक्रियामां लगाडनार उपदेशको घणा. ए विषे न्याय विशारद श्रीमद् यशोविजयजी कहे ठे—“ज्ञान दर्शन चरण गुण विना, जे करावे कुलाचाररे, लुंटीया तेणे जन देखतां, किहां करे लोक पोकाररे ॥ काम कुंजादिक अधिकनुं, धर्मनुं को नवि मूलरे, दोकमे कुगुरु ते दाखवे, शुं थयुं एह जग शूलरे ॥ अर्थनी देशना जे दिये, उलवे धर्मना ग्रंथरे; परम पदनो प्रगट चोरथी; तेहथी केम वहे पंथरे ॥ विषय रसमां गृही माचीया, नाचीया कुगुरु मद पूररे; धूम धामे धमाधम चली, ज्ञान मारग रह्यो दूररे ॥ कलहकारी कदाग्रह चर्या, थापता आपणा बोलरे; जिन वचन अन्यथा दाखवे, आज तो वाजते ढोलरे ॥ केइ निज दोषने गोपवा, रोपवा केइ मत कंदरे; धर्मनी देशना पालटे, सत्य जाखे नहि मंदरे ॥” आचार्य कहे ठे “ किं ज्ञणिमो किं करिमो, ताणह आसाण धिछड्ठाणं । जो दंसिऊण विंगं, खिंचिति एरयम्मि मुद्धजणं ॥” तो हे जगवंत ! नवा जीवो जिन दर्शित शुद्धात्म धर्मने शीरीते पामी शके ? ॥ ३ ॥

तत्त्वागम जाणग तजीरे, बहु जन सम्मत जेह । मूढ दूठी जन आदर्योरे, सुगुरु कहावे तेहरे ॥ चंजानन ० ॥ ४

अर्थः—बली हे प्रभु ! आपना जाखेला आगमनुं यथार्थ रहस्य जाणनारने तो आ पंचम कालमां मूढ पुरुषो तजो दे ठे—उवेखे ठे, अने तत्त्व ज्ञानथी विमुख, मूर्खना टोलाने संमत तथा मूढ अने कदाग्रही पुरुषो आदरेला सन्मानेला एहवा कुगुरुज, सुगुरु नाम धरावे ठे, पण पत्थरनी नाव जेवा प्रगटपणे जिनशासनना वैरी रूप कुगुरुज जवसमुद्रमांथी केम उझारी शके ? मोक्षमार्गे शी रीते दोरी शके ? उक्तंचः—जिम जिम बहु श्रुत बहुजन संमत, बहु शिष्ये परिवरिउं; तिम तिम जिनशासननो वैरी; जो नवि निश्चय दरियोरे—

तथा उपदेशं मालायाम्. “जह जह बहु सुअसमं, सीस गण  
संपरिवुहोय; अविणीज्जिअसमए, तह तह सिअंत पणिणीअं.”

आणा साध्य विना क्रियारे, लोके मान्यो रे धर्म । दर्शन  
ज्ञान चरित्तनोरे, मूल न जाण्यो मर्मरे ॥ चंजानन ० ॥ ५ ॥

अर्थः—दर्शनं ज्ञानं चारित्र्यं नो मूलं मर्मं जाण्यो नहि अर्थात्  
सत्ताए अनंतं ज्ञानं दर्शनं चारित्र्यं मयं सिद्धं समानं सर्वे जीवो वे, पण  
अनादिथी कर्म मल संबंधे अशुद्धं होवार्थी ज्ञानं दर्शनं अने चारित्र्य  
रूपं शुद्धात्म स्वभावार्थी विपरीतपणे मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कपाय  
रूपं परिणमे वे, पोताना आत्मवीर्यने तेमां वापरे वे अने तेथी  
निरंतरं सात आठ प्रकारनां कर्म बांधी जवसमुद्धमां परित्रमणं करतां  
अनेक प्रकारनी शारीरिक तथा मानसिक असह्य वेदनां जोगवे वे.  
पण ते मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कपायने तीव्र दुःख दातार तथा  
अखूट सहजानंदने लूटनार महान् शत्रुं जाणी तेमां पोताना आत्म-  
वीर्यने नहि वापरतां जीवादि तत्त्वोना यथार्थं अज्ञानरूपं सम्यक्-  
दर्शनं, तथा ते जीवादि तत्त्वोने नयनिक्षेपं पक्ष प्रमाणादि सहितं  
संशयं, विव्रमं अने विमोहं रहितं अज्ञानं पूर्वकं जाणवा रूपं सम्यक्-  
ज्ञानं, तथा रागादिक कपाय अने सावध योगना परिहार रूपं सम्यक्-  
चारित्र्यमां प्रयुंजी संसारं समुद्धयी आपणा आत्मानो उद्धार करवो.  
( यतः—गाथाः—जीवादी सद्वहणं, सम्मत्तं तेसि मधिगमो एणाणं.  
रागादी परिहरणं, चरणं एसो उ मोक्खपहो ) दशं उपांते  
दुर्लभं, रत्नं चिंतामणीं समानं मनुष्यं जव त्पारेजं सफलं जाणवो.  
कारणके पंचेज्जिअना विषयं जोग तो देवादि गतिमां मळी शके वे  
पण परमात्मपदं—मोक्षपदं तो आ मनुष्यं जवमांजं सार्थी शकाय वे.  
माटे आपणा आत्माने रत्नत्रयमां जोडवो, मोक्षमार्गमां प्रवृत्तं यवुं,

३१४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वालावबोध सहित.

एज आपणुं सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य ठे, अने तेज धर्म ठे—यतः ( सदृष्टीज्ञान वृत्तानि, धर्म धर्मेश्वरा विदुः; यदीय प्रत्यनीकानि, जवन्ति जव पद्मतिः ) तेज जगत्त्वत्सल देवाधिदेव तीर्थंकर जगवंतनी आज्ञा ठे—

“मौस्क पहे अप्पाणं, ववेहि तं चेव झाहि तं चेय, तत्थेव विहर णिच्चं, मा विहरसु अस्स दवेसु”—हे जव्य ! तुं मोक्षमार्गमां पो-  
ताना आत्माने स्थाप, तेज परमात्मपदनुं ध्यान कर, तेज परमात्म पदने अनुजवगोचर कर, अने तेज परमात्म जावमां निरंतर विहार कर, अन्य द्रव्य पर्यायमां विहार करीश नहि, तेमां इष्टानिष्ट बुद्धि वा राग द्वेषरूप परिणाम करीश नहि अर्थात् सर्वदा प्रमाद तजी परमात्मपदनी साधनामां मग्न था.

पण हे चंद्रानन प्रभु ! आ दुःषमकालमां ते परमात्म पदनुं यथार्थ स्वरूप जाण्यावगर तथा तेनी साधनारूप जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा तरफ लक्ष राख्या शिवाय अनेक प्रकारनी बाह्य क्रियाओनेज धर्म मानी लीधो, तेमांज रत थया, तेज करी पोताने कृतार्थ समज्या अर्थात् बाह्य निमित्तने कार्य मानी साचा कार्यथी विमुख थई रह्या, पण जिनेश्वरनी आज्ञाथी विमुखपणे वर्त्ततां सिद्धि थाय नहि. कार-  
णके जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा वगरनां सर्वे क्रियानुष्ठान निरर्थक ठे—श्रीमद् अक्षयदेव सूरि कहे ठे—“ संजम रहियं लिंगं, दंसण जठं न संजमं जणियं, आणा हीणं धम्मं, निरत्थयं होइ सवंपि ” तथा “ जो पूइजाइ देवो, तवयणं जे नरा विराहंति; हारंति बोहि लाजं, कुदिछि राएण अन्नाणी ” तथा “ पूआ पच्चकाणं, पोसह उववास दाण सीलाइ; सवंपि अणुछाणं, निरत्थयं कणय कुसुमव ” तथा श्री धर्मदास गणी उपदेशमालामां कहे ठे. “आणाइच्चिय चरणं, तज्जंगे जाण किन्न जगंति, आणं च अइकंतो, कस्साएसा कुणइ सेसं; निश्चये आज्ञा

एज चारित्र ठे अर्थात् जिनाज्ञानुं पालवुं एज चारित्र ठे. तो जेणे जिनेश्वरनी आज्ञा जांगी तेणे शुं न जांग्युं ? हे प्राणी, जो तुं जिनेश्वरनी आज्ञाने उलंघन करे ठे तो तुं कोना आदेशथी क्रियानुष्ठान करे ठे ? तथा उपदेश सिद्धांत रत्नमालायाम्—“ जगगुरु जिणस्स वयणं, सयलाण जियाण होइ हिय करणं, ता तस्स विराहणया, कह धम्मो कहणु जीवदया ” जगतगुरु श्री जिनेश्वरनुं वचन सर्वे जीवोने हित करनार ठे तो ते वचनने विराधतां केवो धर्म अने केवी जीव दया ? ॥ ५ ॥

गच्छ कदाग्रह साचेवेरे, माने धर्म प्रसिद्ध; आतम गुण अकपायतारे धर्म न जाणे शुद्धरे ॥ चंजानन ० ॥ ६ ॥

अर्थ—सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप शुद्धात्म गुणनो, क्रोध. मान, माया, लोभादिक कपायो बडे घात न करवो, अकपाय जावमा, शुद्ध परिणामीक जावमां वर्त्तवुं तेज साचो धर्म ठे. कारणके “ वत्थु सद्भावो धम्मो ” एवं श्री जिनेश्वरनुं पवित्र वचन ठे—तथा ते कपायोज कर्मबंधना हेतु ठे. “ जोग निमित्तं गहणं, जोगो मण वयण काय सचूदो, जाव निमित्तो बंधो, जावो रदि राग दोस मोह जुदो ” तथा अकपायमा वर्त्ततो—पोताना ज्ञानादि जाव प्राणोनी रक्षा करनारो ज्ञानी अप्रमादी मुनि पोताना तथा परना अव्यजाव प्राणनो हिंसक केम थाय ? अने जे अशुद्ध अध्यवसायमां वर्त्ते ठे ते हिंसा नहि करता उतां पण हिंसक ठे. यत—“ अहणंतो विहु हिंसो, छठतणुं मउं अहिमरोव, वाहितो नवि हिंसो, सुख तणुं जहा विज्जो ” माटे अकपायमां वर्त्तवुं तथा अहिंसामां वर्त्तवुं ए घेनी परमार्थे एकताज ठे अने अहिंसा धर्मेनुं पालन करनार सर्वे धर्मेनुं पालन करनार ठे, कारणे के सर्वे

૩૧૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

મહાવ્રતો, તથા દ્વમાદિક દશ ધર્મો, તથા પરિસદ્ સહન, તથા તપ, સંયમ વિગેરે સર્વે ધર્મો અહિંસાનાજ અંગ છે, તેનાજ કારણો છે, માટે સર્વે ધર્મોનો અહિંસામાં સમાવેશ થાય છે.

“ સવાશ્યો વિ નશ્યો, જહ સાયરંમિ નિવડંતિ; તહ જગવર્ષ અહિંસિં, સવે ધમ્મા સમિહ્વન્તિ, ” તથા વલી “ અહિંસા સર્વ જીવાનામ્, સર્વજૈઃ પરિજાપિતા, શ્વં હિ મૂલં ધર્મસ્ય, શેષસ્તસ્યાસ્તિ વિસ્તરઃ ” માટે અકષાયમાં વર્તતો મુનિ, નવા કર્મબંધને અટકાવતો, પૂર્વે બાંધેલા કર્મની નિર્જરા કરતો, જન્મ મરણાદિ દુઃખનો દાય કરી પરમાનંદપદને-મોક્ષપદને પ્રાપ્ત કરે છે. યદ્યુક્ત-આચારાંગ સૂત્રે ત્રીજા અધ્યયને “ જે ક્રોધને ઢોડે છે તે માનને ઢોમે છે; જે માનને ઢોડે છે તે માયાને ઢોડે છે; જે માયાને ઢોમે છે તે લોચને ઢોમે છે; જે લોચને ઢોડે છે તે રાગને ઢોડે છે; જે રાગને ઢોડે છે તે દ્વેષને ઢોમે છે; જે દ્વેષને ઢોડે છે તે મોહને ઢોમે છે; જે મોહને ઢોડે છે તે ગર્જથી મુક્ત થાય છે; ગર્જથી મુક્ત થાય છે તે જન્મથી મુક્ત થાય છે; જે જન્મથી મુક્ત થાય છે તે મરણથી મુક્ત થાય છે; જે મરણથી મુક્ત થાય છે તે નરકથી મુક્ત થાય છે; જે નરકથી મુક્ત થાય છે તે તિર્યચ ગતિથી મુક્ત થાય છે; જે તિર્યચ ગતિથી મુક્ત થાય છે તે દુઃખથી મુક્ત થાય છે; ” એવા અકષાયરૂપ શુદ્ધ ધર્મને નહિ જાણનારા, તેની અપેક્ષા નહિ રાખનારા; એકાંતે બાહ્ય ક્રિયાની હઠ ધરનારા પુરુષો માત્ર બાહ્ય ક્રિયાનેજ મોક્ષનું કારણ માની, પોતાના ગચ્છ પ્રમાણે વર્તી તે બાહ્ય ક્રિયાનેજ પરમાર્થ ઠરાવવા પ્રયત્ન કરે અને કહે કે આવું પાત્ર, વા આવી મુહપત્તી, વિગેરે રાખવાં અને આવીજ રીતે પ્રતિક્રમણાદિ ક્રિયા કરવી તેજ મોક્ષનું કારણ છે. અમારાથી પ્રકારાંતરે જે ઉપકરણો તથા પ્રતિક્રમણાદિ બાહ્ય ક્રિયાઓ આદરે છે તે મોક્ષ પામી શકે નહિ.

एम पोते आदरेल वाह्य लिंगने तथा वाह्य करणीने परमार्थे मोक्षनुं  
कारण मानी अमे साचो धर्म आराधीए ठिये, अमारो धर्म प्रशंसनीय  
ठे, एम जे पोतानी जीवहाये जळ्ये ठे अने ते माटे लांबा लांबा  
वितडावादो मांडी वेसे ठे, समतारूप अमृतने तजी कपायकूप हाहा-  
हसविपने नक्षत्र करे ठे; एहवा एकातवादी पुरुषोनो छुराग्रह नाश  
करवा माटे श्री जिनेश्वर प्रणीत शुद्धागमनु रहस्य प्रगट करता श्री  
मद् यशोविजयजी अध्यात्मसारमां कहे ठे.—“ अतो रत्नत्रयं मोक्ष-  
स्तदज्ञावे कृतार्थता; पाखंडीगण लिंगेश्व, गृह लिंगेश्व कापिन। पाखंडी  
गण लिंगेषु, गृह लिंगेषु ये रताः; न ते समयसारस्य, ज्ञातारो वाच  
बुध्यः। ज्ञाव लिंग रतायेषु, सर्वसार विदोहिते; लिंगस्था वा गृहस्था  
वा; सिध्यन्ति धूत कल्मषा। ज्ञावर्लिंगं हि मोक्षांगं, अव्यलिग मका-  
रण; अव्यं नात्यंतिकं यस्मान्नाप्येकांतिक मिष्यते । ” आवोज ज्ञाव  
दिगम्बर आचार्य श्री कुंदकुंदाचार्य समयपाहुडमां कहे ठे—गाथा—  
“ पाखंडी लिंगेषु व, गिहिलिंगेषु बहुप्पयारेसु.  
कुर्वन्ति जे ममत्तं, तेहि ए याणं समयसारं—एवि एस मोक्ष-  
मग्गो, पाखंडी गिहि मयाणि लिंगाणि. दंसण एाण चरित्ताणि  
मोक्ष मग्गं जिणा वित्ति ” अर्थः—पाखन्नि माधुलिंगमां वा गृहस्थ  
लिंगमां वा बहु प्रकारना लिंगमा जे ममत्व करे ठे ते समय सारने  
जाणता नथी. पाखंडीसाधुनो लिंग, वा गृहस्थनो लिंग विगेरे मोक्ष  
मार्ग नथी पण श्रीजिनेश्वर सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र्यने मोक्षनोमार्ग  
कहे ठे—“ तस्मा जहित्तु लिंगं, सागार अणगारएहि वा गहिए;  
दंसणएाण चरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्षपहे ” अर्थः—ते माटे  
सागार अने अणगारना लिंगनुं ममत्व तजी, पक्षपात तजी, दर्शन  
ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्गमां आत्माने लगाव—जोड. तेमज वली

૩૧૭ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવવોધ સહિત.

શ્રી. અમૃતચંદ્રાચાર્ય કહે છે. “યેત્વેનં પરિહૃત્ય સંવૃતિ પથ, પ્રસ્થાપિ તેનાત્મના; લિંગે દ્રવ્યમયે વહન્તિ મમતાં, તત્વાવવોધ ચ્યુતાઃ । નિત્યો-  
દ્યોત મખંડ મેક મતુલા, લોકં સ્વજ્ઞાવ પ્રજ્ઞા; પ્રાગ્જ્ઞારં સમયસ્ય સાર  
મમલં, નાદ્યાપિ પશ્યન્તિ તે ॥ ” અર્થઃ—જે પુરુષો પરમાર્થ સ્વરૂપ  
મોક્ષમાર્ગને ઠોળી બાહ્ય વ્યવહારમાં પોતાના આત્માને સ્થાપી  
દ્રવ્યલિંગની મમતા ધરે છે, તેનેજ મોક્ષનું કારણ માને છે, તે પુરુષો  
તત્ત્વજ્ઞાનથી વિમુક્ત છે વળી તે પુરુષો નિત્યોદિત, અખંડ, એક, અનુ-  
પમ, અપરાજિત, અતુલ પ્રકાશવંત અને પવિત્ર પરમાત્મ સ્વરૂપને  
અથવા જિનેશ્વરના પવિત્ર સમય સારને હજુ સુધી પણ ( મુનીનો  
વેષ ધારણ કર્યા ઢતાં પણ ) જાણતા નથી, પ્રાપ્ત થતા નથી. માટે  
એકાંત બાહ્ય ક્રિયાનો હઠ ઠોડી, પરમાર્થ સમજી, શુદ્ધ સાધ્ય તરફ  
લક્ષ રાખી શુદ્ધાત્મ પદ જેથી સિદ્ધ થાય એવો પ્રશસ્ત વ્યવહાર  
આદરી, આપણા આત્માને અત્યંત પરમાનંદમય પરમાત્મપદમાં  
સ્થિત કરો ॥ ૬ ॥

તત્ત્વરસિક જન થોમલારે, બહુલો જન સંવાદ ॥ જાણો ઢો  
જિનરાજજીરે, સઘલો એહ વિવાદરે ॥ ચંડાનન ૦ ॥ ૭ ॥

અર્થઃ—હે ચંડાનન પ્રજ્ઞુ ! આ દુષ્કાલમાં અમારા ચરતક્ષેત્રમાં  
સદ્ગુરુની વિરલતા વઢે શુદ્ધાત્મ તત્ત્વ સાધવાને રસિઆ પુરુષોની  
સંખ્યા તો રત્ન મણિની પેઠે અતિશય અલ્પ, અને પોતાનો મત કદા-  
ચ્છ સ્થાપન કરવાને તત્પર એહવા કાચના કમકા જેવા પુરુષો ઘણા,  
એવો અમારી દયામણી દશાનું વર્ણન હે જિનેશ્વર ! આપ સર્વથા  
જાણો ઢો ॥ ૭ ॥

નાથ ચરણ વંદન તણોરે, મનમાં ઘણો હમંગ ॥ પુણ્ય વિના  
કિમ પામીએરે, પ્રજ્ઞુ સેવનનો રંગ રે ॥ ચંડાનન ૦ ॥ ૮ ॥

अर्थ.—देवाधिदेव श्री तीर्थकरना चरणकमल के जे शुद्धात्म अनु-  
जवरूप सुगंधे जरपूर तथा विषय कषायनी चाह दाहने शमन कर-  
नार, मोक्ष लक्ष्मीनु अतिशय प्रिय निवासस्थान ठे तेने वंदन करवानो—  
पूजवानो भ्रमरनी पेठे तेमां लीन थवानो, माहारा मनमां अतिशय  
उमेद—उमंग ठे पण आ जवचक्रमा भ्रमण कर्ता अनेकवार मनुष्य-  
जव पाम्यो, पण विषय कषायादिकमां मोहित रही रत्नचितामणी  
समान मनुष्यजव वृथा गुमावी दीधो, पुण्यानुबंधी पुण्यना वियोगे  
जिनेश्वरनी सेवामां रग लाग्यो नहि, तल्लीनता थई नहि. करीयातु  
कडवुं ठतां जेम मोढानी करुवासनो नाश करे ठे तेम जिनेश्वरनी  
लोकोत्तर सेवारूप प्रशस्त राग, ते राग नाश करवानो तथा आत्मगुण  
प्राप्तिनो हेतु ठे. यत.—गाथा:—“नाणाइसु गुणेषु, अरिहंताइसु धम्म  
इवेसु, धम्मोवगरण साहम्मीएसु धम्मथं जोय गुणरागो ॥  
सो सुपसथ्यो रागो, धम्म संयोग कारण गुण दो; पढमं काय-  
वो सो, पत्त गुणे खवइ तं सबं ॥” जावार्थ:—ज्ञानादि गुणो उपर,  
अरिहंतादि धर्मात्मा उपर, तथा धर्मना साधनो उपर, तथा साधर्मी  
ऊपर गुणावलवने जे राग करवो ते प्रशस्त राग, धर्म संयोगनुं तथा  
गुण प्रगट थवानुं कारण ठे ॥ ८ ॥

जगतारक प्रभु वांदियेरे, महाविदेह मझार ॥ वस्तु धर्म  
स्याद्वादतारे, सुणि करिये निरधार रे ॥ चंजानन ० ॥ ९ ॥

अर्थ:—संसार समुद्रमांथी उछारवा माटे समर्थ, महाविदेहमां  
विचरता श्री चंजानन प्रभुनुं निर्मल जावे वंदन करीए. सूत्रमां “ वंद-  
ननुं फल श्रवण ” एम प्रगट वचन ठे, माटे जगवंतने वंदन करतां  
अनंत धर्मात्मक वस्तुनुं स्वरूप स्याद्वादनये सांजलवानो लाज मले, ते  
सांजली वस्तु स्वरूपनो निर्धार करी शुरू धर्ममां प्रवृत्त थईए. ॥ ९ ॥



૩૨૦ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

તુજ કરુણા સદુ ઝપરેરે, સરખી છે મહારાય ॥ પણ અવિ-  
રાધક જીવનેરે, કારણ સફલું આયરે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૧૦ ॥

અર્થ:-હે ચંદ્રાનન પ્રજુ ! આપ રાગ રૂપી સમુદ્રને ડહાંધી ગયા  
હો, વીતરાગ જૂમિમાં ચિરાજમાન હો તેથી આપ તો શત્રુમાં તેમજ  
મિત્રમાં, સેવકમાં તેમજ અસેવકમાં, નિંદકમાં તેમજ સ્તુતિકારમાં  
સમાન વૃત્તિવાલા હો, સર્વે જીવો ઉપર આપની કરુણા તો હીણા-  
ધિકતા રહિત એક સરખી છે, સંસાર સમુદ્રથી તારવા માટે સર્વેને  
એક સરખો ઉપદેશ આપો હો. તો જે જીવો આપની આજ્ઞાના વિરાધક  
હોય તે ન તરી શકે તે તેમનોજ દોષ છે. “પત્રં નૈવ યદા કરીર  
વિટપે, દોષો વસંતસ્ય કિમ્; નો લૂકોપ્યવલોકતે, યદિ દિવા  
સૂર્યસ્ય કિં દૂષણં ” પણ આપની આજ્ઞાના આરાધક જીવો આ  
સંસાર સમુદ્રથી તરી શકે, આપનું નિમિત્ત તેડનેજ સફલ થાય. ॥૧૦॥

એહવા પણ જીવિ જીવનેરે, દેવ જક્તિ આધાર ॥ પ્રજુ  
સમરણથી પામીએરે, દેવચંદ્ર પદ સારે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૧૧ ॥

અર્થ:-એહવા આરાધક જીવોને પણ દેવાધિદેવ હે ચંદ્રાનન  
પ્રજુ ! આપની જક્તિનોજ આધાર છે, સંસાર સમુદ્રમાંથી તરવામાં  
પ્રવહણ સમાન પુષ્ટ અવલંબન છે. માટે હે પ્રજુ ! દેવમાં ચંદ્રમા સમાન  
સર્વોત્કૃષ્ટ પરમાત્મપદ, આપના ગુણનું સ્મરણ તથા ધ્યાન કરવાથી  
પ્રાપ્ત થશે ॥ ૧૧ ॥

॥ સંપૂર્ણ ॥

॥ અથ ત્રયોદશમ ચંડવાહુ જિન સ્તવનમ્ ॥

॥ શ્રી અરનાથ ઉપાસના ॥ ૧ રાગ ॥

॥ ચંડવાહુ જિન સેવના, જવ નાશિની તેહ ॥ પર  
પરિણતિના પાસને, નિષ્કાસન રેહ ॥ ચંડ ૦ ॥ ૧ ॥

અર્થ - અજ્ઞાનાદિ અષ્ટાદશ દૂષણ રહિત તથા અનંત ચતુષ્થ સહિત તથા શુદ્ધ નયે આત્મધર્મનો ઉપદેશ આપી જવ સમૂહને મોક્ષ-  
માર્ગે દોરનાર, વિદેહ ક્ષેત્રમાં વિહરમાજી શ્રી ચંડવાહુ જિનેશ્વરની  
શુદ્ધ જાણે (આલોક પરલોક સવધી વિષય જોગના આકાંક્ષા રહિત  
શુદ્ધાત્મ જાણ પ્રગટ કરવાના હેતુરૂપ) કરેલી સેવા, સૂર્ય જેમ અંધ-  
કારનો શીઘ્રમેવ નાશ કરે તેમ લીલા માત્રમાં જવ ત્રમણનો નાશ  
કરનાર છે તથા “પર પરિણતિના પાસને નિષ્કાસન રેહ” જેમ હરણ  
શબ્દના વિષયમાં મોહિત થઈ વિવિધ પ્રકારના વાર્જીત્રના મધુર  
કોમલ સ્વરના રાગ વશે પારધીયે નાંખેલી જાલમાં આવી ફસે છે,  
પોતાની સ્વતંત્રતાને ગુમાવી પરાધીન થઈ જીવ જોખમમાં આવી પડે  
છે તેમજ સંતારી પ્રાણીક શબ્દાદિક વિષયના રાગ વશે મોહ પટ્ટી-  
પતિ પાથરેલી અતિશય વિસ્તીર્ણ અને ડ્રઢ કર્મજાલમાં આવી  
ફસે છે, પોતાના સહજ સ્વતંત્ર અવ્યાવાધ આત્મ જોગને ગુમાવી વેસે  
છે, પરાધીન દીન થાય છે, પોતાના શુદ્ધ જ્ઞાનાદિક પ્રાણના જોખમમાં  
આવી પડે છે, કષાયાગ્નિમાં (દગ્ધમાન) પચ્યમાન થાય છે, બલતા  
રહે છે, એવા પર પરિણતિના રાગરૂપ વધનને ટેકવા માટે ચંડવાહુ  
જિનેશ્વરની સેવના તીક્ષ્ણધારા સમાન છે, તેથી મુક્ત કરવા અત્યંત  
સામર્થ્યવંત છે ॥ ૧ ॥

પુદ્ગલ જાણ આશંસના, ઉદ્ધાસન કેતુ, ॥ સમ્યક્દર્શન  
વાસના, જાસન ચરણ સમેત ॥ ચંડ ૦ ॥ ૨ ॥

૩૨૨ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

અર્થ:-અનાદિકાલથી કર્મ જાલમાં ફસેલો પરાધીન થયેલો આત્મજોગના જ્ઞાન તથા આસ્વાદનનો વિયોગી પુદ્ગલના રુચ રસ ગંધ સ્પર્શાદિ વિષયજોગમાં મગ્ન થયેલો સંસારીજીવ નિરંતર પુદ્ગલ વિષયોની આશંસના-તૃષ્ણાને વશ વર્તે છે. તે તૃષ્ણાને ઠેકવાને ચંદ્રવાહુ પ્રત્યુની સેવા કેતુ સમાન છે તથા સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યક્ ચારિત્રરૂપ આત્મસ્વચ્છાવમાં વાસ કરાવવાવાલી છે, આત્મગુણની સુવા-સમાં સંતુષ્ટ કરનાર છે. ॥ ૨ ॥

ત્રિકરણ યોગ પ્રશંસના, ગુણસ્તવના રંગ ॥ વંદન પૂજન  
જ્ઞાવના, નિજ પાવના અંગ ॥ ચંદ્ર ૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ:-મન વચન અને કાયા એ ત્રિયોગની શુદ્ધિ ( કષાયોદિ અપ્રશસ્ત પરિણામ રહિત ) દેવાધિદેવ શ્રી તીર્થંકર જગવંતનો યશ-વાદ બોલવો, તેમના જ્ઞાનાદિક પવિત્ર ગુણની સ્તવના કરવી, ગુણાનુ-રાગ કરવો, વંદન પૂજન વિગેરે કરવું, તેમના જ્ઞાનાદિ શુદ્ધજ્ઞાન અનુગત આપણો આત્મ પરિણામ કરવો, તે સર્વે આપણા આત્માને જ્ઞાના-વરણાદિ પાપથી મુક્ત, પવિત્ર કરવાનાં તથા શુદ્ધાત્મપદ પ્રાપ્તિનાં અંગ છે ॥ ૩ ॥

પરમાત્મપદ કામના, કામ નાશન તેહ ॥ સત્તા ધર્મ પ્રકા-  
શના, કરવા ગુણ ગેહ ॥ ચંદ્ર ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-કેવલજ્ઞાન, કેવલદર્શનાદિ અનંત ગુણપિંડ આપણા શુદ્ધા-ત્મપદની કામના, તે સાધવાની રુચિ, તે પુદ્ગલાદિ અન્ય દ્રવ્યની કામના તૃષ્ણાને નાશ કરવાનો હેતુ છે. કારણકે આપણો આત્માજ પરમાત્મપદનું ઉપાદાન છે, તેજ પરમાત્મ જાણે પરિણમનાર છે માટે પરમાત્મપદ ક્ષેત્રાંતરે નથી અને ક્ષેત્રાંતરે રહેલી વસ્તુની કામનાજ દુઃખદાયી છે માટે પરમાત્મ પદની કામના થવાથી અન્ય સર્વ કામ-

नानो उद्वेद थाय ठे. ते परमात्मपदनी कामनाना हेतु श्री जिनेश्वर जगवंत ठे तेथी तेमनी सेवा सत्तामां रहेली. ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीने प्रगट इष्टीगोचर करवाने तथा आपणा आत्माने गुणनिधान पूज्य पद आपवाने पुष्ट हेतु ठे. ॥ ४ ॥

॥ परमेश्वर आलंबना, राच्या जेह जीव ॥ निर्मल साध्यनी साधना, साधे तेह सदीव ॥ चंद्र० ॥ ५ ॥

अर्थ:-जगत् चूनामणि तरण तारण परमेश्वरनो आश्रय जे जव्य जीवोण रुचि बहुमान पूर्वक ग्रहण कर्यो ठे तेज पुरुषो निरंतर पोताना शुद्ध साध्यने साधवावाला ठे. परमात्मपद जेमां प्रगटपणे ठे एवा तीर्थंकर जगवंत परमात्मपद साधनाना पुष्ट हेतु थइ शके पण अन्य कुदेवादिक जे पोते अशुद्ध आत्मजावमां धर्ते ठे ते मोक्षना हेतु केम बनी शके ? ॥ ५ ॥

॥ परमानंद उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥ तुजसम तारक सेवतां, पर सेवन थाय ॥ चंद्र० ॥ ६ ॥

अर्थ:-ते कारणमाटे हे चंद्रबाहु प्रभु परमानंद पद-मोक्षपद प्राप्त करवामां आपज पुष्ट उपाय ठे.

“पुष्ट हेतु जिनेंद्रोयं, मोक्ष सद्भाव साधने”

हे प्रभु ! आप जेवा पूज्य पुरुषनी सेवा करतां अन्य जीव तथा पुद्गलनी आशा तृष्णा तथा सेवा मटी जाय, करवी न पडे ॥ ६ ॥

॥ शुश्रूतम संपत्ति तणा, तुम्हे कारण सार ॥ देवचंद्र अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥ चंद्र० ॥ ७ ॥

अर्थ:-अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख तथा अनंतवीर्यरूप परमपवित्र, अविनश्वर अने स्वाधीन अखूट लक्ष्मी प्रगट-प्राप्त

\*\*\*\*\*

३५४ : विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बाढावबोध सहित.

करवाना, हे जगवंत ! आपज साचा कारण ठो. कारण के ते केवळ  
 ज्ञानादि लक्ष्मीने आप संपूर्ण प्रगट स्वाधीन करी निरंतर जोगवो  
 ठो, तज्ज्ञान्य परमानंदमां मग्न ठो. एवं आपनुं स्वरूप द्रष्टि गोचर यतां  
 मने पण एवं ज्ञान थयुं के ए अनुपम विभूतिना इश्वर माहरी स्वजाति  
 ठे, तेथी हुं पण आप समान लक्ष्मीनो स्वामी थवाने सत्तावंत ठुं,  
 एम ज्ञासन यतां आप समान परात्मपद साधवानी मने रुचि थइतेथी  
 आप माहरी सिद्धिना साचा कारण छे. जो आपना परमानंदमय  
 स्वरूपनुं मने दर्शन न थयुं होत तो मने परमात्म पद साधवानी  
 रुचि पण थती नहि अने रुची थयाविना कार्य साधनामां उद्यम  
 प्रवृत्ति थाय नहि अने साधना विना कार्य सिद्धि पण थाय नहि  
 माटे न्यायद्रष्टिए जोतां आपनुं सिद्धपद माहरी सिद्धिनुं कारण  
 प्रतित थाय ठे ॥ उक्तंच विशेषावश्यके ॥ “ सर्वेपि बुद्धौ संकल्प्य  
 कार्यं करोति इति ॥ व्यवहारस्ततो बुद्धाद्धवसितस्य कुंजस्य  
 चिकीर्षितो मृन्मयःकुंजस्तदुद्भयालंबन तथा कारणं जवति ”  
 तथा वली ते परमात्मपद साधवानो यथार्थ मार्ग बतावनार पण  
 आपज ठो तेथी पण आप माहरी सिद्धिना कारण ठो माटे सर्वे देवोमां  
 चंद्रमा समान हे अरिहंत जगवंत ! आपनीज सेवा सर्वे क्लेशथी  
 मुक्त करी परमानंद परम सुखनी दातार ठे ॥ १ ॥ ॥ संपूर्ण ॥



॥ अथ चतुर्दशम श्री जुजंग स्वामी जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी ॥ लूअरनी ॥

पुष्कलाव्रह् विजये हो, के विचरे तीर्थपती । प्रभु चरणे  
 सेवेहो, के सुरनर असुर पती । जसु गुण प्रगट्या हो, के

\*\*\*\*\*

सर्व प्रदेशमां । आत्म गुणनी हो, के विकसी अनंत  
रमा ॥ १ ॥

अर्थ.—पुष्कलावर्त विजयमां विचरता सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र  
रूप तीर्थना प्रगट करनार, फेलावनार तीर्थपति श्री जुजंग स्वामी  
प्रचुने कषाय तथा अज्ञानथी वीलकुल रहित, परम पवित्र परमानंद  
स्वरूप जाणी, मोक्ष मार्गमां गमन करवा कुशल तेमना पवित्र चरण  
युगलने महान् रिद्धि सिद्धिना धारक सुर असुर तथा मनुष्यना  
इंद्रो, विषय तथा कषायजन्य जव समुद्रथी मुक्त थवा, बहु सन्मान  
सहित सेवे ठे. जे जगवंतना दरेक प्रदेशे रहेला ज्ञानादि अनंत  
गुणो संपूर्ण पणे निर्मल प्रगट थया ठे, ते गुणनो व्याघात करनार  
ज्ञानावरणादि घाती कर्मनो सत्ता सहित नाश कयों ठे अने तेथी  
ज्ञानादि आत्म गुणनी सहज, अकृत्रिम, स्वाधिन, अने अविनश्वर  
अनंत अनुभूति ( लक्ष्मी ) प्रगट प्राप्त थइ ठे, निरंतर तेना स्वामी  
तथा जोक्तापणे वर्त्ते ठे—परमानंदमां निमग्न ठे ॥ १ ॥

सामान्य स्वजावनी हो, के परिणति असहायी । धर्म  
विशेषनी हो, के गुणने अनुजायी ॥ गुण सकल प्रदेशे हो,  
के निज निज कार्य करे । समुदाय प्रवर्त्ते हो, के कर्त्ता-  
जाव धरे ॥ २ ॥

अर्थ.—सामान्य स्वजाव विना वस्तुनी ठती नहि अने विशेष  
स्वजाव विना कार्य नहि, पर्याय प्रवृत्ति नहि, माटे पंचास्तिकाय ते  
सदा सामान्य विशेष स्वजावमयी ठे.

जे स्वजावमां एकपणुं, नित्यपणुं, निरवयवपणुं, अक्रियपणुं, अने  
सर्वगतपणुं होय ते सामान्य स्वजाव जाणवा ( एगं निचं निरवय-  
वमक्रियं सव्वगं च मामन्नं ) एवा मूलसामान्य स्वजाव ठ ठे—

३३६ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वालावबोध सहित.

अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, सत्त्वं अने अगुरुलघुत्वं. तथा उत्तरसामान्य स्वज्ञाव वस्तु मध्ये अनंता ठे. ते सामान्य स्वज्ञावो सर्व द्रव्यमां सर्वे समय निज परिणामीकताए परिणमे ठे, तेथी हे जगवंत ! आपना सर्व सामान्य स्वज्ञावो सदाकाळ असहाये परिणमे ठे अने हे जगवंत ! आपना सर्व विशेष धर्म पोताना परम गुणने अनुयायीपणे परिणमे ठे. “ यद्युक्तं—जिन्न जिन्न पर्याय प्रवर्त्तन स्वकार्य करण सहकार ज्ञूताः पर्यायानुगत परिणाम विशेष स्वज्ञावाः ” वस्तुमां जे जिन्न जिन्न पर्याय ठे तेनुं कार्य कारण पणे जे प्रवर्त्तन तेना सहकारज्ञूत जे पर्यायानुगत परिणामी एवा जे स्वज्ञाव ते विशेष स्वज्ञाव ठे.

जीव द्रव्यमां ज्ञायकता कर्तृता ज्ञोक्तृता, ग्राहकता आदि अनंत विशेष स्वज्ञाव ठे, तेमज धर्मास्तिकायमां गमन सहकारतादि, अधर्मास्तिकायमां स्थिति सहकारादि, आकाशास्तिकायमां अवगाहदानादि, पुद्गलास्तिकायमां पूरणगलनादि, एम पंचास्तिकायमां अनंत विशेष स्वज्ञाव ठे.

वली हे जगवंत ! आप स्वतंत्रपणे पोताना ज्ञानादिक कार्यना हमेशां कर्त्ता ठो माटे आप परमेश्वर ठो कारणके जीव द्रव्य शिवाय अन्य कोई पण द्रव्यमां कर्त्तापणुं नथी ( कर्त्तृत्वं जीवस्य नान्येषाम् ) कारण के “ गुण सकल प्रदेशे हो के निज निज कार्य करे, समुदाय प्रवर्त्ते हो के कर्त्ता जाव धरे ” आपना सकल प्रदेशे रहेला अनंत गुणो पोत पोतानुं कार्य करेठे पण ते सर्वे प्रदेशे समुदाय मलीने एकठी प्रवृत्ति करेठे माटे आप स्वतंत्र कर्त्ता ठो ॥ ३ ॥

जम द्रव्य चतुष्के हो के कर्त्ता जाव नहि, ॥ सर्व प्रदेशे

हो, के वृत्ति विजिन्न कही ॥ चेतन डव्यने हो, के सकल,  
प्रदेश मीले ॥ गुणवर्तना वर्ते हो, के वस्तुने सहज बले ॥३॥

अर्थ:-पण हे जगवंत ! जडडव्य चतुष्कमां कर्त्ता जाव ठरी शकतो नथी, कारणके जो के ते जरु डव्यना धर्म प्रदेशे प्रदेशे वर्ते ठे परंतु सर्वे प्रदेशोनुं एक समुदायीपणे कार्य प्रवर्त्तन नथी, जिन्न जिन्न प्रदेशे जिन्न कार्य होई शके ठे जेम धर्मास्तिकाय कोई प्रदेश वमे अमुक पुद्गलने चलनसहायी थाय ठे अने तेथी बीजा प्रदेशे बीजा पुद्गलने चलनसहायी थाय ठे एम जिन्न प्रदेशे जिन्न वृत्ति होवाने लीधे जड डव्यमां कर्त्तापणुं ठरी शकतुं नथी.

पण हे जगवंत ! जीव डव्यनो सहज स्वजाव एवो ठे के तेना ज्ञान दर्शनादि सर्वे गुणोना अविजाग पर्याय दरेक प्रदेशे ठे, ते सर्वे प्रदेशना गुणाविजाग एक समुदाये आवीर्त्तावे थई कार्य करे अर्थात् एक कार्ये परिणमवामां सर्वे प्रदेशना गुणाविजाग सामर्थ्य पणे परिणमे, कोई पण प्रदेशना गुणाविजाग ते कार्यमां जोडाया शिवाय रहे नहीं, एम जीव डव्यना सर्वे प्रदेश मली एक समुदायि पणे एक कार्ये परिणमे ठे. ॥ ३ ॥

शंकर सहकारी हो, के सहजे गुण वरते ॥ डव्यादिक परिणति हो, के जावे अनुसरते ॥ दानादिक लब्धि हो, के न हुवे सहाय विना ॥ सहकार अकंपे हो, के गुणनी वृत्ति घना ॥ ४ ॥

अर्थ:-एम दरेक सर्वे प्रदेशना गुणाविजागो एकत्र एक बीजाने सहकारीपणे सदा परिणमे, वली डव्य क्षेत्र कालनी प्रवृत्ति ते डव्यना परमजावने अनुसारे वर्ते ठे. जेम जीव डव्यनो जाव चैतन्यता ठे माटे चैतन्य गुण पर्यायनो एक पिंड ते जीव डव्य ठे, अने चैतन्य गुणने रहेवानुं असंख्यात प्रदेशमय स्थानक ते जीव डव्यनुं क्षेत्र ठे,



३१७ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वाढावबोध सहित.

अने चैतन्य गुण पर्यायनी प्रवृत्ति ते जीव द्रव्यनो काल ठे यद्युक्तं—  
“ गुण समुदायो द्रव्यं, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो ॥ गुण  
पज्जाय पवत्ति, जावो नियवत्थु धम्मो सो ॥” दान लान्न जोगादि  
लब्धीओ ते वीर्य गुणनी सहाय विना वर्त्तीं शके नहीं पण हे जगवंत !  
आपनुं वीर्य क्षायिकपणे होवाथी गुण वृत्तिना समूहने अकंपपणे सह-  
कारी थई शके ठे तेथी आप हमेशां अवंध तथा परमोत्कृष्ट अवस्थामां  
वर्त्तोढो, कारण के “ चलइ स फंदई ” ॥ ४ ॥

॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणे ॥ वरते तेहने  
हो, के जिनवर गुण पज्जणे ॥ ज्ञानादिक गुणनी हो के  
वर्त्तना जीव प्रते ॥ धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकारे  
करते ॥ ५ ॥

अर्थः—त्रिलोक पूज्य श्री जिनेश्वर देव एम कहे ठे के एक कार्य  
पणें परिणमनारा अनंता ठती पर्यायनो समुदाय ते गुण ठे. जेम  
जाणवारूप सामर्थ्य ठे जेमां एवा अविज्ञागी पर्यायनो समुदाय ते  
ज्ञान गुण, देखवारूप सामर्थ्य ठे जेमां एवा अविज्ञाग पर्यायनो समु-  
दाय ते दर्शन गुण, परिणामालंबन रूप कार्य सामर्थ्य ठे जेमां एवा  
अविज्ञागी पर्यायनो समुदाय ते वीर्यगुण, विगेरे एम दरेक द्रव्यना  
प्रति प्रदेशे पोतपोतानुं एक कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनंता  
अविज्ञागरूप पर्यायनो समुदाय ते गुण ठे. जीवद्रव्यना दरेक प्रदेशे  
जाणवा रूप कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनंता अविज्ञाग पर्याय  
ठे तेनो समुदाय ते ज्ञान गुण. एम ज्ञानादि अनंत गुणनी वर्त्तना  
जीव द्रव्यमां ठे. यद्युक्तं—नय चक्र सारे—“ तत्रैकस्मिन् द्रव्ये  
प्रति प्रदेशे स्व स्व एक कार्य करण सामर्थ्य रूपा अनंता  
अविज्ञाग रूप पर्याया स्तेषां समुदायो गुणः जिन्न कार्य

करणे सामर्थ्यरूपा जिन्न गुणस्य पर्याया एवं गुणा अप्य-  
नन्ताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया अविज्ञाग रूपाः अनन्ता  
स्तुल्याः प्रायीइति ते चास्ति रूपाः प्रति वस्तुनि अनन्ता  
स्ततोन्त गुणाः सामर्थ्य पर्यायाः ” अने धर्मादिक जड डव्य-  
मां ज्ञान गुणथी अनिरिक्त चखनसहकारादि गुणो वर्ते ठे ॥ ५ ॥  
ग्राहक व्यापकताहो, के प्रजुतुम धर्मरमी ॥ आतम अनु-  
भवथी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ तुज शक्ति अनन्ती हो,  
के गातांने ध्यातां ॥ मुज शक्ति विकासन हो, के थाये गुण  
रमतां ॥ ६ ॥

अर्थः—हे प्रजु ! जेदविज्ञाननी पूर्णता वडे आप निरंतर ज्ञाना-  
दिक शुद्धात्म गुणना ग्राहक ठो. तेथी अतिरिक्त विषय कपायने  
ग्रहण करवाथी आप मुक्त थया ठो, तेमज आपनी व्यापकता पण  
ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणमांज निरंतर व्यापे ठे पण विषय कथायमां  
कदापि काले व्यापे नहि तेथी आप सदा परजावथी अव्याप्त ठो  
तथा नित्य शाश्वत स्वाधीन अने एकांतिक सहज सुख पिंड शुद्धात्म  
डव्यनी अनुभूतिनो निरंतर आस्वाद लेनारा तथा तेमांज विवासी  
यइ पौद्गलीक विभूतीनुं कर्त्तापणुं जोक्तापणुं तथा रमणपणुं  
वमननी पेठे सर्वथा प्रकारे तजी दीधुं कारणके शुद्धात्म अनु-  
भवरूप अमृतपानमां मग्न पुरुष, पौद्गलीक विषय कपायरूप  
हालाहल विष पीवाने केम इच्छे ? हे प्रजु ! “अजमत्वात्मिका  
चितिशक्तिः अनाकारोपयोगमयी दृशिगक्तिः साकारोपयो-  
गमयी ज्ञानशक्तिः, अनाकुलत्व लक्षणा सुखशक्तिः, स्वरूप  
निर्वर्तन सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः. अखणिमन प्रताप स्वातन्त्र्य

३३० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

शालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः, क्रमाक्रमवृत्ति वृत्तलक्षणा-  
त्पाद व्यय ध्रुवत्वशक्तिः ” तथा कर्तृत्वशक्ति, जोक्तृत्वशक्ति, परि-  
णामशक्ति, स्वधर्म ग्राहकत्वशक्ति, स्वधर्म व्यापकत्वशक्ति, तत्त्वशक्ति,  
एकत्वशक्ति, अनेकत्वशक्ति, कारणशक्ति, संप्रदानशक्ति, अपादानशक्ति,  
अधिकरणशक्ति, संबंधशक्ति, ए आदि अनंतशक्ति आपमां समवाय  
संबंधे रहेली ठे ते शक्तिओनुं स्मरण तथा ध्यान करतां तथा शुद्धा-  
त्मगुणमां रमण करतां सत्तागते रहेली आप समान माहरी सर्वे श-  
क्तिओ प्रगट थाय, सहज शिवलक्ष्मीनी प्राप्ति थाय ॥ ६ ॥

इम निजगुण जोगी हो, के स्वामी जुजंग मुदा ॥ जे नित  
वंदे हो, के ते नर धन्य सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो, के पुण्ये-  
शक्ति सधे ॥ आत्म अनुभवनी हो, के नित नित शक्ति  
वधे ॥ ७ ॥

अर्थ:-एम शुद्धात्म गुण पर्यायने निरंतर जोगवनारा परमानंद  
समूह हे श्री जुजंग स्वामी ! पवित्र ज्ञाव वरु जे आपनुं नित्यवंदन  
स्मरणादि करे ठे तेज पुरुषो आ जगत्त्रयमां धन्य ठे ! तेज पुरुषो  
स्तुति पात्र ठे, तेज पुरुषो कृतार्थ ठे, हे देवाधिदेव ! आपनी शक्ति  
सहत्पुण्यना योगेज साधी शकाय ठे वली आपनीज शक्तिना  
पसाये बीजना चंद्रमानो पेठे आत्म अनुभवनी शक्ति दिन प्रतिदिन  
वृद्धिगंत थाय, आखरे पूर्णानंदनी प्राप्ति थाय ॥ ७ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ पंचदशम श्री ईश्वरदेव जिन स्तवनम् ॥

॥ काल अनंतानंत ए देशी ॥

सेवो ईश्वर देव, जिणे इश्वरता हो, निज अद्भुत वरी;  
तीरोज्ञावनी शक्ति, आवीर्जावे हो, सहु प्रगट करी ॥ १ ॥

अर्थः—महाविदेहमा विहरमान हे श्री ईश्वरदेव ! आपे सर्व जगत् त्रयने आश्चर्य तथा परमानंद पमाडे एवी ईश्वरता प्रगट—संप्राप्त करी ठे, ते ईश्वरता केवी ठे—पोताना शुद्ध गुण पर्यायोमां वरते ठे तेथी पूर्ण पवित्र स्वाधीन तथा अविनश्वर ठे परद्रव्यना रागथी रहित होवाथी राग छेप जय तथा कामनाथी रहित ठे माटे अत्यंत सुख समूह रूप ठे, परमानंदमय ठे.

अनादि विज्ञावने लीधे आत्मा राग छेप रूप अशुद्ध जावे परिणमी ज्ञानावरणादि अनेक प्रकारनां कर्म बंधन वने पोतानी ज्ञानादि अनंत विशेष शक्त्योने आच्छादित करे ठे, पोताना स्वा-  
जाविक परमानंदथी विमुख रहे ठे पण हे परमेश्वर ! आपे पोताना आत्मानुं तथा पुद्गलादि परद्रव्यनुं स्वरूप यथार्थ ओलखी पोताना स्वरूपने सुखनिधान जाणी तेना रसिया थई सम्यक्पराक्रम आदरी परकर्तृता, परजोक्तृता, परग्राहकता, परव्यापकता, पररमणता विगेरे अनंत विज्ञावनो परित्याग करी, शुक्लध्याननी तीव्र अग्नि वने ज्ञानावरणादि कर्ममलने जस्मीजूत करी, शुद्ध सुवर्ण समान परम प्रकाशमान अनंत परमानंदभय पोतानी ज्ञानादि सर्व शक्तिउं “आवीर्जावे प्रगट करी” प्रगट, निरावरण स्वकार्य प्रयुक्त करी राग छेप मोह विगेरे नाश करी, सर्व दूषण रहित स्वसत्तामां विराज-  
मान रहि पोताना ज्ञानादि शुद्ध अनंत गुणोनी ईश्वरता निष्कंटक-  
पणे जोगवो ठे. तेथी हे परमेश्वर ! आपमां साची ईश्वरता जोई पर-  
माहत्तादित थई पवित्र विनय युक्त आपनी द्रव्यजावथी सेवा करीए,  
द्रव्य जाव सेवानु स्वरूप—“द्रव्यसेव वंदन नमनादिक, अर्चन  
वली गुण ग्रामोजी । जाव अजेद थवानी ईहा, परजावे  
निःकामोजी ” ॥

३३२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

अर्थ:-सर्व परज्ञावनी कामना रहित जिनेश्वरना पवित्र गुणोमां बहु सन्मान धरी ते समान पवित्र गुणो प्रगट करी अरिहंत समान पोतानुं परमात्म पद साधवुं ते ज्ञावसेवा ठे. तथा ते ज्ञावसेवाना कारणरूप, ज्ञावसेवाने प्रशस्त, परमपूज्य श्री जिनेश्वरना पवित्र गुणोनुं स्मरण तथा गान करवुं तथा ते जिनेश्वरनी परम पवित्र ज्ञान मूर्तिने वंदन नमनादि करवुं ते द्रव्यसेवा ठे ॥ १ ॥

अस्तित्वादिक धर्म, निरमल ज्ञावे हो सहुने सर्वदा ॥

नित्यत्वादि स्वज्ञाव, ते परिणामी हो जरु चेतन सदा ॥ २ ॥

अर्थ:-अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुक्लघुत्व तथा सत्त्व ए ठ मूल सामान्यस्वज्ञाव सर्वे द्रव्यमां सदाकाल निरावरणपणे वर्त्ते ठे तथा सर्वे जरु तथा चेतन द्रव्यो नित्यत्वादि स्वज्ञावे निरंतर परिणमे ठे. माटे ए सामान्यस्वज्ञावनी निरावरणता वडे तथा साधारणधर्मना परिणाम वडे तो हे ईश्वर देव ! आपने परमेश्वरपणानी पदवी प्राप्त थई शके नहि पण ॥ २ ॥

कर्त्ता ज्ञोक्ता ज्ञाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान चारित्रता ॥

गुण पर्याय अनंत, पाभ्या तुमचा हो पूर्ण पवित्रता ॥ ३ ॥

अर्थ:-कर्त्तापणुं, ज्ञोक्तापणुं, कारकपणुं, ग्राहकपणुं, ज्ञान, चारित्र, विगेरे अनंत गुणपर्याय ते पूर्ण पवित्र थया ठे, सदाकाल पूर्ण पवित्र पणे वर्त्ते ठे, ए कारणमाटे आपमां परमेश्वर पदनी प्रतीत थाय ठे. अनादि अज्ञान वशे जीव परज्ञावनो कर्त्ता बने ठे अर्थात् में घर बनाव्युं, में नगर बनाव्युं, में अमुक पदार्थने सुवर्ण बनाव्यो, अमुक पदार्थने सुगंध बनाव्यो, अमुक पदार्थने सरस रसवालो बनाव्यो, अमुक पदार्थने मनोहर स्पर्शवालो बनाव्यो, विगेरे परज्ञावना कर्त्तापणाना अजिमान वडे ज्ञानावरणादि कर्मनो कर्त्ता बने ठे. एम

द्रव्यकर्म, नोकर्मादिकनो कर्त्ता वनी पोताना शुद्ध ज्ञानादि परिणामे परिणमवा रूप शुद्ध कर्त्तापणायी विमुख रहे ठे. पण ज्यारे सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति थाय, तत्त्वरुची थाय, त्यारे परजावना कर्त्तापणाने तजी स्वाभाविक कार्यमां पोतानी शक्तिने जोके, शुद्धज्ञान दर्शन चारित्रनो कर्त्ता थाय, तेमज अज्ञान वशे परजावनो जोक्ता वने ठे अर्थात् वर्ण गंध रस स्पर्श स्त्री पुरुष वस्त्र खादिम स्वादिम पदार्थने में जोगव्या, हुं जोगवु तुं, हुं जोगवीश, एम परजावना जोक्तापणानुं अजिमान करे ठे. पण ज्यारे सम्यक्ज्ञाननी प्राप्ति थाय त्यारे पोताना ज्ञानादि शुद्ध गुण पर्यायने पोताना जोग उपजोग जाणी ते जोग-ववानो कामी थइ तेना जोगमां मग्न थाय, परजावनुं जोक्तापणुं दूर थाय. तेमज अनादि विजाव वशे अशुद्ध कारक प्रवृत्तिमां पोताना आत्म परिणामने थिर करे ठे, तेमज परजावमां व्यापक अर्थात् तद्धीन-तद्गत थइ रहे ठे, तेमज अशुद्ध ज्ञाने परिणमे ठे अर्थात् देहने आत्मतत्त्व जाणे ठे, पौद्गलीक जोगने आत्म जोग जाणे ठे, पौद्गलीक विषय सुखमां सुख जाणे ठे, शारीरिक वीर्यने आत्मवीर्य जाणे ठे. तेमज पौद्गलीक परिणाममां पोताना आत्माने स्थित करे ठे, एम अज्ञान वशे संसारी आत्मा पोताना सर्वे कर्त्तृत्वादि स्वजावने अशुद्धपणे परिणमावी अनेक प्रकारनां ज्ञानावरणादि कर्म बांधि पोतानी ज्ञानादिक अनंत संपदाना ईश्वरपणायी दूर वत्ते ठे पण हे ईश्वरदेव ! आपे ते पोताना सर्वे कर्त्तृत्वादि स्वजावने शुद्ध जावे परिणमाव्या-पूर्ण पवित्र थया, हवे कोऽपण काले अशुद्धताए परिणमशे नहि माटे आप श्री एवंजुत नये पोतानी ज्ञानादि निष्कलंक, अविनश्वर लक्ष्मीना स्वामी-ईश्वर थया छो माटे आपज साचा ईश्वर ठे. ॥ ३ ॥

पूर्णानंद स्वरूप, जोगी अयोगी हो उपयोगी सदा ॥

૩૩૪ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવવોધ સહિત.

શક્તિ સકલ સ્વાધીન, વરતે પ્રજુની હો જે ન ચલે  
કદા ॥ ૪ ॥

અર્થ:—વલી હે જગવંત ! આપ પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ હો. જગત્વાસી જીવો ધન સ્ત્રી આદિ ઈષ્ટ પદાર્થોની અધિકતર પ્રાપ્તિ વગેરે પોતાને પૂર્ણાનંદ માને છે; પણ તે સમુદ્રના કલ્લોલની પેઠે અવાસ્તવિક છે, ક્ષણજંગૂર છે, તૃષ્ણા રૂપી આગને વધારનાર છે, તથા સ્વાત્તાવિક સંપદાનો ઘાત કરનાર છે. પણ આપની જ્ઞાનાદિક સંપદા તે આપથી પ્રદેશાંતરે નથી તેથી તે દૂર થવાનો કદાપિ જય નથી, વલી એક દેત્રાવગાદી હોવાથી ચાહ દાહથી અતીત છે, વલી તે જ્ઞાનાદિ સંપદા સહજ સ્વાત્તાવિક છે માટે તે રાખવાનો અથવા મેલવવાનો પ્રયાસ કરવો પડે તેમ નથી, વલી તે આપને સહજ સંવંધે છે તથા પરદ્રવ્યથી અગ્રાહ્ય છે માટે તેને કોઈ ભાંગી લુંટી શકે તેમ નથી તેથી હે જગવંત ! આપજ પૂર્ણાનંદ હો. યદ્યુક્તં—

શ્લોક:—“ પૂર્ણતા યા પરોપાધે: સા યાચિતક મંમનં ॥ યા તુ સ્વાત્તાવિકી સૈવ જાત્યરત્નવિજ્ઞાનિજ્ઞા ॥ અવાસ્તવી વિકલ્પૈ: સ્યાત્ પૂર્ણતાબ્ધે રિવોર્મિત્તિ: ॥ પૂર્ણાનંદસ્તુ જગ-વાંસ્તિમિતોદધિસન્નિજ્ઞ: ॥ ”

તથા હે જગવંત ! આપ સ્વરૂપ જોગી હો; માત્ર જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રાદિ પોતાના શુદ્ધ નિરૂપાધિક ગુણ પર્યાયને જોગવવા વાલા હો તેથી આપ સદા નિષ્કંટક હો, તથા હે જગવંત ! આપ મન વચન તથા કાયાની ક્રિયાના અકર્તા થયા હો, યોગનું મમત્વ સર્વથા દૂર કીધું છે તેથી આપ અયોગી હો, વલી આપ સદા ઉપયોગી હો, જ્ઞાનોપયોગનો ઘાત કરનાર જ્ઞાનાવરણીય કર્મ તથા દર્શનોપયોગનો ઘાત કરનાર દર્શનાવરણીય કર્મ એ બંનેનો આપે સત્તા સહિત સર્વથા નાશ

क्यों ठे माटे हवे आपना उपयोगने कोइ पण स्वखलना पमारुनार  
नथी तेथी आप सदा उपयोगी ठो, सर्वे समय शुरू ज्ञानदर्शनो-  
पयोगमां निरंतर वत्तो ठो; एम हे जगवंत ! ज्ञानादि सर्वे शक्तिउं  
आप पोताने स्वाधीन वत्तावो ठो वली सर्वे कर्मनो अजाव करी  
आपे ते शक्तिउं पोताने स्वाधीन करी ठे माटे ते हवे आपथी कोइ  
पण काले क्षणमात्र पण प्रदेशांतरे थनार नथी, सदा काल आपमां  
अचल पणे रहेजे तेथी तज्ज्ञान्य आनंदमां आप सदा मग्न ठो ॥ ४ ॥

दास विज्ञाव अनंत, नासे प्रभुजी हो तुज अवलंबने ॥

ज्ञानानंद महंत, तुज सेवाथी हो सेवकने वने ॥ ५ ॥

अर्थः—ज्यांसुधी आत्मा सचेत थयो नथी त्यांसुधी अनादि विज्ञाव  
स्वज्ञाव होवाने लीधे आत्मा सम्यक्ज्ञाने नहि परिणमता अज्ञानपणे  
परिणमे ठे, सम्यक्दर्शनपणे नहि परिणमतां मिथ्यादर्शनपणे परि-  
णमे ठे, स्वस्वरूपमा रमण नहि करतां विषय कपायमां रमण करे ठे  
पडितजावे वीर्य नहि फोरवता वाल बाधक जावे फोरवे ठे, सूक्ष्म  
तथा स्थूल क्रियानो रागी अई कर्म बंधन करे ठे, शुरू स्वज्ञावनो  
कर्ता नहि बनतां परज्ञावनो कर्ता वने ठे, शुरू स्वज्ञावनो जोम्ता  
नहि बनतां परज्ञावनो जोक्ता वने ठे, शुरू ज्ञानादि गुणनो ग्राहक  
नहि थतां परगुण पर्यायनो ग्राहक थाय ठे, शुरू स्वज्ञावमां नहि  
व्यापता परज्ञावमां व्यापे ठे, एम ज्ञानादि अनंत गुणोने अशुरूपणे  
परिणमावगारूप जे अनंत विज्ञाव हुं सेवकने बलगेलो ठे ते सर्व  
विज्ञाव हे परमेश्वर ! आपना अवलंबनवडे समूल नाश थशे. वली  
हे परमेश्वर ! आपनी पवित्र आज्ञामां विचरवारूप साची सेवाथी  
हुं सेवकने अखूट अचल अविनश्वर ज्ञानानंद प्राप्त थशे ज्ञानानंद  
तेज साचो आनंद ठे. विषय कपाय वने मनायेलो आनंद ते अवा-  
स्तविक कल्पित तथा दु ख निदान ठे । ५ ॥



૩૩૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

॥ ધન્ય ! ધન્ય ! તે જીવ, પ્રજ્ઞ પદ વંદી હો જે દેશન સુણે ॥

॥ જ્ઞાન ક્રિયા કરે શુદ્ધ, અનુજવ યોગે હો નિજ સાધકપણે ॥ ૬ ॥

અર્થ:—ધન્ય છે તે જીવોને ! ધન્ય છે તે જીવોને ! કે જે હે પરમેશ્વર ! આપના પવિત્ર ચરણકમલને વંદી સર્વે જીવને સુખકારી સંસાર સમુદ્રમાંથી તારનાર ધર્મદેશના રુચી પૂર્વક શ્રવણ કરે, મહત્પુણ્યના યોગે આપ શ્રીનો દિવ્યવાણીનો લાજ મલે છે. રત્નચિંતામણીથી અત્યંત દુઃપ્રાપ્ય અમૂલ્ય આપની દેશનાનો યથાર્થ રહસ્ય પામી શોતાના શુદ્ધાત્મ પદના સાધકપણે શુદ્ધાત્મ અનુજવ યોગે જ્ઞાનશુદ્ધિ તથા ક્રિયાશુદ્ધિ આદરે. “ જ્ઞાનશુદ્ધિ ”—સંશય વિષ્ણુ અને વિમોહ રહિત શુદ્ધ તત્ત્વનું જાણવું તે શુદ્ધજ્ઞાન છે, તે શુદ્ધજ્ઞાન સર્વ દોષથી રહિત કેવલજ્ઞાનદિવાકર શ્રી અરિહંતાદિના સદુપદેશદ્વારા તથા તેજના પ્રરુપેલા સદાગમદ્વારા વાચના, પ્રિચ્છના, પર્યટના, અનુપ્રેક્ષા તથા ધર્મકથા વિગેરે સાચા નિમિત્તથી શુદ્ધજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે માટે તેજનું અતિચાર રહિત નિરંતર સેવન કરવું જેથી જ્ઞાનશુદ્ધિ થાય. “ ક્રિયાશુદ્ધિ ”—ક્રિયા બે પ્રકારે છે. બાહ્યક્રિયા અને અંતરંગક્રિયા—શુદ્ધા હારાદિકનું ગ્રહણ કરવું તથા ઈર્ષ્યા જાણાદિ સમિતિનું પાલન કરવું વિગેરે બાહ્યક્રિયાશુદ્ધિ છે. તથા સ્વસમય પરસમય, સ્વદ્રવ્ય પરદ્રવ્યને જિજ્ઞાસુ યથાર્થ જાણવામાં વર્તવું તથા શુદ્ધાત્મ સ્વરૂપનો ઘાત કરનાર ક્રોધાદિક કષાયોનો જેદવિજ્ઞાન રૂપ તીક્ષ્ણ બાણવડે નાશ કરવો, તેઓનો આત્મ સત્તાત્મના પ્રવેશ થવા દેવો નહિ, એમ શુદ્ધાત્મ સ્વરૂપનું રક્ષણ કરવું, શુદ્ધાત્મ અનુજવમાં વિચરવું તે અંતરંગ ક્રિયાશુદ્ધિ છે. યદ્યુક્તં—દ્રવ્યાનુયોગ તર્કણાયમ્ “ બાહ્ય ક્રિયા આવસ્યકાદિ રૂપા બહિર્યોગોસ્તિ ચ પુનઃ અંતરંગ ક્રિયા ચ સ્વસમય

પરસમય પરિજ્ઞાન રૂપા જ્ઞાનક્રિયા અપરો હવ્યાનુયોગોસ્તિ”  
અંતરંગક્રિયાશુદ્ધિની પ્રાપ્તિ માટેજ વાહ્યક્રિયાશુદ્ધિ આદરણીય,  
પ્રશંસનીય છે, સંવર હેતુ છે, પણ અંતરંગક્રિયાશુદ્ધિની અપેક્ષા  
વગરની વાહ્યક્રિયાશુદ્ધિ તે બંધ હેતુ છે—“શુદ્ધાત્મે અનુજવ  
વિના, બંધ હેતુ શુદ્ધ ચાલ ॥ આત્મ પરિણામે રમ્યા,  
અહજ આસ્ત્રવ પાલ ॥” માટે વાહ્યક્રિયાશુદ્ધિમાં પ્રવૃત્ત થતાં  
અંતરંગક્રિયાશુદ્ધિથી ચૂકવું નહિ અને અંતરંગક્રિયાશુદ્ધિની  
કારણરૂપ વાહ્યક્રિયાશુદ્ધિની અપેક્ષા કરવી નહિ, માટે ક્રિયાશુદ્ધિ  
તથા જ્ઞાનશુદ્ધિ એ બંનેનું જિનાજ્ઞા પ્રમાણે પાલન કરતો સ્યાદ્વાદમાં  
કુશલ એવો જ્ઞાની શુદ્ધ નિરામય નિર્વાણપદને પ્રાપ્ત થાય છે.

યદ્યુક્તં:—વસંત તિલકા “સ્યાદ્વાદ કૌશલ સુનિશ્ચલ  
સંયમાઞ્ચ્યાં, યો જાવ યત્ય હરદ્ઃ સ્વમિહોપયુક્તઃ । જ્ઞાન  
ક્રિયા નય પરસ્પર તીવ્ર મૈત્રી, પાત્રી કૃતઃ શ્રયતિ જૂમિ  
મિમાં સ એકઃ ”

અર્થ:—જે પુરુષ સ્યાદ્વાદમાં કુશલ અર્થાત્ જીવાદિ તત્ત્વના શુદ્ધ  
જ્ઞાનપૂર્વક સમિતિ ગુપ્તિરૂપ સંયમ આદરતો શુદ્ધાત્મ સ્વરૂપને નિરંતર  
જાવે છે તે જ્ઞાની પુરુષ જ્ઞાનનય અને ક્રિયાનયની તીવ્રમૈત્રીનું પાત્ર  
થતો શુદ્ધાત્મજૂમિ—નિરવાણ પદને પ્રાપ્ત થાય છે. ॥ ૬ ॥

વારવાર જિનરાજ તુજપદ સેવા હો હોજો નિરમલી ॥ તુજ  
શાસન અનુજાઈ, વાસન જાસન હો તત્ત્વ રમેણ વલી ॥૭॥

અર્થ:—માટે સ્યાદ્વાદ વાણીના ઉપદેશ હે પરમેશ્વર! આ જીવણ  
જવસમુદ્ધમાંથી તારવાને સમર્થ એવી આપના ચરણ ચુમની સેવાનો,  
નિરંતર મને લાજ મલજો, વલી હે પરમેશ્વર! આપની જ્ઞાને ન્યાય,

३३७: विंशति विहरमान जिन स्तवनानि, बालावबोध सहित.

अने दया युक्त, पवित्र, शासननी रुची, ज्ञान तथा शुद्धात्म तत्त्वमां  
रमण ए सर्वे सदाकाल माहुरा आत्म परिणाममां वास करजो ॥ ७ ॥

शुद्धात्म निज धर्म, रुचि अनुभवथी हो साधन सत्यता ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, जक्ति पसाये हो दोशे व्यक्तता ॥ ८ ॥

अर्थ:-शुद्धात्म धर्म ( सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारि-  
त्रादि ) नी रुची तथा अनुभव जे वडेथाय ते सर्वे साधनो सत्य ठे,  
तथा हितकारी ठे. शुद्धात्म धर्मना अनुभवना हेतुरूपे आदरेला सर्वे  
बाह्य योगरूप साधनो सत्य तथा हितकारी ठे. श्री देवचंद्र मुनि  
कहे ठे के हे जिनचंद्र ! आपनी जक्ति पसाये अर्थात् आपनी आज्ञानुं  
सेवन करवाथी ( आणाकारी जत्तो, आणा ठेइओ सो अजत्तोत्ती )  
मारी सर्वे शुद्धात्म संपदो प्रगट थशे. ॥ ८ ॥ ( संपूर्ण. )

॥ अथ श्री षोडशम नमिप्रज्ञ जिन स्तवनम् ॥

अरज अरज सुणोने रूमा राजीया हों जी ॥ ए देशी ॥

नमिप्रज्ञ नमिप्रज्ञ प्रजुजी विनवुं हो जी, पामी पामी वर  
प्रस्ताव ॥ जाणोठो जाणोठो विण विनवे हो जी, तोपण  
दास स्वप्नाव ॥ नमिप्रज्ञ ० ॥ १ ॥

अर्थ:-हे नमिप्रज्ञ ! आपने आ जगत्त्रयमां प्रजु अर्थात् मालीक  
जाणी अति दुःप्राप्य आ मनुष्य जवरूप उत्तम अवसर पामी आप  
प्रति विनंति करुं ठुं. हे देवाधिदेव ! आप अनंत ज्ञानयुक्त होवाथी  
अमारा विनव्या वगर पण अमारी त्रणे कालनी सर्वे हकीकत प्रत्यक्ष  
पणे जाणो ठो तोपण सेवकनो स्वप्नाव ठे के स्वामी आगल पोतानुं  
दुःख दूर थवा माटे विनंति करे ॥ १ ॥

हुं करता हुं करता परजावनो हो जी, जोक्ता पुद्गल रूपे ॥  
ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी, राच्यो जम जवजूप  
॥ नमिप्रज्ञ० ॥ १ ॥

अर्थः—हे परमेश्वर ! अनादि विज्ञाव योगे हुं माहरा शुद्धात्म स्वरूपी विमुख रही, स्वाज्ञाविक कर्तृता, स्वाज्ञाविक जोक्ता, स्वाज्ञाविक ग्राहकता, स्वाज्ञाविक व्यापकता विगेरेथी चूकी 'माहराथी विपरीत, विखट्ठाण, रूप रस गंध स्पर्शादि गुणमय अचेतन जे पुद्गल द्रव्य तेने ग्रहण करवानो कामी, तेने नवा नवा अनेक रूपे बनाववानो अजिमाणी, तेने जोगववानो ईच्छक विगेरे थड तेमांज निरंतर व्यापी रह्यो, एम माहरा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वज्ञावथी, विमुखपणे वर्त्ती जम संगते जडवत् वनी जवसमुद्रमां भ्रमण करवाने निरंतर उद्युक्त थड रह्यो ॥ १ ॥

आतम आतम धर्म विसारियो हो जी, सेव्यो मिथ्यामाग  
॥ आस्रव आस्रव बंधपणुं कर्युं हो जी, संवर निर्जरा त्याग  
॥ नमिप्रज्ञ० ॥ २ ॥

अर्थः—राग द्वेषादि विज्ञाव रहित स्वपर स्वरूपने यथार्थ प्रत्यक्षपणे जाणवा रूप शुरू केवलज्ञान, निराकारोपयोग मयी केवलदर्शन, स्वरूपरमण—स्वरूपस्थिरता मय सम्यक्चारित्र, ए आदि ज्ञानानुयायी पणे वर्त्तता शुद्धात्म स्वज्ञावो के जे आ संसार समुद्रमांथी मुक्त करी अव्यावाध स्वतंत्र अखूट परमानंद समूहनो निधान ठे, ते शुद्धात्मधर्मने में न जाणवा, न चिंतव्या, न आदर्या पण ते शुद्धात्मधर्मने मलीन करनार—दूषवनार, मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कपाय रूप मिथ्यामार्ग ( विपरित आचरण ) के जे घोर अनत दुःखनुं निदान ठे तेनुं में रुचि सहित सेवन करुं ए मिथ्यामार्गने सेवतां आस्रव तथा बंधनो कर्ता थयो. मोक्षमार्ग रूप संवर निर्जराने आदरीशक्यो नहि.

૩૪૦ : વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવવોધ સહિત.

આસ્રવ—“વિરાસ્રવ સંવિત્તિઃ વિલક્ષણ શુચ્ચાશુચ્ચ પરિણામેન શુચ્ચાશુચ્ચ કર્માગમન માસ્રવઃ”—શુદ્ધાત્મ અનુચ્ચુતિથી વિપરિત જે શુચ્ચાશુચ્ચ પરિણામ વડે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મનું આગમન ( આવવું ) તે આસ્રવ છે. મિથ્યાત્વ અવિરતિ કષાયોદિ જે આત્માના અશુદ્ધ પરિણામ તે જ્ઞાવાસ્રવ છે અને તે જ્ઞાવાસ્રવના નિમિત્ત વરુ જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ દલનું આવવું તે ડ્રવ્યાસ્રવ છે.

બંધ—“બંધાતીત શુદ્ધાત્મોપલમ્બ જ્ઞાવના ચ્યુત જીવસ્ય કર્મ પ્રદેશૈઃ સહસંશ્લેષો બન્ધઃ—મિથ્યાદર્શનાડવિરતિ પ્રમાદ કષાય યોગા બન્ધ હેતવઃ” મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગ વડે પૂર્વ કર્મ સાથે નવા કર્મનો સંબંધ ( ડ્રઢ મલવું ) તે બંધ છે. તે બંધ ત્વાર પ્રકારે છે—પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુજાગ અને પ્રદેશબંધ. તમાં યોગ વડે પ્રકૃતિબંધ તથા પ્રદેશબંધ થાય છે અને કષાય વરુ સ્થિતિ બંધ તથા અનુજાગબંધ થાય છે.

વિશેષ વિવેચન—“પરિણીઅત્તણ નિન્દવ, ઉવધાય પર્ણસ અંતરાણાં ॥ અન્નાસાયણયાણ, આવરણ હુગં જિર્ણ જયઈ”—

સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન તથા સમ્યક્જ્ઞાની તથા સમ્યક્દર્શનીના પ્રતિકુલ આચરણથી, તથા સમ્યક્જ્ઞાન તથા સમ્યક્દર્શનને ઓલવવાથી, ગુરુને ટુપાવવાથી તથા તેડનો ઉપઘાત કરવાથી, તથા સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન તથા તેના સ્વામી તથા તેના કારણો ઉપર દ્વેષ, માત્સર્ય, ઈર્ષા કરવાથી, તથા જ્ઞાન દર્શનમાં અંતરાય કરવાથી, જ્ઞાન દર્શન તથા તેના સ્વામીની આશાતના કરવાથી જ્ઞાનાવરણ તથા દર્શનાવરણ કર્મનો બંધ થાય છે.

ઉન્માર્ગની દેશનાથી તથા સન્માર્ગનો ઘાત કરવાથી ણ વિગેરે કારણોથી-મિથ્યાત્વમોહનીર્યનો બંધ થાય છે. ક્રોધાદિક કષાય તથા હાસ્યાદિ નોકષાયેના સેવનથી ચારિત્રમોહનો બંધ થાય છે.

મહા આરંજ પરિપ્રહમાં તદ્દીનતા, રૌદ્રધ્યાન તથા ઉગ્રકષાય વ્ર્કે નર-  
કાયુનો વંધ થાય છે. ગૂઢ હૃદય, મૂર્ખતા, ધૂર્તતા તથા મિથ્યાત્વાદિ  
શબ્દ વડે તિર્યંચ આયુનો વંધ થાય છે. અદ્વ કષાયતા, દાનરુચિ  
તથા મધ્યમ ગુણ વ્ર્કે મનુષ્ય આયુનો વંધ થાય છે. સમ્યક્ દૃષ્ટ્યાદિ  
અવિરતિ ગુણ વ્ર્કે દેવાયુનો વંધ થાય છે.

બાહ્યતપ, અકામનિર્જરા, સરલતા, અનાગારીપણું, વિગેરે ગુણ વડે  
શુજનામકર્મનો વંધ થાય છે. ઇથી વિપરીત આચરણ વ્ર્કે અશુજ  
નામકર્મનો વંધ થાય છે.

ગુણદ્રષ્ટી, મદ રહિતતા, તત્ત્વ જ્ઞાવા જ્ઞાવવા ઉપર રુચિ, જિન  
જક્તિમાં મગ્નતા વિગેરે ગુણ વ્ર્કે ઁચગોત્રનો વંધ થાય છે. ઇથી વિપ-  
રીત આચરણ વડે નીચગોત્રનો વંધ થાય છે.

ગુર્વાદિકની જક્તિ, દ્વમા, કરુણા, વ્રત, સંયમ, યોગ, કષાય વિજય,  
દાન, શીલાદિક ધર્મમાં દ્રઢતા વિગેરે ગુણોથી શાતાવેદનીયનો વંધ  
થાય છે. તેથી વિપરીત આચરણ વ્ર્કે અશાતાવેદનીયનો વંધ થાય છે—  
શંકા—સમકીત, તપ, સયમ, દ્વમા વિગેરેથી આસ્રવ વંધ કેમ સંજવે?

ઉત્તર—“રત્નત્રય મિદ્દ હેતુ—નિર્વાણસ્યૈવ જવતિ નાન્યસ્ય ॥  
આસ્રવતિ યત્તુ પુણ્યં, શુજોપયોગોડય મપરાધઃ ॥” રત્નત્રય  
માત્ર નિર્વાણ હેતુ છે પણ શુજાશુજ કર્મના હેતુ નથી, દેવાદિક ગતિના  
હેતુ નથી. પણ જ્યાંસુધી સંપૂર્ણ વીતરાગતા પ્રાપ્ત થઈ નથી, રત્નત્રયની  
અપૂર્ણતા છે ત્યાંસુધી સરાગતા વર્તે છે; તે સરાગતા—શુજોપયોગવડે  
કર્માસ્રવ થાય છે. જેમ ધૃતમાં વાલવાનો સ્વજ્ઞાવ નથી પરંતુ ઘી સાથે  
રહેલી અગ્નિથી વલતાં ઘીથી વલ્લ્યો એમ બોલાય છે. તેમ રત્નત્રયથી  
તો કર્મવંધ થતો નથી તથાપિ તે રત્નત્રય સાથે વર્તતા શુજોપયોગ  
(સરાગતા) વ્ર્કે વંધ થાય છે. માટે ચોથા ગુણસ્થાનથી માંત્રી સંપૂર્ણ

३४१ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वालावबोध सहित.

वीतराग गुणस्थान सुधी जे जे अंशे रत्नत्रय होय ठे ते ते अंशे बंध नथी जेटला अंशे राग वर्त्ते ठे तेदला अंशे बंध थाय ठे.

एम शुद्धोपयोगथी चूकी अशुद्धोपयोगमां वर्त्ततां मोक्षमार्गरूप संवर तथा निर्जरा तत्वनो अनादर कयों.

संवर—“ कर्मास्त्रव निरोध समर्थ स्व संवित्ति परिणत जीवस्य शुभाशुभकर्मागमन संवरणं संवरः ” शुभाशुभ कर्मास्त्रवनो निरोध ते संवर ठे. ते संवरना हेतु समिति, गुप्ति, परिसहजय, जतिधर्म, जावना तथा चारित्र ठे.

निर्जरा—“ शुद्धोपयोग जावना सामर्थ्येन नीरसीनूत कर्म पुद्गलानामेक देश गलनं निर्जरा ॥ ” शुद्धोपयोग जावनाना सामर्थ्य वने नीरसीनूत कर्म पुद्गलानुं एकोदेश गलवुं ते निर्जरा. तेनो हेतु तप ठे. “ तपसा निर्जरा च ” तथा सर्वे परद्रव्यनी इच्छानो निरोध ते तप ठे “ इच्छा निरोध स्तपः ” ते इच्छा निरोधरूप जावयुक्त तप वे प्रकारे ठे. “ अणसण मूणोअरिया, वित्ती संखेवणं रसच्चाउं । काय किलेसो संलीणया य वड्झो तवो होई ॥ पायच्छित्तं विणउं, वेयावच्चं तदेव सइज्झाउं । ज्ञाणं उस्सग्गोविय, अज्झितरउं तवो होई ॥ ” एम ठ प्रकारे बाह्य तथा ठ प्रकारे अन्तर तप ठे ॥ ३ ॥

जरु चल जरु चल कर्म जे देहने हो जी, जाण्युं आत्म तत्त्व ॥ बहिरातमता बहिरातमता में ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्त्व ॥ नमिप्रज्ञ ० ॥ ४ ॥

अर्थः—जड अर्थात् अचेतन तथा चल अर्थात् क्षणजंगूर पाणीना परपोटावत् अस्थिर जे शरीर तेने में आत्म तत्त्व जाण्युं एटखे

शरीरमाज अहंबुद्धि करी शरीर तेज हुं हुं एम जाणुं-शरीर वचन  
अने मननी क्रियाने में आत्मक्रिया जाणी योगक्रियानुं ममत्व  
कर्युं, एम में बहिरात्मजावनुं ग्रहण कर्युं, आत्माथी अन्य जे अ-  
चेतन, जरु, क्षणजंगूर शरीर तेमां अहंबुद्धि तथा धन, स्वजन,  
परिजनादिकमां ममत्व बुद्धि करी आत्म स्वरूपथी अजाण रह्यो,  
माहरा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वजावने न जाण्या, पुद्गलना द्रव्य  
क्षेत्र, काल, जावमां अहं ममत्व मान्युं, जे जाव माहरा अस्तिधर्ममां  
नथी तेने में माहरा मान्या, आत्मप्रदेशथी बाहिरला परक्षेत्री  
जावने माहरा मान्या, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्यथो  
रहित रह्यो ॥ ४ ॥

केवल केवलज्ञान महोदधि हो जी, केवलदंसण बुद्ध ।  
वीरज वीरज अनंत स्वजावनो हो जी, चारित्त दायक  
शुद्ध ॥ नमि० ॥ ५ ॥

अर्थ:-पण हे नमिप्रज्ञ जगद्गुरु ! आप तो बहिरात्मजावनो  
अत्यंत अज्ञाव करी सर्वे द्रव्यने तेना त्रिकालवर्ती पर्यायो सहित  
एक समये प्रत्यक्षपणे जाणवा समर्थ एवु जे केवलज्ञान तेना  
महोदधि अर्थात् महान् समुद्रनो पेठे अखूट निधान थया ठो, तेमज  
सामान्य सत्ता अवलोकन रूप केवलदर्शनना तथा कोइ पण काले  
जरा पण हीण क्षीण न थाय एवुं सहज आत्मीय अनंत वीर्य प्रगट  
कर्युं-प्राप्त कर्युं तथा क्रोधादिक सर्वे कषायोनो अत्यंत अज्ञाव करी  
दायक चारित्र प्राप्त कर्युं-प्रगट कर्युं, अनंत आत्मीय परमानंदना  
नोक्ता थया ॥ ५ ॥

विश्रामी विश्रामी निज जावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ।  
परमात्म परमात्म प्रभु देखतां हो जी, जागी प्रांति  
अप्रनादि-॥ नमि० ॥ ६ ॥



३४४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बाखावबोध सहित.

अर्थ:-तथा हे दयानिधान ! आप सर्वे परद्रव्योना गुण पर्यायो-  
मांथी रमण तथा आराम विश्रामनो त्याग करी पोताना केवलज्ञानादि  
शुद्ध स्वज्ञावमां रमण करनारा स्थिरतापणे विराजमान थया ठो वली  
हे जगवंत ! आप स्याद्वाद धर्मयुक्त सदा ठो अर्थात् स्यात्अस्ति  
स्वज्ञाववंत ठो, स्यात्नास्तिस्वज्ञाववंत ठो, स्यात्एक स्वज्ञाववंत ठो,  
स्यात्अनेक स्वज्ञाववंत ठो, स्यात्वक्तव्य स्वज्ञाववंत ठो, स्याद्  
अवक्तव्य स्वज्ञाववंत ठो, स्यादनित्य स्वज्ञाववंत ठो, स्यात्अनित्य  
स्वज्ञाववंत ठो, स्यात्जव्य स्वज्ञाववंत ठो, स्यात्अजव्य स्वज्ञाववंत  
ठो, विगेरे अनंत स्याद्वाद धर्मयुक्त आप सदाकाल विद्यमान ठो,  
तथा हे जगवंत ! आप निरंतर अप्रमादज्ञावमां वत्तो ठो, कृणमात्र पण  
पोताना शुद्धात्मधर्मथी च्युत थता नथी, कारणके प्रमादना हेतु जे निद्रा  
विकथा विषय कषाय मद स्नेह विगेरे ठे तेनो आपे सर्वथा नाश करेलो  
ठे तेथी हे परमेश्वर ! आप परमात्म पदने संपूर्णपणे प्राप्त थया ठो.  
एवा आप परमात्मानुं साची रीते दर्शन थतां माहरी अनादिकालनी  
अनात्मांमां आत्मपणानी त्रांतिनो नाश थयो ॥ ६ ॥

जिन सम जिन सम सत्ता ओलखी हो जी, तसु प्राग्ज्ञावनी  
ईह ॥ अंतर अंतर आत्मता लही हो जी, पर परिण-  
ति निरीह ॥ नमि० ॥ ७ ॥

अर्थ:-एम हे परमात्म प्रज्जु ! केवलज्ञान केवलदर्शनादि अनंत  
शुद्धधर्मयुक्त आप स्वजातिनुं यथार्थ रीते दर्शन थतां में माहरी सत्ताने  
आप समान जाणी, सहही, आपना केवलज्ञानादि शुद्धात्म धर्म मने  
रुच्या, ते प्रगट करवानी ईछा थई, परपरिणतिथी विरागज्ञाव उपज्यो,  
अंतर आत्मतानी प्राप्ति थई. ॥ ७ ॥

प्रतिबंदे प्रतिबंदे जिनराजने हो जी, करतां साधक ज्ञाव

देवचंद्र देवचंद्र पद अनुजवे हो जी, शुद्धतम प्रागुजाव  
॥ नमिप्रज्ञ ० ॥ ८ ॥

अर्थ:-स्तुति कर्ता श्रीदेवचंद्र मुनि कहे ठे-हे जगवंत ! आप जेम  
मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योगनो त्याग करी परमात्म श्रव-  
स्थाने प्राप्त थया तेमज हुं जो आप प्रमाणे साधक जाव आदरुं तो  
हुं पण निःसंदेह देवमां चंद्रमा समान परमात्म पदनो आस्वाद  
लेनार जोगवनार थाऊं, शुद्धात्म धर्मनी संपूर्ण प्रगटता थाय. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तदशम श्री वीरसेन जिन स्तवनम् ॥

॥ लाठलवे मात मढहार ॥ ए देशी ॥

वीरसेन जगदीश, ताहरी परम जगीश, आजहो दीसेरे  
वीरजता त्रिजुवनथी घणीजी ॥ १ ॥

अर्थ:-अतुल्य आत्मीय वीरपणुं ( पराक्रम ) स्फुरायमान करी,  
अत्यंत दुर्जय दुष्ट परिणामी मोह शत्रुनो लीला मात्रमा नाश करी  
पोताना नामने सार्धपणे आ जगत् त्रयमां प्रसिद्ध कर्तुं ठे, एहवा हे  
त्रिलोकपूज्य देवाधिदेव श्री वीरसेन प्रभु ! तमे ज्ञानावरणादि, दुष्ट  
कर्मनो अत्यंत अज्ञाव करी ज्ञानादि अनंत सर्वोत्कृष्ट संपदा पोताने  
स्वाधीन करी ठे, तेना जोग-आस्वादमां निरंतर मग्नपणे, परमाज्ञंद  
जोगवो ठो, एवी आपनी ज्ञानादि लक्ष्मी आपथी अज्ञेदपणे होवाथी  
कोइ पण तेने नाश करी शके तेम नथी तथा मोहुराजाने वश पडेला  
जगत्वासी जीवोमां एहवी ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीनुं स्वामित्वमेधी

તેથી આપની જગીશ અર્થાત્ સંપદા પરમ ( સર્વોત્કૃષ્ટ ) પદને વાસ્તવિક રીતે યોગ્ય છે.

વલી જગત્વાસી જીવોનું વીર્ય ક્ષાયોપશમિક જાવે હોવાથી અટપ છે—અપૂર્ણ છે. અને વીર્યની અટપતા તથા ચલપણને લીધે કર્મવંધ કરી પરાધિન થાય છે, પણ હે જગવંત ! આપે વીર્યાંતરાયનો સમૂહ ક્ષય કરી, અઘૂટ, અનંત, અચલ વીર્ય સંપૂર્ણ પણે પોતાને સ્વાધીન—પ્રગટ કરી લીધું છે; તેથી આ સર્વે જગત્વાસી જીવોમાં ઉત્કૃષ્ટ વીર્યવંત આપજ ઠો, એહવા આપના દ્રઢ સ્થિર અને સતેજ વીર્ય સામે મોહ-રાજા દ્રષ્ટિ કરવાને પણ સમર્થ થઈ શકતો નથી તો નજીક આવવાની શી વાત ? માટે આપનીજ વીરજતા સર્વોપરી પદ ધરાવે છે ॥૧

અણહારી અશરીર, અક્ષય અજય અતિ ધીર ॥ આજ  
હો અવિનાશી અલેશી ધ્રુવ પ્રજ્જુતા વણીજી ॥ ૨ ॥

અર્થ:—શરીર તે અનંત પુદ્ગલોના સમૂહ રૂપ અચેતન પદાર્થ છે, અને જીવ દ્રવ્ય પોતે એક તથા સચેતન પદાર્થ છે. તેથી જીવ દ્રવ્યથી શરીર તદન વિલક્ષણ, વસ્તુતઃ જિન્ન પદાર્થ છે. તથાપિ અનાદિ અવિદ્યા વળે, જ્ઞેદ વિજ્ઞાનના અજાવે સંસારી આત્મા અનેક પ્રકારનાં કર્મ બાંધી, તે કર્મના ઉદય વળે પ્રાપ્ત થઈ શરીરનેજ આત્મપણે જાણે છે સદ્દે છે, તેથી મનુષ્યના શરીરમાં રહેલા જીવને મનુષ્ય તથા દેવના શરીરમાં રહેલા જીવને દેવ વિગેરે મનાય છે, અને તેથી સંસારી આત્મા સશરીરી બને છે. પણ હે જગવંત ! આપ તો તે અવિદ્યાનો નાશ કરી સંપૂર્ણ જ્ઞેદ વિજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી, સ્વપર દ્રવ્યને તદન જિન્ન જિન્ન જાણી શરીરમાંથી અહંમમત્વ ઊઠાવી શરીરથી સર્વથા અતીત થયા ઠો માટે હે પ્રજ્જુ ! આપ અશરીરી ઠો.

શરીર અનંત પુદ્ગલોના સંયોગથી બનેલું હોવાથી સચલ તથા અસ્થિર છે, તેથી તેમાંથી કેટલાક પુદ્ગલો સ્થલાંતરે જતાં बीजा

पुद्गलो आहारवानी ( खेवानी ) जरूर पके ठे माटे शरीरधारीने आहारनी जरूर पडे; परंतु हे जगवंत ! आप तो अशरीरी ठे माटे आपने आहारनी जरूर नहीं. आपनुं अंग एकता धारी ठे तेथी तेमांथी कोइ पण काले रंचमात्र पण घसावानो, क्षीण थवानो संजव नहीं माटे निःसंदेह आप अणहारारी ठे.

अनेक पुद्गलोना मलवाथो जे वस्तु वनेली होय, तेज घसाई, जागी शके, पण एक पुद्गल परमाणु आदि जे जे पदार्थमां एकत्व ठे, असंयोगी ठे, ते ते पदार्थ घसाई, जागी अथवा बिणशी शके नहि. माटे हे जगवंत ! आप असंयोगी तथा एकत्व सहित होवाथी आपना आत्म अंगमां कोइ पण काले रंचमात्र पण क्षय थवानो संजव नहीं, आप अक्षय पदमां नित्य विराजमान ठे.

सर्वे ड्रव्यो पोतानी सत्ताजूमिमां पोताना गुण पर्यायोना स्वामी पणे वर्तवाने सदा काल सत्ताधारी ठे. कोइ पण अन्य ड्रव्य तेमां प्रवेश करवानेज समर्थ नहीं तो आपने जातवानी शुं वात ? माटे हे जगवंत ! आप सदा अपराजित ( अजय ) ठे.

वली आपनुं वीर्य क्षायिकजावे होवाथी आप अत्यंत वीर वीर ठे, जेम सूर्यना प्रताप सामे अंधकार अत्यंत अज्ञाव पामे ठे, तेम आप श्रीना क्षायिकवीर्य जन्य धीर वीरताना प्रतापथी आपना कर्म शत्रुं अत्यंत अज्ञावने प्राप्त थई गया ठे.

जो के सर्वे ड्रव्यो वस्तुतः अविनश्वर ठे. तथापि अनेक पुद्गलोथी वनेला शरीरमां ज्यांसुधी अह ममत्व बुद्धि होय ठे त्या सुधी ते शरीरनो नाश थतां आत्मा पोतानो नाश मानी नाशपणाना दुःखने अनुजवे ठे. पण आपे पोताना आत्म अंगमां आत्मपणुं जाणुं स्वीकारुं, पोताना एकत्व पिंकना अनुजवी थया. तेथी विनाशपणानो प्रसंग नाश थयो माटे आप निरंतर अविनश्वर पदमां परमानंद जोगवो ठे.

લેહ્યાના હેતુ કષાય, યોગ છે પણ આપ તો કષાય તેમજ યોગથી સર્વથા મુક્ત થયા ઠો માટે અલેશી ઠો.

વહી હે જગવંત ! આપની પ્રજ્ઞતા પણ હવે ધ્રુવ ( નિશ્ચલ ) થઈ છે, સંસારી જીવો અજ્ઞાન વશે પોતાની સત્તાજૂમિની મર્યાદા ઝલંઘી પરદેત્રે પરગુણ પર્યાયોની પ્રજ્ઞતા ચાહે છે, એહવા અન્યાયી પુરુષોની કૃત્રિમ પ્રજ્ઞતા નાશ પામે. પરંતુ આપ ન્યાય શિરોમણી હોવાથી પરગુણ પર્યાય વિષે પોતાની પ્રજ્ઞતા સ્થાપન કરતા નથી. નિરંતર પોતાના ગુણ પર્યાયમાં સંતુષ્ટ છો. એમ આપની પ્રજ્ઞતા એક દેત્રી, અપ્રથગ્જૂત, તથા-સમવાય સંબંધે હોવાથી તેનો કોઈ પણ કારણે વિયોગ થવા સંજવ નથી, માટે આપની પ્રજ્ઞતા સ્થિર ધ્રુવ નિશ્ચલ છે. આપની પ્રજ્ઞતાને કોઈ પણ સ્થિતિના કરવા સમર્થ થઈ શકે તેમ નથી. જે અન્યાયી પુરુષ પોતાનું ઘર ઠોરી પારકે ઘેર ચોરી કરવા જાય તેનું ધન વીજા ચોરો વડે પહેલાં લૂંટાઈ જાય, પણ જે ન્યાયી પુરુષ વીજાના પદાર્થની આકાંક્ષા નહિ રાખતાં પોતાની વિજ્ઞાતિમાં સંતોષ પાળે નિરંતર સચેત રહે તેની વિજ્ઞાતિ વીજો કોણ લૂંટી શકે ? ॥ ૨ ॥

અર્તીંદ્રિય ગત કોહ, વિગત માય મય લોહ ॥ આજ હો સોહેરે મોહે જગ જનતા જાણીજી ॥ ૩ ॥

અર્થ:—હે જગવંત ! આપ અર્તીંદ્રિય ઠો. પાંચ ઈંદ્રિયોના સ્પર્શ, રસ, ગંધ, રૂપ, અને શબ્દ એ પાંચ વિષયો છે, માટે ઈંદ્રિયોનો વિષય ફક્ત પુદ્ગલ છે, પરંતુ આપ અરૂપી દ્રવ્ય હોવાથી ઈંદ્રિય વિષયથી તદન જિદ્ધ ઠો તેથી આપ ઈંદ્રિયો વડે અગોચર ( અર્તીંદ્રિય ) ઠો.

શરીરાદિ પરદ્રવ્યમાં જેને અહં મમત્વ બુદ્ધિ હોય તેને ક્રોધ ઉપ-જ્ઞવાનો સંજવ છે કારણ કે તે શરીરાદિ અનિત્ય અને પરદેત્રી પદાર્થો હોવાથી કોઈ તેને વગાડે વિણશાવે અથવા વિયોગ કરે તે ઉપર તેને ક્રોધ ઉપજે છે. પણ હે જગવંત ! આપ તો તે શરીરાદિ પરદ્રવ્યનું

સર્વથા મમત્વ તજી પોતાના નિત્ય, અજ્ઞેય, સમવાય સંવંધી જ્ઞાનાદિ ગુણોમાં પોતાનું સ્વામિત્વ અનુજવો ઢો. તેને કોઈ પણ અન્ય દ્રવ્ય રંચમાત્ર પણ હરકત કરવા સમર્થ નથી. તો આપના પરિણામમાં ક્રોધને અવકાશ ક્યાંથી ? હુમા સરોવરમાં નિરંતર ક્રીના કરતા આપ જગવંતની પાસે ક્રોધાગ્નિ કેમ આવી શકે ?

બલી સર્પ જેવી અવિશ્વાસ્ય, જગત્માં ફસાવવાને અત્યંત ઘલવત્તર જાલ સમાન જે માયા પરિણતિ, તેને આપે તીવ્ર ધારવાલી આર્યવ રૂપી તરવાર વડે ઊઘાડી જિજ્ઞાસુ કરી નાંખી છે.

બલી જાતિ, લાજ, કુલ, વિદ્યા, અધિકાર વિગેરે આઠ પ્રકારના મદરૂપ અતિશય દ્રઢ પર્વતને આપશ્રીએ માર્દવરૂપ વજ્રદંડવડે ચૂરેચૂર કરી નાંખ્યો છે.

તથા પરદ્રવ્યાદિને ગ્રહણ સંગ્રહ કરવારૂપ મૂર્ઠાજલે જરેલા અતિશય વિસ્તીર્ણ લોચ સમુદ્રને આપ નિસ્પૃહરૂપ વહાણમાં આરૂઢ થઈ સહજ લીલા માત્રમાં તરી સંતોષે જૂમિમાં વિરાજમાન થયા ઢો.

એમ આત્મગુણનો ઘાત કરનાર તથા જવતરૂના મૂલરૂપ ક્રોધાદિક કષાયોને આપ જગવંતે સમૂલ હાય કરી હુમા, માર્દવ, આર્યવ, નિસ્પૃહતા, વિગેરે અનુપમ ગુણાલંકાર વડે આપ સર્વોત્તમ શોભાયમાન ઢો, એવી આપની નિઃકષાય પરમ શાંત મુદ્રા અવલોકતાં જગત્વાસી જીવો અત્યંત વિસ્મય થાય છે ॥ ૩ ॥

અમર અર્ચન અરૂપ, પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ । આજ હો ચિહ્નપે દીપે થિર સમતા ધણીજી ॥ ૪ ॥

અર્થ:-ઈન્દ્રિય, વલ, આયુ અને શ્વાસોશ્વાસ એ ચાર જીવના વ્યવહાર પ્રાણ છે અને તે પ્રાણના વિયોગે મરણ કહેવાય છે. પણ હે જગવંત ! આપે તે વ્યવહાર પ્રાણને પૌદ્ગલીક પર દ્રવ્યથી નિષ્પન્ન સાક્ષાત્પણે જાણી તે પ્રાણ ઉપરથી મમત્વ ઊઠાવી પોતાના શુદ્ધ

३५० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

चेतना प्राणवदे पोतानुं जीवन स्विकार्युं ठे, ते चेतना प्राणनो आपथी कोइ पण काले वियोग आय तेम नथी, माटे आप सदा अमर ठे.

जे संयोगी पदार्थ होय तेमां संधि होय, अने जेमां संधि होय ते जांगी तूटी शके. पण हे जगवंत ! आप असंयोगी शुरू एक तत्व ठे, आपना अंगमां संधि नथी, तेथी आप सदा अखंड ठे.

परम स्वज्ञावने अनुयायीपणे द्रव्यना सर्वे गुणो होय ठे. जीव द्रव्यनो परम गुण चेतनत्व ठे माटे जीवना सर्वे गुणो चेतनानुगत होय, ए शिवायना गुणो जीव द्रव्यमां होइ शके नहि; माटे रूप, रस, गंधादि गुणो चेतनानुगत नथी माटे रूपादिगुणोनो जीव द्रव्यमां अत्यंतज्ञाव ठे तेथी हे जगवंत ! आप सदा अरूपी ठे.

जगत्वासी जीवो इष्ट पुद्गलोनी प्राप्ति, प्रचुता, तथा जोगवदे आनंद माने ठे, पण ते परद्रव्यना तावे होवाथी जगत्जीवोनो आनंद पराधीन, अवास्तविक, तथा कृण जंगुर ठे. पण हे जगवंत ! आप तो मात्र पोताना गुण पर्यायोनीज प्रचुता, तथा जोगवडे आनंद मानो ठे तेथी आपनो आनंद निरूपचरित पूर्ण तथा नित्य ठे, एम हे प्रभु ! आप पूर्णानंद स्वरूप ठे.

तथा हे जगवंत ! आपनां आत्मीय ज्ञान प्रकाश किरणो के जे सर्वे द्रव्यना त्रैकालिक परिणामथो अधिक ठे, ते अनंत ज्ञान प्रकाश वदे आप निरंतर सर्वोपरी देदिप्यमान ठे. आपना ज्ञान प्रकाशनुं आ जगत्त्रयमां कोइ उपमान नथी.

वली हे जगवंत ! आप सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाथी पूर्ण समतावंत ठे. इष्टानिष्ट विकल्पथो सर्वथा मुक्त ठे. ते समता द्वायिक ज्ञाव जन्य होवाथी हवे कोइपण काले आपना परिणाममां विसमतानो संजव नथी तेथी आप पूर्ण निश्चल समताना स्वामी ठे. ॥४॥

वेद रहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय । आज हो ध्यायके नायकने ध्येय पदे ग्रह्योजी ॥ ५ ॥

અર્થ—નપુંસક વેદ, સ્ત્રીવેદ, અને પુરુષવેદ એ ત્રણે વેદનો નવમે ગુણસ્થાને તથા સર્વે કપાયનો દશમા ગુણસ્થાનના અંતસુધીમાં સમૂલ ક્ષય કરી દીધો છે, તેથી હે જગવંત ! આપ વેદ તથા કપાય રહિત ઠો, તથા “સ્વય પરિણામે સિદ્ધ” એ સૂત્ર પ્રમાણે આપમાં ક્ષાયિક અને પારિણામિક એ બે જાવજ વર્તે છે, સકલ કર્મનો ક્ષય કરી ક્ષાયિકજાવે પોતાનું શુદ્ધાત્મ સ્વરૂપ સંપૂર્ણ સિદ્ધ પ્રગટ કર્યું છે. અનંતજ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્રના સ્વામી થયા ઠો. અને પારિણામિક જાવવને અનંતકાલસુધી આપના જ્ઞાનાદિ ગુણો અસહાયપણે નિરંતર પરિણમશે. કોઈપણ કાલે કોઈપણ આપના જ્ઞાનાદિ પરિણામને સ્વલ્પના કરી શકશે નહિ માટે હે જગવંત ! આપ સાદિઅનંતકાલ સુધી શુદ્ધ સિદ્ધ તથા અસહાય ઠો.

ઉપર વર્ણવેલા ગુણો સહિત શુદ્ધ સિદ્ધ તથા અસહાય આપ જગવંતને અવલોકી આપ સમાન સિદ્ધપદનો કામી હું સેવક ધ્યાતા, આપ ત્રિલોકપૂજ્ય જગવંતને ધ્યેયપદે સ્થાપું હું, આપના પદનું ધ્યાન કરું હું ॥ ૫ ॥

દાન લાઙ્ગ નિજ ઝોગ, શુદ્ધ સ્વગુણ ઉપઝોગ । આજ હો અજોગી કર્તા ઝોક્તા પ્રજુ લહ્યોજી ॥ ૬ ॥

અર્થ—અંતરાય કર્મના ક્ષયવડે હે જગવંત ! આપમાં દાનાદિક લબ્ધિઠ ક્ષાયિક જાવે વર્તે છે.

વીર્યગુણની સહાયવને સર્વે ગુણો પરિણમે છે, તેમ જ્ઞાનગુણના ઉપયોગ વિના વીર્યગુણ સ્ફુરાયમાન થઈ શકે નહિ માટે વીર્યને જ્ઞાનગુણની સહાયતા છે. તથા શુદ્ધજ્ઞાન પરિણામને ચારિત્રનું સહાય છે. વલી ચારિત્ર પરાવરણ રૂપ ન પરિણમે તે ચારિત્રને જ્ઞાનગુણનો ઉપકાર છે. એમ એક ગુણને ધીજા ગુણોનો સહાય છે, તે સહાયરૂપ



૩૫૨ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

દાનના કર્તા હે જગવંત ! આપજ ઠો. વલી એવું દાન આપ નિરંતર આપ્યાં કરો ઠો માટે આપ અદ્વય દાતા ઠો. તથા તે દાનના પ્રજાવવમે સર્વે ગુણો પોતાની શુદ્ધ પરિણતિએ પરિણમે છે, તે રૂપ લાજ લેનાર પણ આપજ ઠો. એમ આપમાં દાતા પાત્ર અને દેયની અન્નેદતા છે. એમ જ્ઞાનાદિ પરિણામ હમેશાં શુદ્ધપણે વર્તે છે, તજ્જાન્ય આનંદના વેદનારા ઠો તેથી જ્ઞાનાદિ પર્યાયના આપ નિઃપ્રયાસ પણે હમેશાં જોક્તા ઠો.

જે એકવારજ જોગવવા યોગ્ય હોય તે જોગ, અને જે અનેકવાર જોગવવા યોગ્ય હોય તે ઉપજોગ કહેવાય છે માટે જ્ઞાનાદિ શુદ્ધગુણો સહજાવી હોવાથી હમેશાં આપમાં કાયમપણે રહેનારા છે, માટે આપમાં તે ગુણોનો ઉપજોગ છે.

વલી હે જગવંત ! મન, વચન, કાયા તથા કોઈ પણ પુદ્ગલયોગ વિના આપ પરકર્તૃત્વ તથા પરજોક્તૃત્વ નિવારી સ્વજાવના કર્તા જોક્તા વન્યા ઠો, એહવા આપ ત્રિલોકપૂજ્ય પ્રત્નુનું મને કોઈ મહત્ પુણ્યના પસાયે આજે દર્શન મલ્યું છે; ઈન્દ્રિય ગોચર વસ્તુનું દર્શન તો સહજે સર્વે પામી શકે પણ આપ તો અરૂપી નિષ્કર્મ ઠો. આપના દર્શનની પ્રાપ્તિ તો વિરલાનેજ થઈ શકે છે. ॥ ૬ ॥

દરિસણ જ્ઞાન ચરિત્ર, સકલ પ્રદેશ પવિત્ર ॥ આજ હો નિર્મલ નિઃસંગી અરિહા વંદિયેજી ॥ ૭ ॥

અર્થ:—આપનું દર્શન થતાં આપના સર્વે પ્રદેશ અત્યંત નિર્મલ જ્ઞાન દર્શન અને ચારિત્ર વડે પરિપૂર્ણ પવિત્ર જોઈ તથા આપનેજ જગત્ ત્રયમાં નિર્મલ, તથા નિઃપરિગ્રહી અવલોકી કર્મશત્રુનો અંત આણનાર આપ શ્રી વીરસેન પ્રત્નુને કર્મ દ્વય નિમિત્તે ત્રિકરણ યોગે વંડુ હું. ॥ ૭ ॥

देवचंड जिनचंड, पूर्णानंदनो वृंद ॥ आज हो जिनवर  
सेवाथी चिर आनंदियेजी ॥ ८ ॥

अर्थ:-स्तुति कर्ता श्रीदेवचंड मुनि कहे ठे सर्वे जिनोमां चंडमा  
समान वर प्रधान हे वीरसेन प्रभु । स्वाभाविक, नि.प्रयासिक, अनंत  
आनंदना समूहरूप आप जिनेश्वरनी आज्ञा सेवनरूप सेवाथी हुं  
पण आप समान अनंत परमानंदने प्राप्त यश; शिवकर्मलानो  
विलासी यश ॥ ८ ॥

॥ अथ श्री अष्टादशम श्रीमहाज्ञान जिन स्तवनम् ॥

तट यमुनानुरे अति रत्नीयामणुं रे ॥ ए देशी ॥

महाज्ञान जिनराज, राज राज विराजे हो आज तुमारमोजी ।  
दायिक वीर्य अनंत, धर्म अजंगे हो तुं साहिव वमोजी ॥  
हुं बलिहारीरे श्री जिनवर तणीजी ॥ १ ॥

अर्थ:-सर्वे जिनोमां शिरोमणी परमकल्याणना निधान हे श्री  
महाज्ञान प्रभु । आपनु राज्य सर्वोपरी समाधि तथा अनंत विभूति  
युक्त निर्विघ्नताए अलौकिक रीते शोचे ठे, आपनुं राज्य पराक्रम  
अक्षय, अजय तथा अपरिसीम ठे, आपे सर्वे कर्मशत्रुर्जनो सपरिवार  
नाश कयों ठे, निर्वश कर्या ठे तेथी हवे कोइपण आपना राज्यमां  
विघ्न करी शके तेम नथी तथा आपनी अनंत पर्यायरूप प्रजा, अत्यंत  
सरल पंडित तथा सदाचरणी ठे, आपना धर्मरूप कायदानो जरा पण  
जंग करे तेम नथी, आपना सर्वे धर्म कायदा संपूर्ण न्याय तथा दया  
युक्त होवाथी सदा सर्वत्र अजंग ठे, एम आप सर्वोत्तम राजापणे  
विराजो ठे, आपना राज्यनी बलिहारी ठे ॥ १ ॥

कर्ता ज्ञोक्ता जाव, कारक कारण हो तु स्वामी वतोजी ।

ज्ञानानंद प्रधान, सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशतोजी

॥ हुं ॥ १ ॥

૩૫૪ વિંશતિ-વિહરમાન જિન સ્તવનાંનિ વાલાવવોધ સહિત.

અર્થ:-વલી તે પર્યાયરૂપ પ્રજાના ઉત્પન્ન કર્તા પણ આપજ ઠો તથા તેના ઉપાદાન કારણરૂપ પણ આપજ ઠો, તેનાં અધિકરણાદિ અન્ય કારકો પણ આપમાંજ અજેદપણે શોજે છે તથા તે પ્રજાને સદાચરણ યુક્ત-ન્યાયાનુસાર ગમન કરનાર નિરખી તજ્જાન્ય રાજ્યાનંદના જો-ક્તા પણ આપજ ઠો.

તે સર્વે પ્રજામાં શિરોમણી, આદરણીય તથા અંત્યત વહ્વજ્ઞ એવા જ્ઞાનાનંદ સ્વદેશી શેઠને આપે પ્રધાન પદે સ્થાપ્યો છે, તે જ્ઞાન પ્રધાન સર્વે પ્રજાથી સંપૂર્ણ રીતે માહિતગાર છે, જેના હૃદયમાં સર્વે પ્રજાના જાવ નિરંતર પ્રકાશિત રહે છે વલી તે જ્ઞાનાનંદ પ્રધાન નિરંતર આપ સમીપ હાજર રહે છે, સમયમાત્ર પણ દૂર વર્તી નહિ થતાં સર્વે પ્રજાનું સદૈવ નિરિક્ષણ તથા સંરક્ષણ કરે છે તથા કોઈને પણ ત્રાસ નહિ આપતાં અત્યંત હર્ષપૂર્વક ન્યાયાનુસાર વર્તીવે છે, લેશમાત્ર પણ ન્યાયાતિક્રમ થવા દેતો નથી, એવો અદ્ભુત ચાતુર્ય તથા વિવેકવંત છે. ॥ ૨ ॥

સમ્યકદર્શન મિત્ત, ધિર નિર્ધારે રે અવિસંવાદતાજી ।  
અઘ્યાવાધિ સમાધિ, કોશ અનશ્વરે રે નિજ આનંદતાજી  
॥ હું૦ ॥ ૩ ॥ દેશ અસંખ્ય પ્રદેશ, નિજ નિજ રીતે રે  
ગુણ સંપત્તિ ઝર્યાજી । ચારિત્ર હુર્ગ અઞ્ગ, આતમ શક્તે  
હો પરજય સંચર્યાજી ॥ હું૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-અગ્નિગ્રહાદિક પાંચ મિથ્યાત્વને સમૂલ નાશ કરી જેણે પોતાનું અંગ નિર્મલ કરેલું છે તથા જે સમ, સંવેગ, નિર્વેદ, આસ્તિ-ક્યતા અને અનુકંપાદિ લક્ષણે યુક્ત, તથા કુશલતા, તીર્થસેવા, ગુરુ-જ્ઞાતિ, ડ્રંઢતા તથા શાસનની અનુમોદના વિગેરે નૂષણોથી નૂષિત, શંકા, કાંઢાદિ સર્વે વિસંવાદ ટાલી અવિસંવાદતાને સ્થિર ડ્રઢપણે પોતાના હૃદયમાં ધારણ કરતો મહા વિનયવંત, આપના શાસનનો

प्रजावक गुणनिधान एवो “सम्यक्दर्शन” नामे महाधीर वीर शुजट आपनो मित्र ठे, जेनी साथे आपनो सम्यक्ज्ञान प्रधान पण एटली तिव्र मैत्री राखे ठे के क्षणमात्र पण तेथी दूटो पनी शकतो नथी, जेउंनां अंग मात्र जूदां जणाय ठे पण जीव तो जाणे एकज ठे,

एवा सम्यक्दर्शन अने सम्यक्ज्ञान वे महान् पुरुषो आपनुं राज्य अत्यंत चातुर्य, न्याय अने दया पूर्वक सर्व प्रजाने आनंदमां राखता निष्कंटकपणे चलावे ठे तथा अव्यावाध समाधिरूप अनेक प्रकारनां रत्नोवने आपना खजानाने सदा परिपूर्ण तथा अखूट राखे ठे, निरंतर तज्जन्य परमानंदमां आप विलसो ठो;

वली आप ज्यानुं राज्य करो ठो ते देश असंख्यात प्रदेशवालो, जेनी सीमामां कोइपण वधघट करी शके नहीं एवो ठे तथा जेना सर्वे प्रदेश अनंता गुणाविभागरूप संपत्तिवडे तथा पर्यायरूप प्रजावने उस जरेला ठे

एवा आपना अनुपम देशना, तथा तेमां वसती सरल प्रजाना रक्षण निमित्ते आपना मित्र तथा प्रधाने मली पोताना अत्यंत बल तथा चातुर्यवडे चारित्ररूप अत्यंत मजबूत तथा अजंग किल्लो वांघ्यो ठे हे जगवंत ! एवा अलौकिक राज्यना आप स्वामी बन्या ठो. एह्वुं अलौकिक राज्य के जे मोहराजाए अनादिथी पोताना कवजे करी राख्युं हतुं तेने आपे केवी रीते प्राप्त कर्युं ?—“आत्म शक्ते हो परजय संचर्याजी” अन्यनी मदद शिवाय मात्र पोतानी आत्मशक्ति स्फुरायमान करी सम्यक्दर्शनमित्र, तथा सम्यक्ज्ञान प्रधानने साथे राखी मोहशत्रुने पराजव करवा रणजूमिमां प्रवेश कर्यो ॥ ३ ॥ ४ ॥

धर्मरूमादिक सैन्य, परिणति प्रजुताहो तुज बल आंक-रोजी । तत्त्व सकल प्राग्जाव, सादि अनंतीरे रीते प्रजु धखोजी ॥ हुं ० ॥ ५ ॥

३५६ : विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

अर्थ:—मोहराजाना लश्करने शीघ्रमेव नाश करनारा “क्हांति, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तव, संयम, सत्य, शौच, अकिंचन, अने ब्रह्मचर्य, ” एवा अपरिमित बलवाला सैन्य सज्जा कर्या अने ते सर्वे सैन्योनी प्रभुता ( सेनाधिपति पणुं ) शुद्धोपयोगरूप महा अजीत अने निडर शुद्धने आपो एवा अत्यंत तीक्ष्ण बलवडे मोहराजाना लश्करनो नाश कर्यो. क्हांति सैन्ये क्रोध लश्करनो, मार्दवे मान लश्करनो, आर्यवे माया लश्करनो, मुक्ति ए लोभ-स्पृहा लश्करनो, तपे पराकांक्षानो, संयमे हिंसानो, सत्ये असत्यतानो, शौचे मलिनतानो, अकिंचने पर संग्रह बुद्धिनो अने ब्रह्मचर्ये परमणनो, एम मोहराजाना सर्वे लश्करनो तथा परिवारनो नाश करो मोहराजाने प्राण रहित कर्यो अने सोदिअनंत जागे “तत्त्व सकल प्राग्जाव” पोतानो संपूर्ण राज्याधिकार प्रगट कर्यो ॥ ५ ॥

द्रव्य जाव अरि लेश, सकल निवारीरे साहिव अव-  
तर्योजी । सहज स्वजाव विलास, जोगी उपयोगीरे,  
ज्ञानगुणे ज्योजी ॥ हुं० ॥ ६ ॥

अर्थ:—द्रव्य तथा जाव ए वने प्रकारना शत्रुनो समूल नाश करी आप्र शिवक्षेत्रना राजा बन्या ठो तथा पोताना नैरुपाधिक सहज स्वतंत्र जोगना विलासी थया ठो तथा आप्र ज्ञानानंदे परिपूर्ण सदा उपयोगवंत अर्थात् पोताना राज्यनी संचालमां निरंतर वक्तो ठो ॥ ६ ॥

आचारिज उवजाय, साधक मुनिवर हो देश विरत  
धरुजी । आतम सिद्धि अनंत, कारण रूपे रे योग  
देमंकरुजी ॥ हुं० ॥ ७ ॥

अर्थ.-ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्र्याचार, तपाचार अने वीर्या-  
चार, ए पंचाचारमा वर्त्तनार तथा शिष्यजनने तेमां वर्त्तावनार  
( जोरुनार ) एहवा ठत्रीश गुणवान् श्रीआचार्य, तथा सूत्रपाठना  
दातार श्री उपाध्याय, तथा पोताना शुद्धात्मतत्त्वने साधनार श्री  
मुनिराज, तथा पचम गुणस्थानवर्त्ती देशवत धारीउ, ए सर्वे आप  
महाराजनी आझामा वर्त्तनार, पोताना मनवचन काययोगने संय-  
ममां वर्त्तावनार होवाथो अनंत आत्म सिद्धिरूप आप समान राज्य-  
जोग पामवाना कारण ठे अर्थात् तेउ अल्पकालमां आप समान  
शिवचूमिनु राज्य प्राप्त करशे तथा ते आचार्यादिकोने शिवचूमिनु राज्य  
प्राप्त करवामा आप जगवंत कारणरूपे अर्थात् मददगार ठो ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव, आणारागी हों सहु जिनराजनाजी ।

आत्म साधन काज, सेवे पदकज हो श्री महाराजनाजी

॥ हुं ॥ ८ ॥

अर्थ.-वली चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती उपशम, क्षयोपशम वा क्षाधिक  
सम्यग्दृष्टि सर्वे जीवो हे जगवंत । जवसमुद्रमां सेतु समान आपनी  
आझाना रागी ठे, आपनी आझा पासवाने उत्सुक ठे, तेउ पोतानुं  
शुद्धात्म स्वरूप प्रगट करवा माटे आप जगवतना डव्यजाव चरण-  
कमलने सन्माने ठे ॥ ८ ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, जगतें राचो हो जवि आत्म रुचिजी ।

अव्यय अक्षय गुरु, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचिजी

॥ हुं ॥ ९ ॥

अर्थ.-स्तुतिकर्त्ता श्रीदेवचंद्र मुनि मित्र जावनाना आवेशमां पो-  
ताना मुखकमलमांथो परम कल्याणकारी उपदेश आपे ठे के पोतानी  
शुद्धात्म सिद्धिना इच्छु हे जग्यात्मारु । शिवक्षेत्रना महाराजा श्री  
जिनेंद्रजगवाननो आणा सेववामां खीन थाउ जेथी तमारी सत्तामां

३५८ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

रहेली पवित्र, अविनश्वर, अखूट, अक्षय, शुद्धात्म संपदा सहज  
प्रगट थशे ॥ ए ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकोनविंशतिम श्री देवजसाजिन स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणुं ॥ ए देशी ॥

देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह विज्ञाव लाल रे ॥  
प्रगटे शुद्ध स्वज्ञावता, आनंद लहरी दाव लाल रे ॥  
देवजसा ० ॥ १ ॥

अर्थः—सर्वे कर्म कलंकथी रहित अत्यंत पवित्र तथा अनंत ज्ञान  
दर्शन आदि अंतातीत अन्यंतर लक्ष्मियुक्त विलोकी चार निकायना  
देव तथा इंद्रादिना समूह जेनो अनुपम यशवाद बोले ठे एवा श्री देव-  
जसा प्रभुनुं हे जव्यात्माओ ! दर्शन करो. ते पूज्य जगवंतना स्वरुपनुं  
सम्यक्प्रकारे अवलोकन करो. जेथी अनादिथी बलगेला अज्ञान  
मिथ्यात्व मोह विगेरे दुःखदायक विज्ञाव समूल नाश पामे तथा  
जेमांथी निरंतर परमानंदनी कल्लोलो उज्यां करे एवो संवर पूरे जरेलो  
पवित्र रत्ननिधान शुद्धात्म स्वज्ञाव प्रगट थाय. एवा आपना प्रत्यक्ष  
दर्शननी हे प्रभु ! मने अत्यंत अजिलाषा ठे परंतु ॥ १ ॥

स्वामी वसो पुष्करवरे, जंबू जरते दास लाल रे ॥ क्षेत्र  
विजेद घणो पड्यो, किम पोहोंचे उद्वास लाल रे ॥  
देव ० ॥ २ ॥

अर्थः—हे जगवंत ! आप तो पुष्कलावर्त विजयमां विचरो ठो अने  
आपना दर्शननो अजिलाषी सेवक हुं जंबुद्विपना जरतक्षेत्रमां वसु  
हुं एम आपना तथा माहुरा स्थानकने घणुं अंतर ठे तेथी आपना  
प्रत्यक्ष दर्शननी माहुरी मनोकामना शीरोते पूर्ण थाय ?

प्रकारातरे—हे जगवत ! ज्यां कर्म कलकनो रच मात्र पण प्रवेश नथी एवा पवित्र ज्ञानादि लक्ष्मीना निवासरूप विदेह अर्थात् देह रहित अरूपी सिद्धक्षेत्रे आप विराजमान ठो अने हुं सेवक कर्मकलंक वने मलिन, अज्ञान अने मोह अंधकार वने जरपूर ससारक्षेत्रमां परित्रमण करुं ठुं; एम आपना तथा माहरा क्षेत्रमा अत्यंत जेद (अतर) पड्यो ठे. तो आपना प्रत्यक्ष दर्शननी माहरी मनोकामना शीरीते पूर्ण थाय ? ॥ २ ॥

होवत जो तनु पांखनी, आवत नाथ हजूर लाखरे ॥  
जो होती चित्त आंखनी, देखत नित्य प्रभु नूर लाखरे ॥  
॥ देव० ॥ ३ ॥

अर्थ:—पण हे जगवंत ! जो माहरा शरीरे पांखो होत तो हुं ते पांखो वने उनी पूष्कलावर्त विजयमां आप प्रभुना समीप आवी आपनु दर्शन, वंदन करत अथवा जो मने चित्त आंखडी अर्थात् ज्ञान नेत्र अवधिदर्शन होत तो आहिआ रहीने पण चोत्रीश अतिशय अने अष्ट महा प्रातिहार्यादिक विभूति सहित आपना तेजस्वी रूपने हमेशा निरख्या करत.

प्रकारातरे—हे जगवंत ! जो माहरा आत्म अंगे सम्यक्चारित्र रूप प्रबल पाखो होत तो ते पांखो वडे चिदाकाशमां उरतो—विहार करतो आप ज्यां वसो ठो एवा विदेह—देहरहिन सिद्ध क्षेत्रमां आप समीप आवी हाजर थात अथवा जो कदाच चित्त आंखडी कहेतां केवलदर्शन होत तो आ क्षेत्रमा रहीने पण अनंत ज्ञान दर्शन आदि अत्यंत अच्यंत विभूति युक्त आपना लोकालोक प्रकाशक अनंत प्रकाश युक्त महान् तेजस्वी स्वरूपने निरंतर निरख्या करत पण ते वंने शक्तिउथी हु रहित ठुं तो आपनुं दर्शन केम पामुं ? ॥ ३ ॥



३६० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वालावबोध सहित.

शासन चक्र जे सुरवरा, विनवुं शीष नमाय लालरे ॥  
कृपा करो मुज ऊपरे, तो जिन वंदन आय लालरे ॥  
॥ देवजसा ० ॥ ४ ॥

अर्थ:—उपर प्रमाणे माहरामां देवजसा प्रभुनुं दर्शन पामवानी शक्ति नहि होवाथी जिनशासनना चक्र हे महान् देवो ! हुं आपनी सहाय चाहुं तुं, मस्तक नमावी विनंति करुं तुं के जो आप माहरा उपर कृपा करी जो आपना सामर्थ्य वडे देवजसा प्रभु पासे मने लेई जाउ तो ते प्रभुना दर्शन वंदननो मने लाज मले.

प्रकारांतरे—उपर प्रमाणे सम्यक्चारित्ररूप पांखो अथवा केवल दर्शनरूप आंखो मने नहीं होवाथी देवजसा प्रभुनुं दर्शन वंदन प्राप्त करवामां जिन शासन अर्थात् जिनेश्वरनी आज्ञानुं पालन करना तथा बीजाने तेमां जोरुनारा हे सुरवरा अर्थात् महान् आचार्यों हुं आपने मस्तक नमावी अंतरंग बहु सन्मान ( विनय ) युक्त आपने विनंती करुं तुं के जो आप माहरा उपर कृपा करो, मने सम्यक् चारित्रमां जोडो तो हुं ते चारित्ररूप पांख वडे श्री देवजसा प्रभुनी समीप जई शकुं, ते प्रभुना प्रत्यक्ष दर्शननो मने लाज मले ॥ ४ ॥

पूतुं पूर्व विराधना, शी कीधी ईणे जीव लाल रे ॥ अविरति मोह टले नहीं, दीठे आगम दीव लाल रे ॥ देव जसा ० ॥ ५ ॥

अर्थ:—हे प्रभु ! आ माहरा जीवे पूर्वे आत्मधर्मनी केवी तीव्र विराधना करी ठे के आत्म अनात्मनुं स्वरूप यथार्थ प्रकाश करनार जिनागमरूप दीपकनी प्राप्ति थया ठतां पण पंचेंद्रियना विषय जे पुद्गल परिणाम ते उपर रागरूप अविरति तथा स्वपर जीवना द्रव्यज्ञाव प्राण-हणवारुप हिंसा, तथा क्रोधादिक कषाय विगेरे आत्म ज्ञावने अत्यंत अप्रशस्त तथा दुःखदायक परिणाम हजुसुधी टलता नथी ॥ ५ ॥

आत्म शुद्ध स्वज्ञावने, बोधन शोधन काज लाल रे ॥  
रत्नत्रयी प्राप्तिपणो, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ देव  
जसा ० ॥ ६ ॥

अर्थः—कर्म कलंक ( सर्व विज्ञावधी ) रहित शुद्धात्म तत्त्वतुं  
स्वरूप यथार्थ पणे जे बडे जणाय तथा अनादिथी बलगेला मि-  
थ्यात्व अज्ञान कपायादि विज्ञावनो सर्वथा अज्ञाव र्थे जे बडे माहुरो  
आत्मा कर्म कलंकथी रहित परम पवित्र थाय ते सम्यक्ज्ञान स-  
म्यक्दर्शन सम्यक्चारित्र्यरूप रत्नत्रयनी प्राप्ति शीरीते थाय- ते  
करुणा करी कहो ॥ ६ ॥

तुज सरिखो साहिव मिल्यो, जांजे नव त्रम टेव लालरे ॥  
पुष्टालवन प्रभू लही, कोण करे पर सेव लालरे ॥  
देवजसा ० ॥ ७ ॥

अर्थः—समस्त दूषणोथी रहित परम पवित्र अनंत गुणनो निधानं,  
लोकालोक प्रकाशक, रत्नत्रयनी प्राप्ति करावी अनादिथी लागेली  
नव त्रमणनी टेवथी मुक्त करनार, नव समुद्रथी तारवामां पुष्टाल-  
वनरूप आप जगवंतनुं दर्शन पाम्या पठो अन्य कुदेवादिकनुं कोण  
सेवन करे ? कल्पवृक्षने त्यागी धंतूराने कोण सेवे ? ॥ ७ ॥

दीनदयाल कृपालुज, नाथ जविक आधार लालरे ॥  
देवचंद्र जिन सेवना, परमामृत सुखकार लालरे ॥  
देवजसा ० ॥ ८ ॥

अर्थः—संसारमां त्रमण करता अनेक प्रकारना दुःख सहता ज्ञा-  
नादिक लक्ष्मी रहित दीन कंगाल जीवो उपर अत्यंत करुणां करी  
मोक्ष मार्गे दोरनार होवाथी हे प्रभु ! आपज दीन दयाल ठो तथा

३६१ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

कृपालुर्ल कहेतां कृपाना आलय ( निधान ) ठो, दीन अनाथ जीवोना नाथ ठो, संसार समुद्रमां दूवता जव्य जीवोने उद्धारवा माटे आप पुष्ट अवलंबन ठो, सर्वे देवोमां चंद्रमा समान हे देवजसा प्रभु ! आपनी सेवना सर्वोत्कृष्ट अमृत समान परमानंद दातार तथा शिव सुखनी करनार ठे ॥ ८ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

अजितवीर्य जिन विचरतारे, मन मोहनारे लाल ॥ पुष्कर अर्ध विदेहरे, जवि बोहनारे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारि-खोरे, मन मोहनारे लाल ॥ सेवे धन्य धन्य तेहरे, जवि बोहनारे लाल ॥ १ ॥

अर्थः—अतिशय दुर्जय मोहराजानो जेणे लीला मात्रमां समूल दाय करी नांख्यो ठे, तथा जेनुं वीर्य हणवाने कोइ पण समर्थ नथी एहवा अतिशय निश्चल अनंत वीर्यवंत, पुष्कलावर्त विदेहमां विचरता हे श्री अजितवीर्य प्रभु ! जेम कमलने सुगंधनुं आवास जाणी जमर तेमां मोही रहे ठे, तेम शुद्धात्म अनुभव वमे जरपूर आपनी अत्यंत शांत मुद्रा विलोकी प्रशस्त राग वडे जव्य जीवोनुं चित्त आपमां मोहित रहे ठे, एवी रीते आ त्रिलोकमां आप मनमोहन ठो. तथा अज्ञानरूप अंधकार वडे आवृत अएला जव्य जीवोना हृदय कमलने त्रिकश्वर करनार ठो. तथा कटपवृक्ष तो स्थावर होवार्थी हेमेशां एकज ठेकाणे रही ईद्वित फल आपी शके ठे तो पण ते पौजलीक तथा विनश्वर ठे पण आप तो अनेक स्थले विहार करी कोइ पण काले नाश अथवा विरस न थाय एहवुं स्वाधिन तथा सर्वे कामना जेथी पूर्ण थाय एहवुं रत्नत्रयरूप फल जव्यजीवोने निरंतर प्रदान करो ठो. माटे हे जगवंत ! खरेखर आपज आ जगत्त्रयमां अद्वितीय कटपवृक्ष

गे. तेथी हे जगवंत ! जे प्राणीउं आपना चरणकमलनी सेवामा लीन  
ठे तेउने धन्य ठे ! वली धन्य ठे ! तेउने के जे आ अपार जवसमु-  
झने गोपदनी पेठे सहज उलघी जनारा ठे ॥ १ ॥

जिन गुण अमृत पानथीरे, मन० । अमृत क्रिया सुपसा-  
यरे, जवि० ॥ अमृत क्रिया अनुष्ठानथीरे, मन० । आत्म  
अमृत थांयरे ॥ जवि० ॥ २ ॥

अर्थ.—जिनेश्वरना ज्ञानादि शुद्ध गुणोनुं सेवन बहुमानरूप अमृ-  
तनुं पान करवाथी अमृतक्रिया ( अमृतानुष्ठान ) नी प्राप्ती थाय, अने  
अमृतानुष्ठान वने सकल मोहनो दाय थई आत्मा अजर अमर अवि-  
नश्वर शुद्ध सिरूपदने प्राप्त थाय, अने अन्य जीवोने अमृत समान  
जव रोगयी मुक्त करवानो हेतु थाय. अनुष्ठान पांच प्रकारनां ठे—  
विपानुष्ठान, गरलानुष्ठान, अनानुष्ठान, तखेतु अनुष्ठान, अने अमृता-  
नुष्ठान.

विपानुष्ठान—आहारोपधि पूजर्हि, प्रचृत्पाशंसया कृतं, ग्रीध्रं  
सञ्चित्तदन्तृत्वा विपानुष्ठान मुच्यते ॥ अध्यात्मसार पा ४५६.

अर्थ.—मिष्टान्न भोजननी लालचे, वस्त्रादिक उपकरणनी लालचे  
पूजानी लालचे, रिडिनी लालचे जे तप जपादि क्रिया करे ते क्रिया  
चित्त शुद्धिनी हणनारी ठे तेथी ते विपानुष्ठान कहेवाय ठे. आ जवमां  
पौजलीक भोगोनी प्राप्ति थवानी लालचे ईष्टाण जे तपादि अनुष्ठान  
आदरवु ते विपानुष्ठान ठे.

गरलानुष्ठान—दिव्यभोगान्निक्षेपेण, कालांतर परिश्रयात् ।  
स्वादिष्ट फल संपूर्ते गरलानुष्ठान मुच्यते ॥ यथा कुडव्य संयोग,  
जनितं गर संज्ञितं । विषं कालातरे हन्ति तथेदमपि तत्त्वतः ॥

अध्यात्म सार पा० ४५७

३६४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वालावबोध सहित.

अर्थः—परजवे देव इंद्रादिकना दिव्य जोग मले एवी इच्छा, लाल-चवडे जे तपादि अनुष्ठान आदरवुं ते गरलानुष्ठान ठे. जेम वंगमीचूर्ण प्रमुख द्रव्यना संयोगे प्रगट थतुं विष ते गरल नामा विष कहिए, ते घणा दिवस कष्ट पमाडी मारे ठे: तेम गरलानुष्ठान पण अहित-कारी कुगति आदि आपे ठे.

अन्योन्यानुष्ठान—प्रणिधानाद्य ज्ञावेन कर्म्मनध्यवसायिनः॥  
संमूर्तिम प्रवृत्त्यान्न मननुष्ठानमुच्यते ॥ उंघ संज्ञात्र सामान्यं,  
ज्ञानरूपानिवंधनं । लोक संज्ञा च निर्दोष, सूत्र मार्गानपेक्षणी॥  
अध्यात्मसार पा. ४५७

अर्थः—सूत्र कथित निर्दोष मार्गनी अपेक्षा विना तथा शुद्ध प्रणि-धानादिकने अज्ञावे उपयोग शून्ये संमूर्तिमनी पेठे बीजाना देखादेखी जे क्रिया करवी ते अन्योन्यानुष्ठान जाणवुं—सूत्रनी शैली रहित पणे गतानुगतिक पणे उंघसंज्ञाए तथा लोकसंज्ञाए जे करवुं ते अन्यो-न्यानुष्ठान ठे. ते उपयोग शून्य अर्थात् ज्ञान रहित होवाथी ते वडे सकाम निर्जरा थइ शके नहि. आ विषादि त्रणे अनुष्ठानमां अशुद्ध क्रियानो आदर उपजे ठे माटे आ त्रणे अनुष्ठान त्यागवा लायक ठे. यद्युक्तं सूत्रकृतांगे—“जे अबुद्धा महाज्ञागा, वीरा असमत्त दंसिणो । असुधं तेसि परकृतं, सफलं होइ सव्वसो ॥ ”

अर्थः—व्याकरणादिक लोकिक अनेक शास्त्रने जाणनारा पण जैन सिद्धांतना शुद्ध तत्त्वज्ञानथी अजाण अर्थात् सम्यक्त्व परिज्ञानथी रहित होवाथी अबुध, एहवा पुरुषो जो के शूरवीर होय तथा त्यागादि गुण वरे लोकमां पूज्य गणाता होय तथापि तेउनो दान, तप, नियम आ-दिकने विषे उद्यम पराक्रम ते सर्व अशुद्ध जाणवो. कारणके तेउनुं तपादिक सर्वे अनुष्ठान कर्मबंधना कारण विषे सफल थाय एटले

नवा कर्मबंधननुं कारण थाय पण निर्जरानुं कारण थई शके नहि; कारणे सकाम निर्जरा तो सम्यक्ज्ञानेज थाय—“ जेय बुद्धा महाजागा, वीरा सम्मत्त दंसिणो, सुद्धं तेसिं परक्कंतं, अफळं होइ सबसो;”

अर्थः—जे सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सहित ठे तेज बुध पुरुष ठे, जे पूज्य ठे, जे साचा शूरवीर ठे, अने तेउनोज तपादिक अनुष्ठानमां उद्यम—पराक्रम शुरू जाणवो; अने तेउनुं अनुष्ठान नवां कर्मबंधन अटकावी शके ठे तथा सकाम निर्जरानो हेतु ठे.

तद्धेतु अनुष्ठान—सदनुष्ठान रागेण, तद्धेतु मार्गिगामिनां । ए तच्च चरमावर्त्ते नो जोगादेर्विना जवेत् ॥ धर्मयौवनकालोयं, जवबालदशा परा ॥ अत्रस्यात् सत्क्रिया रागो न्यत्र चासत् क्रियादरः ॥

अर्थः—चरमपुद्गल परावर्त्ते धर्मा ना यौवनकाले बालदशा टले थके मार्गानुसारी पुरुष शुद्धानुष्ठानना राग वके उपयोग सहित जे कई क्रिया आदरे ते तद्धेतुअनुष्ठान जाणवुं.

अमृतानुष्ठान—सहजो जाव धर्मोहि, शुद्ध चंदन गंधवत् ॥ ए तद्गर्जमनुष्ठानममृतं संप्रचक्ष्यते ॥ जैनीमाझां पुरस्कृत्य, प्रवृत्तं चित्त शुद्धितः संवेग गर्जमत्यंत ममृतं तद्विदो विदुः॥

अर्थः—सहज जावधर्म ते शुरू चंदननी सुगंध समान ठे अने ते जावधर्म सहित जे अनुष्ठान ते अमृतानुष्ठान ठे. अत्यंत संवेग गुण सहित चित्त शुद्धि जिनेश्वरनी आज्ञामां वर्त्तवु तेने गणधरादिक अमृतानुष्ठान कहे ठे तेज मोहनो संपूर्ण क्षय करवा समर्थ ठे. ॥१॥

प्रीति जक्ति अनुष्ठानथीरे ॥ म० ॥ वचन असंगी सेवरे ॥ जवि० ॥ कर्त्ता तन्मयता लहेरे ॥ म० ॥ प्रभु जक्ति नित्यमेवरे ॥ जवि० ॥ ३ ॥

૩૬૬ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવબોધ સહિત.

અર્થ:-સર્વે પુદ્ગલ જાવમાંથી પ્રીતિ ઊઠાવી માત્ર એક જિનેશ્વરના સ્વાજ્ઞાવિક પવિત્ર જ્ઞાનાદિ ગુણોમાં અત્યંત પ્રીતિ જાવ કરવો તેમાં ચિત્તની તદ્દીનતા કરવી તે પ્રીતિ અનુષ્ઠાન છે.

તથા શ્રી જિનેશ્વરને પરમ કરુણાના નિધાન, જવસાગરમાંથી જવ્ય જીવોને મુક્ત કરનાર, ધર્મધુરંધર, તીર્થના પ્રવર્તક જાણી તેહના ગુણનું બહુમાન કરવું, અતિશય આદર વિનય પૂજા સેવના વિગેરે કરવાં તે જ્ઞાતિઅનુષ્ઠાન છે.

વલો લોકાલોક પ્રકાશક કેવલજ્ઞાનવડે સર્વે તત્ત્વના યથાર્થ વેત્તા તથા ઉપદેશક પરમ વીતરાગ આત્મ શ્રી જિનેશ્વરના વચનની યથાર્થ શ્રદ્ધા કરવી તદનુસાર હર્ષયુક્ત આચરણમાં પ્રવર્તવું તે વચ્ચનાનુષ્ઠાન છે.

હે પ્રજ્ઞુ ! એ ત્રણ અનુષ્ઠાન જે જાવયુક્ત સેવન કરે તેને સર્વે વિજ્ઞાવિક ક્રિયાથી નિવૃત્તિ તથા સહજ આત્મીક પરિણામીકતાની પ્રાપ્તિરૂપ અસંગ અનુષ્ઠાન થાય.

એમ એ ચાર અનુષ્ઠાનનો કર્તા હે જગદંત ! આપ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત થાય. માટે હે પ્રજ્ઞુ ! આપની જ્ઞાતિમાં માહરું ચિત્ત નિરંતર લીન રહે એમ જાવના જાવું હું. ॥ ૩ ॥

પરમેશ્વર અવલંબનેરે ॥ મન૦ ॥ ધ્યાતા ધ્યેય અગ્નેદરે ॥  
જવિ૦ ॥ ધ્યેય સમાપ્તિ હુવેરે ॥ મન૦ ॥ સાધ્ય સિદ્ધિ  
અવિદ્ધેદરે ॥ જવિ૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-હે પરમેશ્વર ! આપના અવલંબનથી આપના અનુકરણવમે ધ્યાતા પુરુષ પોતાના શુદ્ધ સિદ્ધ સમાન પરમાત્મપદથી અગ્નેદ થાય અર્થાત્ પોતે પરમાત્મા થાય. એમ ધ્યેય જે પરમાત્મપદ તેની સમાપ્તિ કહેતાં સંપૂર્ણ પ્રાપ્તિ થાય, નિષ્કંટકપણે અવિનશ્વર સાધ્યની સિદ્ધિ થાય. ॥ ૪ ॥

જિન ગુણ રાગ પરાગથીરે ॥ મન૦ ॥ વાસિત મુક્ત પરિણા-  
મરે ॥ જવિ૦ ॥ તજશે હ્રષ્ટ વિજ્ઞાવતારે ॥ મન૦ ॥ સરશે  
આતમ કામરે ॥ જવિ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:—જેમ મલયાગિર ચંદનના સંસર્ગવને નિંવાદિક સુગંધમય થઈ જાય છે, તેમ હે જગવંત! આપના દિવ્ય સ્તુતિ પાત્ર પવિત્ર ગુણના રાગરૂપ સુગંધીવડે જો માહરૂં હૃદય સંશ્લેષિત થાય તો અનેક પ્રકારનાં અસહ્ય દુઃખ આપનાર પરકર્તૃત્વ, પરજોક્તૃત્વ, પરગ્રાહકત્વ, પરવ્યાપકત્વ વિગેરે વિજાવનો નાશ થાય અને પરમાત્મપદ પામવાનો માહરો મનોર્થ પૂર્ણ થાય. ॥ ૫ ॥

જિન જ્ઞાતિરત ચિત્તનેરે ॥ મન૦ ॥ વેધકરસ ગુણ પ્રેમરે  
॥ જવિ૦ ॥ સેવક જિનપદ પામશેરે ॥ મન૦ ॥ રસવેધિત  
અય જેમરે ॥ જવિ૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:—કઠોર અને કુરૂપ એવું અય કહેતાં લોહુ તે રસ વેધિત થવાથી જેમ સુદર અને કોમલ એવા સુવર્ણપણાને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. તેમ જિનેશ્વરની જ્ઞાતિમાં ચિત્ત લીન થાય તે ચિત્તને તે જિનેશ્વરના ગુણ રાગરૂપ વેધકરસનો યોગ થાય તો તે ચિત્ત પૂર્ણ નિર્મલપણાને પ્રાપ્ત થાય. એમ સેવક આપ સમાન અરિહંત પદને પ્રાપ્ત કરે. ॥ ૫ ॥

નાથ જ્ઞાતિરસ જાવચીરે ॥ મન૦ ॥ તૃણ જાણું પરદેવરે  
॥ જવિ૦ ॥ ચિંતામણિ સુરતરૂ થકીરે ॥ મન૦ ॥ અધિકી  
અરિહંત સેવરે ॥ જવિ૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:—આ ધોર જવાટવીમાં જ્રમણ કરતા અશરણ પ્રાણીને હે જગવંત! માત્ર એક આપજ શરણ છે, શિવપુરીએ દોરવાવાલા ઠો માટે આપજ નાથ ઠો તેથી હે પ્રજુ! આપનીજ જ્ઞાતિરૂપ રસમાં માહરૂ ચિત્ત લીન થાય છે વિષય કપાયયુક્ત કુદેવો તરફ તૃણની પેટે ત્યાગ જાવ ઉપજે છે ચિંતામણી તથા કલ્પવૃક્ષથી પણ પ્રજુની સેવાને અત્યંત આદરણીય માનુંતુ આપની સેવા આગલ તે ચિંતામણી તથા કલ્પવૃક્ષાદિ અતિશય તુચ્છ પદાર્થ જાસન થાય છે ॥ ૭ ॥



૩૬૭ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

પરમાત્મ ગુણ સ્મૃતિ થકીરે ॥ મન૦ ॥ ફરશ્યો આત્મ  
રામરે ॥ ઋવિ૦ ॥ નિયમા કંચનતા લહેરે ॥ મન૦ ॥  
લોહ જ્યું પારસ પામરે ॥ ઋવિ૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:—વલી હે પ્રત્નુ! સંપૂર્ણ સમ્યક્જ્ઞાન, સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્ચારિત્ર, અનંત નિશ્ચલ વીર્ય વિગેરે આપ પરમાત્માના ગુણોના ચિંતનમાં જો માહરો આત્મ પરિણામ સ્પૃષ્ટ થાય તો જેમ પારસમણિના સ્પર્શ થકી લોહા જેવી કુધાતુ કાંચન થઈ જાય છે; તેમ વિષય કષાયમાં પરિણમતો માહરો આત્મા તે પણ કાંચન સમાન શુદ્ધ પરમાત્મ પદને પ્રાપ્ત થાય. ॥ ૬ ॥

નિર્મલ તત્ત્વ રૂચી થઈરે ॥ મન૦ ॥ કરજો જિનપતિ  
ઋક્તિરે ॥ ઋવિ૦ ॥ દેવચંદ્ર પદ પામશોરે ॥ મન૦ ॥ પરમ  
મહોદય યુક્તિરે ॥ ઋવિ૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:—જાવદયાના આવેશે મિત્રજાવના યુક્ત સ્તવનકર્તા શ્રી દેવચંદ્ર મુનિ ઋવ્યજીવો પ્રતિ સહુપદેશ આપે છે કે આ જાવ પરજાવ સંબંધી વિષયજોગ તથા માન પૂજા વિગેરે પૌદ્ગલીક જાવની આશંસા તજી, માત્ર એક શુદ્ધાત્મ તત્ત્વના રૂચિવાન થઈ, ઊંઘસંજ્ઞા તથા લોક સંજ્ઞા પરિહરી, વિધિ વિવેક પૂર્વક સર્વે જિનમાં શિરોમણિ શ્રી અરિહંત જગવંતની ઋક્તિમાં આણા સેવવામાં લીન થજો. તો સર્વે દેવોમાં ચંદ્રમા સમાન અરિહંત જગવંત સદૃશ પરમાત્મ પદને પામશો. એજ ઉત્કૃષ્ટ સ્વાધિન અવિનશ્વર મહોદય પ્રાપ્ત કરવાની યુક્તિ છે. ॥ ૭ ॥

॥ સંપૂર્ણ ॥

॥ कलश ॥ राग धन्याश्री ॥

वंदो वंदोरे जिनवर विचरंता वंदो, कीर्तन स्तवन नमन  
अनुसरतां ॥ पूरव पाप निकंदोरे जिनवर विचरंता वंदो ॥ १ ॥

अर्थः—विहरमान जिनेश्वरने हे जव्यो ! जाव सहित वंदो, तेउना  
सद्गुणोनुं किर्तन करो, तेउनुं स्तवन करो, मार्दव परिणामी थई तरण  
तारण जिनेश्वरने नमो, तेउनी आझाने अनुसरो, जेथी पूर्वे बांधेलां  
अनेक प्रकारनां कर्मों निर्मूल थाय ॥ १ ॥

जंबु द्वीपे चार जिनेश्वर, धातकी आठ आणंदो ॥ पुष्कर  
अर्धे आठ महामुनि, सेवे चोसठ इंदोरे ॥ जिनवर ॥ २ ॥

अर्थः—जंबुद्वीपमां चार, धातकीमां आठ अने पुष्करार्धमां आठ  
एम सर्वे मली बोश तीर्थकर विहरमान जेने महारिद्धिना धारक एवा  
चोसठ इंडो पण सेवे ठे ॥ २ ॥

केवली गणधर साधु साधवी, श्रावक श्राविका वंदो ॥  
जिन मुख धर्मअमृत अनुभवतां, पामे मन आणंदोरे ॥  
जिन ० ॥ ३ ॥

अर्थः—श्री तीर्थकरना मुख कमलमांथी वहेता अमृत समान वच-  
नोने अनुभवतां तेनो आस्वाद लेतां केवली गणधर साधु साधवी  
श्रावक श्राविका सम्यक्दृष्टी जीवो शुद्ध आनंदमां मग्न रहे ठे ॥ ३ ॥

सिद्धाचल चोमास रहीने, गायो जिनगुण वंदो ॥ जिन-  
पति भक्ति मुक्तिनो मारग, अनुपम शिवमुख कंदोरे ॥  
जिन ० ॥ ४ ॥

अर्थः—सिद्धाचल क्षेत्रमां चोमासुं रहीने जिनेश्वरना पवित्र गुणोनुं  
जेमां वखाण ठे एवा वंदो (स्तवनो) वनाव्या—कारणके जिनेश्वरनी

૩૭૦ વિંશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ બાલાવબોધ સહિત.

ઋક્તિ તેજ મુક્તિનો માર્ગ છે તથા તેજ અનુપમ અવ્યાવાધ સ્વાચ્છા-  
વિક શિવસુખનું મૂલ છે ॥ ૪ ॥

ઋરતર ગઢ જિનચંદ્ર સૂરિવર, પુણ્ય પ્રધાન મુણિંદો ॥  
સુમતિ સાગર સાધુ રંગસુ વાચક, પીઘો શ્રુત મકરંદોરે ॥  
જિન૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-હવે સ્તવન કર્તા શ્રી દેવચંદ્ર મુનિ પોતાની પરંપરા વચ્ચાણે  
હે. જેણે જિનપ્રણિત સૂત્રનો શુદ્ધ આસ્વાદન લીધો છે એવા ઋરતર  
ગઢમાં શ્રીજિનચંદ્ર સૂરિ ઋદ્ધારક નામે પ્રધાન આચાર્ય થયા, તેણે  
શ્રીના શિષ્ય પ્રધાન પૂણ્યવાન મુનિશિરોમણિ શ્રી પૂણ્યપ્રધાન નામે  
મહોપાધ્યાય થયા, તેણેના શિષ્ય સુમતિના સમુદ્ર જેવા શ્રી સુમતિ-  
સાગર નામે ઉપાધ્યાય થયા, તેણેના શિષ્ય મુનિપણામાં જેને રંગ  
લાગ્યો છે એવા સાધુ રંગવાચક થયા ॥ ૫ ॥

રાજસાર પાઠક ઉપકારી, જ્ઞાનધર્મ દિણંદો ॥ દીપચંદ્ર  
સદ્ગુરુ ગુણવંતા, પાઠક ધીર ગયંદોરે ॥ જિન૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-તે પઠી આવશ્યકોદ્ધાર પ્રમુખ ગ્રંથના કર્તા સુવિહિત સા-  
સાચારી ધારક શ્રીરાજસારજી મહોપાધ્યાય થયા, તે પઠી ન્યાયાદિક  
ગ્રંથ અધ્યાપક સૂર્યસમાન તપસ્વી જ્ઞાનધર્મ ઉપાધ્યાય થયા, તે પઠી  
માહરા સદ્ગુરુ જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર ગુણના ધારક, પંચાચારના પાલક,  
ઉપસર્ગ પરિસહ સામે ગજેંદ્રની પેઠે નિશ્ચલ રહેવાવાલા મહાધીર વીર  
દીપચંદ્ર પાઠક થયા ॥ ૬ ॥

દેવચંદ્ર ગણિ આતમ હેતે, ગાયા વીશ જિણંદો ॥ રિદ્ધિ  
વૃદ્ધિ સુખ સંપતિ પ્રગટે, સુજસ મહોદય વૃંદોરે ॥  
જિન૦ ॥ ૭ ॥

अर्थः—तेमना शिष्य में देवचंद्र गणिए आत्म पदार्थने कर्म कलंकथी मुक्त करवाना हेतुए विहरमान श्री वीश तीर्थकरना गुण गाया जेथी कर्म कलंक वढे आछादित थएली आत्मानी ज्ञानदर्शनादि अनेक रिद्धि प्रगटे, वृद्धिने पामे तथा तज्जन्य सुख संपत्ति प्रगट थाय, अखूट निर्मल यश विस्तरे, आत्मीय गुण समूहनो महोदय थाय, सर्वत्र कल्याण वर्त्ते, सर्व जीव परमानंदने प्राप्त थाय ॥ ७ ॥

॥ सपूर्ण ॥

॥ कलश ॥ हरिगीत उंद ॥

विहरमान जिनंद मंगल कंद ज्ञान दिनंद जे,  
विकसावता नय कर समूहे जव्य उर अरविंद जे,  
उपशम सुधा सागर उलासन पूर्ण अनुपम चंद जे,  
जवदंद फंद निकंदि दायक शुद्ध परमानंद जे ॥ १ ॥  
मोह मदिरामां मचेला कुमति मत मातंगना,  
मद गंजवा बल जंजवा बलवान प्रभु पंचानना,  
ते तीर्थनायक तत्त्वदायक वीश जिनवर गुणमणी,  
“ श्री देवचंद्र ” पवित्र मतिए स्तव्या गुणमाला जणी ॥ २ ॥  
ते स्तवन वीश विषे अतिशे बोध अनुपम वरणव्यो,  
त्यां चित रमण हित मुज मनोरथ अरथ लखवानो थयो;  
मधु मासमां अति मधुर स्वरथी कोकिला जे गाय रे,  
ते तो खरेखर आम्र तरुना पुष्पनोज पसाय रे ॥ ३ ॥  
तेम गुण निधि “ श्री सद्गुरु मनसुख ” तणो आश्रय लहो,  
“ संतोष ” प्रेमे अर्थ आ मे लख्यो “ दोहदमां ” रही;

३७२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

उंगणीश ठासठ साल आसो शुक्ल सातम शशि दिने,  
जिनराज जक्ति पसायथी पूरण थयो उलसित मने ॥ ४ ॥  
हे जव्य शुभ मति विनति आ मम कामायुत उरमां धरी,  
गुण कीर ग्रहजो हंस पेठे नीर अवगुण परिहरी;  
जरपूर सुखप्रद ग्रंथ आ शशि सूर सम शाश्वत रहो,  
वांचन मनन अनुभव करी जवि शिव रमा अनुपम लहो ॥ ५ ॥

महोपाध्याय श्री देवचंद्रजी कृत वीश  
स्तवन बालावबोध सहित संपूर्ण

गांधी दलसुख नाथजी कृत ॥ पद ॥

मगन थयुं मनरे ॥ ए राग ॥

प्रसन थयुं मनरे, मुज शिवमग प्रेरक मलिस्था । शांतीनो  
जनम दिन आजे, दिव्यनयण खोलि निज काजे, जोई छुरित  
दोष दूर जाजे ॥ प्रसन० ॥ १ ॥

॥ साखी ॥

धर्म धुरधर सुख निधि, निकट मढ्या आ वार ।  
वश प्रमाद नवि चूकिए, न्याय वाणि पोकार ॥  
तत्वागम जाव जणावे, बलि हेयादेय जचावे, प्रनु  
निपुण बुद्धि फेलावे ॥ प्रसन० ॥ २ ॥

॥ साखी ॥

स्वपर दया तुज चित्त विषे, मृषा वचन नाहि लेश ॥  
अण आपी तृण नवि लिखे, विरक्त जाव हमेश ॥  
विषयातुरता सवि त्यागी, परमति परदारा जागी, परिग्रह  
मूर्छा नहि लागी ॥ प्रसन० ॥ ३ ॥

॥ साखी ॥

संकल्प विकल्प विकारथी, डव्य जाव जीय प्राण ॥  
विषयादिक कारण वशे, न हूणे समतावान ॥  
अरिहंतादिक महंता, पूर्वाचारज मुनि संता, तस बहुमाने  
विचरंता ॥ प्रसन० ॥ ४ ॥

॥ साखी ॥

वर सुमति गुप्तिधरु, वर प्रधान जन धर्म ॥  
सेवे तस अनुमोदतां, जाणे सुतना मर्म ॥  
मनसुख वर ज्ञानी सेवो, वचनामृत अनुभव मेवो, “दलसुख”  
कहे सौ जवि लेवो ॥ प्रसन० ॥ ५ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

## ॥ श्री कृष्णदेव जिन स्तवन ॥

माता मरुदेवाना नंद, पूज्यपणुं तुज देखी मुज मन अति लोचाणुंजी ॥  
 ज्ञाता द्रष्टा रमण थिरता, शुद्ध बुद्ध निरजेदि  
 तिक्कण वीर्य शक्ति उद्धासथी, संतति योग उडेदि ॥ माता० ॥ १ ॥  
 तारक वारक धारक गुण गण, साचो शिवपुर साथ  
 निरवद्य ज्ञापानी तुज आणा, जीव सकलनी आथ ॥ माता० ॥ २ ॥  
 परकृत पूजा तुं नवि इहे, साधक कारज दाव  
 शक्य रहित तुज आणा साधे, पामे पूज्य स्वचाव ॥ माता० ॥ ३ ॥  
 उपचरित चउ निखेप सेवे, उपचरित सुख पाय  
 अनुपचरित निखेपा सेवे, निःप्रयास सुख थाय ॥ माता० ॥ ४ ॥  
 पूज्यनी पूजा अक्षय सुख दे, बलि कापे संताप  
 मूढ अपूज्यने जे जन सेवे, चूके आपही आप ॥ माता० ॥ ५ ॥  
 जिनवर प्रतिमा श्रीजिन सरिखी, कही जिनागम मांह्य  
 रहस्य लखे तेहिज नर बूजे, नहितर गोतां खाय ॥ माता० ॥ ६ ॥  
 पुद्गल परिणतिनो हुं कामी, दोष अनंतनी खाण  
 खामी एहवो ठे सेवकने, हाथ जालीने ताण ॥ माता० ॥ ७ ॥  
 तुम नहि कर्ता मुज सिद्धिना, तुज कारणथी तरेश  
 दलसुख साध्य साधक परिणति ए, निज पद सिद्धि वरेश ॥ माता० ॥ ८ ॥

## ॥ द्वितीय अजित जिन स्तवन ॥

धन्य धन्य वीर वाणी ॥ ए राग ॥

अजित जिनेश उपासना, डुरित नाश न एह;  
 सम्यक् दर्शन वासना, निकासन हो मिथ्यातनो नेह ॥  
 तारक श्री धन्य धन्य तुज वाणी, धन्य प्राणीरे जेणे हीयके आणी के  
 धन्य धन्य तुज वाणी ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥  
 स्वपर हितने कारणे, पूढुं प्रश्न उदार;  
 द्वेष क्रोध मद मानथी, नवि पूढुं हो पूढुं आणा सुसार ॥ तारक० ॥ २ ॥

विधि अविधि किम जाणिए, दाखो श्री जगवंत,  
 साध्य दृष्टि साधन क्रिया, विधि जाणो हो जवि आगम तंत ॥ तारक० ॥ ३ ॥  
 योग असंख्य शिव मग तणा, कहा में सुविशाल,  
 शुद्धातम अतुल्य जले, योग साचो हो नहि तो सवि आल ॥ तारक० ॥ ४ ॥  
 दान शील संयम क्रिया, आवश्यकादि एम,  
 साध्य शून्य साधन सवि, अविधि जाणो हो ते नहि तुज हेम ॥ ता० ॥ ५ ॥  
 क्रिया अविधे करे करावे, बलि अनुमांदे जेह;  
 विराधक खट कायनो, आवश्यक हो सूत्रे जाख्युं ठे एह ॥ तारक० ॥ ६ ॥  
 अविधे क्रियांवर चलावे, उत्सूत्र जापी तेह,  
 गुरु प्रायश्चित तेहने, परजावनो हो ठे तेहने नेह ॥ तारक० ॥ ७ ॥  
 मोक्ष मार्गे लेइ जवाने, बलावीया थइ तेह;  
 लूटे सकल जग देखतां, किहां लोको ते पोकार करेह ॥ तारक० ॥ ८ ॥  
 सर्वज्ञथी अधिकी गणे, निज मति चलावे अनाण,  
 निजपरने धूमावता, दुर्गतिमां हो सहे दुख अमान ॥ ९ ॥  
 विधि सहित अनुष्ठान शुज, सवि दीए शिवपुर गेह ॥  
 पुरुष प्राक्रम फोरवी, ते सेवो हो अवलंबो एह ॥ १० ॥  
 बलिहारी श्रुतधरतणी, सम्यक् प्रकाशे तत्त्व ॥  
 तीर्थंकर सम ते आश्रये, दास बलसुख हो पामे गुरु सत्त्व ॥ ता० ॥ ११ ॥

संपूर्ण.

॥ शा. वामीलाल पानाचंद कृत ॥ पद ॥

मगन थयु मनरे, खुबी कारक खुब खुशाली,  
 श्री धर्माचारज आब्या, सहु जविजन आणंद पाया,  
 महाशांति मेह वरसाया ॥ मगन० ॥ १ ॥



॥ साखी ॥

जाव जीवन पुष्टिकर, त्रिचुवनमां हितकार ॥  
 आप समो नहि अवर ठे, संघ सकल आधार ॥  
 जिनशासनना सुलतान, सुर करता बहु गुणगान  
 सेवे मुनिगण शुरू आण ॥ मगन० ॥ १ ॥

॥ साखी ॥

विषयाक्रांत नधि जीवने, तुज आज्ञा हितकार ॥  
 दर्शावो प्रभु सुनयथी, लहे चेतन नवपार ॥  
 तुज आण सदा मन धरशुं, निज ज्ञायक जावे विचरशुं ॥  
 पूर्णानंद पद हमे वरशुं ॥ मगन० ॥ २ ॥

॥ साखी ॥

जन्म जरा मरणादिनी, टाली सकल उपाधि ॥  
 अव्याबाध सुख अनुभवो, लहिशुं परम समाधि ॥  
 तुज गुण गणरिद्धि प्रकाशी, चित्त "वासीलाले" विकाशी ॥  
 योगी धर्शुं शिव वासी ॥ मगन० ॥ ४ ॥

संपूर्ण

श्रीमान् मनसुखलालजी कृत ॥ पद ॥

कब में साधु स्वरूप धरंगा ॥ ए राह ॥

द्रव्य सकल सहजे परिणामी, गुण परिणाम समय नवि चूके ॥  
 सहज स्वतंत्र स्वजावे वरते, कोइ समय निज धर्म न मूके ॥ द्रव्य ॥ १ ॥  
 पर परिणामने सहाय करे नहीं, पर परिणामने कोइ न रोके ॥  
 पर परिणाम विषे जरु रीझ्यो, शेष विकल्प करे अति फोके ॥ द्रव्य ॥ २ ॥  
 ठीक अठीक कर्तुं में माने, विविध जोग किरिया परिणामी ॥  
 कर्ता चोक्ता आपकुं माने, निज अनुभव विण रह्यो परकामी ॥ द्रव्य ॥ ३ ॥

ठीक अठीक कर्युं तेणे कल्पे, मुज इह्नीत कृत मैज कराव्युं ॥  
जल्प विकल्प करे इम वोहोला, तव तिहां मोह् अरी बल फाव्युं॥इव्य॥४॥  
अष्ट करमदस एणि विध बंधे, निज निधि सहज न आप संजारी ॥  
आतम परिणामीकता धारो, मनसुख अचल वीरज शिवंकारी॥इव्य॥५॥

॥ रुचिरा ठंद ॥ मात्रा ३० ॥

चौदराज गत जीव ठ कायिक, खेदइ तेहना थइए;  
इव्य जाव दोय जेद प्राणनी, परमदया जर थिर रहिए ॥ १ ॥  
अक्षय निज ज्ञायकता जाणी, समजावे इढता धारो,  
माहणता पद राखि रखावी, दुविधे यतना संजारो ॥ २ ॥  
झादशांग श्री जिनशासननो, एह सार अक्षय धारो,  
ज्ञान न्याय शुध दया रहित जे, मनुष्य जन्म तस निःसारो ॥ ३ ॥  
खेदइ खटकाय तणा जे, ज्ञानी न्यायी ते कहिए;  
दुविधे यतना धारी वरते, शुद्ध संयमी ते कहिए ॥ ४ ॥  
खट कायानो खेद न जाणे, आप स्वठंदे अनुसरता;  
आदि अंत ने मध्य विना ते, जव कंतारे दुःख खमता ॥ ५ ॥  
खटकायानो खेद न जाणे, तेनहि ज्ञानी नहि न्यायी;  
नहीं संयमी मूढ मती ते, मिथ्याती मानी मायी ॥ ६ ॥  
संक्षेपे ए मार्ग मोहनो, पुरुष पराक्रम करि सेवो;  
मनसुख खब्धि वीर्य निज पामी, शिव संगे चाखो मेवो ॥ ७ ॥

प्राणी एकल जावना जाव ॥ ए राग ॥

सोहम गणधरने नमी जी, ध्यावो आतमराय ।  
पर परिणामीकता तजी जी, पामो सिद्धि सदाय रे ॥ प्राणी निज ॥  
गुण पक्षाव सेव, कहिए सुख अहमेव रे प्राणी० ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥  
परिणामीकता वस्तुनी जी, परिणमे पूर्ण सदाय ।  
सहज स्वतंत्र स्वजाव ठे जी, रुके न केम कदाय रे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥

कोइ केना परिणामने जी, रोके न समये एक ।  
 परिणामीकता अनंतरे जी, परिणमे जाणो विवेक रे ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥  
 वर्णादिक परिणमे सदा जी, पुद्गल धर्म अनंत ।  
 अणगमता गमता लखे जी, मोही मिथ्याती जंत रे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥  
 पुद्गल परिणति नव नवे जी, समय समय पलटाय ।  
 आत्म ज्ञान विण मूढ त्यां जी, व्यापे मन ललचाय रे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥  
 पुद्गल गुण परिणामने जी, पलटी शके नहि जीव ।  
 शाश्वत जाव ए द्रव्यना जी, वरते सहज सदीवरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥  
 ज्ञानादिक निज धर्म ठे जी, निज परिणामीक शुद्ध ।  
 पर परिणति ममता करी जी, नूढ्यो बाल अबुद्ध रे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥  
 पुद्गलमां बहु कदपना जी, पुद्गलना आलाप ।  
 काय क्रिया पुद्गल विषे जी, करतो हर्ष विलाप रे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥  
 जबलग पुद्गलमां लखे जी, सुख रिद्धि निज जोग ।  
 तबलग शुद्धात्म तणो जी, होय न अनुजव योग रे ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥  
 बांधे आठे कर्मने जी, अणलहतो जिनधर्म ।  
 निजपद रिद्धि अजाण ते जी, किम पामे शिव शर्म रे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥  
 आत्मता पुद्गल विषे जी, लखि व्यापे मिथ्यात ।  
 अविरति तेथी ऊपनी जी, प्रमाद कषाय उत्पात रे ॥ प्राणी० ॥ ११ ॥  
 जोग चपलता त्यां थई जी, शांति निवृत्ती न पाय ।  
 हवे जिन वचन लखि करो जी, जेद ज्ञान सुखदाय रे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥  
 जर्मे मोहे बाहियो जी, सहज निवृत्ती न थाय ।  
 निज परिणामिकता लखे जी, शुक्लध्यान शिव पाय रे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥  
 जेदो अहंता जर्मने जी, आश्रव सघला जाय ।  
 हुं माहरुं पुद्गल विषे जी, तजतां संवर थाय रे ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥  
 संवर अंबरमां वशे जी, तजि पूरण विकल्प ।  
 ज्ञायकता एक आपणी जी, बीजा जूठा जल्प रे ॥ प्राणी० ॥ १५ ॥

जेम जेम पुद्गलमां लखे जी, निज कारण निज काज ।  
 तिमि तिमि आतम गुण विना जी, परवश होय अकाज रे ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥  
 स्याद्वाद अमृत समा जी, वचन सुण्यानी न खोट ।  
 पण परमाद वशे रह्यो जी, चित्तमां न लागी चोट रे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥  
 कारण कारज आत्ममां जी, निश्चे सिद्ध समाधि ।  
 जाणी बुध आदर करो जी, नाशे कर्म उपाधि रे ॥ प्राणी० ॥ १८ ॥  
 तेणे विकल्प तजी सवे जी, थिर उपयोग अडोल ।  
 शुक्लध्यान लहि पामजो जी, मनसुख शिव रंग चोल रे ॥ प्राणी० ॥ १९ ॥

### ॥ मंगलाचरण ॥ हरिगीत ठंड ॥

जग परम सुखकर दुरित दुखहर सहज धरम शुद्धातमा,  
 विकल्प तजी थिर ध्यानमां निज ध्याइ हो परमातमा ।  
 पंचास्तिनी जे परिणती ते सहज जावे परिणमे,  
 तस रोकवा नहीं अन्य समरथ कोझनी पण कोझ समे ॥ १ ॥  
 निज सहज परिणति धर्म अणलहि करत जूठ विकल्पना,  
 कर्तादि परमां आप माने शुचाशुच करि जल्पना ।  
 निज साध्य शून्य एकांत करणी आदरे त्रय जोगनी,  
 निज ज्ञान दीर्य अनंत चूक्यो धारि मति पर जोगनी ॥ २ ॥  
 परजोग ईहा शब्द जवलग आत्म अनुभव तिहा नहीं,  
 वलि होय मिथ्या शब्द तवलग आत्मथिरता नवि कही ।  
 नर आपना जे दोष ढांके मानी माया सालथी,  
 व्रत नियम तेहना सर्व निष्फल मलिन माया जालथी ॥ ३ ॥  
 ए कारणे जे शब्द तजशे तेहने जव जय नहीं,  
 शुद्ध अज्ञावे जिन धर्म चारयो सूत्रमा बहु थल कथी ।  
 तत्त्वार्थमा निःशब्द विरती प्रगट वचने जाणिए,  
 जगमूलथी सवि शब्द ठेदी विरति रति मन आणिए ॥ ४ ॥  
 परमादथी ठे दोष सघला जाणि समय न चूकिए,  
 सवि पुद्गलोनो राग त्यागी आत्म लक्ष न मूकिए ।

समजाव साचे जेह राचे धारि ऊदाशीनता,  
 सविकल्प ठेदी मोह जेदी शुक्ल ध्याने लीनता ॥ ५ ॥  
 जिन आण राखी समय साखी जिन सुगुणगण गाइए,  
 निज आत्म गुणमां तृप्ति राखी स्वगुण अनुभव पाइए ।  
 धरि धीरने निष्कंपता त्रय जोग थिरता आदरो,  
 तजि झोजना शुद्ध ध्यान धरतां परालंबन परिहरो ॥ ६ ॥  
 एम ठेदि आठे कर्म मर्म सुपर्म शीतलता वरो,  
 धरि चटक चितमां साचि पूरण जाव वीरज थिर करो ।  
 उमंग रंगे सुमति संगे करो मंगल जवि जना,  
 सहजात्म परिणति साधतां निज रिद्धि पावो शिवघना ॥ ७ ॥  
 आ ग्रंथमां जे जाव दाख्या जूल टाळी साधजो,  
 अज्यास सूत्र सिद्धांतनो करि आत्म गुण आराधजो ।  
 जग मुकुटमणि श्री सिद्ध प्रज्जुजी वीलसे शिव संपदा,  
 तिहां लगि रहो आ ग्रंथ अचलो टालतो जन आपदा ॥ ८ ॥  
 तीरथपतिना स्तवन अरथो आदि बहु शिव साधना,  
 डुविधे दया सहु जीवनी वलि रत्न त्रय आराधना ।  
 शिवकारी हो सवि वचन जिननां जव्यने अति वेगथी,  
 “मनसूख” शाश्वत सिद्धि पामो सहज विमल संवेगथी ॥ ९ ॥

ग्रंथ समाप्त.

